मुद्रक और प्रकाशक
जीवणजी डाह्याभाओ देसाओ
नवजीवन मुद्रणालय, अहमदाबाद–९

प्रथम आवृत्ति : ३०००

चार रुपये

मओ, १९५३

पितृ-स्मरण

देश और ओश्वर-सम्बन्धी मेरी भावनाओंके कारण जिन्हें संसारमें सबसे ज्यादा कष्ट सहना पड़ा और जिन्होंने पुत्रवात्सल्यसे वह सब सन्तोषपूर्वक सहन किया, अुन मेरे तीर्थस्वरूप पिताश्रीका अत्यन्त नम्रता और कृतज्ञतापूर्वक स्मरण।

केदारनाथ

प्रकाशकका निवेदन

अिस पुस्तककी मूल मराठी आवृत्ति छापते समय हमने अपना यह निश्चय जाहिर किया था कि अिसका हिन्दी सस्करण भी हम कुछ समयमे प्रकाशित करेगे। अिसलिये श्री केदारनाथजी जैसे अनुभवी और विवेकी सत्पुरुषकी यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पुस्तक हिन्दीमें पाठकोके सामने रखते हुअे हमे वड़ा आनन्द हो रहा है। मराठी और गुजरातीमे यह पुस्तक काफी लोकप्रिय सिद्ध हुअी है। आशा है अुसका यह हिन्दी सस्करण और अधिक लोगोंका ध्यान आकर्षित करेगा।

यह पुस्तक वेदान्त, भक्ति, ध्यान, योग-साधना, सिद्धि, साक्षात्कार, तप, वैराग्य आदि विषयोके जिज्ञासुओ और साधकोको भी विवेककी कसौटी पर परखा हुआ सच्चा मार्ग वतायेगी और सीधासादा, सदाचारी और कुटुम्ब, समाज तथा देशकी सेवाका जीवन वितानेके अिच्छुक ससारियोको भी रूढिवाद और अधश्रद्धासे अूपर अुठाकर विवेकका रास्ता दिखायेगी। आज जबकि सारी दुनियामे भौतिक सुखवादका वोलवाला है और पद-पद पर मानवकी मानवताका ह्रास हो रहा है, तव अिस पुस्तकके मानव-कल्याणसे प्रेरित लेखकने जगह-जगह अिस वात पर जोर दिया है कि सद्गुणोंकी वृद्धि करके मानवताका विकास करना चाहिये। यही मनुष्य-जीवनका सर्वोच्च ध्येय है, यही मानव-जीवनकी चरम सार्थकता है।

गुजरातीसे हिन्दी अनुवाद श्री रामनारायण चौधरीने किया है, जिसे श्रीनाथजी, स्व० श्री किशोरलाल मशरूवाला और श्री रमणीकलाल मोदी आद्योपान्त देख गये है। अिसमे गुजरातीकी दूसरी आवृत्तिके सारे सुधार और सशोधन शामिल कर लिये गये है। आशा है यह पुस्तक साधक, चिन्तक, अभ्यासी और ससारी सभीके लिअे अुपयोगी सिद्ध होगी।

२–५–'५३

संपादकोंका निवेदन

परम पूज्य श्री केदारनाथजीकी यह पुस्तक पाठकोंके सामने रखते हुअे हमें अनेक तरहसे आत्मसंतोष होता है। हम अिन्हें सक्षेपमें नाथ या नाथजी ही कहते हैं, अिसलिअे आगे यह छोटा नाम ही हमने काममें लिया है। पूज्य नाथजीका बुद्धिपूर्वक सत्सग शुरु किये हमें लगभग ३० साल हो गये हैं। अुनके अुपदेश और समागमसे हमारे विचारोंमें भारी परिवर्तन हुआ, बुद्धिमें स्पष्टता आअी, भावनाओंकी शुद्धि हुअी, जीवनके ध्येय और साधनोंके चुनावमें फर्क पडा; क्या करें, कैसे करें, किसलिअे करें, वगैरा प्रश्नोंसे परेशान मन स्थिर हुआ। अुस परेशानीके कारण पैदा हुअी हमारी अपनी व्याकुलताका असतोष और अुसके परिणामस्वरूप हमारे गृहस्थजीवनमें तथा हमारी सस्थाओं और साथियोंके साथ होनेवाले हमारे झगडे कम हुअे; जिस महात्माकी सेवामें और सस्थामें हम प्रत्यक्ष रूपमें काम करते थे और जिनके जीवन-कार्यको आज भी आगे बढानेकी कोशिश कर रहे हैं, अुनकी सेवा और कार्य करनेकी हमारी योग्यता बढी। अनेक प्रकारके भ्रमों और कल्पनाओंके जालमें फसने या काल्पनिक भयोंसे डरकर अुनसे छूटनेके लिअे बेकार कोशिश करनेकी झझट और जजालसे छूटे। जो चीज जैसी हो अुसे वैसी ही देखनेकी हिम्मत आअी।

*　　　　*　　　　*

अिन सारे शुभ परिणामोंके फलस्वरूप हमारे मनमें नाथजीके प्रति गुरुबुद्धि और अत्यन्त कृतज्ञ-बुद्धि हो, तो अिसमें आश्चर्य क्या?

फिर भी, भारतवर्षमें आम तौर पर गुरु-शिष्य-संबंधकी जो कल्पना है, अुससे नाथजी और हमारे बीचका गुरु-शिष्य-संबंध कुछ दूसरी ही तरहका रहा है। जिसका श्रेय हमारी अपेक्षा पूज्य नाथजी और पूज्य गांधीजीको ही ज्यादा है। हमारे बचपनसे प्राप्त परंपरागत संस्कार तो वैसे ही थे, जैसे आम तौर पर हमारे देशके जिज्ञासुओंके होते हैं। हमारी अुम्र ३० वर्षसे कम थी, बुद्धि परिपक्व नहीं थी, ज्ञान, भक्ति, वैराग्य वगैराके हमारे संस्कार पुराने साम्प्रदायिक ढंगके ही थे। अेक तरफ जिन दो अलग सम्प्रदायोंमें हम पले थे, अुनमें अपनी अलग-अलग बुद्धिके अनुसार हमारी अैसी दृढ श्रद्धा थी कि हमारे सम्प्रदायमें धर्म, ज्ञान और मोक्षकी संपूर्ण अिति है और कोअी दूसरा संप्रदाय, दर्शन वगैरा अुसकी बराबरी नहीं कर सकता। दूसरी तरफ हमारी यह भी भावना थी कि गुरुके बिना ज्ञान नहीं और ज्ञानके बिना मोक्ष नहीं। अिसलिअे हम सम्प्रदायकी चारदीवारीमें ही गुरुको ढूंढते थे। घर, सगे-संबंधी और समाज वगैराको हम स्वार्थके और मिथ्या तथा नाशवान् संबंध मानते थे; अुन्हें छोड़कर भाग जानेकी हमारी वृत्ति थी। अिन सब बातोंका हमारे मनमें बड़ा मन्थन चल रहा था। अिननेमें पूज्य नाथजीसे हमारा नये रूपमें परिचय हुआ। यों तो वे हमारे साबरमती आश्रममें शरीक होनेके पहलेसे ही वहां आते-जाते थे, अिसलिअे काका साहबके अेक महाराष्ट्री मित्र और आश्रमके प्रति सद्भाव रखनेवाले सज्जनके रूपमें साधारण तौर पर हम अुन्हें जानते थे। परन्तु बादमें हमें अनायास पता चला कि अुन्होंने हिमालयमें कअी वर्ष बिताकर, योग वगैरा साधकर 'आत्मसाक्षात्कार' किया है। यह हमें अुनका नअी दृष्टिसे परिचय हुआ और हम अेक सिद्ध योगी तथा ब्रह्मनिष्ठ पुरुषके नाते अुनके पीछे लगे। जिससे वे चाहते तो हमारे श्रद्धालुपन और शिष्यभावसे लाभ अुठाकर — जैसे कअी शिष्य अपने सद्गुरुको भगवान बनाकर अुनके सम्प्रदाय-प्रवर्तक बन जाते हैं अुसी तरह — हमें अपने शिष्य बनाकर अेक पंथ चला सकते थे। वे हमें गांधीजीको

प्रवृत्तियोंसे पराङ्मुख भी कर सकते थे। साथ ही गांधीजी भी यदि महात्मापनका अहंकार रखनेवाले और अिसलिअे दूसरे 'महात्मा' को अपनी संस्थामें बर्दाश्त न कर सकनेवाले होते, तो अुन्होंने पूज्य नाथको अपनी संस्थामें आनेसे रोक दिया होता। क्योंकि यह बात सत्याग्रह आश्रममें छिपी नहीं रही थी कि पूज्य नाथजी और हम दोनोंमें से पहल करनेवाले किशोरलालके बीच गुरु-शिष्य जैसा सम्बन्ध हो गया है। अिसके परिणामस्वरूप आश्रमके दूसरे भी कअी लोग अुनका समागम करने लगे थे और अुन सबके बारेमें कुछ समय तक अैसा भास होने लगा था मानो वे सब 'दो गुरुओंके चेले' हों। परन्तु गांधीजीमें महात्मापनके भानका अभाव था, अिसलिअे अुन्हें कभी नाथजीसे अीर्ष्या नहीं हुअी। अुल्टे अुन्हें यह सोचकर आश्वासन मिला कि अेक अैसे सत्पुरुष अुनके पास आते रहते हैं, जो अुनकी गैरहाजिरीमें आश्रमवासियोंके मार्गदर्शक बन सकेंगे। अुन्होंने सदा ही नाथजीके साबरमती आने-जाने और रहनेको प्रोत्साहन दिया। दांडी-कूचके समय गांधीजीने अुनसे आश्रम पर निगाह रखने और बार-बार वहां आते रहनेका वचन लिया था। दूसरी ओर नाथजीको गुरुपनके अहंकारने कभी छुआ ही नहीं था। अिसलिअे जो भी भाअी-बहन आश्रमका या और कोअी सार्वजनिक काम करते, अुन्हें अुससे हटाने या शिथिल करनेका अुन्होंने कभी प्रयत्न नहीं किया। अुल्टे अैसी कोशिश की, जिससे अुनकी काम करनेकी योग्यता बढ़े।

अिसका कारण यह नहीं था कि विनोबाजी, काकासाहब वगैराकी तरह पूज्य नाथजीका भी गांधीजीके साथ अैसा सम्बन्ध था, जिससे अुन्हें गांधीजीके कार्यकर्ता या साथी माना जा सके। वे अेक स्वतंत्र व्यक्ति थे। कुछ बातोंमें गांधीजीसे भिन्न दृष्टि भी रखते थे। और अैसे विचार भी रखते थे, जो गांधीजीको मंजूर न थे। फिर भी दोनोंके अंतिम आशय अुच्च, महान और समान होनेके

कारण हरअेक व्यक्ति पर नाथजीके समागमका परिणाम गांधीजीकी प्रवृत्तियोंके लिअे मददगार ही साबित हुआ।

*　　　*　　　*

पूज्य नाथका महाराष्ट्रमें भी अेक मित्र-मंडल था। जैसा अुन्होंने अपने 'आत्म-परिचय' मे बताया है, वे युवावस्थामें व्यायाम-सम्बन्धी और क्रांतिवादी हलचल करते थे। अुसके कारण और कौटुम्बिक सम्बन्धोंके कारण यह मित्र-मंडल बना था। अुनमें से बहुतोंको बचपनसे नाथका परिचय और अुनकी योग्यताका अनुभव था और वे भी अुनका समागम करनेको अुत्सुक रहते थे। अिन सबमें कितने ही अैसे हैं जो पू० नाथको लगभग अपने गुरु जैसे मानते हैं, फिर भी अुन्हें हम नामसे भी नहीं जानते और न वे ही हमें पहचानते हैं। कभी अनायास किसी जगह भेंट हो जाने पर ही पहला परिचय होता है और पता चलता है कि वे नाथको कबी सालसे पहचानते हैं।

अिस प्रकार नाथका सत्संग हरअेकने स्वतंत्र रूपसे ही किया है। हम दोनोंके बारेमें भी कुछ हद तक तो अैसा ही हुआ। हम दोनों साबरमती आश्रमके ही सेवक थे। दोनों अुनकी निगरानीमें कुछ-न-कुछ ध्यान वगैराका अभ्यास करते थे। फिर भी बहुत वर्षों तक हम अेक-दूसरेके साथ होनेवाले पत्रव्यवहार, चर्चाके विषयों वगैराके बारेमें बहुत तफसीलसे नहीं जानते थे। तीनोंमें से किसीका कुछ भी गुप्त नहीं था, परन्तु तीनोंमें से किसीका स्वभाव अैसा नहीं था कि बेकार कुतूहलका भाव रखकर यह जानने या बतानेकी कोशिश करे कि किसके साथ क्या चर्चा हो रही है। गुप्तता रखनेका हमारा कोअी आशय ही नहीं था, अिसलिअे अनायास और धीरे-धीरे अेक-दूसरेके साथकी चर्चाओं, पत्र-व्यवहार वगैराकी जानकारी हमें होती गअी। यही बात पूज्य नाथके साथ समागम करनेवाले और लोगोंके बारेमें भी हुअी। सहज ही अुनके कुछ सम्भाषणों, चर्चाओं और

सार्वजनिक कार्योंमे मौजूद रहनेके और सबके लिअे अुपयोगी सिद्ध होनेवाले पत्र-व्यवहार तथा पूज्य नाथकी नोटबुके वगैरा पढने और सुननेके अवसर आये। हमारे अपने जीवनको जो लाभ हुआ था, अुसका हमे प्रत्यक्ष अनुभव था और अिन समागम करनेवालोके सन्तोषको भी हम देख सकते थे। कुछ लोगोकी कठिनाअियो और शकाओका समाधान हम न कर पाते, तो हम अुन्हे नाथजीके पास भेजते; और अधिकतर वे न केवल अुनसे सन्तुष्ट ही होते, बल्कि बादमे अुन्हे कभी छोडते ही नही थे।

*　　　*　　　*

अिन सब चर्चाओं, वार्तालापो वगैराके नोट रखनेकी रमणीकलालको आदत है। किशोरलालको अैसी आदत नही। परन्तु पूज्य नाथसे जो लाभ अुठाया हो, अुसे पचाकर वे पाठकोके सामने रखते ही रहते है। पाठक यह पुस्तक पढते-पढते ही देख लेगे कि अिसमेके बहुतसे विचार विस्तारसे या सक्षेपमे किशोरलालकी 'केळवणीना पाया' (तालीमकी बुनियादे), 'जीवनशोधन',* 'समार और धर्म' वगैरा (गुजराती) पुस्तकोमें और कअी लेखोमे व्यक्त हो चुके है। परन्तु वे पूज्य नाथके ढग पर या अुनका हवाला देकर नही, बल्कि किशोरलालके अपने ढग और अपनी जिम्मेदारी पर व्यक्त किये गये है। स्वतत्र विचारकके रूपमे किशोरलालकी ख्याति है, परन्तु अुन्होने अपनी पुस्तकोकी अर्पणपत्रिका और प्रस्तावना वगैरामे अपने विचारोके लिअे पूज्य नाथका ऋण स्वीकार किया है। वह ऋण कितना बडा है, यह नाथजीकी अिस पुस्तकको पढकर मालूम हो जायगा। साथ ही किशोरलालके विचारो पर गाधीजीकी भी छाप है। और वह अितनी ओतप्रोत है कि अुन रचनाओमें गाधीजी, नाथजी और स्वय

---

* यह पुस्तक हिन्दीमे नवजीवन कार्यालयसे प्रकाशित हो चुकी है। कीमत ३-०-०; डाकखर्च १-१-०।

किशोरलालकी बुद्धिका कितना हिस्सा है, जिसका विश्लेषण करना मुश्किल है।

परन्तु रमणीकलालने अपनी नोट लेने, पत्रव्यवहार सुरक्षित रखने वगैराकी आदतके कारण जिस तरहका काफी संग्रह कर रखा था। पू० नाथके पास भी कुछ नोट, पत्र वगैराका संग्रह था। अुन सबको व्यवस्थित रूपमें जमाकर अुनमें से छटनी करने वगैराका रमणीकलालमें अुत्साह था।

*　　　　*　　　　*

कुछ वर्षोंसे हमें लग रहा था कि पू० नाथके विचार पुस्तकबद्ध हो जाय तो अच्छा हो। अुनके समागममें आनेवाले दूसरे मित्रोंकी भी असी अिच्छा थी। हालांकि हम मानते हैं कि सत्पुरुषोंका प्रत्यक्ष सम्पर्क ही जीवनमें अधिक और कअी तरहसे लाभदायी होता है, फिर भी जिनके लिअे प्रत्यक्ष सम्पर्क संभव न हो, अुनके लिअे और सम्पर्कसे प्राप्त किये हुअे ज्ञानका स्मरण ताजा करनेके लिअे अुनके विचार पुस्तकरूपमें हो, तो वे भी बड़े अुपयोगी हो सकते हैं। हर रोजके पठन-मननमें अुनका अुपयोग हो सकता है। कुछ असे ही विचारोंसे प्रेरित होकर १९४२ में किशोरलालके जेलके दिनोंमें हमारे बीच हुअे पत्रव्यवहारमें यह कल्पना अुत्पन्न हुअी कि पूज्य नाथके विचारोंकी टिप्पणियां, पत्र वगैरा जो कुछ भी अिकट्ठा किया जा सके अुसे जुटाकर प्रकाशित किया जाय। और अिसके लिअे पूज्य नाथकी स्वीकृति लेकर अुसका पहला कच्चा संग्रह तैयार किया गया। फिर, किशोरलालके छूटनेके बाद अुनके साथ संग्रहकी जांच करने पर असा लगा कि ये टिप्पणियां, पत्र वगैरा कहीं संक्षेपमें, कहीं केवल सूत्र रूपमें और कहीं-कहीं पूर्वापर सम्बन्ध न जाननेवालेको कुछ भी बोध न हो अिस रूपमें होनेके कारण अुन्हें ज्योंकि त्यों छापनेसे पूरा लाभ नहीं हो सकता। अिसलिअे पहले तो हमने जहां-जहां अस्पष्टता थी, वहां-वहां पूज्य नाथसे स्पष्टता करनेवाले परिशिष्ट

लिखवाने शुरू किये। परन्तु अिस सारे साहित्यमे अितने विविध और फिर भी आपसमे गुथे हुअे विषय थे कि अुन्हे व्यवस्थित करनेकी कोशिशमें क्लिष्टता वढती नजर आयी। अिस वारेमे पूज्य नाथके साथ हुअी चर्चामे अुन्हे लगा कि अिन टिप्पणियो और पत्रो वगैराकी व्यवस्थामे न फंसकर अुनमे के महत्त्वपूर्ण विषयो पर वे सवाद या प्रश्नोत्तरके रूपमें लेख तैयार करे। तदनुसार अुन्होने थोडे किये भी। अुनमे से कुछ अुन वर्षोंके 'शिक्षण अने साहित्य' गुजराती मासिकमे प्रकाशित भी हुअे है। अिसी वीच किशोरलालकी 'ससार अने धर्म' (गुजराती) पुस्तक छप रही थी। अुसकी पूर्तिके रूपमें कुछ लिखनेकी हमने अुनसे प्रार्थना की। अुसमे अुन्होने तीन अध्याय लिखे, जो अुस पुस्तकमे आ ही गये है।

परन्तु अधिक विचार करने पर सवादो वगैराके ढगका यह निरूपण पूज्य नाथको सतोषप्रद नही मालूम हुआ। अिसलिअे यह विचार हुआ कि दुवारा मेहनत करनी पडे तो हर्ज नही, लेकिन अपने विचारोको समग्र और व्यवस्थित रूपमे भाषावद्ध किया जाय। हमने पूज्य नाथसे दो वार तो मेहनत करा ली थी। अुनका हरअेक विषयकी गहराअीमे जानेका स्वभाव, अुसे सुन्दर अक्षरोमें मराठीमे अपने हाथसे लिख डालनेकी लगन, अनेक मुलाकातियोंको दिया जानेवाला समय, समय-समय पर वढ जानेवाली खुजली (अेग्ज़िमा) का अुपद्रव, वीच-वीचमें प्रवास, सार्वजनिक कार्य, हाथसे ही खाना वनाने और कपड़े धोने वगैराकी व्यवस्था तथा वीमारोंकी सेवा अुनका स्वभाव-सिद्ध व्यवसाय होनेके कारण सगे-सम्वन्धियो और स्नेहियो वगैराकी आ पड़नेवाली शुश्रूषायें और चिन्तायें, और छपवानेकी दृष्टिसे लिखनेका मुहावरा न होनेके कारण सिद्धहस्त लेखकोकी अपेक्षा अिसमें लगनेवाला अधिक समय — अिन तमाम कारणोंसे अिस तरह दुवारा लिख डालनेमें अुन्हे वहुत परिश्रम पड़ा और समय भी ज्यादा लगा। वे मराठीमे लिखते, साफ करते, अुसका गुजराती अनुवाद

किया जाता, और फिर अुसे वे देखते। अिन बातोंमें काफी समय चला गया। अुन्हें खूब मेहनत भी अुठानी पड़ी। परन्तु चूंकि अुन्हें अिसकी अुपयोगिताका विश्वास हो गया था, अिसलिअे अैसी प्रवृत्तिके बारेमें किसी समय अुन्हें जो संकोच होता था, वह अुन्होंने छोड़ दिया और सारा परिश्रम खुशीसे किया। अुसी परिश्रमका फल यह पुस्तक है।

अिसमें आये हुअे विचार अेक तरहसे स्वतंत्र रूपमें ही लिखे गये हैं। यह नहीं कहा जा सकता कि टिप्पणियों, पत्रों वगैराका जो मसौदा पहले बनाया गया था, अुसीकी यह नअी व्यवस्था है। अुन सबमें बीज रूपमें तो ये विचार बिखरे हुअे पड़े ही हैं, परन्तु जिस रूपमें अुनका अिसमें विकास हुआ है, अुस रूपमें वे पुरानी टिप्पणियोंमें नहीं पाये जायंगे। यह कहनेमें हर्ज नहीं कि टिप्पणियों और पत्रों वगैराको अलग रखकर ही यह पुस्तक लिखी गअी है। जैसे-जैसे विचार आते गये, वैसे-वैसे लिखे गये हैं और सब कुछ लिखे जानेके बाद अिसका संकलन किया गया है। कुछ महत्वके पत्रोंका अिसमें समावेश किया गया है। अिसलिअे अेक प्रकारसे हरअेक अध्याय स्वतंत्र है। परन्तु सबके पीछे कुछ सैद्धान्तिक विचारोंकी मजबूत बुनियाद है।

*   *   *

ये मौलिक सिद्धान्तरूप विचार क्या हैं, अिसका थोड़ा मनन कर लेना पाठकोंके लिअे सहायक होगा।

पहले तो अिसका थोड़ा स्पष्टीकरण करना ठीक होगा कि यह पुस्तक किसके लिअे है। चूंकि समाजमें नाथजीका परिचय हमारे गुरुके रूपमें हो गया है, अिसलिअे साधारण तौर पर पाठकोंको यह खयाल होना सम्भव है कि यह पुस्तक मुख्यतः वेदान्त-ज्ञान, भक्ति, ध्यान, योग-साधना, सिद्धि, साक्षात्कार, तप और वैराग्य आदि विषयोंका निरूपण करती होगी और अुस मार्गके साधकों, जिज्ञासुओं,

मुमुक्षुओ और अधिकारियोके कामकी ही होगी। अैसी कल्पना की जा सकती है कि जो किसी प्रकारकी खास साधना या मोक्षकी अिच्छा या ससारका त्याग करनेकी ख्वाहिश नही रखते, या चार देह, पच कोष, चौबीस तत्त्व वगैराकी चर्चाओमे दिलचस्पी नही लेते, मन, बुद्धि, विज्ञान आदिकी भूमिकाओ, तरह तरहकी समाधि, आनद, साक्षात्कार वगैरा प्राप्त करनेकी अभिलाषा नही रखते, बल्कि अितनी ही सद्‌वृत्ति रखते है कि समाजमे किस तरह सदाचारसे रहे और चले, गृहस्थाश्रम और जीवनके फर्ज अदा करे, जनसेवा करे, अच्छे वातावरणका सेवन करे और धीरे-धीरे अपनी योग्यता विविध प्रकारमे बढाये, अुनके लिअे शायद यह पुस्तक अुपयुक्त न हो। अिसलिअे अिन दोनो प्रकारके जिज्ञासुओको बता देना ठीक होगा कि यह पुस्तक दोनोके लिअे है। पहले वर्गके साधकोको यह पुस्तक अनेक भ्रमो, कल्पनाओ, गूढ तत्त्वो वगैरामे फसनेसे बचायेगी, जितने साधनमार्गका जिस प्रकार और जिस दृष्टिसे अभ्यास करना जरूरी है, अुसका स्पष्ट मार्गदर्शन करेगी तथा जो दूसरे वर्गके सत्सगार्थी है, अुनकी विवेक-बुद्धिको जाग्रत करके अुसका अुपयोग करना सिखायेगी और स्वय अपने साथ तथा कुटुम्ब और समाजके साथ शुद्ध सम्बन्ध रखना और कर्तव्यपालन करना सिखायेगी। अिसमे कोअी विषय अैसा नही जो केवल पू० नाथ पर या पू० नाथके माने हुअे किसी शास्त्र पर श्रद्धा रखकर ही मान लेना पडे, या जो पू० नाथ या किसी औरको अपना तन-मन-धन अर्पण करके ही प्राप्त किया जा सकता हो, या जो किसी गूढ भूमिका पर आरूढ होनेके बाद ही समझमें आ सकता हो। अिसलिअे जिस किसीमे सन्मार्ग पर चलनेकी थोडी भी वृत्ति है या जिसे किसी साधनमार्गका प्रयत्न करनेकी अभिलाषा है, अुन दोनोंके लिअे यह पुस्तक मार्गदर्शक होगी। अिसमे छात्र-छात्राओ, पति-पत्नी, नवदपती, समाजसेवक वगैरा सभीको स्पर्श करनेवाले विषयो पर विचारप्रेरक और अुत्साहवर्धक

अध्याय मिलेगे। अितना अिस पुस्तकके बारेमे निश्चयपूर्वक कहनेमें हमे कोअी सकोच नही।

बहुत सभव है कि तरह-तरहके धर्मों, सम्प्रदायो, रूढियो और श्रद्धाओ वगैराके बलवान सस्कारोमे पले हुअे पाठकको यह पुस्तक कुछ आघात पहुचाये। कुछ अैसे विचार भी अुनके पढनेमें आयेंगे, जिनकी अुसने आशा न रखी हो और अुनसे कदाचित् प्रारभमें अुसे असन्तोष हो, अुसका जी दुखे और मन सशयके चक्करमे पड़कर घबरा जाय। हम खुद पू० नाथके साथ अपने प्रारभिक परिचयमे काफी घबराहटमें पडे थे। अपने सप्रदायोंके बारेमें हमारी भक्ति और श्रद्धा जितनी दृढ थी, अुतने ही तीव्र आघात भी हमें लगे। जब तक हम यह नही तय कर सके कि नाथके विचार सही है या हमारे सम्प्रदायके मत सही है, तब तक अुस परेशानीमें हमने कितनी ही बार आसू गिराये। परन्तु अन्तमे हमने निःशकतासे प्राप्त होनेवाली प्रसन्नता और स्थिरता भी अनुभव की। अिसलिअे हम यह कह सकते है कि अगर पाठकमें निडर होकर सत्यको जानने और अुस पर चलनेका निश्चय और हिम्मत होगी, तो वह अिन आघातो और सशयोको पार कर लेगा और विवेकयुक्त निश्चय प्राप्त करनेका सतोष अनुभव करेगा।

* * *

हमारे देशको श्रेष्ठ आध्यात्मिक तत्त्वज्ञान और सस्कृति निर्माण करनेका गौरव प्राप्त है। नीति और तत्त्वविचारके क्षेत्रमें भारतके विचारकोने जो स्वतत्रता दिखाअी है और पराकाष्ठा की है, वह दूसरे सब देशोंसे बढी-चढी है। यह दावा हमीने खुद अपने लिअे नहीं किया है, परन्तु दुनियाके सब देशोंके महान तत्त्ववेत्ताओने अिसे स्वीकार किया है। स्वाभाविक रूपमें ही हमे अिसके लिअे अभिमान और धन्यता अनुभव होती है।

फिर, हमारी यह भी ख्याति है कि भारतवर्षके लोग संसारके सब लोगोंकी अपेक्षा अधिक धर्मपरायण और धर्मको दुनियाकी भौतिक वस्तुओं और बड़प्पनसे ज्यादा महत्त्व देनेवाले हैं। संसारके सब विषयों और कर्मोंकी कीमत हम केवल भौतिक लाभ-हानिके आधार पर नहीं आंकते, परन्तु हमारे लिअे यह कहा जाता है कि हम अुनके आध्यात्मिक, धार्मिक या नैतिक परिणामोंके अनुसार मूल्यांकन करते हैं। हमारे प्रति दुनियावालोंका यह जो खयाल है, अुसका भी हमें गर्व होता है।

अिस प्रकार हमें अपनी संस्कृतिके बारेमें प्राचीनता व श्रेष्ठताका और अपनी धर्मभावनाका तीव्र रूपमें भान है, और अिस भानका नशा भी है। अिस नशेके जोरसे हम यह भी कह डालते हैं कि अैसे मामलोंमें तो हम जगतके गुरु हैं, दूसरा कोअी देश हमें कुछ नया सिखा या दे ही नहीं सकता, अुलटे, दूसरी संस्कृतियोंमें भी कुछ लेने लायक है, यह खयाल ही हममें घुसा हुआ बड़ा भारी दोष है, जो कुछ बाहरसे आ गया है, अुसे निकाल देनेकी हमारी कोशिश होनी चाहिये।

अपनी दृष्टिमें हमारी अितनी अधिक महिमा होने पर भी राष्ट्र या कौमकी हैसियतसे हमारी कैसी दयाजनक और कंगाल हालत है! कैसा परतंत्रता और गुलामीसे भरा हुआ हमारा सदियोंका अितिहास है! कितनी विषमता, दरिद्रता, संकुचितता, भेददृष्टि और अबंधुत्व हममें है! कितने छोटे-छोटे अेक-दूसरेसे सदा लड़ते रहनेवाले राज्य, पंथ और जात-पांत हैं। बलवानके हाथों दुर्बल पर कैसा अत्याचार, दीन और स्त्री-जातिका कैसा दलन युगों तक निरन्तर होता रहा है!

अगर बुद्धि, संस्कारिता और धर्मभावनामें हम बहुत अूपर अुठे और आगे बढ़े हुअे हैं, तो हमारा सार्वजनिक जीवन — राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, स्वास्थ्य वगैरा सभी क्षेत्रोंमें — अितना ज्यादा कंगाल क्यों है? धर्म, अर्थ और कामका बहुत स्पष्ट और सूक्ष्म दर्शन पाये हुअे समाजका अितना पतन हो ही कैसे सका? शायद

यह समझमें आ सकता है कि न सोची हुअी आपत्ति आ पड़नेके कारण थोड़े वर्षके लिअे दुखकी लहर दौड़ जाय। परन्तु सैकड़ों बरस तक हाल ही होता रहे और करोड़ोंकी जनसंख्या, अर्थप्राप्तिके कुदरती साधनोंकी बहुतायत और बुद्धिमान व वीर स्त्री-पुरुषोंकी अटूट परम्पराके बावजूद हमारा देश अुन बेड़ियोंको तोड़ न सके, अुल्टे अेकके बाद अेक नये-नये विजेताओंसे पादाक्रान्त होता रहे — यह सभव ही क्योंकर हुआ? किस पापसे हम पराभूत हुअे अथवा किस सत्यका लोप करनेसे हम शापित बने और हजारों वर्ष तक दुःखके सागरमें डूबते ही गये? बीच-बीचमें अीश्वरके अवतार जैसे पराक्रमी पुरुषों, अीश्वरके साथ अेकता साधनेवाले ब्रह्मनिष्ठ महात्माओं और परमकृपालु सतवृत्तिके पुरुषोंके बार-बार प्रयत्न करने पर भी, जैसे रबरकी पट्टी खींचकर रखें तभी तक बढ़ी हुअी दिखाअी देती है पर छोड़ते ही सिकुड़ जाती है वैसे ही, हमारे लोग अैसे वैसे सुधारकोंकी जीवनलीला समाप्त होते ही फिरसे विपत्ति और दुष्टताके शिकार ही बनते रहे, अैसा कौनसा पाप हमारे जीवनसे चिपट गया था और आज भी चिपटा हुआ लगता है?

कुछ लोग कहते हैं कि हम धर्मको जीवनमें बहुत महत्वका स्थान देनेवाले होनेके कारण ही ससारमें पीछे रह गये हैं और आगे नहीं बढ़ सके। अगर हम धर्मको गौण बना दें, तो सासारिक दृष्टिसे बहुत प्रगति कर सकते हैं। क्या यह सच है? सभव भी है? अगर यह कहा जाय कि धर्म अपने अनुयायियोंको बड़े-बड़े साम्राज्य जीतने और स्थापित करनेमें, करोड़पति बननेमें, अैशआराम और भोग-विलासमें डूबे रहनेमें बाधक होता है, तो यह समझमें आ सकता है। परन्तु क्या धर्म मनुष्यके अुचित अर्थ और कामका भी शत्रु हो सकता है? क्या धर्म अपने अनुयायीको अितना कगाल बना सकता है कि वह दाने-दानेको मोहताज हो जाय? क्या वह अुसे अैसा गरीब और कायर बना सकता है कि कोअी भी डरा-धमका कर अुसकी मेहनतसे

प्राप्त की हुअी और किफायतशारीसे बचाअी हुअी वस्तु अुससे छीन कर ले जाय? क्या धर्म अुसे अितना भोला और मूर्ख रख सकता है कि वह सहज ही किसीसे भी धोखा खा जाय? क्या वह अपना पालन करनेवालेको अितना अधश्रद्धालु, मूर्ख और लालची बना सकता है कि वह किसीकी मामूली करामातोसे भूलावेमे आ जाय? अगर अैसा ही परिणाम आये, तो या तो हमारे अिस खयालमे भ्रम है कि हम धर्मपरायण है या धर्म समझकर हम जिससे चिपटे हुअे है वह धर्म नही कोअी भ्रम ही है। या तो 'धर्मादर्थश्च कामश्च' (धर्मसे ही अर्थ और काम सिद्ध होता है) यह व्यासवचन गलत है या हमारा यह अभिमान गलत है कि हम धर्मपरायण लोग है।

कुछ लोग धर्म और अीश्वरका अभेद करके धर्मके बारेमे जो शका अूपर बताअी गअी है, अुसे अीश्वरके अस्तित्व-विषयक शंकाके रूपमे प्रगट करके पूछते है कि यदि अीश्वर है तो अैसे अन्याय, दु ख वगैरा क्यों होते है? अीश्वर यह सब कैसे देख सकता है? अिस-लिअे या तो अीश्वर है ही नही या जिसे हम अीश्वर मान बैठे है, अुससे वह कोअी दूसरी ही शक्ति है।

अिस प्रकार अेक ओर धर्म अथवा अीश्वर और दूसरी ओर अर्थकामके बीचका विरोध बहुतोको परेशान करता रहा है। धर्म, भक्ति, ज्ञान, अध्यात्मशास्त्र, दर्शन वगैराके ग्रथोमे अिसका स्पष्टीकरण नही मिलता। अुनमे योगाभ्यासो, सिद्धियो, अगम्य शब्दो, तत्त्वो, तत्त्वोंके गणितो और पचीकरणो वगैराकी बहुतसी अैसी बाते है, जिनमें पड़नेका मामूली आदमीका बूता नही, जिनका वह खुद प्रयोग या अभ्यास करके अपने अनुभवसे सबूत नही जुटा सकता। कभी न मिटने-वाले आनन्द और कल्पनामे न आ सकनेवाले प्रकाशो और किरणोंका अुनमे अुल्लेख है। हजारों वर्षकी समाधियो और मृत्युके बाद प्राप्त होनेवाले स्थानोकी और कल्प-कल्पमे होनेवाले रामकृष्णादि अवतारोकी कथाअें अुनमे है। स्वप्नमें स्वप्न, अुसमे फिर स्वप्न और अुसमें भी

फिर स्वप्न, ब्रह्माण्डमें खण्ड, खण्डमें अणु, अुस अणुमें दूसरे ब्रह्माण्डों वगैराकी अद्भुत कथाअें भी अुनमें हैं। दुःखके आत्यंतिक नाश और मुक्तिके आश्वासन हैं और यज्ञकर्मों तथा विधियोंके सूक्ष्म नियम हैं। परन्तु अुनसे अिसका बोध नहीं होता कि भारतवर्षके लोगोंको अपने अति दारुण दुःखोंका नाश करने और साधारण सुखी और स्वाभिमानपूर्ण जीवन-यात्राके लिअे पुरुषार्थ करनेकी प्रेरणा देनेवाला धर्म और संस्कृति कौनसी है।

दर्शनकारोंने तो अितना कहकर कि जगत दुःखरूप ही है और हमेशा रहेगा और जीवन क्षणभंगुर होनेके कारण अुतना दुःख सह लिया जाय, जो दुःख कम किये जा सकते हैं, अुनके निवारणका प्रयास करनेका भी विचार नहीं किया। अिस प्रकार कोअी यह नहीं बताता कि हमारे धर्मविचार और संस्कृति-विचारमें क्या खामियां पैदा हो गअीं, वे किस तरह पैदा हुअीं और टिकी हुअी हैं।

हमारे खयालसे अिन अुलझनोंका हल ढूंढनेवालेके लिअे यह पुस्तक अत्यन्त सहायक होगी। यह अुसकी विचारशक्तिको नवीन प्रेरणा देगी, अुसकी बुद्धिको स्वतंत्र बनायेगी और अुसके मतोंका संशोधन करेगी। यह व्यक्ति और समाजका अन्योन्याश्रय सम्बन्ध बताती है, व्यक्तिके समाजके सेवक बनने और अुसके प्रति कर्तव्य पालनेका जो धर्म भुला दिया गया है और जिसका विकास रुक गया है, अुसकी तरफ सबका ध्यान खींचती है। पशुके जैसे ही बालबच्चोंका पालन-पोषण करनेवाले, कामादि वासनाओंसे प्रेरित होने वाले और अुनके लिअे धन कमाते हुअे भी गृहस्थाश्रमके धर्मोंके प्रति विमुख बने हुअे भोगपरायण तथा परंपरागत धर्मभक्तिपरायण संसारी लोगोंको यह झकझोरकर जाग्रत करती है। जितना कम समझमें आये अुतने ही ज्यादा ज़ोरसे पकड़ रखनेवाली श्रद्धाको यह पुस्तक विवेककी दृष्टि देनेका प्रयत्न करती है। साथ ही जिन्हें योग, भक्ति, कर्म या ज्ञानके मार्गोंका अध्ययन और साधना करनेकी रुचि है, अुन्हें

अिनकी विवेकयुक्त रीतिया वताती है, अुन्हे प्रेरणा भी देती है और साथ-साथ अुन सब साधनाओंका हेतु और साध्य भी स्पष्ट कर देती है।

चार-सौ पन्नोंकी पुस्तकमे अितनी सारी वस्तुओंका समावेश होनेके कारण वह अैसी नही, जिसे अेक ही वार पढकर ताकमे रख दिया जा सके। जिसमे कभी-कभी पुनरुक्ति भी मालूम होगी। परन्तु पुनरुक्ति जैसे वाक्योंकी भी पाठक तुलना करेगा, तो देखेगा कि हरअेक वाक्यमें किसी-न-किसी नये भाव या विचार पर पाठकका ध्यान खीचा गया है, केवल वाचालताकी पुनरुक्ति नही है।

* * *

पाठकको यह जाननेकी स्वाभाविक ही जिज्ञासा हो सकती है कि पू० नाथको अैसी पुस्तक लिखनेकी योग्यता क्या है। हमे पहले यह अिच्छा हुअी कि नाथजीके जीवनकी तफसील खुद अुनसे और अुनके वालमित्रो, कुटुम्बीजनो वगैरासे प्राप्त करके सक्षिप्त चरित्र लिखा जाय। परन्तु अुसमे कुटुम्बीजन तो विविध घरेलू वाते ही वता सकते है। अुन्हे भले ही अिस तरह सजाया जा सके कि वे पढनेमें अच्छी लगें। परन्तु पू० नाथकी यह राय रही कि जिन तफसीलोंका समाजके कल्याणके लिअे कोअी खास अुपयोग न हो, अुन्हे देनेकी क्या जरूरत और अुन्हे जुटानेके लिअे समय और श्रम लगानेकी क्या आवश्यकता? जिन वातोंके जाननेसे पाठकको या समाजको लाभ हो सकता है और जो वाते पुस्तकको पढने, समझने या यह जाननेके लिअे अुपयोगी हों कि किस तरह पू० नाथ अिन विचारों पर आये, वे दी जाय तो ठीक होगा। अैसी वाते तो वे खुद ही वता सकते है। मित्रों, कुटुम्बीजनो वगैरासे अुनकी साधनाओ, अेकान्तके अभ्यासों, विविध गुरुओ वगैराके समागमो और मनके मन्थनो वगैराकी तफसील नही मिल सकती। अुनके खयालसे काकासाहव, स्वामी आनन्द वगैरा जैसे कुछ मित्र भी, जो अुनसे साधनाकालके दरमियान ही परिचित हुअे,

अुन्हे केवल अेक व्याकुल साधकके रूपमें ही बता सकते हैं। अुनके अन्तरमें भारी अुथल-पुथल थी, कालांतरमें वह शान्त हो गअी और शान्त हो जानेके बाद अुन्होंने अपने सब मित्रोंको बता दिया कि अुनकी व्याकुलता मिट गअी है और खोज पूरी हो गअी है। परन्तु क्या व्याकुलता थी और वह कैसे मिटी, अिस बारेमें चर्चा करनेका मौका अुन्हें अिन मित्रोंके साथ भी नही आया। अिसलिअे वे खुद जितना कह सकते थे अुतनेसे हमें सन्तोष मान लेना था। अिस बारेमें कुछ व्यक्तिगत जानकारी आवश्यक थी, यह बात अुन्होंने मान ली और आम तौर पर अपने बारेमें न कहनेका संकोच छोडकर अपना परिचय स्वयं लिख देना मंजूर कर लिया। अिस प्रकार पुस्तकके साथ अुनका व्यक्तिगत परिचय भी अुन्हींके हाथों लिखा हुआ पाठकको प्राप्त हो जाता है। हम आशा रखते हैं कि अुसमें हम अपने व्यक्तिगत परिचयसे थोड़ा और जोड दें, तो पाठकको अनुचित नहीं लगेगा।

पू० नाथसे हमारा पहला परिचय हुआ, तब अुनकी अुम्र चालीससे कम थी और अूंचे व्यायामसे कसे हुअे मजबूत शरीरके कारण अुम्र जितनी थी अुससे भी कम ही दिखाअी देती थी। अब लगभग ७० वर्षके हो गये हैं, अिसलिअे कुदरती तौर पर ही आकृतिमें बहुत फर्क पड गया है। कअी बीमारियों और कठोर जीवनके कारण अितनी शक्ति न रहने पर भी असली मजबूत काठी तो कोअी भी देख सकता है।

पू० नाथकी नैसर्गिक प्रकृति क्षत्रियकी कही जायगी। कोअी आंखें लाल करके अुन्हें डरा नहीं सकता; वे अैसे नहीं जो किसीके सामने निस्तेज हो जाय या दब जाय। अीश्वरभावना — यानी दूसरोंको अनुशासनमें रखनेकी शक्तिका — आवश्यकतानुसार अुपयोग करना अुन्हें आता है। जरूरत हो तो नियमोंका पालन करानेमें वे कठोर बन सकते हैं। अेक बलवान सेना खड़ी करके अंग्रेज सरकारसे लडाअी

छेडकर देशको स्वतंत्र करनेकी युवावस्थाकी महत्त्वाकाक्षाअें होनेके कारण सेनापतिके आवश्यक गुण अुन्होने अपनेमे प्रयत्नपूर्वक वढाये भी थे। यानी, साथियो पर रोव रखना, अपनी योजनाओ या अपने किये हुअे कामोंके वारेमे जहा तहा वाते न करना, वल्कि अपने हाथके नीचे काम करनेवाले मनुष्योंमे से भी जिसको जितनी जरूरत हो अुतनी ही वात कहना। कके कामकी वात खसे न कहना, खके कामकी वात कसे न कहना। किसीने सवाल पूछा अिसलिअे अुत्तर देना ही चाहिये सो वात नही, अुत्तर देने जैसी वात लगे तो ही कहना और पूछा जाय अुतना ही कहना।

यह स्वभाव तीस वर्ष पहले था, परन्तु अव वह स्वभाव रखनेका प्रयोजन न रह जानेके कारण वहुत फर्क पड गया है। फिर भी अुसकी झलक आज भी दिखाअी देती है। अिस स्वभावके कारण शुरूमें हमे अपनी अुलझने दूर करानेमे कुछ कठिनाअिया भी मालूम होती थी। अुनका शासन भी कडा लगता था। और अपने आप तो वे शायद ही कुछ कहते थे। अिसलिअे अिस पुस्तकमें जो विचार वडी स्पष्टतासे या जोर देकर कहे गये है, वे खुद हमे तो वर्षोंके समयमे छुटपुट ढगसे ही मालूम हुअे है; और कुछ तो अतिम कुछ वर्षोंमे ही अधिक स्पष्ट हुअे है।

*   *   *

ग्रंथोमें अीश्वरकी गुणरूपमें कअी प्रकारकी अुपासना वताअी गअी है, जैसे सत्यरूपमे, प्रेमरूपमे, आनन्दरूपमे, अहिंसारूपमे, सौंदर्यरूपमे, ज्ञानरूपमे वगैरा वगैरा। पू० नाथने अीश्वरकी साधना करुणामूर्तिके रूपमे की है। करुणाशीलता अुनके स्वभावका सवसे वढा-चढा अग कहा जा सकता है। ससारमे स्वार्थ, दु ख और कपट ही भरे हैं; मा, वाप, भाअी सव स्वार्थके सगे है, यह देखकर वहुतसे साधक ससारसे तग आकर, परेशान होकर, अुस पर गुस्सा करके और अुद्विग्न होकर अुसका त्याग करते है व सवसे अलग

होकर रहनेका मार्ग अपनाते हैं। नाथने देखा कि दूसरे देशोंकी बात तो दूसरे देशवाले जाने, परन्तु भारतके लोगोंका जीवन तो अवश्य अिन दोषोंसे भरा हुआ है। परन्तु अुन्हे अपने सगे-सम्बन्धियोंसे कुछ लेना नहीं था, अुन्हे अपनी चिन्ता नही थी। अिसलिअे अपने लिअे जगत पर या सगे-सम्बन्धियो पर क्रोध करनेकी अुन्हे जरूरत नही थी। अिन दोषोंके लिअे अुनका त्याग करनेकी भी जरूरत नही थी। परन्तु अिन दोषोंके कारण भारतके लोग परतत्र, दुखी, दरिद्री, पुरुषार्थहीन, कायर, अत कलहसे जर्जर और दयाजनक स्थितिमे है। जिनमें कुछ भावुकता है, अुदात्त भावनाअे है, तीव्र अीश्वरश्रद्धा तथा अुच्च जीवनके लिअे व्याकुलता है, वे सब अिस ससारको छोड देनेकी ही आध्यात्मिकता स्वीकार कर ले, तो फिर ये लोग कल्पात तक भी अूपर कैसे अुठेगे? अिस प्रकार ससारके दुखका जो दर्शन अनेक साधुओंके लिअे ससारका त्याग करनेकी प्रेरणा देनेवाला बन जाता है, अुसने नाथको करुणाभावसे अुनकी सेवा करने और अुनकी मुक्तिका मार्ग ढूढनेके लिअे अीश्वरको खोजनेकी प्रेरणा की। अुन्हें अिस ध्येयसे सन्तोष नहीं हुआ कि जो लोग अपने-अपने कर्मानुसार मायामे फसे रहते है, अुन्हें छुड़वानेकी अभिलाषा छोड दी जाय, अपना आत्मराज्य प्राप्त करके निवृत्तिका और ब्रह्मका अखड सुख और सब दुखोंका नाश करनेवाले मोक्षका ध्येय हासिल कर लिया जाय और वैसे अधिकारियोको ही जीवनके शेष कालमे मदद दी जाय और हो सके तो अुन्हे भी कर्ममार्गसे हटा लिया जाय।

* * *

अुन्होंने हमें जो नया ध्येय दिया वह यही है; और अुनके सम्पर्कमें जो जो आते है, अुन्हें अेक या दूसरी तरहसे वे जो कुछ समझाते है वह भी यही है। तुममे जो कुछ सद्वृत्तिया है, मुमुक्षुता है, अुनका अुपयोग दूसरोंके दुख कम करनेमे करो, समाजको अपने सद्गुणोंकी छूत लगाओ, अपने गुणोंके थोडे अुत्कर्षसे सन्तुष्ट न रहो;

अुन्हें सतत बढाते रहो, अपनी विवेकबुद्धिको सदा ही तेज बनाये रखो; अिसके लिअे चित्तकी अपार शक्तियोंकी खोज करो और अुन्हे विकसित करो, ध्यान वगैराका अभ्यास करो, शरीरको कसो और योगाभ्यास वगैराको अुनके साधन मानो। परन्तु अीश्वर या आत्माका साक्षात्कार करना, आनन्दमे निमग्न हो जाना, गंगातट पर हिमगिरि-शिला पर पद्मासन लगाकर निर्विकल्प समाधिमे डूब जाना वगैरा ध्येयोंमें न रमे रहो। अीश्वर और आत्माका निश्चय कर लो और फिर अुनमे निष्ठा रखो। अीश्वरनिष्ठा और आत्मनिष्ठाका जो महत्त्व है, वह जगतको सुखी करने, समाजको अुन्नत बनाने और तुम्हारी मनुष्यताका विकास करनेके लिअे है। सब प्राणियोंका सुख, समाजकी अुन्नति, मनुष्यमे मानवताका विकास — अिनका जीवनके लिअे महत्त्व है। साक्षात्कार, मुक्ति और निर्विकल्प समाधि जीवनके ध्येय नही। अुनमे स्वच्छंदता भी हो सकती है, और वे दंभके साधन भी बन सकते है।

ये अुनके अुपदेशकी बुनियादे है। अिनकी विशद व्याख्या अिस पुस्तकमे की हुअी मिलेगी।

* * *

करुणारूप अीश्वरकी अिस अुपासनाका नाथके स्वभाव पर अेक बड़ा परिणाम यह हुआ है कि बीमारोंकी सेवा, रिश्तेदारोंकी बीमारी व मौतसे विपत्तिमे फसे हुअे कुटुम्बीजनोंकी चिन्ता और अुनके लिअे परिश्रम अिनके जीवनका सबसे महत्त्वपूर्ण व्यवसाय बन गया है। यह नही कहा जा सकता कि सगे-सम्बन्धियों, स्नेहियो वगैराके सुखके अवसरो पर ये अुपस्थित होंगे ही, परन्तु कोअी बीमार है, अुचित शुश्रूषाके अभावमें या समभावी स्नेहियोंके अभावमे परेशानीमें है और अिसका अुन्हे पता लग जाय, तो यह नही हो सकता कि अिसके बाद भी वे वहां न जाय। और नाथकी

शुश्रूषा भी अितनी चिन्तायुक्त और सावधानीपूर्ण होती है कि मा भी वैसी शुश्रूषा नही कर सकती। बहुत वर्ष पहले अिनकी शुश्रूषाका अनुभव करनेवाले अेक मित्रने कहा था कि अगर नाथ शुश्रूषा करनेको मिले, तो फिरसे बीमार पडनेकी अिच्छा हो सकती है! पू० नाथ कोअी सस्था चलानेकी या और किसी प्रवृत्तिमे नही पड़ सके, अिसका अेक बडा कारण बार-बार आ पडनेवाली बीमारोंकी सेवा-शुश्रूषा ही कहा जा सकता है।

जिन्होने नाथके शान्त स्वभाव, करुणा और योगीपनकी ख्याति ही सुनी हो और अुनकी पुस्तक तथा दूसरे लेखो द्वारा ही अुनका परिचय पाया हो, अुन्हे अैसी कल्पना होना सभव है कि नाथ अेक अुग्र-गम्भीर, बद होठवाले पुरुष होगे। परतु अैसा भय रखनेका कोअी कारण नही है। नाथके पास अटूट विनोद और गंभीर चर्चा तथा हास्यके फव्वारेका मनोहर मेल भी होता है।

*　　　*　　　*

हम आशा रखते है कि जैसे हमें यह पुस्तक तैयार करते हुअे कृतार्थता महसूस हुअी है, वैसे ही पाठकको भी अिसका अध्ययन सन्तोषप्रद होगा।

ता० २८-४-'५१

किशोरलाल घ० मशरूवाला
रमणीकलाल म० मोदी

'विवेक और साधना' का यह हिन्दी अनुवाद प्रकाशित हो रहा है, तब मेरे बडे भाअीके समान तथा अिस पुस्तकके सह-सम्पादक श्री किशोरलालभाअी हमारे बीच सदेह अुपस्थित नही है, यह बडे दुःखकी बात है। पू० नाथजीके जीवन-विषयक विचार जनताके समक्ष रखनेके बारेमें जो सकल्प हुआ था, अुसमें अुनकी तीव्र अुत्कठा और

परिश्रम कितना था अिसका मै स्वय साक्षी हूं। अिसलिअे अिस पुस्तकके सम्पादनमें अुनका कितना वडा हाथ था, अिसका अुल्लेख यहा करना मै अपना कर्तव्य मानता हूं। यह अनुवाद अुनका देखा हुआ है। पू० नाथजीने स्वय प्रस्तावनामे श्री किशोरलालभाअीके वारेमे जो कुछ लिखा है, वह सर्वथा अुचित ही है।

गुजरातीकी पहली आवृत्ति पाच-छः मासमें ही समाप्त हो गअी थी। अुसकी दूसरी आवृत्ति हालमें ही प्रसिद्ध हुअी है। अिसके लिअे पू० नाथजीके साथ पूरी पुस्तक फिरसे पढी गअी और अुस पर विचार किया गया था। और जहा आवश्यक मालूम हुआ, वहा विषयको स्पष्ट करनेवाली टिप्पणिया जोडी गअी थी। प्रकरणोंका क्रम भी वदला गया था। यह सव अिस हिन्दी अनुवादमे ले लिया गया है।

शातिनगर, न० १७ — रमणीकलाल म० मोदी
आश्रम रोड, अहमदावाद — १३
ता० ६–२–'५३

प्रस्तावना

अिस पुस्तकमे जो लेख और विचार दिये गये है, वे जीवन-सम्बन्धी अनेक प्रकारके अनुभवो परसे लिखे गये है। कअी विचारशील व्यक्तियोके साथ हुअे सवाद-प्रसगोमे से भी मुझे ज्ञान मिला है। अुस ज्ञानको विवेककी दृष्टिसे परखनेके बाद ही मैने अुसे महत्त्व दिया है। अिसलिअे अनुमान, तर्क, कल्पना या केवल श्रद्धाके आधार पर अिसमे शायद ही कुछ लिखा गया हो। अिन विचारोको पढकर कुछ श्रद्धावान भावुकोका, कुछ तत्त्वज्ञानियोका और परम्परागत मान्यताके अनुसार धर्म, अध्यात्म, अीश्वर वगैराके बारेमे आस्तिकता रखनेवालोका दु.खी होना सभव है। परन्तु अुन सबसे मेरी नम्र प्रार्थना है कि अिस पुस्तकके मेरे किसी भी शब्द पर वे भले ही विश्वास न करे, परन्तु अपने बारेमे मै नीचे जो चार वाक्य लिख रहा हू, अुन पर वे अवश्य विश्वास करे. "श्रद्धा और भावुकताकी पराकाष्ठा, तत्त्वज्ञान और सन्तवचनो पर अनन्य निष्ठा; धर्म, अध्यात्म, अीश्वर वगैराके विषयमे अपार आस्तिकता, अित्यादि सारी भूमिकाओके अनुभवोमे से और अुन अनुभवोंके लिअे अनेक प्रकारके कष्ट सहन करके मै यहा प्रगट किये गये विचारों पर आया हू। आध्यात्मिक अुद्देश्यके लिअे जैसे मुझे अज्ञानवश व्यर्थ ही तकलीफे अुठानी पडी, अुस तरह अन्य किसीको न अुठानी पडे, यह अेक करुणापूर्ण हेतु मुख्यत अिस सारी रचनाकी जडमे है। अिसके सिवाय, जब कअी लोगोने अपने अनुभवसे बताया कि ये विचार मानव-जातिका अुत्कर्ष और अुन्नति करनेमे कअी तरहसे अुपयुक्त साबित होगे, तभी मै अिन्हे प्रकाशित करनेको तैयार हुआ हू। मुझे यह भी नही लगता कि ये विचार समाजके सामने पेश करनेके लिअे मै कोअी जल्दबाजी कर रहा हूं। अुदात्त अुद्देश्यकी पूर्तिके लिअे ५० वर्ष साधना और प्रत्यक्ष सेवा-

कार्यमें वितानेके बाद और बहुतोंके जीवन पर अुनके सुपरिणाम देखनेके पश्चात् ही मैंने यह काम हाथमें लिया है।"

ये अनुभव कौनसे थे, वे कैसे कैसे होते रहे और अुनसे मैंने क्या सार निकाला वगैरा बातोंकी थोड़ीसी जानकारी पाठकोंको हुअे बिना मेरी विचारसरणी और अुसके औचित्य-अनौचित्यके बारेमें अुनका संशयमें पड जाना संभव है। अिसलिअे अपने जीवन और भावना दोनोंके विषयमें कुछ लिखना मुझे जरूरी मालूम हुआ। और अिसी-लिअे पुस्तकके शुरूमें ही मैंने 'आत्मपरिचय' का अध्याय दिया है।

अिस पुस्तकके विचार पाठक अधिक स्पष्टतासे समझ सकें, अिस ढंगसे पेश करनेके लिअे मुझे समय-समय पर सुझाव देकर मेरे मित्र श्री किशोरलाल मशरूवाला और श्री रमणीकलाल मोदीने मुझे जो प्रेमपूर्वक सहायता दी, अुनका यहां अुल्लेख करना जरूरी है। खास तौर पर श्री रमणीकलाल मोदीने हरअेक महत्त्वके विचारकी मेरी तरफसे स्पष्टता हो जानेके लिये जो सूक्ष्मता, दूरदर्शिता, पृथक्करण-शक्ति और पाठकोंके लिअे चिन्तायुक्त भावना दिखाअी, अुस सबका प्रस्तुत पुस्तक लिखनेमें बड़ा अुपयोग हुआ है।

मुझमें विद्वत्ता और लेखन-कुशलता न होनेके कारण पाठकोंको पुस्तकमें कुछ त्रुटियां दिखाअी देना संभव है। अितने पर भी अिसमें पाठकोंको जो कुछ मनन करने योग्य, आदरणीय और आचरण-योग्य मालूम पड़े, अुन सबका कर्तृत्व विश्वचालक परमात्माका है। अुसके लिअे हृदयपूर्वक अत्यन्त कृतज्ञ और विनम्र भावसे हाथ जोड़कर सिर नवानेके सिवाय और मैं क्या कर सकता हूं?

शान्तिकुंज, नायगांव क्रॉसरोड, — केदारनाथ
दादर, बम्बअी-१४
८-१२-'५०

* * *

अेक अत्यन्त दु.खद घटनाका यहां मुझे अुल्लेख करना पडता है। यह हिन्दी अनुवाद जनताके समक्ष जल्दी रखनेकी अुत्सुकता होते हुअे भी वह प्रसिद्ध हो अिसके पहले ही श्री किशोरलालभाअीका देहावसान हो गया। बहुत वर्षोंसे हम दोनोका मित्रसम्बन्ध था। अुस सम्बन्धमे किसी भी तरहके भौतिक स्वार्थ या मान-प्रतिष्ठाकी किसीको अिच्छा न होनेसे वह सम्बन्ध दिनोदिन ज्यादा पवित्र, अुदात्त और गाढ होता गया। हम दोनोका जीवन जीवनका अुच्च आदर्श सिद्ध करनेमे अेक-दूसरेकी मदद करते हुअे बीता है, अिसलिअे अुनके वियोगसे दूसरे मित्रोंकी तरह मुझे भी बहुत ज्यादा दु.ख होता है। अिस पुस्तकके लिखवानेमें भी अुनका बार-बारका अत्यन्त प्रेमभरा आग्रह और जनहित सम्बन्धी अुनके हृदयकी गहरी भावना ही बहुत अंशमे कारणभूत हुअी है।

जानेवाला अेक क्षणमे चला जाता है। पीछे रहनेवालोको अपना जीवन अुसके बिना बिताना पडता है — काटना पड़ता है। अैसी हालतमे मित्रधर्मकी दृष्टिसे हमारा यही कर्तव्य हो जाता है कि हम दिवंगत मित्रके अपूर्ण रहे पवित्र हेतुओ और सकल्पोको पूरा करनेमें निरंतर जुटे रहे। और अैसा करते रहनेसे ही वियोगका दु.ख कुछ हद तक सह्य होता है। अिस दृष्टिसे ही मैंने यह टिप्पणी लिखना शुरू की। और जिनके अवसानसे सारे भारतको हानि पहुची, अुनके विषयमे केवल अपने दु.खको महत्त्व देकर अुसका वर्णन करना अुचित नही, अिस विवेकसे अपने अत्यन्त भावुक और प्रेमल मित्रके विषयमे मेरे ये अुद्‌गार भी मै यही समाप्त करता हू।

शातिकुज, नायगाव क्रॉसरोड, — केदारनाथ

दादर, बम्बअी-१४

५-२-'५३

आत्म-परिचय

१. जीवनकी रूपरेखा

मेरे पिताजीका नाम आप्पाजी वलवन्त था। कुलनाम था कुलकर्णी। कामके सिलसिलेमें देशपाडे भी कहलाते थे। महाराष्ट्रमे कुलावा जिलेके पाली गावमे हमारे पूर्वज वहुत वर्षोंसे रहते थे। वहाका मुखियापन और दूसरी जागीरे भी वंशपरम्परासे हमारे कुटुम्वमे चली आ रही थी। मेरे पिताजी, अुनके पाच भाअी और अुन सवके परिवार मिलाकर हमारा कुटुम्व वहुत वडा था। पिताजीको सरकारी नौकरीके कारण वाहर रहना पडता था। थाना, रत्नागिरि, खानदेश वगैरा जिलोमे कअी जगह अुन्हे नौकरीके सिलसिलेमें रहना पड़ा था। मेरा वचपन अिन तीन-चार जिलोमें वीता है। मेरा जन्म सन् १८८३ मे हुआ।

शिक्षा

हम कुल छः भाअी थे और तीन वहने। हमारी घरकी स्थिति मध्यम होनेके कारण हमारा रहन-सहन भी सादा ही था। हमारी माताजी मै नौ-दस वरसका था तव चल वसी। तवसे हमारी देखभाल करनेकी सारी जिम्मेदारी पिताजी पर आ पडी। माताजीकी मृत्युके वाद हम सव भाअी और अेक छोटी वहन पूना रहने गये। वहा मेरी थोडी-सी पढाअी हुअी। १८९३ से १८९७ तकका मेरा समय पूनामे वीता। अुसके वाद खानदेशमें सिरपुर और धूलियामे मेरी थोडी शिक्षा हुअी। धूलियामे पाचवी अग्रेजीमें था, तव मैने पढाअी छोड दी। १९०१ की वात होगी। मेरी अुम्र अुस वक्त १७ वर्षकी होगी।

मैंने पढ़ाई छोड़ी अुस समय देशमें कोई भी राष्ट्रीय हलचल नहीं थी। राष्ट्रीय महासभाका कार्य

देशप्रेमके संस्कार

अुस समय अितना संकुचित था कि अुसका विद्यार्थी वर्गके साथ कुछ भी सम्बन्ध नहीं था। वह काल अखबारों और भाषणोंका भी नहीं था। छुटपनमें चार-पांच भाषण सुननेके प्रसंग मुझे याद हैं। अुनमें से दो-तीन स्वदेशी पर थे। परन्तु मुझे अैसा याद पड़ता है कि अितिहास पढ़नेसे मुझे हमारे देश और पूर्वजोंके लिअे अभिमान और मौजूदा परिस्थिति पर दुःख होता था। यह तो मैं निश्चित नहीं कह सकता कि किन कारणों या संस्कारोंका यह परिणाम हुआ, परन्तु अैसा याद आता है कि आठवें सालसे मेरे मनमें स्वतंत्रताकी भावना अस्पष्ट रूपमें पैदा हुअी। मुझे यह भी याद आता है कि अुस समय मैं रत्नागिरि जिलेके राजापुर गांवमें था। अुस समय पिताजीके पास अेक सज्जन आया करते थे। वे १८५७ के गदरमें शामिल थे और अुन्होंने अपना नाम बदल लिया था। जिस समय मुझे यह याद नहीं आता कि अुनकी ओरसे अनजाने कोअी संस्कार मुझे मिले थे। अुस समय पैदा हुअी अुस भावनाका पोषण पूना आनेके बाद होता रहा। रैंड और आयर्स्टकी हत्यायें हुअीं, तब मैं पूनामें था। १८९७ और १८९९ के अकालके समयकी लोगोंकी हालत देखकर और सुनकर मन बड़ा व्याकुल होता था। तेरह-चौदह वर्षका हुआ तबसे मुझे यह साफ महसूस होने लगा था कि देश आजाद होना चाहिये। यही भावना आगे चलकर आहिस्ता-आहिस्ता प्रबल होती गअी। यह निश्चयपूर्वक समझ लेनेके बाद कि वर्तमान शिक्षासे देशको स्वतंत्र नहीं किया जा सकता, वही शिक्षा लेते रहना मेरे लिअे असह्य हो गया। और अुसीका परिणाम अन्तमें पढ़ाई छोड़ देनेमें आया।

शिक्षामे मेरी गिनती प्रथम श्रेणीके विद्यार्थियोमे नही होती थी। अैसी अभिलाषा भी मुझे नही थी। फिर भी कक्षामे मेरा नबर आम तौर पर अूचा ही रहता था। क्रिकेट और कुछ दूसरे खेलोमे सिर्फ अपनी बराबरीके विद्यार्थियोमे मै पहले दर्जेका था।

आदर्श-सम्बन्धी मेरी कल्पना

परन्तु देशके विचार ज्यो-ज्यो मनमे अधिकाधिक आने लगे, स्वतत्रताके लिअे हमे कुछ-न-कुछ करना चाहिये, त्याग, साहस और पुरुषार्थ करना चाहिये अित्यादि विचार ज्यो-ज्यो आने लगे, त्यो-त्यो खेलकूदका शौक कम होने लगा। व्यायाम तथा तत्सम्बन्धी तालीमकी जरूरत महसूस होने लगी और अिसी अुद्देश्यसे मै अुसकी तालीम लेने लगा। पाठशालाकी पढाअी छोड देनेके बाद मै तुरन्त ही व्यायाम द्वारा युवकोमे बल और अुत्साह पैदा करके अुन्हे राष्ट्रीय कार्यमे प्रवृत्त करनेका प्रयत्न करने लगा। खुदने स्वदेशी व्रत ले लिया और दूसरोसे भी लिवाने लगा। पचास साल पहलेके अुस जमानेमे समाजमे मेरे विचारके अनुसार कोअी भी आदर्श व्यक्ति मेरी जानकारीमें नही था। अिसलिअे समर्थ रामदास और छत्रपति शिवाजी महाराज मुझे आदर्श विभूतिया मालूम होते थे। मेरे राष्ट्रीय विचारोका रुख लगभग अुनके विचारोके अनुरूप ही था। अीश्वर, धर्म, नीति, चारित्र्य, शील और सदाचार पर मेरी पहलेसे श्रद्धा थी। अपने खुदके सुखकी तरफ रुचि नही थी। सेवापरायणता थी। 'दासबोध', 'मनाचे श्लोक' और सत तुकारामके अभगोका गहरा असर मन पर अुसी समय हुआ। पिताजीके मुहसे कभी-कभी सुननेको मिलनेवाले भक्तिके पद्यो और श्लोको द्वारा भी यही सस्कार दृढ होते चले गये।

चारित्र्यका संस्कार

शुरूसे ही मेरा यह दृढ विश्वास हो गया था कि व्यायाम द्वारा शरीरबलका और अीश्वर, सदाचार वगैराके प्रति श्रद्धाके कारण चरित्रबलका विकास हुअे बिना हम देशका कार्य नही कर सकेगे। अिसलिअे अिसी प्रकारके सस्कार अपने और समाज दोनो पर डालनेका मेरा प्रयत्न यथाशक्ति जारी था। अिसी अरसेमें शस्त्र-

विद्यामें पारगत अेक सज्जनसे मेरा साथ हो गया। वे पुलिस-विभागमें सरकारी नौकर थे और पेन्शन लेनेकी तैयारीमें थे। जातिके मराठा थे। अुनका शरीर कसा हुआ था। जवानीमे सरकारके विरुद्ध विद्रोह किया था। अुसमें सरकारने अुन्हे माफी देकर पुलिस महकमेमें नौकरी दे दी थी। मुझ पर वे बहुत प्रसन्न थे। मुझे सिखानेके लिअे वे कभी-कभी व्यायामशालामें आते थे। शस्त्रविद्यामें अुनकी प्रवीणता देखकर मुझे अुनके प्रति जितना आदर होता था, अुससे भी अधिक आदर अुनकी चारित्र्य-निष्ठा देखकर होता था। पेन्शन लेकर अपने गाव जाते समय अुन्होने हममें से कुछ खास भाअियोंको जो अुपदेश दिया, वह मेरे ध्यानमें स्थायी रूपसे रह गया है। अुन्होने कहा, "मेरे पिताजीने मेरी भरी जवानीमें मुझे अुपदेशके जो शब्द कहे थे, वह मैं आज तुम लोगोंसे भी कहता हू। मैं अुनका अिकलौता बेटा था। अुन्होने मुझे आग्रहपूर्वक कहा था कि 'तीस सालके होनेसे पहले तुम शादी न करना। शरीर और मन दृढ और पवित्र रखना। व्यायाम कभी न छोड़ना। तुम्हारा शरीर अितना कठोर और मजबूत होना चाहिये कि तुम्हे पत्थर पर गिरनेका मौका आ जाय तो पत्थरको तुम्हारा डर लगे, परन्तु तुम्हें अुसका डर न लगना चाहिये। सदाचार और शील पर श्रद्धा रखना। धनका लोभ न करना। स्त्रियोंके लिअे आदर और पवित्र भाव रखना। अीश्वरको कभी न भूलना। अपनेको सुखी करनेकी अपेक्षा औरोंको सुखी करनेमें आनन्द मानना। अिस प्रकार चलोगे तो तुम्हारा जीवन धन्य होगा।' अुनका मुझे यह अुपदेश था। मैं भी आज वही बात तुमसे आग्रहपूर्वक कहता हू। अिस प्रकार चलनेमें तुम्हारा कल्याण है।" अितना कहकर वे आगे बोले. "पिताजीकी मृत्युके बाद कुछ कौटुम्बिक कठिनाअियोंके कारण मुझे अट्ठाअिसवे वर्षमें विवाह करना पडा। परन्तु अुनके अुपदेशके विपरीत मैंने भूलकर भी आचरण नही किया।" अिस मतलबका अुपदेश थोड़ेमें अुन्होंने हमें दिया। व्यायाम और दूसरोंके लिअे

अुपयोगी वनना, अिन दो वातों पर अुसमे जोर होनेके कारण वह तुरन्त मेरे गले अुतर गया। अुस अुम्रमे मुझे पता तक नही था कि द्रव्य और स्त्री-सम्बन्धी मोह क्या चीज है, फिर भी अुस अुपदेशमे मुझे वहुत गभीरता महसूस हुअे विना नही रही। अपने जीवनकी जाच करने पर लगता है कि त्याग और सादगीके प्रति मुझे पहलेसे ही किसी हद तक आकर्पण रहा होगा। अग्रेजीकी दूसरी कक्षामे था, तव हटरके अितिहासमे गौतम वुद्धके गृहत्यागका वर्णन पढते ही अुसका असर मेरे मन पर पडा था। अिसी तरह शकराचार्य, ज्ञानेश्वर, रामदास वगैराके जीवन-चरित्रोंका भी मेरे मन पर असर हुआ था। त्यागी पुरुपोंके जीवनका प्रभाव मेरे मन पर छुटपनसे ही विशेप था। अैसे ही किसी कारणसे अूपर दिये गये अुपदेशका मेरे मन पर गहरा असर हुआ होगा। हमारे समाजमे वाप द्वारा वेटेको दिये गये अिस प्रकारके अुपदेशके अुदाहरण मुश्किलसे ही मिलेगे।

मेरी प्रवृत्ति

व्यायाम और अुसके सिलसिलेमे दूसरी प्रवृत्तिया कुछ समय तक खानदेशमे चलानेके वाद मै अपने मूल गाव पाली आया और वहा यही प्रवृत्ति चलाने लगा तथा घरकी खेती वगैराका काम भी करने लगा। अपनी प्रवृत्तिके सिलसिलेमे मै समय-समय पर वाहर भी जाता था। अुस समयकी अपने मनकी स्थितिका विचार करने पर मुझे आज भी लगता है कि मुझमे आत्मविश्वास वहुत ज्यादा था। देशसेवा और कार्यके अुद्देश्यसे मै जिन-जिनसे मिला, अपने काममे शरीक होनेके लिअे मैने जिन-जिनसे आग्रह किया, अुनमे से वहुत करके किसीने भी मुझे अिनकार नही किया। अुनमे वहुतेरे कअी दृष्टियोसे मेरी अपेक्षा वडे और श्रेष्ठ थे, तो भी हरअेकके मन पर मेरे वोलनेका असर पड़े विना न रहता। अिसलिअे मुझमे आत्मविश्वास वढता गया।

गृहत्याग और पुनरागमन

ऐसी स्थितिमें तीन-चार बरस बीत जानेके बाद मुझे महसूस होने लगा कि अपने सकल्पित अुद्देश्यके पीछे पूरी तरह पड़े बिना यह काम पार नहीं लगेगा। अत: मैं पिताजीसे पूछे बिना, किसीको बताये बिना सन् १९०८ में घर छोड़कर चल दिया। पिताजीको छोड़कर जाना बहुत मुश्किल मालूम हो रहा था। पितृसेवाकी भावना और मेरे जानेके कारण पिताजीको होनेवाले दुःखकी कल्पना मनको अत्यन्त व्याकुल कर रही थी। मनकी ऐसी स्थितिमें लगभग डेढ़ सौ मील खुले पैर पैदल प्रवास करके साधुवेषमें सज्जनगड़ गया। वहाँ समर्थ रामदासकी समाधिका दर्शन किया। वहीं थोड़े दिन रहकर पूरे आत्मविश्वासके साथ वहाँसे चला। मेरी अुम्र, संस्कार, ज्ञान, अनुभव, स्वभाव और आत्मविश्वास — अिन सबके अनुरूप ही मेरे कार्यकी योजना थी। अुसे पूरा करनेके अुद्देश्यसे जब मैं घूम रहा था, तब अुस समयके सातारा जिलेके अेक प्रमुख नेतासे मिला। मेरी अुम्र अुस वक्त २०-२१ वर्षकी होगी और अुनकी ५०-५२ सालकी थी। मैंने अुन्हें अपने विचार बताये, परन्तु अुन्हें अमलमें लाना अुन्हें असंभव प्रतीत हुआ। और अिस खयालसे कि ऐसा करनेमें मेरा निश्चित विनाश होगा, दया या वात्सल्य भावसे प्रेरित होकर अुन्होंने मुझे अपने विचारोंसे विमुख करनेकी बड़ी कोशिश की। और यह देखकर कि मैं अुनका कहना मान नहीं रहा हूँ, अुन्होंने यह हठ पकड़ ली कि 'यह साधुवेष छोड़े बिना मैं तुम्हें यहाँसे जाने न दूंगा।' देशके लिअे अुपयोगी सिद्ध होनेवाली कोअी चीज सीखनेके लिअे अुन्होंने मुझे अुपदेश दिया। अिसके लिअे व्यवस्था करनेकी सारी जिम्मेदारी अपने सिर लेनेको वे तैयार हो गये। अन्तमें यह देखकर कि अुनके आगे मेरी कुछ चलेगी नहीं, मैंने अपने वस्त्र अुनके हवाले किये। वहाँसे निकलनेके बाद फिरसे साधुवेष लेनेका मेरा विचार था, परन्तु अितनेमें मेरे अेक मित्रके पालीमें बहुत बीमार होनेके समाचार

मिले तो मैं फिर घर चला गया। पिताजीसे सब हाल कहा। वे जरा भी नाराज नही हुअे। मित्र अच्छा हो गया। मैं फिर पहलेकी तरह गोठीमी अपनी प्रवृत्ति और घरकी खेतीका काम करने लगा।

बंगाल-विभाजन और हमारी निराशा

अिसी अरसेमे बगालके विभाजन (बग-भग)के कारण पैदा हुअे प्रक्षोभसे स्वदेशी आन्दोलन अुठा। लोक-जागृतिकी दृष्टिसे मुझे वह अच्छा लगा। लोगोमे देशाभिमान और देशके लिअे त्याग और तकलीफ अुठानेकी वृत्ति पैदा होते देखकर भावीके बारेमे मेरे मनमें आशा बधने लगी। कुछ साहसभरे काम भी अुस कालमे हुअे। लेकिन चूकि मेरा खयाल था कि बम या गोलीकी मददसे किसी व्यक्तिकी हत्या करनेके मार्ग द्वारा हमारा अुद्देश्य पूरा नही होगा, अिसलिअे वे साधन हाथमे होने पर भी अुस मार्ग पर जानेकी मेरी अिच्छा नही हुअी। १९०८–९ तक देशका वातावरण क्षुब्ध ही रहा। मगर अुसके बाद सरकारकी अुग्र दमन-नीतिके कारण सर्वत्र भय फैल गया। देशकार्यके मामलेमे सब जगह शिथिलता आ गअी। हम जिस मार्ग पर जानेकी कोशिश कर रहे थे, अुस मार्गके बहुतसे व्यक्ति निराश होकर अपने-अपने जीवन-व्यवसायमें लग गये।

अेकान्तका निश्चय

अैसी स्थितिमे मुझे अपनी शक्तिका और लोकमानसका अदाजा हो गया और मेरी समझमे आ गया कि हम जैसा चाहते है, अुसके अनुसार करनेकी खुद मुझमे और दूसरे किसीमें भी पात्रता नही है। मेरे सामने यह सवाल अुपस्थित हुआ कि आगे क्या किया जाय। मेरी मन स्थिति अैसी नही थी कि देश या समाज-सम्बन्धी ध्येय छोड़कर केवल व्यक्तिगत कार्यमें जीवन बिता दू। कुछ सूझ नही रहा था। रास्ता दीख नही रहा था। देशकी स्थिति दिन-दिन

असह्य होने लगी। अैसी स्थितिमें शांति और समाधानपूर्वक दिन बिताना मेरे लिअे असम्भव हो गया। अैसा महसूस होने लगा कि अब अपने लिअे परमेश्वरकी कृपाके सिवाय और कोअी आधार और आशा नहीं। 'दासबोध' और 'ज्ञानेश्वरी' पढ़नेका सिलसिला पहलेसे ही जारी था। वह संस्कार अिस बार प्रबल हो गया। अेकान्तमें जाकर परमेश्वरका आदेश प्राप्त किया जाय और अब वही हमें आगेका रास्ता बतायेगा, अिस विचार और निश्चयसे मैं अुसकी आराधनाके मार्गमें लग गया।

साधना और कुछ अनुभव

अुपवास, पारायण, अनुष्ठान, चिन्तन, ध्यान वगैरा साधनों द्वारा मैंने अेकान्तमें आराधना शुरू की। सन् १९१० तक खानदेश और सातारा जिले, और कभी-कभी भाजेकी गुफामें रहा। परन्तु वहां भी मुझे अपनी कल्पनानुसार निरुपाधिकता महसूस नहीं हुअी। अिसलिअे १९११ में मैं हृषीकेशकी तरफ जाकर वहां अेकान्तमें रहने लगा। आसनोंका अभ्यास पहलेसे ही था, प्राणायामका भी थोड़ा ज्ञान था। अुसी अभ्यासको आगे बढ़ाया। अुनीमें से आगे धारणा और ध्यान पर गया। अिस स्थितिमें मानसिक शक्ति बढ़नेके अनेक अनुभव हुअे। परन्तु जिस अुद्देश्यके लिअे मैंने यह सारा प्रयत्न किया था, वह सिद्ध नहीं हुआ। साधनामें होनेवाले भिन्न-भिन्न और बढ़ते हुअे अनुभवोंके कारण मेरे विचारोंमें और तात्कालिक साध्यमें भी आगे चलकर फर्क पड़ता गया। अीश्वरका आदेश, अुसका दर्शन, अुसका साक्षात्कार वगैरा साध्य गौण हो गये और अुसका 'ज्ञान' प्राप्त करनेके साध्य पर मैं अन्तमें आ पहुंचा। अिस सारे समयमें व्याकुलता बढ़ती गअी। बीच-बीचमें भयंकर निराशा भी होती थी। अुस समय कोअी पथ-प्रदर्शक प्राप्त करनेकी अिच्छा करता। अुसकी कृपासे अपना साध्य मुझे प्राप्त हो जायगा, अिस विचारसे वह प्रयत्न भी किया। अेक सत्पुरुषके समागममें कुछ दिन बिताये भी। मुझ पर

वे प्रसन्न थे, परन्तु अुनका ध्येय केवल सन्यासपरायण होनेके कारण मुझे अुनके मार्ग पर जानेकी अिच्छा नही हुअी। मैंने अुस समय संसार व्यवहार छोडकर वैराग्य और परमार्थके नाम पर हजारो मनुष्योको सन्यासीका जीवन बिताते देखा। अुनमे से कुछका मेरे साथ थोडा-बहुत सम्बन्ध भी आया। अिनसे अपने जीवन-ध्येयकी दृष्टिसे मुझे कोअी लाभ नही हुआ, तो भी अुनके विचार, रहन-सहन, आदते, सस्कार, स्वभाव और अुनके ध्येयो वगैराकी मुझे जानकारी मिली। अलग-अलग सम्प्रदायो, पथो, गुरुशिष्य-सम्बन्धो और परम्पराओ, अलग-अलग साधनों, शक्तिपात, शक्ति-सचरण विद्याओ, दूरदृष्टि, दूर-श्रवण जैसी सिद्धियों वगैराके बारेमे मुझे थोडा-सा ज्ञान हुआ। भक्ति और अध्यात्म सम्बन्धी हमारी अलग-अलग कल्पनाअे, भावनाअें, मान्यताअें, तर्क, तत्वज्ञानकी भिन्न-भिन्न प्रणालिया वगैरा बहुतसी बाते मै जान सका। वैराग्यके सही-गलत प्रकार, अुसके अलग-अलग कारण; भ्रम, दंभ और साधु वैरागियोंके अखाडे, अुन सबके बारेमे अुनका अभिमान, अुनके ठाठ, अुनके आडम्बर, अुनके व्यसन और अुनके कारण वगैराकी जानकारी मुझे अुसी कालमे हुअी। अिस प्रकार समाज और अध्यात्म सम्बन्धी मेरे ज्ञानमे कुल मिलाकर वृद्धि हुअी। साधनाके अुद्देश्यसे मुझे दो-तीन बार हृषीकेशकी तरफ जाना पडा। अेक बार जम्नोत्री, गगोत्री, केदार और बदरीनारायण तक मै भ्रमण कर आया। अिस यात्राके दौरानमे कुछ अच्छे व्यक्तियोसे मेरी मुलाकात हुअी, जो सन्यास-पद्धतिसे रहकर अपनी विचारसरणीके अनुसार साधना और अभ्यास कर रहे थे। यद्यपि अुनके और मेरे जीवन-ध्येयमे अन्तर था, तो भी अुनकी शाति और प्रसन्नता देखकर मुझे आनन्द हुआ। जब भ्रमण कर रहा था, तभी मेरी समझमें आ गया कि अपने अुद्देश्यके अनुकूल जिसे कोअी साधन मिला हुआ होता है, वह अुसे छोडकर भटकता नही फिरता। साधनमें आगे गति रुक जाने पर ही मेरी वृत्ति चचल बनी। तभी

में ज्ञानप्राप्तिकी कोअी आशा न होने पर भी सैकडों मील निरर्थक घूमता रहा।

सत्यका निर्णय हुअे विना हमारा धर्म और [illegible] हमारा समाज-सम्बन्धी कर्तव्य क्या है और अुसे कैसे पूरा किया जा सकता है, यह हमें नहीं सूझता। अैसी समझके कारण अुत्तरोत्तर होनेवाले अनुभवों परसे मेरे तात्कालिक साध्य बदलते गये, यह मैं पहले ही कह चुका हूं। आगे अभ्यास करने पर आत्मज्ञान, ब्रह्मज्ञान, अद्वैतानुभव, चित्तका लय वगैरा साध्यों पर भी मैं धीरे-धीरे पहुंचा। चूंकि मैं ग्रंथ-प्रामाण्य — यानी ग्रंथ परसे अपनी या अुस विषयमें ज्ञानी माने गये व्यक्तियोंकी कल्पनाओंको प्रमाणभूत — मानता था, अिसलिअे जिस समय जो कल्पना मुझे सत्य प्रतीत हुअी, अुसीके पीछे मैं पड गया। जीवनके अुमंग और अुत्साहसे भरे लगभग दस बरस सतत अिसी प्रयत्नके पीछे अत्यन्त व्याकुलतामें बीते। अलग-अलग भूमिकायें साधकर अलग-अलग अनुभव मैंने किये। परन्तु अितना करनेके बाद भी अिस परसे मैं अपना धर्म या कर्तव्य तय नहीं कर सका, या जो काम मुझे करने जैसा लग रहा था, अुसे करनेकी शक्ति या पात्रता भी मुझमें नहीं आअी।

अनुभवोंका विश्लेषण

अीश्वर साक्षात् दर्शन देकर हमें ज्ञान, बल और सामर्थ्य देता है, अिस श्रद्धासे मैं पहले अुसके दर्शनके पीछे पडा। श्रद्धा, सतत चिन्तन, ध्यान, अनुसंधान, अेकाग्रता और अन्य साधनोंके कारण दर्शन जैसे अनेक अनुभव मुझे हुअे। परन्तु अुन अनुभवोंको विवेकदृष्टिसे सब तरफसे जांचनेके बाद मुझे मालूम हुआ कि वे अपनी ही कल्पनाके निर्माण किये हुअे थोडे समयके अर्धजाग्रत अवस्थाके आभास मात्र हैं। मेरे ध्यानमें आ गया कि चूंकि अुन सब अनुभवोंको रंगरूप मेरा ही दिया हुआ है, अिसलिअे अुन सबका कर्ता मैं ही हूं। अिसी प्रकार आत्मा और ब्रह्मका साक्षात्कार, दर्शन,

अद्वैतानुभव वगैरा बातोंमे भी प्रयत्न करनेके बाद मुझे यह बोध हो गया कि अुनमें भ्रम कौनसा है और सत्य कौनसा है। ओश्वर, आत्मा और ब्रह्म, ये तत्त्व अलग-अलग नहीं, परन्तु अेक ही महान व्यापक तत्त्वको हमारे दिये हुअे अलग-अलग संकेत हैं। वह तत्त्व अैसा नहीं जो देखा जा सके या भासमान हो सके। अुसीसे संसार और हम सब निर्माण हुअे हैं और वही हम सबका आधार है। यह बात तत्त्वज्ञानके अध्ययनसे और जगतकी अुत्पत्ति, स्थिति और लयके निरीक्षणसे मेरे ध्यानमें आ गअी। और विवेक और निश्चयसे अिस विचार पर मैं दृढ़ भी हो गया। अनन्त विश्वके व्यापारमें और हमारे शरीर, बुद्धि और मनके हरअेक कर्ममें यही महान तत्त्व — यही शक्ति — प्रेरणा देकर काम करती है। अुसके कार्य दिखाअी देते हैं, परन्तु अुस शक्तिको स्वतन्त्र रूपसे अलग देखना संभव नहीं। हम खुद वही शक्ति हैं। अिसलिअे मेरी समझमें यह भी आ गया कि स्वयं हमें अपना ही दर्शन होना संभव नहीं। ध्यान, धारणाके अभ्याससे चित्तकी अेकके बाद अेक भूमिका साधते साधते अन्तमें अुसका लय भी किया जा सकता है। अिसी तरह मेरी समझमें यह भी आ गया कि ओश्वर-सम्बन्धी भावना और चिन्तनमें चित्त तद्रूप किया जा सकता है। परन्तु मुझे यह भी प्रतीत हुआ कि अूपर बताअी हुअी किसी भी भूमिका या अवस्थाको प्राप्त कर लेनेसे या सभी भूमिकाओं और अवस्थाओंको सिद्ध कर लेनेसे भी मानव-कर्तव्य पूरा नहीं हो जाता। अिसलिअे अिनमें से किसी भी अनुभवसे मेरा समाधान नहीं हुआ और न धन्यता ही महसूस हुअी। मेरे सौभाग्यसे मुझे कहीं-कहीं अच्छे प्रामाणिक साधक भी मिले। अुनमें से कोअी किसी अेक भूमिकामें, तो कोअी किसी अेक अवस्थामें मग्न रहते थे। कोअी साक्षी अवस्थाको सर्वश्रेष्ठ मानते थे, कोअी लयावस्थाको अर्थात् अुन्मन अवस्थाको ही आत्मानुभव या ब्रह्मानुभव समझते थे। कोअी दिव्यशक्ति प्राप्त करनेके पीछे पड़े हुअे थे। परन्तु अुनमें से अधिकांशकी स्थितिकी जांच करने पर

अैसा दिखाअी देता था कि वे अपनी ही कल्पना, वृत्ति या निवृत्त स्थितिको या अपने मानसिक सामर्थ्यको अीश्वर, आत्मा, ब्रह्म या दिव्यत्व समझकर अुसीमें कृतार्थता मानते हैं। अिन साधकोंसे बात-चीत करनेका मौका आने पर कुछके ध्यानमें अुनकी अपनी भ्रांति आ जाती, तो कुछ अपनी स्थितिसे ही आग्रहपूर्वक चिपटे रहते।

साधनोंके कारण साधकको पहले कभी न हुअे हों अैसे या कभी-कभी बिलकुल ही अकल्पित तरह तरहके अनुभव होते हैं। वे साधनामें होनेवाली चित्तकी भिन्न-भिन्न सूक्ष्म अवस्थाओंके परिणाम होते हैं। परन्तु साधकको ये बातें समझमें न आनेसे अिनमें से किसी भी रम्य, भव्य या आकर्षक अनुभवको ही मुख्य मानकर वह अुसीमें तल्लीन या मग्न रहनेका प्रयत्न करता है। जिस स्थितिमें अुसे अेक प्रकारका आनन्द और शान्ति मिलती है। साधकका ध्येय अिससे अुदात्त हो, तो अिस स्थितिको वह सर्वश्रेष्ठ नहीं मानता। सुख, आनद, अुन्नति, लाभ वगैरा हरअेक बात या स्थितिका जो सामूहिक लाभ और हितकी दृष्टिसे ही विचार करता है, अुसे चाहे जितने बड़े व्यक्तिगत लाभसे भी समाधान नहीं होता।

२. अनुभवोंका सार

मेरे जीवनका ध्येय पहलेसे ही व्यापक और सामूहिक होनेके कारण साधनाके हर अनुभव और अुस समयकी

विवेकदृष्टि और चित्तकी भूमिकाको मैं अिस दृष्टिसे जांचने लगा।

महाजाग्रत अवस्था और अुसमें मैं यह समझ गया कि सबकी जांच करनेवाली, परखनेवाली सर्वहितकारी विवेकदृष्टि

सबसे श्रेष्ठ है। बहुतसे साधकों, बहुतेरे साधु-सन्यासियों और अपनेको अवतार माननेवाले और अपने अनुयायियों द्वारा अपनेको अीश्वर कहलवानेवाले लोगोंका अनुभव और अुनकी भूमिकायें समझ लेने और परखनेके अवसर मुझे आये। अिनसे भी मेरी समझमें

यही बात ज्यादा स्पष्टतासे आने लगी। किसी भी भ्रम, व्यसन या अनर्थमे अपने आपको फसने न देकर या किसी भी श्रेष्ठ या दिव्य माने जानेवाले अनुभव, स्थिति या आनन्दमे तल्लीन न होने देकर हमेशा अुन्नतिकी तरफ जानेमे यही दृष्टि मेरे काम आअी है। अिस दृष्टिके कारण मैं समझा कि चित्तकी लयावस्थाकी अपेक्षा अुसके बादकी ज्ञानावस्था श्रेष्ठ है, क्योकि अुस अवस्थामे लयावस्थाका बोध स्थायी रहता है और जीवनमे अुसका अुपयोग करनेकी शक्ति और शक्यता बनी रहती है। किसी भी अनुभवमें केवल तल्लीन होकर अुसीमें डूबे न रहते हुअे अलग-अलग अनुभवोंसे समृद्ध होकर तथा ज्ञानको बढाते हुअे महाज्ञानी बनकर मनुष्यको मौजूदा जाग्रतिमें से महाजाग्रतिमें जाना है, यह भी अुस विवेकदृष्टिके कारण ही मैं समझ पाया।

साधनोंसे हुअे स्थायी लाभ

साधनाकालमे हुअे भिन्न-भिन्न अनुभवों और प्राप्त हुअी अलग-अलग अवस्थाओं, भूमिकाओं और शक्तियोंसे यद्यपि मेरा पूरी तरह समाधान नही हुआ, फिर भी यह नही कहा जा सकता कि अुन सबका मेरे जीवनके लिअे कुछ अुपयोग ही नही हुआ। हालाकि अीश्वरके दर्शनके लिअे जो व्याकुलता सहन करनी पडी वह व्यर्थ थी, तो भी अुस समय अुस निमित्तसे वृद्धिगत हुआ अीश्वरसम्बन्धी प्रेम और निष्ठा, सत्यसम्बन्धी जिज्ञासा, सहिष्णुता और अन्य सद्‌गुणोका आज भी मेरे जीवनमें बडा अुपयोग होता है। ध्यानाभ्याससे चित्तमे आअी हुअी स्थिरता, दृढता, सूक्ष्मता, विश्लेषण-शक्ति और अिन सबके कारण प्राप्त हुआ वृत्तियोका ज्ञान वगैरा सारे लाभ आज तक मेरे लिअे बहुत अुपयोगी सिद्ध हुअे हैं। तत्त्वज्ञानके अध्ययनसे समभावका तत्त्व गले अुतरनेके कारण सत्य, दया, क्षमा, अुदारता, सेवावृत्ति, परोपकार, त्याग वगैरा सद्‌गुणोकी जड मजबूत

होनेमें और अहंकाररहित बुद्धिसे अुनका विकास करनेमें मुझे बहुत सहायता मिलती है।

जिस मार्गके खतरे

ये सारे लाभ ध्यानमें रखते हुअे भी मुझे अितना तो लगता ही है कि अुस समयकी मेरी ओीश्वरसम्बन्धी भूल-भरी कल्पनाओं, तत्त्वज्ञान और साक्षात्कार-संबंधी भ्रामक मान्यताओं, आदेश, दिव्यदर्शन, दिव्यशक्ति वगैराके बारेमें परम्परागत श्रद्धा; धार्मिक माने गये ग्रंथोंके लिअे प्रामाण्य-बुद्धि, अुनमें से सत्यासत्य ढूंढ निकालनेकी मेरी अशक्तता वगैराके कारण मुझे कअी शारीरिक और मानसिक कष्ट व्यर्थ सहन करने पड़े। अुस समय स्वयं मुझमें विवेक और ज्ञान होता या कोअी मार्गदर्शक मिल जाता, तो मुझे अिस तरह तकलीफें न अुठानी पड़ती। अिसका यह अर्थ नहीं कि ओीश्वर या अध्यात्मके बारेमें हमारे सब विचार गलत हैं, सब ग्रंथ भ्रामक कल्पनाओंसे ही भरे हुअे हैं; या अिन बातोंके पीछे पड़ना जीवनको व्यर्थ गवां देना है। अपने अनुभव परसे मैं यह नहीं कह सकता। परन्तु अिन बातोंके पीछे पड़नेके लिअे भी अुचित समझ और अुचित साधनोंकी जरूरत है। ये न हों तो जीवनका हेतु पवित्र होने पर भी अुसके सिद्ध न होनेसे मनुष्यको व्यर्थ कष्ट सहने पड़ते हैं। अितना ही नहीं, अैसी परिस्थितिमें भ्रम, दंभ या नास्तिकताकी अुत्पत्ति होने की बहुत कुछ संभावना रहती है। मिसालके लिअे, कोअी साधक ओीश्वरदर्शन, आत्मसाक्षात्कार वगैराकी भ्रामक मान्यताके अनुसार कोअी साधन शुरू कर दे और अगर अुसकी समझके अनुसार होना संभव ही न हो, तो फिर वह भ्रमसे किसी भी आभास या कल्पनाको दर्शन या साक्षात्कार मान लेता है। साधककी प्रज्ञा अभ्यास-कालमें विकसित हुअी हो, तो अुसका भ्रम जल्दी ही अुसके ध्यानमें आ जाता है और वह फिरसे तात्त्विक विचारोंकी तरफ मुड़ता है। और अगर वह अुस भ्रमको ही अनेक प्रकारसे मजबूत करने और सही ठहरानेके

प्रयत्नमे पड जाय, तो अुसमे धीरे-धीरे दभ आने लगता है। जिस साधकको दर्शन और साक्षात्कार जैसा कोअी आभास नही होता और जिसमे यह कहनेकी हिम्मत नही होती कि साधनोका कष्ट अुठाकर भी कुछ प्राप्त नही हुआ और जिसकी प्रज्ञा भी विकसित हुअी नही होती, वह या तो दर्शन, साक्षात्कार वगैरा हो जानेका ढोग करने लगता है या अिस निर्णय पर पहुचकर कि ओश्वर, अध्यात्म वगैरा ये सब केवल भ्रामक कल्पनाये है पूर्ण नास्तिक बन जाता है। असलमे दभी भी नास्तिक ही है। अुसमे फर्क अितना ही है कि वह अपनी नास्तिकता छिपाकर श्रद्धाका ढोग करता है। अिस परसे यह खयाल होता है कि अिनमे से कोअी भी प्रकार व्यक्तिकी अुन्नति और सामाजिक हितकी दृष्टिसे नि सशय अहितकर है।

भ्रम और दभके कारण

अनेक पथोके, भिन्न-भिन्न हेतुओसे साधना करनेवाले, अनेक प्रकारके साधक मैने देखे है। अुनके परिणामोका भी मुझे पता है। अुन्हीमे से कुछ साधक किस तरह सिद्ध बने, कुछ सिद्धसे महात्मा और गुरु बनकर आगे चलकर परमेश्वरके अवतार या साक्षात् ओश्वर कैसे बने, यह भी मैने देखा है। अिन सब बातो और मेरे अपने अनुभवसे मुझे विश्वास हो गया है कि मनुष्यमे जो अज्ञान, मोह, अधैर्य आदि दोष है, वे अुसे भ्रम और दंभमे डालने या नास्तिकताकी ओर ले जानेका कारण बनते है। जनहितकारी और परोपकारी वृत्तिवाले कुछ व्यक्ति भी कभी-कभी दिव्य शक्ति प्राप्त करनेके लिअे साधक दशा स्वीकार करते है। अिस प्रकारके साधक ओश्वर आराधना करके जहा तक वे अुसकी कृपाकी याचना करते है, वहा तक शायद भ्रममे हो तो भी कम-से-कम प्रामाणिक तो होते ही है। परन्तु जब वे लोगोको यह दिखाने लगते है कि ओश्वरकी कृपासे अुनमें कोअी दिव्यशक्ति आ गअी है, तब वे भी जानबूझकर दभमे पडते है। गुरुशाहीके अनेक प्रकारो परसे हम सब यह अच्छी तरह

जानते हैं कि हमारे देशमें बुद्धिमान माने जानेवाले लोगोंमें भी पुरुषार्थके अभावके कारण कितनी अन्धश्रद्धा होती है। अुस समाजके अनेक लोग अैसे व्यक्तियोंके आसपास श्रद्धा और आशासे जमा हो जाते हैं। अपनी भावतृप्तिके लिअे वे अिन व्यक्तियोंको अीश्वर बना देते हैं। अुन्हें अीश्वर बनानेमें भावुकोंकी भी प्रतिष्ठा बढ़ती है। लोगोंकी श्रद्धाके कारण अिन व्यक्तियोंको भी अपनेमें अीश्वरत्वका भ्रम और मोह पैदा हो जाता है। पहलेका साधारण दयालु वृत्तिवाला साधक, अीश्वरकी कृपा याचनेवाला आराधक और अपनेको सम्पूर्ण रूपसे अीश्वरार्पण करनेवाला भावुक, भोले लोगोंके स्तुति-स्तोत्रों और पूजा-अर्चनसे थोड़े ही दिनोंमें अपनेको अीश्वर मानने लगता है! यह क्या कम दुःख और आश्चर्यकी बात है? अज्ञान, भ्रम, दंभ और भोलेपनके अैसे अुदाहरण हमारे हिन्दुस्तानके सिवाय और कहीं भी देखनेको नहीं मिलते। जिनमें परमेश्वरका अवतार या अीश्वरीय सामर्थ्यका संचार हुआ है, अैसी विभूतियाँ हिन्दुस्तानके अलावा और कहीं पैदा नहीं होतीं। अिससे हिन्दुस्तानको पुण्यभूमि माना जाय या पापभूमि? या यह समझा जाय कि हिन्दुस्तान भोले लोगोंका बाजार है? *

मानवशक्तिकी मर्यादा

साधनकालके नियम और अेकाग्रताके कारण कुछ साधकोंमें अेक प्रकारकी विशेष शक्ति आती है। अुस शक्तिका प्रभाव भी कभी-कभी दूसरे व्यक्तियों पर पड़ता दिखाअी देता है। परंतु वह प्रभाव कितना ही बड़ा क्यों न दिखाअी दे, मनुष्य कभी अीश्वर नहीं बन सकता। यद्यपि जल्दीसे यह बात ध्यानमें नहीं आती, परन्तु विचार करने पर खयालमें आता है कि कितनी ही महान सिद्धि मिल गअी हो, तो भी अुससे मनुष्यके

* सन् १९१०-११ के अरसेमें केवल महाराष्ट्रमें ही अीश्वरके कअी अवतार प्रगट हुअे थे।

अपने आपको ओिश्वर मान लेनेमे हमारा केवल भोलापन ही नही, वल्कि मोहका भी बहुत बडा भाग है। और जब अुस ओिश्वरत्वको बाहरके ठाटबाटसे, दूसरोंसे मिलनेवाली पूज्यतासे, अथवा वुद्धिको मोहमे डालनेवाले और नशा लानेवाले वाग्जालसे सिद्ध करनेका प्रयत्न किया जाता है, तब विवेकी मनुष्यको अुससे केवल नाटकीपन और दभ ही मालूम होता है. और ओिश्वरका भ्रम रखनेवाले व्यक्तियो और अुनके भक्तोकी दशा अुन्हे अनुकम्पनीय प्रतीत होती है।

मनुष्यका अहकार और महत्वाकाक्षा जब परमेश्वर बनने तक जा पहुचती है, तब अुसमे ज्ञान और वैराग्यकी अपेक्षा अज्ञान और मोहका ही अधिक स्पष्ट दर्शन होता है। परतु अिन दोषोके कारण ही यह वस्तु अुस समय अुनके ध्यानमे नही आती। ओिश्वरका पद अेव विश्वका सारा कारवार और अुत्पत्ति, स्थिति तथा लयकी सारी जिम्मेदारी मनुष्य ओिश्वरके पास ही रहने दे और सिर्फ अपना मनुष्यत्व ही वनाये रखे और अुसे विकसित करे, तो अितनेसे ही अुसका और दुनियाका कितना भला हो जाय। अिससे ओिश्वरके नाम पर होनेवाले कितने ही भ्रम, दभ और अनर्थ दुनियासे मिट जायगे; हमारे कलह और द्वेषभाव कम हो जायगे, मानवता वढेगी, समभावकी महत्ता समझमे आयेगी, वन्धुता और मित्रता वढने लगेगी, सयम और चित्तशुद्धिको महत्त्व मिलेगा; कर्तृत्व और पुरुषार्थका विकास होगा, संक्षेपमे हम सब सुखी होगे।

धर्मनिश्चय

सभी भूमिकाओं और अनुभवोकी जाच करनेके वाद मैंने समझ लिया कि अिन भूमिकाओं और अनुभवोको प्राप्त करते हुअे जो शारीरिक और मानसिक सद्‌गुण अपनेमें वढे हों, अुनका सवके हितके लिअे प्रामाणिकतासे अुपयोग करनेमे ही जीवनकी सार्थकता है। यद्यपि मेरी पूर्व कल्पनाके अनुसार परमेश्वरके दर्शन और अुसके आदेशके मेरे अुद्देश्य बादके अनुभवसे भ्रामक सावित हुअे, तो भी अिस

निमित्तसे जो प्रयत्न और परिश्रम करना पडा, अुससे मुझे मानवीय प्रकृति और मानवीय मन, गुणों और धर्मोंका ज्ञान हुआ। व्यक्ति, कुटुम्ब, गाव, देश, राष्ट्र और मानव-जाति अिनमें से किसीके भी कल्याणके अविरोधी मानवधर्मका विचार करनेमें अिस ज्ञानसे मुझे बडा लाभ हुआ। और अिस ज्ञानके कारण ही यह विश्वास भी मुझमें पैदा हुआ कि व्यक्ति और मानव-जातिका कल्याण करनेका सामर्थ्य अिस धर्ममें है।

परिश्रमका प्रयत्न

विवेक और साधनाके कारण मनको थोडी शान्ति मिलनेके बाद बीचके समयकी मनकी व्याकुल अवस्थामें छोड़ा हुआ परिश्रमी जीवन फिरसे शुरु करनेका मैंने विचार किया। क्योंकि यह मेरी समझमें आ गया था कि परिश्रमी जीवन मानवधर्मका अेक महत्त्वपूर्ण भाग है। १९०८ से '१८ तकके अरसेमें मेरी कौटुम्बिक और बाहरकी राष्ट्रीय स्थितिमें बहुत ही फर्क पड गया था, अिसलिअे अुन स्थानोंमें पहलेके ही काम करते रहना मेरे लिअे संभव नहीं था। अिसलिअे मैंने तय किया कि स्वतंत्र रूपमें शरीरश्रमका कोअी काम सीखू और अुसके जरिये ही अपनी आजीविका चलाअू। अपना जीवन सब तरफसे पवित्र, प्रामाणिक और धर्म्य बनाकर अुसके द्वारा जनसेवा करते रहनेके विचारसे मैंने बढ़अीगिरी, सिलाअीका काम, बुनाअी वगैरा अुद्योगोंमें प्रवेश करनेका प्रयत्न किया। अिसके लिअे अलग-अलग कारखानोंमें भी रहा और बुनाअी और बढ़अीगिरीमें थोडा बहुत प्रवेश किया। मुझे यह विश्वास भी हुआ कि अिस अभ्यासमें अेकाध साल नियमित और सतत लगानेसे मैं स्वावलम्बी बन जाअूंगा। परंतु पारिवारिक और बाहरके संबंधोंमें मेरा पूर्व जीवन ही व्यापक होनेके कारण मुझ पर तरह तरहके कर्तव्य आ पड़े। और अुन्हें कर्तव्यबुद्धिसे पूरा करते हुअे कोअी भी अुद्योग बाकायदा सीखनेकी सहूलियत मुझे नहीं मिली थी। अिसलिअे सोचे हुअे अुद्देश्यके पीछे मैं लगातार

नही पढ सका। अिसके सिवाय, आध्यात्मिक विचार और साधनामे मेरा कुछ समय गुजरा था, अिसलिअे मित्रमडली और परिचित लोगोमे मैं अुस मार्गका ज्ञाता और पथ-प्रदर्शक समझा जाने लगा था। अिसलिअे जिज्ञासु और श्रेयार्थी साधकोको मित्रभावसे सहानुभूति-पूर्वक मदद देनेके प्रसग आने लगे। अिस प्रकारका आध्यात्मिक स्वरूपका कोअी काम करनेकी मेरी अिच्छा या सकल्प कभी न रहने पर भी — अुल्टे अिस प्रकारके कामोंको टालते रहने पर भी — अभ्यासी साधकोको मुझे निरुपाय होकर सहायता देनी पडी। अिस विषयमे, दरअसल जरूरी-गैरजरूरी अनेक प्रकारके कष्ट सहकर मैंने विवेकपूर्वक सिर्फ अपना मन शान्त कर लिया था। औरोके पथ-प्रदर्शक बननेकी दृष्टिसे मैंने कभी विचार भी नही किया था। परतु ज्यो-ज्यो अुनकी जिम्मेदारी बढने लगी, त्यो-त्यो मुझे अुस विषयमे अधिक ध्यान देना पडा, और अधिक विचार करना अनिवार्य हो गया। अिस कारण भी अुद्योगकी शिक्षाका क्रम बार-बार टूटने लगा। अिस तरहसे जीवन व्यतीत होते होते आगे चलकर शारीरिक शक्ति भी दिन-दिन घटने लगी। दूसरे कामोका फैलाव भी बढता गया। अैसे अनेक कारणोसे अुद्योगकी शिक्षा पिछड गअी, पूरी न हो सकी। मै अपने मतके अनुसार स्वावलबी न बन सका। आदर्श जीवनका अुद्देश्य सिद्ध नही हुआ। अितने पर भी सेवाभावसे लोकशिक्षण और साथ ही अपनी शक्तिके अनुसार रचनात्मक कार्यों वगैरामे मैं आजकल समय लगाता हू और भरसक सादा और परिश्रमी जीवन बनानेका मेरा प्रयत्न है।

पठनका अुद्देश्य

विद्वान लोगोकी तुलनामे मेरा पठन बहुत ही थोडा है। पठन मननके लिअे और मनन ज्ञानके लिअे है और ज्ञानका पर्यवसान अन्तमे सदाचारमे होना चाहिये, यह मेरा खयाल है। अिसलिअे मेरे मनका रुख अिस प्रकारके पठनकी तरफ है, जिससे हमारे भीतरकी सद्भावनाअे

जाग्रत हो और विकास पाये। अितिहास, पुराण, धार्मिक, नैतिक और चरित्रसबधी ग्रथोंके पढनेसे मुझे बहुत लाभ हुआ। सत-साहित्यके कारण भक्ति, नीति, पवित्रता, समता वगैराके सस्कार मुझमें दृढ हुअे। अुन भावनाओंका पोषण और सवर्धन होता गया। चित्तशुद्धि और सद्गुणोंके अुत्कर्षके साथ कर्ममार्गकी तरफ मनका स्वाभाविक आकर्षण होनेसे और जो कुछ पढा हो अुसे जीवनमें चरितार्थ करनेका आग्रह होनेसे मेरा थोडा पठन भी जीवन-विकासकी दृष्टिसे मेरे लिअे बहुत अुपयोगी सिद्ध हुआ।

कर्म और जीवनका साफल्य

देशहितकी दृष्टिसे व्यायामका महत्त्व मालूम हुआ, अिसलिअे मैंने अिस विषयका थोडा बहुत अध्ययन किया। और अिसी दृष्टिसे जीवन-सबधी गहरा और व्यापक विचार करने पर व्यायामके भावनों और पद्धतिके बारेमें मेरे विचारोंमें आगे चलकर फर्क पडता गया। ज्यों-ज्यों मैं जीवनकी सफलताका विचार करने लगा, त्यों-त्यों मुझे अैसा प्रतीत होने लगा कि केवल व्यायामके मामलेमें ही नहीं, परतु मनुष्यकी शारीरिक, बौद्धिक और मानसिक सभी प्रकारकी शक्तियां, अुन शक्तियोंको प्राप्त करनेके साधन और अुपाय तथा अुन शक्तियों द्वारा प्रगट होनेवाला हरअेक कर्म — अिन सबका लक्ष जीवनको शक्तिशाली, तेजस्वी और पवित्र बनानेकी तरफ होना चाहिये। अिसके सिवाय दूसरे हेतुओंसे होनेवाले शारीरिक, बौद्धिक और मानसिक कर्मोंमें मनोरजन होगा, प्रतिष्ठा होगी, आनद और शाति देनेका सामर्थ्य भी होगा, अितना ही नहीं, अुनमें विकासका आभास भी होगा। परंतु अितनेसे मानवजीवन कृतार्थ नहीं हो सकता। अगर हमारा यह खयाल हो कि हम और हमारे साथ दूसरे भी सुखी हों और हम सबका जीवन सार्थक हो, तो हमें अिन सब प्रकारोंसे निकल कर अैसा ही मार्ग ग्रहण करना चाहिये, जिससे हमारी तमाम भीतरी शक्तियोंके विकासके साथ-साथ शुद्धि भी होती रहे। अिस विकास और

शुद्धिमें ही हमें आनंद, प्रसन्नता, धन्यता और कृतार्थता मालूम होनी चाहिये। यह बात अपने प्रयत्नके प्रमाणमें मुझे अनुभवसिद्ध हो गयी है कि संयम, सादगी और अुसीके साथ सद्‌गुणयुक्त पुरुषार्थमें ही जीवनकी सफलता है।

•

अंधश्रद्धा और भोलापन

अिस पुस्तकके 'मन:शक्तिकी खोज' नामक अध्यायमें अधिकांश विचार स्वानुभवके आधार पर लिखे गये हैं। साधुताके प्रति श्रद्धा होनेके कारण चमत्कारके भ्रम समाजमें किस तरह निर्माण होते और फैलते हैं, अिसका मुझे व्यक्तिगत अनुभव है। मैं अेकान्तमें रहने लगा, तब मेरे बारेमें केवल भोले लोगोंमें ही नहीं, परन्तु विद्वान लोगोंमें भी श्रद्धा अुत्पन्न होने लगी। अिससे भी अधिक आश्चर्यकी बात तो यह है कि मुझसे द्वेष रखनेवाले किसी किसी व्यक्तिमें भी अेक प्रकारका भय और बादमें श्रद्धा अुत्पन्न होने लगी। कुछको सपनेमें मेरा दर्शन होने लगा। किसीको मेरी तरफसे स्वप्नमें अुपदेश मिलने लगा। किसीके संकटका निवारण हो गया, किसीका रोग मिट गया। कोअी मेरी कृपासे मरते मरते बच गया। कोअी मेरी मानता रखने लगे और अुनकी मानता मैं पूरी करने लगा। अिस प्रकार भावुक और कामनिक* लोगोंमें मेरी ख्याति होने लगी, चमत्कारकी अनेक बातें मेरे नाम पर फैलने लगीं, श्रद्धावाले लोगोंको अिनके कारण आनंद होने लगा और अुनकी श्रद्धा कअी गुनी बढ़ने लगी। परन्तु मैं जानता था कि मेरी जिस दिव्यशक्तिका अनुभव और साक्षात्कार लोगोंको हो रहा था और जिन बातोंका कर्तृत्व वे मुझमें आरोपित करते थे, अुनमें से किसीका भी मेरे साथ संबंध नहीं था। अिसलिअे और लोगोंमें अिस प्रकारका गलत खयाल और श्रद्धा निर्माण होने देनेमें अपना और जनताका अकल्याण

---

* कामना रखनेवाले।

है, अैसी दृढ मान्यता होनेके कारण मैंने अुन चमत्कारोंके कर्तृत्वसे अिनकार कर दिया और अुन्हे बता दिया कि अिस प्रकारकी श्रद्धा तुम्हारा और मेरा दोनोंका अहित करनेवाली है। अुस समय पहले तो अुन्होंने यह बात मानी नहीं। अुल्टे, वे समझने लगे कि निरहंकार होनेके कारण मैं प्रतिष्ठासे बचना और अपनी दिव्यशक्तिका व्यय न होने देनेके लिअे अप्रगट रहना चाहता हूं। अिस तरह मेरी भावुनाके बारेमें अुनके मनमे और भी अधिक श्रद्धा पैदा हुअी। परंतु हर बार मेरे स्पष्ट कहनेसे और मेरी सादगीसे अन्तमे लोग समझने लगे और मेरे प्रति अुनकी अन्धश्रद्धा मिट गयी। अुस समय मैंने लोक-श्रद्धाका पोषण किया होता, तो अिसमे शक नही कि लोगोंमें भ्रम और मुझमे दंभ बढता और हम सबकी दुर्गति होती। साधकके साथ चमत्कार किस प्रकार जोड दिया जाता है, अिसका मुझे निजी अनुभवसे पता चला, तबसे किसीके भी चमत्कारकी कथाके बारेमे मेरा मन सशंक रहने लगा है।

मन शक्तिका संशोधन

अिस विषयका यह भ्रम और भोलेपनका पहलू छोड दें, तो अिस सवालसे सबंधित दूसरा खोज करने योग्य पहलू यह है कि चमत्कार कर दिखानेकी कोअी विशेष शक्ति मनुष्य अपनेमें निर्माण कर सकता है या नहीं। अिस मामलेमे मेरा यह खयाल है कि अैसी शक्ति मनुष्य अेक हद तक प्राप्त कर सकता है। अुसमे वैसी शक्ति निर्माण हो सकती है। जैसे मनुष्य अपनी शारीरिक शक्ति अेक हद तक बढा सकता है, वैसे ही अुचित प्रयत्नसे वह अपनी मानसिक शक्ति भी अेक खास सीमा तक बढा सकता है। अिस शक्तिके कार्यकारण-भावके सूक्ष्म और गूढ होनेसे हम अुसे दैवी शक्ति कहते हैं। परंतु सूक्ष्म विचार करने पर अैसा कहनेका कोअी कारण नहीं, या जिसमें अैसी शक्ति आअी हो अुसे भी दैवी पुरुष या अीश्वर माननेकी जरूरत नहीं। केवल तात्त्विक

दृष्टिसे विचार करे तो कौनसा प्राणी, कौनसी शक्ति या कौनसी क्रिया अीश्वरी नही है? अेक ही चित्शक्तिसे, विश्वशक्तिसे, सारा दृश्य-अदृश्य फैलाव पैदा हुआ है और असका व्यापार चल रहा है। सूर्य जैसे और अुससे भी प्रचड और देदीप्यमान गोलेसे लगाकर अणुसे भी छोटे जीव तक सभीमे यदि यही शक्ति है और सबको चला रही है, विश्वकी स्थावर-जंगम, चर-अचर, सभी वस्तुओका नियत्रण यदि वही करती है, तो मनुष्यकी थोडीसी वढी हुअी शक्तिको ही हम दिव्य या दैवी शक्ति किस लिअे माने? अिससे चमत्कारके भ्रममे न पडकर और अीश्वरत्वके मोहमे न फसकर हमे अिस वातके सशोधनकी तरफ ध्यान देना चाहिये कि हम अपनी मानसिक शक्तिका कैसे विकास करे। अुस शक्तिको हम ज्यादा क्रियाशील, गतिशील, तीव्र और शुद्ध कैसे वना सकते है और अुसकी मददसे मानव व्यवहार पर भी अिष्ट असर किस तरह पैदा किया जा सकता है, अिसका शास्त्रीय दृष्टिसे विचार करनेकी तरफ हमारा मन मुडना चाहिये। मै खुद अिस विषयका सिद्ध या शास्त्री नहीं हू, फिर भी अिस विषयके अपने और दूसरोके थोडेसे अनुभवो परसे मेरी अिस विषयमे केवल श्रद्धा ही नही, परतु विश्वास है कि मनुष्य अुचित प्रयत्नसे अपनी मानसिक शक्ति अेक हद तक वढा सकता है, अुसे अपने अकुशमे रख सकता है तथा भ्रम और दभ वढाये विना ससारके दुख दूर करनेमे सहृदयतासे अुसका अुपयोग कर सकता है। मानव-जातिको अिस मन शक्तिकी कितनी जरूरत है और अिसके लिअे मनुष्यको किस तरह प्रयत्नशील रहना चाहिये, अिसका विवेचन अुस अध्यायमे किया गया है।

* * *

अपने प्रथम सकल्पित कार्यमे मुझे जो दिक्कते हुअी, जो त्याग करना पडा, किसी समय दो धर्म्य कर्तव्य आ पडने पर निर्णय करनेमे जो मनोमथन हुआ, छुटपनसे अुदात्त अुद्देश्यके पीछे पडनेसे जो कौटुम्बिक कठिनाअिया पैदा हुअी, कुटुम्बके लोगोको जो दुख

भोगने पड़े, अुनकी अुपेक्षा और अवहेलनाके लिये मुझे खुद जो मनस्ताप हुआ, अुनकी अुचित जरूरतें भी पूरी न कर सकनेके कारण समय समय पर जो मानसिक वेदना हुआी, मेरी प्रवृत्तिकी साहसभरी योजना, अुस जमानेके साहसके प्रसंग और कृत्य; असीम मित्रप्रेम, दूसरोंके लिअे जो अुदारता दिखानी पड़ी और दगेके लिये जो संकट सहन करने पड़े, निराशा, अज्ञातवास और चिन्ताग्रस्त अवस्थामें जो दिन गुजारने पड़े, अुन सबका वर्णन मैंने यिस 'परिचय' में जान-बूझकर छोड़ दिया है। अिसी प्रकार अेकान्तवास और साधनाकालकी मनकी व्याकुलता; तप, संयम, अुपवास, प्रवास वगैराके दौरानमें आये हुअे कष्ट और सहनशक्तिकी परीक्षा करनेवाले प्रसंग; जीवनको जान-बूझकर असुविधापूर्ण बना लेनेसे जो तरह तरहकी मुश्किलें सहनी पड़ी, वियोगके कारण प्रियजनोंको जो दुख अुठाने पड़े — अुन सबका निरूपण भी मैंने छोड़ दिया है। दर्शन, साक्षात्कार, तद्रूपता वगैरा अलग-अलग भूमिकाओंमें भिन्न-भिन्न प्रकारके जो आनंदानुभव हुअे, और अुस अरसेमें बढ़े हुअे मानसिक सामर्थ्यके जो प्रत्यय मिले अुनका भी मैंने यहां अुल्लेख नहीं किया है। जीवनमें छोटे-बड़े, प्रसिद्ध-अप्रसिद्ध व्यक्तियोंके साथ कायम हुअे और सारे जीवनके दौरानमें अधिकाधिक दृढ़ और गाढ़ बनते गये सम्बन्धोंका भी मैंने अिसमें निर्देश नहीं किया है। हिमालयमें रहने और भ्रमण करने पर भी वहांकी प्रकृतिका भव्य, रम्य और आकर्षक वर्णन करनेकी बात मेरे मनमें नहीं आयी। जीवनका प्रवाह किन-किन आचार-विचारोंसे गुजरता हुआ, किन-किन संस्कारोंको धारण करता हुआ, किन-किन प्रवृत्तियों, साधनाओं और अभ्यासोंमें से आजके स्वरूपको प्राप्त हुआ है और आजके विचार किन-किन अनुभवों और अुनके परीक्षणमें से पार होकर निकले हैं, अितना ही कहनेका अिसमें साधारणतः प्रयत्न किया गया है।

अब अेक ही महत्त्वकी बात मेरे अपने बारेमें कहनेकी रह जाती है। हरअेक मनुष्यको अपने प्रति ममता होनेके कारण अपने

आचार-विचार प्रिय लगते है। अिन प्रियताके कारण अुसे अपने जीवनमे अुदात्तता, भव्यता, सज्जनता, विशेषता वगैरा सभी कुछ महसूस होता है। अुस समय जीवनमे अपनी तरफसे हुअी कितनी ही बड़ी भूलो, अपराधो और साथ ही अपने दुर्गुणो, दुर्बुद्धि और विकारो — सबका अुसे विस्मरण हो जाता है। परन्तु यह चीज सत्य और प्रामाणिकताके साथ मेल नही खाती। मनुष्यमात्र थोडी-बहुत मात्रामे गुण-दोषोसे भरा हुआ ही होता है। अिस नियमके अनुसार यदि मैंने अपने कोअी दोष 'परिचय' मे न बताये हो, तो भी औरोकी तरह ही मुझमे भी गुण-दोषोका मिश्रण है। जिनके दोषोका दुनियाको बहुत पता नही होता या जिनके दोषोसे किसीका बहुत नुकसान नही होता या जो दोषोको दूर करनेकी कोशिश करते है और जिनके गुणोको थोडी-बहुत ख्याति मिली हुअी होती है, वे दुनियामे 'भले' माने जाते है। अैसे अनेक भलोमे से मैं भी अेक हू, अितना ही पाठक मेरे बारेमे समझे। जिस जीवन-सिद्धिके विषयमे मैंने पुस्तकमे बार-बार लिखा है, वह मुझे अभी तक पूरी तरह प्राप्त नही हुअी है। अितने पर भी अुस दिशामे मैं यथाशक्ति प्रयत्नशील हू।

अपने बारेमे अच्छा या बुरा कुछ भी कहनेकी स्वभावसे जिसे अरुचि है और जो केवल कर्तव्यनिष्ठ रहनेका प्रयत्न करता है, अुस मेरे जैसे आदमीको अपना परिचय अितना विस्तारपूर्वक लिखना पडा है। 'अहवृत्ति' को भरसक कम करके मैंने अपने बारेमे जो कुछ लिखा है, वह भी मित्रोके आग्रहके कारण और अिस खयालसे कि पुस्तकमे दिये गये विचारोके पीछे रही जीवनभरकी प्रयत्नशीलताकी बात पाठकोके ध्यानमे आ जाय। अितने पर भी यदि अिसमे किसीको आत्मस्तुतिका दोष जान पडे, तो मुझे अुसे नम्रतापूर्वक स्वीकार ही करना पडेगा। पाठकोसे अितना ही अनुरोध है कि वे मुझे अुदारतापूर्वक क्षमा कर दे।

अनुक्रमणिका

पहला भाग

विभाग १: विवेकदर्शन

विभाग २ : साधनविचार (चित्तका अभ्यास)

दूसरा भाग

विभाग १ : धर्म्य व्यवहार

विभाग २ : गुणदर्शन

विवेक और साधना

पहला भाग

विभाग १ : विवेकदर्शन

१

सामूहिक ध्येय

विलकुल प्रारम्भिक कालमे मनुष्यकी क्या स्थिति होगी, अिस वारेमे कल्पना करना भी हमारे लिअे कठिन है। परन्तु मनुष्य-प्राणी समूह वनाकर रहने लगा, तवसे ममूहकी रक्षा और धारण-पोषण करनेके लिअे अुसे कुछ न कुछ नियम अवश्य वनाने पड़े होगे, ये नियम ही अुस कालका मानवधर्म। अुसके वाद समूहकी सख्या ज्यो-ज्यो वढती गअी, त्यो-त्यो मूल मानवधर्ममे रही हुअी मानवताकी कल्पना व्यापक होती गअी। व्यापकताके विना समुदायका विकास हो नही सकता। अुस व्यापकताके साथ-साथ समाजमे सत्त्व-सशुद्धि अर्थात् सद्‌गुणोकी वृद्धि और शुद्धि जारी न रहे, तो समाज टिक नही सकता। अिसके लिअे समाजमें समयानुसार जरूरी सुधार करना पडता है, अलग-अलग आवश्यक साधन निर्माण करने पडते हैं।

धर्म-कल्पनाका अुद्‌गम

हमारे देशमें वहुत प्राचीन कालमें धर्मके नाम पर जो चातुर्वर्ण्य समाज-रचना किसी समय हो गअी थी, अुसके वाद दुनियाके साथके हमारे सम्वन्ध वढते जाने पर भी किसी प्रकारकी व्यवस्थित समाज-रचना या जाग्रत् धर्म सैकडो वर्षोमें निर्माण नही हुआ। भारत-वर्षके वाहरके लोगोका हमसे सम्पर्क हुआ, तवसे हमारे पतनकी शुरुआत हुअी है, जो अभी तक पूरी तरह रुका नही है। वाहरके लोगोसे टक्कर लेनेके लिअे हमारी समाज-रचनामे आवश्यक सुधार करके हम अपने समाजको वलवान और समर्थ नही वना सके। अनेक

पुरानी समाज-रचनाका मोह

प्रकारकी आपत्तिया सहन करके भी हमारा पुरानी समाज-रचनाका मोह छूटा नही। 'अीश्वरकी अिच्छा' और 'प्रारब्ध कर्म' के निराशा-जनक सिद्धान्तके आधार पर अस्तव्यस्त हुअी समाज-रचनामे हम जैसे-तैसे जी रहे है। धर्मश्रद्धाके नाम पर हमने जडता और पशुताका ही पोषण किया है।

सामूहिक ध्येयका अभाव

बहुत लम्बे समयसे हम सबका अेक ही अुदात्त जीवन-ध्येय हमारे सामने कोअी नही रहा। दूसरे प्राणी जिस तरह अपनी-अपनी व्यक्तिगत अिच्छाओंके कारण जीते है और अपनी जरूरते पूरी करनेके व्यक्तिगत प्रयत्नमें सारी जिन्दगी बिताते है, करीब-करीब वही हालत मनुष्य होने पर भी आज हमारी हो गयी है। हमारे समाजमें हरअेक युगमें विद्वान थे, पडित थे, महान सतपुरुष थे, धनवान और अैश्वर्यवान पुरुष थे; अेकसे अेक बढकर बलवान, रणवीर और धुरन्धर योद्धा थे; विलक्षण बुद्धिशाली राजनीतिज्ञ थे। परन्तु जिसे सब मिलकर अपनी शक्ति और बुद्धिसे प्राप्त करे, अैसा कोअी भी सामूहिक ध्येय हमारे सामने नही था। जिस ध्येयसे सबको धन्यता मालूम हो, अेकसी कृतार्थता और गौरव महसूस हो और जो सबके सम्मिलित परिश्रमके बिना, अैक्यके बिना, अेक-दूसरेके लिअे संतोषपूर्वक और सच्चे दिलसे किये जानेवाले स्वार्थत्यागके बिना, कितने ही बड़े व्यक्तिगत पराक्रम या सामर्थ्यसे, त्यागसे या ज्ञानसे, भक्तिसे या साधुतासे, धनसे या अैश्वर्यसे, अुदारतासे या विद्वत्तासे, और शीलसे या सद्गुणसे प्राप्त नही हो सकता, अैसा कोअी भी जीवन-ध्येय हमारे पास नही रह गया था। अिसके अनिष्ट परिणाम हम भोगते आये है, और आज भी भोग रहे है। अभी तक भी हम सबके अेकत्रित सद्गुणो और स्वार्थत्यागसे प्राप्त होनेवाला अुदात्त ध्येय हमने स्वीकार नही किया है, अिसलिअे हम सबकी शक्ति या कर्तृत्वमें अेकसूत्रता नही आ सकती। हम सबमें अेकता पैदा होकर सबमें

अेक ही प्राण सचारित नही होता। हमारे साधुचरित और पुरुषार्थी नेता हमे स्वार्थत्याग और अेकताका अुपदेश कर रहे है, फिर भी वह हमारे चित्तमे घर नही करता।

अुसके कारण

'तू अपना मुख देख', 'तू अपना सभाल', 'दुनियाके पचड़ेमे पड़नेकी तुझे जरूरत नही'—अिस तरहके अुपदेश और सस्कार हमे बचपनसे मिलते रहते है और हमारी पीढी दर पीढी अिसी स्थितिमें गुजरी है, अिसलिअे हमारे खूनमे वे अुपदेश और सस्कार मिल गये है और अपने बारेमे हमारी कल्पनायें अेकदम सकुचित हो गअी है। अिस कारण कोअी भी अुदात्त सामूहिक भाव हममे निर्माण नही होता और दुनियामें हम केवल स्वार्थके पीछे पडे रहते है। किसी कारण ससारसे अूबकर जब हम धर्म और अध्यात्मका विचार करने लगते है, तो अिस तरफसे भी हमे स्वार्थके सिवाय और कोअी अुपदेश नही मिलता। 'तू जगतमे अकेला आया है और अन्तमे अकेला ही जायगा', 'दुनियामें कोअी किसीका नही', 'अपनेको मायाके जालसे छुडा ले', 'अीश्वर-प्राप्ति कर', 'तू कौन है यह जान ले', 'जन्म-मरणसे मुक्त हो जा', 'मोक्ष-प्राप्ति कर ले', —यही अुपदेश हमे मिलता रहता है। कही भी रहो, कही भी जाओ, कुछ भी पढो, किसीका भी अुपदेश सुनो—अिसके सिवाय और कोअी अुदात्त विचार या सस्कार नही मिलेगा। चूकि ससारका स्वार्थपूर्ण अुपदेश ही हमें परमार्थके क्षेत्रमे भी 'आत्मा' के नाम पर मिलता है, अिसलिअे वह तुरन्त हमारे गले अुतरता है और हमे पसन्द आता है। क्योकि वह हमें यह नही कहता कि तुम अपना स्वार्थ छोडो, दूसरोके बारेमें विचार करो या अुनके लिअे मेहनत करो। ससारमें हम अपनी ही वृत्तियोका पोषण, वर्धन और शमन करते है, और परमार्थके नाम पर भी हम वही करते है। परन्तु दोनोमे से किसी जगह भी हम अपनी वृत्तियोकी जाच नही करते। हमारी वृत्तिया धर्म्य है या अधर्म्य,

अुचित है या अनुचित, दूसरोंके हितके लिअे साधक है, बाधक है या घातक, अिसका विचार न करके हम केवल अपनी वृत्तियोंके पीछे दौडते है। अिस प्रकार कोअी भी अुदात्त आदर्श दृष्टिके सामने रखे बिना हमारा जीवन चला जा रहा है।

सजीव अुदात्त आदर्शका प्रभाव

चातुर्वर्ण्य समाज-रचना जिस जमानेमें सजीव थी, अुस जमानेमें हमारे सामने जीवन-सम्बन्धी कोअी न कोअी अुदात्त आदर्श था। यज्ञोपवीतकी दीक्षा दी जानेके समयसे ब्रह्मचारीको पवित्र, अुदात्त और व्यापक संस्कार मिलते रहे, अैसी शिक्षा-पद्धति अेक जमानेमें हमारे यहा थी। अुस पद्धति द्वारा जीवनके आध्यात्मिक लक्ष्यकी अुसे सतत याद दिलाअी जाती थी। अुसमें से ही बलवान और प्रतापवान, धर्मनिष्ठ और कर्तव्यनिष्ठ समाज-रक्षक निर्माण होते थे। अुस जमानेमें केवल व्यक्तिगत सुखोपभोग या कामनाओंका, वृत्तियों या भावनाओंका महत्त्व नहीं होता था। ब्राह्मण अपने ब्रह्मतेजको बढानेके लिअे जीते थे, और अिस श्रेष्ठ वर्णकी कर्तव्य-निष्ठा और धर्मनिष्ठाकी छाप सारे समाज पर अवश्य पड़ती होगी। और अिस तरह सारा समाज जीवनके किसी अुच्च आदर्शकी ओर निश्चित रूपमें जाता होगा। किसी भी राष्ट्रके बल और पराक्रमके अुत्कर्ष-कालकी जाच करे, तो यह विदित हुअे बिना नहीं रहेगा कि अुस समय अुसकी निष्ठा किसी पवित्र, अुच्च और अुदात्त तत्त्व पर थी। यूनानी राष्ट्रके अुत्कर्ष कालमें हरअेक नये जनमे हुअे बालकको कठोर शारीरिक परीक्षामें से गुजरना पडता था। अुसमें से वह सही-सलामत पार हो जाता तभी राष्ट्रके भावी नागरिकके रूपमें अुसका अुत्तम ढंगसे पालन किया जाता था। अैसी व्यवस्थाके कारण चाहे जैसी निष्प्राण सन्तानें राष्ट्रमें नहीं बढती थीं और केवल जनसंख्यामें वृद्धि होकर राष्ट्र पर अुसका व्यर्थ भार नहीं बढता था। अैसे ही जमानेमें थर्मोपिली गजानेवाले

वीर निर्माण होते है। जब राष्ट्रके सामने —अुसके सारे लोगोके सामने — सबका मिलकर कोअी अेक पवित्र, अुदात्त और महान आदर्श होता है; सबका मिलकर अेक ही अुदात्त ध्येय सबकी नजरके सामने सतत खडा रहता है और अुस पर सबकी निष्ठा होती है, अपनी व्यक्तिगत कामनाओ, वृत्तियो और भावनाओमे से किसीको भी महत्त्व न देकर, अपने व्यक्तिगत सुख-दुखकी परवाह न करके सबकी अपने आदर्श पर दृढ निष्ठा होती है; अिस आदर्श और निष्ठाके लिअे मौका पडने पर अपने आपका बलिदान देनेकी अुन लोगोमें से हरअेककी तैयारी होती है, तभी राष्ट्रमें बल, तेज और अुत्साहका विकास होता है।

हमारी अवनति और अुसका अुपाय

अिस प्रकारका अुच्च और पवित्र, अुदात्त और हमेशा प्रेरणा देनेवाला कोअी भी आदर्श हमारे सामने नही रहा। बाहरके कोअी भी लोग आकर हमे लूटे, मारे, हमें गुलाम बनाकर बेगार करायें और जैसा चाहे हम पर राज्य करे — अैसा हमारा कुछ वर्ष पहलेका अितिहास है। यह सैकडो वर्षोंके आदर्शहीन जीवनका परिणाम है। बदलते हुअे समयके साथ-साथ हम सबकी मानवताको कायम रखने और बढानेवाला फेरबदल हमारे धार्मिक और सामाजिक नियमोमें करना जरूरी होने पर भी हम अिस ओर लापरवाही दिखाते रहे, अिसीलिअे हममें आजकी पामरता आअी है। केवल व्यक्तिगत सुख-सन्तोषके पीछे लगे रहनेके सिवाय हमारा और कोअी ध्येय नही है। प्राचीन कालके व्यर्थ बने हुअे धर्म-नियमोका आचरण करके असके द्वारा आज हम धार्मिक समाधान प्राप्त करनेका प्रयत्न करते है। अिस प्रकारकी पुरुषार्थहीन प्रवृत्तिमें से निर्माण होनेवाली हमारी निवृत्ति भी अुतनी ही निष्प्राण और निस्तेज होनेके कारण प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनोमें हमारी अधोगति दिखाअी देती है। ससारमें क्षुद्र विकारमय स्वार्थी जीवन और परमार्थके

नाम पर पुरुषार्थहीन और ज्ञानहीन तथा कल्पनावश और भावनावश जीवन! जिस तरह प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनोंमें विवेकशुद्ध और पुरुषार्थयुक्त जीवनका हममें से लोप हो गया है। परन्तु अब आगे व्यक्तिगत सुख या श्रेष्ठताको महत्त्व न देकर हम जीवनका व्यापक रूपमें विचार करना सीखें और हमारे दिलमें यह बात जम जाय कि हम मनुष्य है और सब प्रकारसे मनुष्य बनकर जीनेके लिये हमारा जन्म है, तो हमें अपनी शक्तियोका दूसरे ही रूपमें दर्शन होगा। अपनेपनकी हमारी संकुचित भावना नष्ट हो जाय और समुदायके प्रति आत्मीयता अनुभव करने जितनी विशालता हमारे हृदयमें प्रगट हो, तो हमारे व्यक्तिगत ध्येय और अुसके सुख और दिव्यताकी कल्पना आदिकी हीनता और असत्यता हमें स्पष्ट रूपमें मालूम हो जायगी और जीवन-सम्बन्धी सारे क्षुद्र आदर्श हमारे चित्तमें से लुप्त हो जायगे। अपने ही विकारो या भावनाओंके वशीभूत रहनेमें मानवता नही है, परन्तु अुन विकारो और भावनाओंके निमित्तसे प्रगट होनेवाली मानवकी अनेक प्रकारकी शक्तियोको विवेक द्वारा शुद्ध करके अुनका अुचित कार्योमें अुपयोग करनेमें ही मानवता है, यह बात भी हमारी समझमें आ जायगी। जिस प्रकार हममें विवेक और धर्मकी जागृति हो, तो हमारी नष्ट होती हुआी मानवता हमें फिरसे प्राप्त हो जायगी।

संयम, प्रेरणा और विवेक-शक्तिका विकास

मनुष्यमें अनेक प्रकारकी शारीरिक, बौद्धिक और मानसिक शक्तिया है। ये शक्तिया मनुष्यकी हरअेक वृत्ति और कर्म द्वारा अुसकी अिच्छा या अनिच्छासे बाहर आती है। यत्रमें पैदा होनेवाली भापको जैसे अुचित रूपमें योजनापूर्वक अुपयोगमें लानेसे अुसके द्वारा महान कार्य कराये जा सकते है, अुसी तरह मनुष्यकी शक्तिको, विकार और भावनाके रूपमें अव्यवस्थित ढगसे और अविवेकसे व्यर्थ न जाने देते हुअे, बढ़ाकर और यथासंभव

शुद्ध करके हम योजनापूर्वक अुपयोगमे ला सके, तो अुसके द्वारा कितने ही महान सत्कार्य किये जा सकते है। अैसे महान कार्य करनेके लिअे हमे अपनी अेक अेक वृत्तिका शोधन करना चाहिये। अनुचित वृत्तियोका निरोध करके अुन्हे भावनाओमे परिणत करना चाहिये। अुन भावनाओको भी शुद्ध करके विवेकसे अुनका अुचित कार्यमे सदा अुपयोग करना चाहिये। कोअी भी भावना कितनी ही दिव्य क्यो न लगती हो, हमे अुसीमे लुब्ध होकर नही रमे रहना चाहिये। अिससे हमारी किसी भी शक्तिका विकास नही होता, बल्कि वह हमारा केवल मनोविलास बन जाता है। अुसमे आनन्द हो तो भी मानवोचित पुरुषार्थसे मिलनेवाली प्रसन्नता नही। केवल अीश्वर-सम्बन्धी भावना ही हमारे चित्तमे रमती रहे, तो अुसमे आनन्द, आवेश या मस्ती कुछ समय तो हमें मिल जायगी, परन्तु अुसमे पुरुषार्थ नही। व्यक्तिगत कल्याणके हेतुसे हम अीश्वरके साथ तन्मय होनेका प्रयत्न करे और हमें अैसी तन्मयता महसूस हो, तो भी जब तक अुससे हममें अीश्वरी शक्तिका सचार न हो और अुसके अनुरूप पुरुषार्थ प्रगट न हो, तब तक अुस तन्मयताकी मानसिक आरामसे ज्यादा कीमत नही। केवल मनसे कल्पी हुअी और पाली हुअी प्रेमोन्मत्त अवस्थाका भी अीश्वरके बारेमे कुछ न कुछ असबद्ध बोलते रहनेके सिवाय और कोअी अुपयोग न होता हो, तो वह अवस्था जीवन-सम्बन्धी कल्याणकी दृष्टिसे निकम्मी है। जिसे जीवन-सिद्धि प्राप्त करनी हो, अुसे केवल कल्पनासृष्टिमे कभी नही रहना चाहिये। अपनी समस्त वृत्तियो और शक्तियोको शुद्ध करके और साथ ही बढाकर अुन सबको काबूमें रखनेकी शक्ति प्राप्त करनी चाहिये। वृत्तियोको चाहे जैसे स्वैरतासे प्रकट होनेसे रोकनेके लिअे हममे **संयमशक्ति**की जरूरत है, और अुन्हे अुचित कार्यमें लगानेके लिअे हममें **प्रेरणाशक्ति**की आवश्यकता है। अिसी तरह अपना कर्तव्य पहचानकर अुसके लिअे अिन दोनो शक्तियोका अुचित समय पर और अुचित ढगसे अुपयोग

करनेके लिये हममें विवेकशक्तिकी जरूरत है। अिन तीन मुख्य शक्तियोंके विकासमें ही मानवता है और सामूहिक ध्येय और कर्तव्यके मार्गसे हमें अिन्हींका विकास करना है।

कर्ममार्गकी शुद्धि कैसे हो?

अीश्वर सचमुच कैसा है, अिसका अभी तक किसीको भी पता नहीं लगा। फिर भी अपनी भाव-तृप्तिके लिये —जब हमें प्रेम चाहिये तब प्रेम-स्वरूप; आनन्द चाहिये तब आनन्दस्वरूप, दया चाहिये तब दयासिन्धु; वात्सल्य चाहिये तब भक्तवत्सल, दीनवत्सल, माता-पिता, पावन होनेकी अिच्छा हो तब पतितपावन वगैरा — जब जैसी जरूरत हो तब अुसके विषयमें वैसी ही कल्पना करके और अुसे वैसा ही बनाकर अुससे हम आनन्द, धीरज, आधार, और समाधान प्राप्त करनेका प्रयत्न करते आये हैं। अिसका कर्म-मार्ग पर कोअी खास अिष्ट परिणाम नहीं हुआ। अिसके कारण हमारी कमजोरी और पंगुता कम नहीं हुअी। अिसके बजाय अीश्वरमें जिन-जिन गुणोंकी हमने कल्पना की अुन सब गुणोंसे युक्त होनेकी, अुसमें जिन गुणोंका आरोपण किया अुनके अनुसार खुद प्रेमस्वरूप, आनन्दस्वरूप, दया और वात्सल्यसे युक्त होनेकी और अुसीकी तरह न्यायपरायण बननेकी कोशिश की होती, तो अुसके सुपरिणाम समाजमें और हममें आपसमें होते रहते और हमारा जीवन सचमुच सुखी और आनन्दमय होता। हम सद्गुणों पर जोर देते रहते, तो हममें सद्गुणोंकी वृद्धि हुअी होती। अिससे हम सबको अेक-दूसरेका आधार मिलता, अेक-दूसरेसे हमको धीरज और आनन्द मिलता। अैसी स्थितिमें सहज ही हममें अैक्यभाव निर्माण होता और वह अखंड रहा होता। परस्पर सद्भावने हममें अेक-दूसरेके प्रति विश्वास अुत्पन्न होता और अुससे हम सबका अुत्कर्ष हुआ होता। परन्तु हमने प्रत्यक्ष कर्ममार्गमें अुपयोगी होनेवाले अिन सद्गुणोंका आग्रह नहीं रखा। जब मनुष्य कर्ममार्गकी शुद्धिका और अुसीसे प्रत्यक्ष आनन्द प्राप्त करनेका आग्रह

रखता है, तब अुसे अच्छी बातोका प्रत्यक्ष आचरण करना पडता है, बुद्धि चलानी पडती है, योजनायें बनानी पडती है और अन्तमें प्रयत्नपूर्वक सफल होना पडता है। अिन सब प्रयत्नोमें अुसका अपना कअी ओरसे विकास होता है। सात्विकताके साथ अुसकी कर्तृत्वशक्ति भी बढती है। अुसके सद्‌गुणोमे वृद्धि होती है। अुसकी कार्यकुशलता और अुसमे अुसकी योग्यता बढती है। अुसके प्रयत्नसे औरोके लिअे भी वह मार्ग और अुपाय सुगम बनता है। अुससे बहुतोको अनेक तरहके लाभ हो सकते है। बहुतोकी सात्विकता जाग्रत होती है। औरोंके सद्‌गुणोंको प्रेरणा मिलती है। कर्ममार्गमे रहे अज्ञान, अशुद्धि और जडताका नाश होकर हमारा और दूसरोका पुरुषार्थ बढता है। अुसमें काल्पनिकता न होनेसे कर्ममार्गमे जो सुधार प्रत्यक्ष हो जाते हैं और समाजकी जो पात्रता बढती है, वह आगे जारी रहती है। सात्विक आनन्दके भिन्न-भिन्न प्रकार समाजमे रूढ होते है और अुनके परिणामस्वरूप कुल मिलाकर सारे समाजकी शुद्धि और नीतिकी मात्रा बढती जाती है। अिस दृष्टिसे देखें तो केवल काल्पनिक व्यक्तिगत सुख और आनन्दका विचार करनेसे अपनी या समाजकी कोअी भी शक्ति नही बढती। अिसलिअे अैसे सुख और आनन्दकी कीमत व्यक्ति और समाज दोनोकी अुन्नतिके खयालसे ज्यादा नही मानी जा सकती।

अिन सब विचारोंसे यही नतीजा निकलता है कि जब हम व्यक्तिगत और केवल कल्पनाजन्य आनन्दको जीवनमे महत्त्व देना छोड देंगे, तभी कर्ममार्गकी शुद्धि हो सकेगी। जब यह तत्त्व हम सबको सूझेगा कि हमें अपनी सारी वृत्तियो, कल्पनाओ और भावनाओका केवल अुसी अेक अुदात्त सामूहिक ध्येयको सिद्ध करनेके लिअे अुपयोग करते रहना चाहिये और तदनुसार करनेमे हम सफल होंगे, तभी हम समझ सकेगे कि सयम, कर्तव्य, पुरुषार्थ और विवेककी मददसे हमें प्रत्यक्ष आनन्द प्राप्त करनेमें व्यक्ति और समाज दोनोकी दृष्टिसे

कितने प्रत्यक्ष लाभ है। अिस प्रकार हम सबके अेक ध्येयसे कर्ममार्गकी शुद्धि होती रहे, तो हम सबकी नैतिक और आध्यात्मिक पात्रता सहज ही बढ जायगी। फिर जीवनके हरअेक कार्यसे, कर्तव्यसे हमें सात्विक आनन्द मिलता रहेगा और वह हम सबके जीवनमे दिखाओी देगा। माधुर्य, प्रेम, मित्रता, अुदारता, वात्सल्य, नम्रता, मातृपितृभाव, बन्धु-भगिनीभाव, दया, निरहकारिता वगैरा सद्गुण यथासमय हमारे द्वारा प्रगट होते रहेंगे। जीवनमे हरअेक व्यक्तिके साथ आनेवाले सम्बन्धो और प्रसगोमें होनेवाले छोटे-बडे कर्मों द्वारा हमें और दूसरोको ज्ञान और आनन्दकी प्राप्ति होती रहेगी।

मानवताके लिअे जरूरी समाज-रचना

कर्ममार्ग और गृहस्थाश्रमकी शुद्धिमें से ही मानवताका मार्ग निकलता है। अुस मार्ग पर चलनेके लिअे सामूहिक कर्तव्यनिष्ठा और सात्विकताकी जरूरत है। अिस सात्विकतामे जितना सयमका महत्त्व है, अुतना ही जीवनमे स्फूर्ति देनेवाले पवित्र आनन्दका भी है। पुरुषार्थ और सादगी, कर्तृत्व और निरहकारिता, आत्मविश्वास और विनय वगैरा सद्गुणोकी हमें जरूरत है। जगतके झगडे, क्लेश, सताप, कटुता और नीरसता कम करनेके लिअे हममें प्रेम, माधुर्य और शान्ति होनेकी बडी जरूरत है। समाजका अज्ञान और अव्यवस्था दूर करनेके लिअे हममें ज्ञान और चातुर्यका होना जरूरी है। दैन्य और दुःखका नाश करनेके लिअे हममें पुरुषार्थ, कर्तृत्व और अुद्योगप्रियता होनी चाहिये। अिस प्रकारकी सर्वांग परिपूर्णतामें ही सच्चा सौन्दर्य है। यह हमारे जीवनका आदर्श है। अैसा परिपूर्ण जीवन कभी अेक गभीर महावन जैसा लगेगा, तो कभी प्रेम, माधुर्य और आनन्दका परमधाम मालूम होगा। कभी वह विवेक और चातुर्यका भडार है अैसा अनुभव होगा, तो कभी केवल करुणा और पुरुषार्थसे भरा हुआ दिखाओी देगा। परन्तु किसी भी अवसर पर और किसी भी दृष्टिसे अुसकी तरफ देखें, अुसमें विवेक,

सेवा-परायणता और अुदात्तता ही मुख्यत दिखाओी देगी। अिस दर्शनमें ही मानवता है। हम सबको अुन जगह पहुचना है। हमारा जीवन हमारा अकेलेका नही है, लेकिन वह सबके लिअे है, यह निष्ठा जिस हृदयमे दृढ हो गओी, समझ लीजिये कि अुसमे मानवता जाग्रत हो गओी। अिस मानवताका जिस समाज-पद्धतिमे विकास हो सके वह समाज-रचना हमे चाहिये। महा प्रयत्नपूर्वक हमें अुसका निर्माण करना चाहिये।

२

ओश्वर-भावना

जीवमात्रमे जिज्ञासा-वृत्ति होती है। पशु-पक्षियोमें वह विलकुल मर्यादित रूपमें होनेके कारण आसानीसे हमारे ध्यानमे नही आती। परन्तु मनुष्यमे वह वचपनसे ही स्पष्ट मालूम होती है, और बौद्धिक वृद्धिके साथ वह भी वढती जाती है। अिस जिज्ञासा-वृत्तिमें से ही मनुष्यमें ओीश्वर-सम्वन्धी कल्पना पैदा हुओी है। किसी महत्त्वकी वस्तुको हम यथार्थ रूपमें न जान सके, तो भी अुसे जाननेकी अिच्छा हमारे मनमे रहती है। अुस वस्तुका हमारा ज्ञान जिस हद तक कम होता है, अुसी हद तक अुसके विषयमें हमें कुछ तर्क या अनुमान करने पडते है। वे तर्क या अनुमान ही हमारी कल्पना या मान्यता होते है। अधिकतर हम अुन्हीको अुस वस्तुके विषयमें हमारा ज्ञान मानते है। जैसे-जैसे हमारा अनुभव वढता जाता है, ज्ञानमें वृद्धि होती जाती है, वैसे-वैसे पहली कल्पनाका अयथार्थ भाग कम होता जाता है और यथार्थ भाग वना रहता है। और अुसीमें नवीन

तर्कों या कल्पनाओंकी वृद्धि होती रहती है। अिसी क्रमसे अेकके बाद दूसरी अयथार्थ कल्पनासे बाहर निकलकर मनुष्य सत्यकी ओर बढता है। अीश्वर अनन्त, अपार और अगम्य है, तो भी अपने ज्ञानकी वृद्धिके साथ हम अुसके स्वरूप और स्वभावकी कल्पना बदलते आये हैं। और जब तक हमें अुनका सम्पूर्ण ज्ञान नहीं हो जाता, तब तक अुनके विषयकी हमारी कल्पनामें, मान्यतामें परिवर्तन और सुधार होते ही रहेंगे। हमारी मूल जिज्ञासा-वृत्ति और हमारे बढते हुअे ज्ञान, हमारी आवश्यकतायें और हमारी भावनायें — अिन सबका वह परिणाम होगा। कल्पना द्वारा होनेवाली और अनुभवमें आनेवाली दुःखनिवृत्ति और सुखानुभवके अनुरूप मनुष्यके मनमें अीश्वरके विषयमें प्रेम और कृतज्ञताके भाव पैदा होते हैं और अिससे कल्पनाका पर्यवसान भावनामें होकर अीश्वर-सम्बन्धी मूल कल्पना भावनाका रूप लेती है। अिष्ट सिद्धि होने तक टिकी रहनेवाली दृढ और प्रबल भावना ही श्रद्धा है। श्रद्धासे अुत्पन्न होनेवाली समर्पण-वृत्तिमें से भक्तिका अुद्भव हुआ होगा और कैसी भी विपरीत स्थितिमें विचलित न होनेवाली श्रद्धाका ही नाम निष्ठा पडा होगा। विकसित मानव मनमें अैसे भाव कम-ज्यादा मात्रामें होते ही हैं। ये भाव किसीके अीश्वरके विषयमें, किसीके तत्त्व या धर्मके विषयमें, तो किसीके आदर्शके विषयमें होते हैं। लेकिन मानवके मनमें अिन सबका स्थान है। मानवी मनमें अुनकी भूख होती है। अिस भाव-तृप्तिमें ही मानवताका विकास है। मनुष्य-जाति अिसी रास्ते चलती आअी है।

अीश्वर कैसा है अिसका शुद्ध ज्ञान मनुष्यको किसी भी समय हो सकेगा या नहीं, अिस प्रश्नको छोड दें तो भी मूल जिज्ञासासे मनुष्यके मनमें अुत्पन्न हुअे अिन भावोंमें भी बडी शक्ति है। यह अिस विषयके आज तकके अितिहाससे मालूम हुआ है। ये भाव ज्यों-ज्यों शुद्ध होते जाते हैं, त्यों-त्यों अुनका सामर्थ्य बढता जाता है—

अिस रहस्यको ध्यानमें रखकर मनुष्यको अपने भाव शुद्ध रखनेका प्रयत्न करना चाहिये। अिस प्रकरणके लिखनेमें मुख्यत. यह दृष्टि और यह हेतु है।

* * *

अीश्वरावलम्बनकी जरूरत

भिन्न-भिन्न समाजोमें अीश्वर-सम्बन्धी कल्पनाओका अितिहास देखनेसे मालूम होता है कि मनुष्य-जातिमे ज्यो-ज्यो मानवीय सद्‌गुण प्रगट होते गये, त्यो-त्यो अुसकी वे कल्पनाअें बदलती गअी हैं। अीश्वरकी मूल कल्पना मनुष्यकी दुर्बलता और अुसके थोडे बहुत बौद्धिक विकाससे अुत्पन्न हुअी होगी। दुर्बलताके साथ कल्पना या तर्क करनेकी शक्ति मनुष्यमे न होती, तो सभव नही कि अुसे अीश्वरकी कल्पना सूझती। पशु-पक्षी दुर्बल हैं तो भी अैसा नही लगता कि अुनमे अीश्वर-सम्बन्धी कल्पना होगी। मनुष्यको अपने पर आ पडनेवाले दु खो, संकटो, कठिनाअियो और आपत्तियोके निवारणके लिअे, अपनी सुरक्षाके लिअे, और साथ ही अपनी कामना-अिच्छा वगैराकी पूर्तिके लिअे और सुखकी स्थिरताके लिअे किसी न किसी दिव्य और महाशक्तिके प्रति श्रद्धाका आधार लेना पडता है। दार्शनिक, तत्वज्ञ, विचारक, समीक्षक या नास्तिक अीश्वरके बारेमें कुछ भी कहे; कोअी अपनी जोरदार दलीलोसे, कोअी तर्कवादसे, कोअी तात्त्विक दृष्टिसे या अन्य किसी प्रकारसे अीश्वरका नास्तित्व साबित करके बता दे, तो भी जब तक मानवप्राणी आजकी स्थितिमें है — और थोडे बहुत फर्कके साथ वह अिसी मानसिक स्थितिमें रहेगा — तब तक किसी न किसी रूपमें अुसे अीश्वर-सम्बन्धी कल्पनाकी जरूरत महसूस होती रहेगी। जब तक मनुष्यको जीवनके हरअेक दु खका नाश करनेके स्वाधीन

अुपायोंका ज्ञान न हो जायगा, जब तक अुसे यह लगता रहेगा कि वर्तमान सुखके स्थायी रहनेका आधार अपने पुरुषार्थ पर नहीं, बल्कि अपने काबूसे बाहरके अनेक बाह्य संयोगों पर है, या वह नहीं जानता कि किस पर अुसका आधार है — और असलमें वस्तुस्थिति यही है — तब तक मनुष्यको किसी भी बड़े आलम्बनकी जरूरत महसूस होती रहेगी। दुःखके अवसर पर निर्भय, निश्चिन्त और अनुद्विग्न तथा सुखके समय जाग्रत और संयमशील रहनेके लिये चित्तकी जिस प्रकारकी पवित्र और स्थिर अवस्था होनी चाहिये वह जब तक मनुष्यको प्राप्त न होगी, जब तक मनुष्य चित्तवृत्ति पर सहज ही काबू न रख सकेगा, तब तक किसी भी महान शक्तिका आधार लेनेकी अिच्छा अुसे होगी ही। जो सुख-दुःखके पार चले गये हों, जो हरअेक मामलेमें अपने सामर्थ्य पर आधार रखने जितने शक्तिशाली बन गये हों, अुन थोड़ेसे लोगोंको छोड़ दें तो बाकी सारे मनुष्य-समाजको अीश्वर-सम्बन्धी कल्पनाकी जरूरत है। सर्वथा अज्ञानीसे लेकर विद्वान तक, रंकसे लेकर धनिक तक — सबको अिस कल्पनाकी जरूरत है। अिसमें अन्तर होगा तो सिर्फ कल्पनाके स्वरूपका होगा, बाकी कल्पना वही रहेगी। मनुष्यकी अीश्वर-सम्बन्धी कल्पनाओंमें अनेक प्रकारके भेद हों, तो भी अुनमें मानी गयी महान शक्ति, अुसका न्यायीपन, दयालुता, अुसकी दीनवत्सलता, सर्वव्यापकता, सर्वज्ञता वगैराके मामलेमें सबमें लगभग अेकवाक्यता है। वह शरणागतोंका रक्षक, अनाथोंका प्रतिपालक, पतितोंका अुद्धारक और अनंत विश्वकी अुत्पत्ति-स्थिति-लयका कर्ता है, अिस बारेमें भी सब लगभग अेकमत हैं। अलबत्ता, दुनियामें सब लोगोंकी बुद्धि, परिस्थिति, संस्कार और सामाजिक रीतिरिवाजमें समानता न होनेसे सबकी अीश्वर-सम्बन्धी कल्पनामें पूरी तरह सादृश्य न हो यह स्वाभाविक है, और अिसीलिअे अीश्वरको प्रसन्न करने और अुसकी आराधना और अुपासना करनेकी विधि और मार्ग हरअेकके अलग-अलग दीख पड़ते हैं। अिसे छोड़ दें तो यह

मालूम होगा कि सबकी अीश्वर-सम्बन्धी कल्पना बहुत ही मिलती-जुलती है।

अीश्वर-सम्बन्धी कल्पनाका विवेकपूर्ण अुपयोग

अीश्वर-सम्बन्धी कल्पना और अीश्वर या परलोकके साथ सम्बन्ध जोडनेवाली धर्मकल्पनाको कुछ लोग अफीमकी गोलीकी अुपमा देते हैं। अुसमे किसी हद तक सत्य है, परन्तु वह सम्पूर्ण सत्य नही। अीश्वर-सम्बन्धी कल्पनासे दुनियामे जितनी बुराअियां पैदा हुअी है, अुन सबको ध्यानमे रखकर अुन्होने यह अुपमा दी है। अुपमाको कायम रखकर कहना हो तो यो कहा जा सकता है कि अीश्वर-सम्बन्धी कल्पना कभी-कभी और कही-कही अफीम जैसा परिणाम पैदा करनेवाली सिद्ध हुअी हो तो भी अुसमे अिस कल्पनाका दोष नही। अफीमसे भी तो अच्छे-बुरे दोनो प्रकारके परिणाम आ सकते है। दवाके तौर पर योजनापूर्वक अुसका अुचित अुपयोग करनेसे वह प्राणदायक होती है और रोज खानेकी आदत डाल लेनेसे या अेकदम अधिक मात्रामे अुसका अुपयोग करनेसे वही हानिकारक और कभी-कभी प्राणघातक सिद्ध होती है। अिसी तरह अीश्वर-सम्बन्धी कल्पना अहितकर नही, परन्तु अुस कल्पनाका किस ढगसे, कितनी मात्रामे और किस समय अुपयोग किया जाय, अिस बारेमे अज्ञानके कारण नुकसान होता है। सिर्फ अफीम ही क्यो, और भी कोअी अुपयोगी चीज अज्ञानसे काममें ली जाय, तो अुसके भी दुष्परिणाम हमे भोगने पडते है। भोजन जैसी सदा आवश्यक और अुपयोगी वस्तु भी अनुचित ढगसे, अनुचित मात्रामे और अनुचित समय पर ली जाय, तो अुससे भी अनेक रोग हो जाते है और कभी-कभी जीवनसे भी हाथ धोने पडते है। अिसलिअे हमारे हिताहितका आधार केवल वस्तु पर नही होता, परन्तु अुसके अुपयोगमें दिखाये जानेवाले हमारे विवेक या अज्ञान पर होता है।

ओश्वर-सम्बन्धी योग्य कल्पनाके लक्षण

मानव-अुत्कर्ष और अुन्नतिके लिअे ओश्वर-सम्बन्धी कल्पना, भावना, श्रद्धा, भक्ति, निष्ठा — ये सब जरूरी हैं। ये मनुष्यको अवनतिकी तरफ ले जानेवाली नहीं हैं। अिनसे मिलनेवाली शान्ति और प्रसन्नताके लिअे मानव-मन प्यासा रहता है। मानव-मनको सहारा देकर अुसे अुन्नत करनेके लिअे ये बहुत ही अुपयोगी हैं। अिसमें महत्त्वकी और मुख्य बात यही है कि हमारी ओश्वर-सम्बन्धी कल्पना भरसक विवेकशुद्ध, सरल और अुदात्त होनी चाहिये। अुसमें गूढ़ता या गुप्तता न होनी चाहिये। अुस कल्पनासे हमारे चित्तको आश्वासन या आधार मिले, यिसके लिअे अुसमें किसी भी प्रकारके कर्म-काण्डकी झंझट न होनी चाहिये। अुलटे, श्रद्धा, विश्वास और निष्ठाके चित्तमें बढ़ते रहनेका स्वाधीन और सादा अुपाय अुसमें होना चाहिये। अुसमें मध्यस्थ, पथप्रदर्शक या गुरुकी जरूरत न होनी चाहिये। अुस कल्पनाको माननेवालेका नीति और पवित्रताकी तरफ कुदरती झुकाव होना चाहिये। सदाचारकी अुसमें प्रधानता होनी चाहिये। दया, सत्य, प्रामाणिकता, धैर्य, निर्भयता, अुदारता, निश्चिन्तता, शान्ति और प्रसन्नताके लाभ अुनसे सहज ही मिलने चाहियें। अुस कल्पनाके ये स्वाभाविक परिणाम होने चाहियें कि मनुष्यमात्र पर प्रेम बढ़ता रहे, सामूहिक कल्याणकी अिच्छा हमेशा जाग्रत रहे और कर्तव्य करनेकी स्फूर्ति सतत बनी रहे। अुस कल्पनामें यह प्रभाव होना चाहिये कि हमारा अज्ञान और भोलापन (अन्ध और मूढ़ विश्वास) मिट जाय, हमारे विकारोंका नाश हो, हमारी आशा, तृष्णा, लोभ, दंभका विलय हो, चित्त स्वाधीन और शुद्ध बने, बुद्धि व्यापक और तेजस्वी हो, धर्मको प्रोत्साहन मिले और अहंकार क्षीण हो जाय। अुस कल्पनामें अैसा दिव्य गुण होना चाहिये कि वह हमारी पामरता और क्षुद्रता, पशुता और दुर्बलता, आलस्य और जड़ता — अिन सबका नाश करके हमारी कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियोंकी शुद्धि करे और हममें

आत्मविश्वास पैदा करे और साथ ही हमारे शरीर, बुद्धि और मनमे नित-नये चैतन्यका सचार करे। साराश यह कि अुस कल्पनामे अैसा सामर्थ्य होना चाहिये कि वह मनुष्यको सब तरहसे मानवताकी तरफ ले जाकर तथा अुसके जीवनको सपूर्ण सिद्धि प्राप्त कराकर अुसे कृतार्थ करे। अिस प्रकारकी औीश्वर-सम्बन्धी कल्पना मनुष्यमात्रका कल्याण ही करेगी। अुससे किसीका भी अहित होना कभी सभव नही।

औीश्वर-सम्बन्धी कल्पना समयानुसार बदलनेकी जरूरत

हरअेक कालके अनुरूप औीश्वर-सम्बन्धी कल्पना समय-समय पर मनुष्यको मिल जाय, तो मानव-जातिके कितने ही अनर्थ सहज ही टल जाय। परन्तु मानव-जातिके दुर्भाग्यके कारण अभी तक यह बात मनुष्यके ध्यानमे नही आती। आज भी कोअी पाच हजार तो कोअी दो हजार, कोअी अेक हजार तो कोअी पाच सौ या सौ वर्ष पहलेकी औीश्वर-सम्बन्धी कल्पनाको और अुसके आसपास रची हुअी धर्मकी कल्पनाको मजबूतीसे पकडे बैठे है। मानव-जातिका कल्याण किस बातमे है, अिसका विचार न करके पुरानी कल्पनामें दिव्यता माननेका हम सबका स्वभाव है। भूतकालमे यदि अनेक बार औीश्वर-सम्बन्धी कल्पना बदली जा सकी है और हर बार अुससे हमारा कल्याण होता रहा है, तो आज भी पहलेकी कल्पनाको बदलकर नअी धारण करनेमें क्या हर्ज है? लेकिन हम अिस मामलेमें अिस तरहसे विचार नही करते। कोअी भोलेपनसे, कोअी अज्ञानसे, कोअी डरसे, कोअी लालचसे और कोअी अिस भयसे कि औीश्वर-सम्बन्धी वर्तमान कल्पनाके बदलनेसे हमारी आर्थिक हानि होगी, हमारी प्रतिष्ठा नष्ट हो जायगी — अिस प्रकार अनेक कारणोसे पुरानी कल्पना बदलनेको तैयार नही होते। समाजकी वर्तमान स्थिति और जरूरतोका विचार न करके और यह देखते हुअे भी कि पुरानी कल्पनाअें घातक सिद्ध हो रही है, हम कालानुरूप नअी कल्पना धारण नही करते; अितना ही नही, अुलटे अिसका विरोध भी करते हैं।

समाज स्वयं अज्ञान और श्रद्धालुपनके कारण पूर्व कल्पनाको छोड़नेके लिअे तैयार नहीं होता और नअी कल्पनाका विरोध करनेवाले भी अपना महत्त्व बनाये रखनेके लिअे समाजको अपनी पुरानी कल्पना छोड़ने नहीं देते। यही अीश्वर-सम्बन्धी कल्पना अफीमका काम करती है। अुसे अफीम न बनने देनेके लिअे अुस कल्पनामें समयानुसार अुचित परिवर्तन होता रहना चाहिये और समाजकी शुद्धि होकर अुसकी शक्ति बढ़ती रहनी चाहिये। पुरानी कल्पनाके चाहनेवाले, अुस कल्पनाके कारण महत्त्व पाये हुअे मध्यस्थ, गुरु और कर्मकाण्डी पुरोहितोंका वर्ग नअी कल्पनाका हमेशा विरोध करते हैं। अैसा मालूम होता है कि पुरानी निरुपयोगी और अहितकर कल्पनाओंको छोड़ देनेके लिअे तैयार न होकर नअीका विरोध करनेवाली जमात समाजमें हमेशा होती है और अीश्वरके नाम पर हमेशा अुसीने अनर्थ किये हैं।

अीश्वर-सम्बन्धी सर्वश्रेष्ठ कल्पना, भावना व श्रद्धा

यज्ञमें मनुष्यों या पशुओंकी आहुति लिये बिना अीश्वर संतुष्ट नहीं होता, अैसी हमारी अेक समयकी कल्पना बदलते-बदलते अब यहां तक आ पहुंची है कि वह केवल सदाचार और भाव-भक्तिसे सन्तुष्ट होता है। मानव-जातिमें सदाचार और सद्भावनाओंको जैसे-जैसे महत्त्व मिलता गया, वैसे-वैसे यह फर्क होता आया है। अिसका रहस्य ध्यानमें रखकर हमें आज अैसी ही अीश्वर-सम्बन्धी कल्पना धारण करनी चाहिये, जिससे मानवजातिकी प्रगति, अुत्कर्ष, अुन्नति और सब तरफसे कल्याण सिद्ध हो; यह कल्पना हमें विवेकपूर्वक तय करनी चाहिये। मनुष्यमात्रके शाश्वत कल्याणका विचार करके तदनुसार आचरण करनेमें जो अपनी सारी शक्ति-बुद्धिका अुपयोग करते हैं, जिनके दिलमें भूतमात्रके लिअे हमदर्दी है, जो सदाचारी है, जिनका हृदय निर्मल है, जो निस्पृह हैं, जो पूर्वग्रह और पूर्व संस्कारोंसे बंधे नहीं है, जो विवेकी हैं, अैसे सज्जनोंके हृदयमें जिस प्रकारकी अीश्वर-सम्बन्धी कल्पना दृढ़ हुअी हो,

जो अुनके जीवनमें अुन्हें गति, अुत्साह, बल, प्रेरणा, प्रकाश और पवित्रता प्राप्त करनेमें अुपयोगी हो, जिससे अुनकी प्रज्ञा और सात्विकता बढती हो, वह कल्पना आजके समयमें धारण करने योग्य मानी जानी चाहिये। अुसका अनुसरण करनेमें हमारा और मानवजातिका कल्याण है। अैसे पुरुषकी कल्पना समझना हमारे लिअे सभव न हो, तो हरअेकको अपने सस्कारों, अपने हृदय और जीवनकी जाच कर लेनी चाहिये और अुसमें से ढूढ निकालना चाहिये कि जीवनमें जो भी कुछ अुदात्त, भव्य और पवित्र हम प्राप्त कर सके, सकटमें, दु खमें, कठिनाअीमें, भयमें जिसके बल और श्रद्धा पर हम धैर्य रख सके और शीलकी रक्षा कर सके; अगतिकी स्थितिमें गति, पश्चात्तापमें सान्त्वना, पतनावस्थामें अुत्थान, मूर्छावस्थामें भान, अज्ञानावस्थामें ज्ञान, असहाय स्थितिमें सहायता, मोहमें विवेक और सयम, कुछ भी सूझता न हो अैसी परेशानीकी हालतमें जिससे प्रकाश और मार्ग मिल सके, पुरुषार्थमें बल और अुत्साह, कर्ममें शुद्धता और व्यापकता जिससे प्राप्त हुअी, वह कल्पना कौनसी है? वह भावना कौनसी है? कौनसी पवित्र श्रद्धा जीवनमें ये सब बातें सिद्ध करनेका कारण बनी है? अिसे ढूढ निकालना चाहिये। अुसके मिलने पर अुसी कल्पनाको, भावनाको या श्रद्धाको भरसक सरल, प्रभावशाली, निरुपाधिक, स्वाधीन, महान, भव्य, व्यापक, बाह्य आडम्बर-रहित, शुद्धसे शुद्ध, मगलसे मगल और श्रेष्ठसे श्रेष्ठ बनाकर अुसे अपने हृदयमें दृढ करना चाहिये। अगर मनुष्य अितनी बात सिद्ध कर सके, तो वह अिसके बल पर जीवन भर अेकनिष्ठ रहकर अपना जीवन सार्थक कर सकेगा।

निष्ठा और संकल्पका सामर्थ्य

अिसके साथ यह बात भी ध्यानमें रखनी चाहिये कि मनुष्यके चित्तमें औीश्वर-भावना जाग्रत रहे अिसके लिअे अुसे अपने अभ्युदय और अुन्नतिकी तीव्र अिच्छा होनी चाहिये, विवेक होना चाहिये। ये वस्तुअें सज्जनोंके सहवाससे सहज ही प्राप्त की जा सकती हैं। अगर हम श्रेयार्थी हो तो विवेकी और पुरुषार्थी सज्जनकी संगति

और अुसके चरित्रका हम पर शुभ परिणाम हुये बिना नहीं रहता। अिन सबकी मददसे हमें अपनी मानवता सिद्ध करनी चाहिये। अिसके लिअे शुद्धसे शुद्ध और प्रभावशाली अीश्वर-सम्बन्धी भावना और श्रद्धा हमें धारण करनी चाहिये। जिसके बिना हम अपना ध्येय प्राप्त नहीं कर सकेंगे। अीश्वरकी प्राप्ति, अीश्वरका दर्शन या साक्षात्कार, अुसका आदेश वगैरा ध्येयोंमें अनेक भ्रम होनेके कारण अुनमें दूसरे कअी भ्रम निर्माण होते हैं। अिसलिअे हमें अिन चीजोंके पीछे न पड़ना चाहिये। जिनके कारण संसारमें नीतियुक्त व्यवहार टूटे और भ्रम, दम्भ और आलस्यको आश्रय मिले, अीश्वर-सम्बन्धी अैसी किसी भी कल्पनाको हमें मान्य न करना चाहिये। हमने जीवनके ध्येयके बारेमें जैसी कल्पना या निश्चय किया होगा, वैसी ही हमारी अीश्वर-विषयक कल्पना होगी। अिसलिअे प्रथम हमें ध्येयकी शुद्ध और स्पष्ट कल्पना होनी चाहिये। अुस बारेमें हमें यह निश्चित समझ लेना चाहिये कि जो कुछ भी भव्य प्रतीत हो वह सब आदरणीय या अनुकरणीय नहीं होता, जो आकर्षक लगे वह ध्येय नहीं; केवल आनन्दप्रद या सुखकर लगे, केवल शान्ति और प्रसन्नता देनेवाला हो, वह भी हमारा ध्येय नहीं, जो दिव्य लगे, रम्य लगे, सो भी ध्येय नहीं। परन्तु जो मानवताके अनुरूप हो, सद्‌गुणोंका पोषक, संयमका सहायक, धर्म और कर्तव्यका प्रेरक हो, जिसे प्राप्त करनेके लिअे प्रामाणिक मानव-व्यवहार और परिश्रम वगैराका त्याग न करना पड़े, जिसकी प्राप्तिकी अिच्छा सब करें और सबको अुसकी प्राप्ति हो जाने पर मानव-व्यवहार अधिक सरल, पवित्र और व्यवस्थित हो जाय, अुसे प्राप्त करना हमारा ध्येय है। वह ध्येय सिद्ध करना मुश्किल हो सकता है, परन्तु अुसमें भ्रम नहीं हो सकता। अुसके मार्गमें कठिनाअियां हो सकती हैं, परन्तु दम्भ नहीं हो सकता। अुसमें हमेशा आनन्द न हो तो भी कृतार्थता होगी। अुसका प्राप्त करना कठिन है, अतः अुसकी कठिनताकी

तीव्रता कम महसूस हो, भ्रममे न पडना पडे और हम दम्भमे न फसे, अिसके लिअे यह जरूरी है कि किसी अत्यन्त पवित्र और महान शक्ति पर हमारी श्रद्धा और निष्ठा हो। तमाम अनिष्टो और संकटोसे, सारे पापो और बाधाओसे बाहर निकाल कर हमे अपने ध्येय तक पहुचानेकी शक्ति अुस निष्ठामे ही है। ध्येय-सम्बन्धी हमारे दृढ सकल्पसे हमारी निष्ठा जाग्रत रहती है। विश्वमे सर्वत्र व्याप्त महान शक्तिको अपने लिअे अुपयोगी बना लेनेका सूत्र और सामर्थ्य हमारे दृढ सकल्पमे है।

३

स्तवनका सामर्थ्य

हमारी अुन्नतिके लिअे किसी भी बाहरी धार्मिक आडम्बर या कर्मकाण्डकी जरूरत नही, केवल अतरकी आतुरताकी जरूरत है। जिसमे यह भीतरी व्याकुलता होती है, अुसे अपनी अुन्नतिका मार्ग मिल जाता है, और यदि अुसमें दृढता और निग्रहशक्ति होती है, तो अुस मार्ग पर चलनेका सामर्थ्य भी अुसे मिल जाता है। अुन्नतिके मार्गमें पहली मुश्किल होती है, अपने ही अनुचित सस्कारो और आदतोको बदलनेकी। अिन सस्कारो और आदतोको बदले बगैर हम आगे नही बढ सकते। हम अपनी अिन्द्रियोकी पडी हुअी आदतो और मन पर जमे हुअे सस्कारोसे बधे होते है। अुनका काबू हम पर रहता है। श्रेयार्थी मनुष्यको अपनी अनुचित आदतो और सस्कारोसे छुटकारा पा लेना चाहिये। अिसके लिअे अपनेमें सामर्थ्य पैदा करना चाहिये। वह सामर्थ्य ध्येय-सम्बन्धी हमारी आतुरता और निग्रह-वृत्तिसे प्राप्त होता है। अिस प्रयत्नमे हमारी पुरानी और नअी मनोवृत्तियोका

कुछ समय तक झगडा होता रहता है। हमारी पहली मनोवृत्तिया लम्बे समयसे पोषित अेक ही तरहके संस्कारों, आदतों और कृतियोंके कारण हमारा स्वभाव बन गयी होती हैं। नयी मनोवृत्तियोंके द्वारा और अधिक तो अपने निग्रहसे हमें अुनका नाश करना पडता है। पहलेकी अनुचित वृत्तियोंमें आदतके कारण बल होता है; जब कि नयी शुभ वृत्तियोंमें निश्चयका बल होता है, पवित्र संकल्प और अुसके कारण पैदा होनेवाले आत्मविश्वासकी मदद होती है। अिस प्रकारकी परस्पर विरोधी वृत्तियोंकी हमारे चित्तमें चलती रहनेवाली रस्साकशी हमें सहनी पडती है। हमारा निश्चय, हमारा संकल्प दृढ हो, हममें काफी निग्रह-शक्ति हो तो हमारी शुभ वृत्तियोंकी अन्तमें विजय होती है और हम अपने मार्गमें आगे बढते हैं। हमारे चित्तमें अुन्नतिके लिअे व्याकुलता हो तो हमें कअी बार अिस किस्मके अपने ही चित्तके झगडे सहन करने पडेंगे। परन्तु अुनसे तंग न आकर या कभी भी निराश न होकर हमें अपनी अुन्नतिके रास्ते पर आगे ही बढते रहना चाहिये।

अीश्वर-निष्ठा, संकल्प और साधनाका सामर्थ्य

अन्तरकी अुत्कट अिच्छा — संकल्प हमें अिस मार्गमें हमेशा मदद देता रहेगा। अिस अिच्छा और संकल्पको हमें कभी मंद न पडने देना चाहिये। पठन, मनन, सज्जनोंका संग, अुचित और धर्म्य व्यवसाय वगैराकी सहायतासे हमें अपने संकल्पको सदैव जाग्रत और दृढ रखना चाहिये। अिस संकल्पके बलसे हमें अपने मार्गमें सिद्धि प्राप्त करना है। अिस संकल्पमें बल आनेके लिअे हममें अीश्वर-निष्ठाकी जरूरत है। अिस निष्ठामें अपार सामर्थ्य है। साधनके बिना निष्ठा नहीं बढती, निष्ठाके बिना संकल्पमें बल नहीं आता। अिसलिअे हमें किसी साधनका आश्रय लेना पडता है। वह साधन अैसा होना चाहिये, जिससे हमारी निष्ठा दृढ हो, हमारा संकल्प अेकविध, शुद्ध तथा

दृढ हो और अुनमें तीव्रता और तेजस्विता आये। अिसके अलावा वह साधन स्वाधीन होना चाहिये। अुनमें किसी भी प्रकारके कर्मकाण्डका आडम्बर न होना चाहिये। अुन साधनमें ही अैसा प्रभाव होना चाहिये, जिससे हमारे हृदयमें भावभक्तिकी बाढ आने लगे और चित्त निर्मल होने लगे, अुससे अीश्वर-निष्ठा सहज ही वृद्धिगत हो और वह बढ़ते-बढ़ते हमारे शरीरके अणु-अणुमें रम जाय। अिस प्रकार हम मूलगत निष्ठा बन जाये। अगर हम यह चीज साध सकें, तो हमारी अुन्नति होनेमें ज्यादा देर न लगे। क्योंकि अुसके कारण चित्तमें पैदा होनेवाले दृढ और तीव्र शुभ संकल्पसे अनुचित संस्कारोंका बल जल्दी क्षीण होता जायगा और थोड़े ही समयमें वे सब संस्कार नष्ट हो जायेंगे और हमारी अुन्नतिका मार्ग सुलभ और सरल हो जायगा।

स्वाधीन साधन, अीश्वर-स्तवन

अिसके लिअे सबसे प्रभावशाली और स्वाधीन साधन अीश्वर-स्तवन है। जो हमें अच्छा लगे और जिसके परिणामस्वरूप हममें सद्भाव जाग्रत हो और हमारे हृदयमें धीरे-धीरे संचरित होने लगे, अिस प्रकारका स्तवन हमें साधनके तौर पर चुनना चाहिये। यह स्तवन या स्तोत्र हमें हर रोज शुचिर्भूत होकर अेकान्तमें शांत और प्रसन्न समय, अन्तर्मुख होकर शान्ति और स्थिरतासे अिस ढंगसे नियमित रूपमें बोलनेका कार्यक्रम रखना चाहिये कि अुसके प्रत्येक शब्दका, भावका अपने चित्त पर गहरा असर हो और केवल अपनेको ही जानकारी हो। अुसे बोलते समय अुसके प्रत्येक शब्दसे हमारे चित्त पर शुभ, पवित्र और गंभीर लहरें अुठनी चाहियें, प्रेम जाग्रत होना चाहिये, हृदय सात्विक भावोंसे भर जाना चाहिये और वे भाव हृदयकी गहराअी तक पहुंच जाने चाहियें। कोमलता और दृढता, प्रसन्नता और तेजस्विता हृदयमें फैल जानी चाहियें। स्तवन करते करते हमारी निष्ठा बढ़नी चाहिये। किसी भी अवसर पर,

किसी भी कारणसे वह नष्ट या चलित न हो, अैसी दृढ व अभग वन जानी चाहिये। और यह सव परिणाम स्तवन करते-करते ही हो रहा है, अैसा हमें अनुभव हो जाना चाहिये। हमें अैसा महसूस होना चाहिये कि स्तवनके शुरूमें हमारे चित्तकी जो स्थिति थी, वह स्तवनके अन्तमें अूपर लिखे अनुसार वदल गयी है। हमे अिस तरहकी ताकत स्तवनकी पद्धतिसे पैदा करते आना चाहिये। स्तवनमे जिन अीश्वरीय गुणोका हम वर्णन करते है, जो स्तुति करते है, जिन गुणोंके स्तोत्र गाते है, वे गुण, वे भाव स्तवन करते करते हममे सचरित होने चाहिये। अपने प्रेम, भक्ति-भावना और निष्ठामे हम अीश्वर-सम्बन्धी कल्पनाके साथ, गुणोके साथ तन्मय हो जाय, समरस हो जायं, तो वही गुण हममे प्रगट हुअे विना नही रहेगे। अैसी स्थितिमें दुर्बलता और दीनता, दुष्टता और हीनता, जडता और कृपणता, अशुद्धता और लपटता, कुटेवो और कुसस्कारोंके लिअे हमारे हृदयमें स्थान नही रहेगा। अिन सबका समूल नाश हो जायगा।

स्तवनमें अैसी दिव्य शक्ति है। परन्तु अुसमें यह दिव्य शक्ति लानेका आधार हमारे अन्तरकी तीव्र अिच्छा पर होता है। हमारी तीव्र अिच्छा स्तवनमें वल लायेगी, स्तवनसे निष्ठामे वल आयेगा, और निष्ठा सकल्पको दृढ और प्रभावशाली वनायेगी। हमारी तीव्र अिच्छा ही हमारा सकल्प है। यह सकल्प, स्तवन और निष्ठा सव अेक दूसरेके पोषक और वल वढानेवाले है। अुन्हे अेक दूसरेसे अलग नही किया जा सकता। सकल्पका प्रभाव स्तवन पर, स्तवनका निष्ठा पर और निष्ठाका फिर सकल्प पर—अिस प्रकार सामर्थ्य-वृद्धिका यह चक्र चलता रहता है। वलवान संकल्पका हमारे सारे जीवन पर अनजाने सतत असर पडता ही रहता है। स्तवनसे अुसमें शक्ति प्रगट होती है। हमारी दूसरी शक्तियोंमे यह शक्ति वहुत व्यापक है। अिस शक्तिके कारण असभव दीखनेवाली वाते हमे सहज ही

सिद्ध होने लगती है। हमारी सकल्प-शक्ति ही हमारे भीतरकी सच्ची शक्ति है। जागृति, स्वप्न, सुषुप्ति — अिन तीनों अवस्थाओंमें वह हममें जाग्रत रूपमे काम करती रहती है। हमारे भीतर और बाहर होनेवाली तमाम घटनाओंसे अुस शक्तिका सम्बन्ध है और अुसका कार्य अज्ञात रूपसे सदैव जारी रहता है। हमारा मन, बुद्धि, चित्त और साथ ही हमारा 'अहं' सबके सुप्त दशामे चले जानेके बाद भी वह शक्ति जाग्रत रहती है। वह जाग्रत रहती है, अिसीलिअे गाढ निद्रामें से भी निश्चित समय पर, कभी-कभी बेवक्त भी, वह हमे जाग्रत करती है। वह जाग्रत न हो तो रोजकी अपेक्षा सुबह जल्दी अुठनेका सकल्प करके रातको सो जानेके बाद ठीक अुसी समय गहरी नींदसे हमें कौन जगाये? अिसलिअे अिसमे शक नहीं कि हमारे दृढ सकल्प अनजाने हमारा जीवन बनाते है। अुन सकल्पोंको अधिकाधिक बलवान, तीव्र और यशस्वी बनानेके लिअे स्तवनकी अत्यन्त आवश्यकता है। अिसमे शका नही कि अिस स्तवनसे ये सारी सिद्धियां प्राप्त करनेका रहस्य जिसने साध लिया, वह अपनी अुन्नतिके मार्ग पर चलते चलते, जीवनको क्रमश. विकसित करते करते अपना ध्येय प्राप्त कर सकेगा।

४

स्तवन-शुद्धि

आपने पत्रमें लिखा है कि अपने अिष्ट देव या आदर्श तत्त्वका सर्वत्र साक्षात्कार होना आत्मविकासमे अुपयोगी है अथवा आत्म-विकासकी अेक सीढ़ी है, परन्तु मुझे अैसा नहीं लगता। क्योंकि अिस प्रकारकी साक्षात्कारकी भाषाके कारण ही हमारे धार्मिक और आध्यात्मिक ग्रंथोंमें भ्रमको बढ़नेके लिअे खूब गुंजाअिश मिली है। भक्तिके अतिरेकके साथ जितनी ही मात्रामें अगर मनुष्योंके चित्तमें भ्रम घर करके रहते हों, तो यह कहे बिना नहीं रहा जा सकता कि भक्तिकी वे कल्पनायें और प्रथायें सदोष है। त्याग नजर आते ही अीसाका साक्षात्कार होता है, यह कहनेवाले अीसाअी भक्तका आपने पत्रमें अुदाहरण दिया है। परन्तु यों न कहकर यह कहना ही अुचित होगा कि त्याग नजर आते ही अुस महापुरुषका स्मरण हो आता है। परन्तु अैसा कहनेसे भक्तकी भावतृप्ति नहीं होती। अैसे समय भक्ति जब अत्युक्तिका मार्ग अपनाये या औचित्य छोड़ दे, तब अुसे मोह या भ्रम ही कहना चाहिये। जिस स्थितिकी या जिस प्रकारकी भाव-तृप्तिकी विकासमें जरूरत नहीं मालूम होती। विकासकी किसी भी भूमिकाका आधार गलत समझ पर नहीं होना चाहिये। भ्रमात्मक भक्तिमें कुछ भी विकास नहीं होता अैसी बात नहीं। भक्तकी भावना और आचरण जीवनके कर्तव्योंका जिस हद तक अनुसरण करते होंगे, अुस हद तक अुसमें विकास माना जा सकता है। बाकीकी अुनकी कल्पनायें और भ्रम अुसके अपने और समाज दोनोंके विकासमें बाधक होते है। किसी भी स्थितिको विकास तभी कहा जा सकता है जब वह स्थिति अुचित मार्ग पर अुन्नत होते होते क्रमशः प्राप्त हुअी हो

और वादके विकासके लिअे वाधक या प्रतिबंधक न होकर स्वाभाविक रूपमें ही सहायता देनेवाली हो। और विकासकी सीढी भी अुसे तभी कहा जा सकता है। कोअी भी सीढी या भूमिका प्रयत्नशील मनुष्यको क्रम-क्रमसे आगेकी भूमिकाकी तरफ ले जानेवाली हो जानी चाहिये। हमारा विकास समझपूर्वक क्रमानुसार नही होता, अिसका अेक कारण यह है कि हम अुसके लिअे कोअी व्यवस्थित साधन नही जानते; अितना ही नही, परन्तु अैसा मालूम होता है कि अिस बातका भी हमे पता नही है कि विकासका भी कोअी निश्चित क्रम होता है और चित्तको अुत्तरोत्तर अूची मजिल पर ले जानेके लिअे कितने ही व्यवस्थित साधनोकी जरूरत होती है। अेकसे अेक बढकर और अुच्चतर भावनाओ और धारणाओके अनुशीलन और आधारसे, चिन्तनसे और तन्मयतासे मनुष्य अुच्चतर भूमिकाये प्राप्त कर सकता है। अिसके लिअे अुसे भावना, धारणा और चिन्तनके स्थूल अभ्याससे धीरे-धीरे सूक्ष्म अभ्यासमे जाना पड़ता है। अुस अभ्यासमें अेक तरहका क्रम, सुसगतता और चित्तको साध्य तक ले जा सके अैसी योजना होनी चाहिये। अिन सबकी मददसे मनुष्यका चित्त स्थूल अनुभवसे धीरे-धीरे सूक्ष्म और अुससे भी आगे चलकर गाढ अनुभवमे तन्मय हो जाता है। तब तक मार्गमें आनेवाली हरअेक भूमिका अुसे दृढ करनी पडती है। अेकसे अेक श्रेष्ठ भूमिकाकी चित्त-स्थितिका विचार करके प्रार्थना, स्तवन, भजन या भक्तिके किसी भी प्रकारमें सुसगतता और मेल बिठाकर अुसमे से विकासका अुत्तरोत्तर बढता हुआ क्रम साधना पडता है। अैसा न करते हुअे जिनमे कोअी मेल नही, कोअी क्रम नही, अैसे भाव, अर्थ, धारणा, हेतु और लक्ष्यकी दृष्टिसे सब प्रकार असम्बद्ध और विसंगत श्लोक हम प्रार्थना या स्तवनके रूपमे रोज बोलते रहे, तो भी विकासकी दृष्टिसे अुनका कोअी अुपयोग नही। प्रार्थना या स्तवन करते समय अुसके अर्थ और भावके साथ हमारा चित्त धीरे-धीरे समरस होना

चाहिये। अिसके लिअे पहले हमें अपने जीवनका साध्य निश्चित करना चाहिये। अुस साध्यको सिद्ध करनेके लिअे हमें विवेकपूर्वक यह तय करना चाहिये कि हमें कौनसी भावनाओं और धारणाओंकी साधनके तौर पर जरूरत है। ये भावनायें जिनसे जाग्रत हों, क्रमशः विकसित हों, अैसे अेकसे अेक अधिक अर्थपूर्ण और भावपूर्ण श्लोकों या स्तवनका सुसंगत चुनाव करना हमें आना चाहिये। यह चुनाव अैसा होना चाहिये कि अुसके अनुसार प्रार्थना करते करते चित्त सहज ही बढते हुअे क्रमसे अुसके अर्थ और भावके साथ समरस होकर अन्तमें गाढ अनुभवमें तल्लीन हो जाय। हर रोजके अैसे क्रमसे चित्तकी सात्विक भूमिकायें दृढ़ होती जायेंगी। चित्त हमेशा आनन्दित और प्रसन्न रहने लगेगा। काम, क्रोध और लोभके आवर्त्त अपने आप मन्द पड जायेंगे। रागद्वेषसे चित्त मुक्त होने लगेगा। फिर हम दुःखसे घबरायेंगे नहीं। सात्विक कर्मोंके लिअे हममें अुत्साह पैदा होने लगेगा। अिस प्रकार भक्तिभावनासे की गअी प्रार्थना या स्तवनके द्वारा हममें अिस प्रकारका बल आ जाता है। हमारा विकास होता है।

आज अिस विषयके निमित्तसे अिसी प्रकारके कुछ विचार बताता हूं। हमारे समूचे धार्मिक और आध्यात्मिक संस्कारोंमें अेकनिष्ठा निर्माण करनेका प्रयत्न शायद ही कहीं पाया जाता है। सब जगह अनेक देवी-देवताओंकी कल्पनाओं और अुनकी आराधनाके प्रकारोंकी संख्या बढ़ती दिखाअी देती है। अेकेश्वरी निष्ठा हमें रुचती नहीं, और पचती भी नहीं। हमारे मनका रुख देवी-देवताओंकी कल्पनायें बढाने या किसी भी तरह अुन्हें कायम रखनेकी तरफ ही दिखाअी देता है। किसी भी अच्छी कल्पना या विशेषताको देवत्व तक ले जाये बिना हमें सन्तोष नहीं होता। ब्राह्मण, माता, पिता, गुरु, पति, गाय, सर्प, तुलसी, बड, पीपल, चन्द्र, सूर्य — सभी हमारे देवता हैं। अिन सबके बारेमें देवत्वकी भावना मुश्किलसे कम होने

लगी कि अितनेमे हिन्दुस्तानको 'भारतमाता', 'हिन्द देवी' कहकर अिस स्वरूपमें अुसके नकशे बनने लगे है। दरिद्रोको 'नारायण' बनाने तक हम जा पहुचे है। सभव है अब स्त्रियो, बच्चो और हरिजनोके देवता बननेकी बारी आ जाय।

अिन सब बातो पर विचार करनेसे अैसा लगता है कि हमारे संस्कारो और परम्पराओके कारण हमारा मानस ही अिस प्रकारका बन गया है। कभी तो हम अीश्वरके बारेमे भिन्न-भिन्न कल्पनाअें करके, अुसके साथ तरह-तरहके काल्पनिक सम्बन्ध जोडकर अपनी भावतृप्ति कर लेनेका और मनको आनदित करनेका प्रयत्न करते है, तो कभी अपनी कामनाओके लिअे देवी-देवताओकी तरह तरहकी कल्पनाअे करते है। कभी अेकाध विशेषताको देवपद पर ले जाकर बैठा देते है, तो कभी कर्तव्य और करुणाकी भावनासे जब हमारा मन भर जाता है, तब जिसके लिअे हममे ये भावनाअे पैदा होती है, अुसमें देवत्वकी प्रतिष्ठापना करने लगते है। देवत्वकी भावनाके बिना केवल मनुष्यके रूपमे किसीकी सेवा करनेमे हमें रुचि नही। मनुष्यकी सेवा करनेके लिअे हमारा मन तैयार नही होता और तैयार हो तो भी अन्तमे अुसमे देवत्वकी कल्पना किये बगैर वहां टिक नही सकता। साक्षात्कारकी भाषाके बिना हम अध्यात्म या अीश्वरके विषयमें बोल नही सकते। परन्तु हमें अिन सस्कारोसे बाहर निकलना चाहिये। ये सस्कार हमारे चित्तमें कितने ही गहरे घर किये बैठे हो, तो भी यह समझकर कि सत्य ज्ञानसे अिन सबका समूल नाश करनेमे ही हमारा कल्याण है, हमें अिस मामलेमे हमेशा प्रयत्नशील रहना चाहिये।

(पत्र, २०–९–'४०)

५

मानवताकी विडम्बना और गौरव

मनुष्य-जन्मकी श्रेष्ठता

जो अपनी देहको ही सर्वस्व मानता है वह जीव और जिसे मानवता प्रिय होती है वह मनुष्य — जीव और मनुष्यके ये लक्षण तय करें तो अैसा नही लगता कि अिसमें कोअी भूल होगी। अिस परसे जब तक मनुष्य मानवताका महत्त्व न जानकर केवल अपने शरीर और प्राणोको सभालता और पालता रहता है, तब तक यह कहनेमे बाधा नही कि वह मानवता तक नही पहुचा। मानवताके लिअे जरूरी गुणोकी खातिर जो मनुष्य तन-मनसे कष्ट सहन करता है, अुसे मानवताका अुपासक मानना ठीक होगा; और मानवताकी सिद्धिके लिअे या मानवतामें खामी न रहने देनेके लिअे मौके पर जो प्राणार्पण कर देता है, अुसके लिअे कहना चाहिये कि वह मानवताकी कसौटी पर खरा अुतरा और अुसने मानवता सिद्ध कर ली। मानवतासे श्रेष्ठ सिद्धि ससारमें दूसरी कोअी नही। थोडासा विचार करें तो हमारी समझमें आ जायगा कि मानव-जीवन कितने महत्त्वका है। 'कर्तुमकर्तु' की शक्ति दुनियामें यदि कही निर्माण हो सकती हो तो वह मानव-जीवनमे ही हो सकती है। महान विद्वान और महा पराक्रमी पुरुष तथा अपने-अपने समयके अद्वितीय, अजेय और धुरन्धर योद्धा यदि कही पैदा हुअे हो, तो वे अिस मानवकुलमें ही होते आये है। बडे-बडे ज्ञानी, बडे-बडे तत्त्वदर्शी, ज्ञानविज्ञानके शोधक और बोधक, बडे-बडे तपस्वी और यशस्वी, प्रतिसृष्टिकर्ता और महर्षि, महान सत, महत, अरिहत वगैरा सबकी अुत्पत्ति मानव-जातिमे ही होती आयी है। सज्जनोकी रक्षा करके धर्मकी ग्लानि दूर करनेवाले

परमेश्वरके अवतारोका विचार करे या ससारके अुद्धारके लिअे पृथ्वी पर आनेवाले परमेश्वरके पुत्रोका विचार करे, सिद्धार्थ गौतम या वर्द्धमान महावीर जैसे धर्मसस्थापको व धर्मप्रवर्तकोका विचार करे या परमेश्वरकी आज्ञासे धर्मका प्रचार करनेवाले पैगम्बरोका विचार करे—ये सब मानवजातिके पेटसे ही जन्मे है। अुन्होने मनुष्यरूपमे ही काम करके विदा ली है। अुनके जन्मसे मानवताकी शोभा बढी है। अुनके कारण मानवताका महत्त्व बढा है। यह बात ध्यानमे रखकर हम मानव-जन्मका विचार करे, अपनी जिम्मेदारी पहचानकर अपना जीवन अुन्नत करनेका प्रयत्न करे, तो हम भी अपना जीवन सार्थक कर सकेगे। यह ध्यानमे रखकर कि विश्वकी अतर्क्य घटनासे, परमात्माकी अलौकिक कलासे हमारी अुत्पत्ति हुअी है, हम अपने जीवनकी शुद्धि और सिद्धि साधनेका निश्चय करे, तो विश्वशक्तिसे हमे सदा सहायता मिलती रहेगी। हमारा विवेक और अुसके साथ ही मानवताका आदर्श हमारे हृदयमे सतत जाग्रत रहेगा।

मानवताके मार्गमें विघ्न

यद्यपि मानवताका मार्ग सीधा है और चित्तकी शुद्धि और सद्‌गुणोकी वृद्धि ही जीवनमें प्राप्त करनेकी मुख्य वस्तुअे है, फिर भी अुन्हे प्राप्त करते समय विवेककी कमीके कारण, आदर्शकी गलत कल्पनाके कारण, प्रतिष्ठा और कीर्तिके लोभके कारण अथवा तात्कालिक सुख-लोलुपताके कारण मनुष्य अुलटे रास्ते लगकर अपनी मानवता खोता है और कभी-कभी अिसीमे वह अपना गौरव भी समझता है। अैसे समय वह भ्रातिमें फसा हुआ होता है। अिसलिअे अुसे अपनी मानवता कायम रखनेमें हमेशा सावधान और दक्ष रहना चाहिये। जिसे अपनी मानवता पर प्रेम है, वह सिर्फ अपनी ही मानवता बढानेकी कोशिश नही करता, बल्कि अिस अिच्छासे कि दुनियामें भी मानवता बढे अुस दिशामें प्रयत्नशील होता है। क्योकि यदि साथ ही जगतमे भी मानवता न बढे, तो अकेले व्यक्तिको

अपनी मानवता बढानेमें अत्यन्त परिश्रम होता है और अपयश या शरीर-नाश तक सहन करनेकी नौबत आ जाती है।

सुकरात, ओीसामसीह, गुरु तेगबहादुर और दूसरे अनेक सन्त जनोंके, जिन्हें सत्य और मानवताकी खातिर अत्यन्त कष्ट सहन करना पडा, समयमें अगर अुनके जैसी अुत्कट मानवता हजारो लोगोंमें होती, तो अपनी मानवता कायम रखनेके लिये अुन्हें प्राण गवानेकी नौबत न आती या अुनमें से किसीको भी और कोओी असह्य कष्ट सहन न करने पडते। बहुतसे मनुष्य सत्य और प्रामाणिकतासे रहते हों, तो साधारण मनुष्य भी सत्य और प्रामाणिकतासे रह सकता है। परन्तु समाजमें असत्य और दूसरे दुर्गुण सर्वत्र फैले हुअे हों, तो अैसी हालतमें किसी अेकाध व्यक्तिको भी अपना जीवन सन्मार्ग पर रखना बहुत ही मुश्किल होता है। सार्वत्रिक असत्याचरणके परिणामस्वरूप मनुष्योंका परस्पर प्रेम, विश्वास और आदर नष्ट होता है। जीवन-यापनके लिअे हरअेकको दूसरोंसे अधिक कपटी और असत्याचरणी बनना पडता है। अिस तरह समाजमें केवल दुर्गुणकी ही वृद्धि होती है। अैसी स्थितिमें सब मिलकर मानवताकी विडम्बना करते हैं और किसीको भी अच्छे रास्ते पर चलना मुश्किल हो जाता है। विवेकी मनुष्य अिस स्थिति और अुसके कारणोंको जानता है और अुसमें से भी धीरज और निष्ठासे मार्ग निकाल लेता है। मनुष्य मनुष्यके बीचके सम्बन्ध निर्मल हों और अुनमें स्वाभाविकता आये, अिसके लिअे वह खुद सद्गुणका आचरण करता है। वह जानता है कि सद्गुणके आचरणसे ही सद्गुणके लिअे पोषक वातावरण पैदा होता है। किसीके अुपकारका हम बदला न दे सकते हों तो भी अुसके लिअे हमारा केवल कृतज्ञ-भाव भी अुसके, हमारे और सबके मनमें अुदारता और दूसरे सद्भावोंकी वृद्धि करता है, परस्पर विश्वास बढाता है और मानव-जातिके प्रति विश्वासमें वृद्धि करता है। परन्तु किसीकी कृतघ्नता देखकर न केवल अुसके प्रति ही हमारा विश्वास नष्ट

होता है, बल्कि सारी मानव-जातिके प्रति विश्वास कम हो जाता है। हमारे सहज होनेवाले अच्छे-बुरे बरतावसे हम अनजानमें जगतके सद्गुण या दुर्गुणमे कैसी वृद्धि करते है, अिसे विवेकी मनुष्य समझता है। अिसलिअे वह जीवनमे सत्य, प्रामाणिकता और कृतज्ञता वगैरा सद्गुणोको महत्त्व देता है। अिससे अुलटे, असत्य, कपट, धोखेबाजी, दगा, कृतघ्नता वगैरासे अपना काम सफल हुआ देखकर जिनको सन्तोष होता हो, अुन्हे अिस बातका विचार करना चाहिये कि अैसे बरतावसे हम अपने चित्तमे और दुनियामें किस चीजकी वृद्धि करते है। अिस प्रकार प्राप्त हुअी वस्तु भौतिक दृष्टिसे कितनी ही कीमती लगती हो तो भी वह अशाश्वत है और हमने अपनी और समाजकी मानवताका नाश करके अुसे प्राप्त किया है, अुस चीजके हमारे हाथसे निकलनेमे देर नही लगेगी। परन्तु अुसे प्राप्त करनेके लिअे हमारे हृदयमें और समाजमे अुत्पन्न किये और बढाये हुअे दुर्गुणोका नाश हम नही कर सकेगे। हमें यह भी विचार करना चाहिये कि अिस प्रकारके आचरणसे हमारी कौनसी शक्ति बढती है? अिससे हम अपनेको और समाजको कहा ले जाते है? अिसमें हमारी सबलता है या निर्बलता? हम सब अिसी मार्ग पर चलते रहेगे, और अपनी कार्यसिद्धिके लिअे दूसरोके साथ दुर्गुणी बननेकी होडमे लगेगे, तो अन्तमे अुसका परिणाम क्या होगा? औरोकी बात छोड दें, तो भी हम अपनी सततिको, अपने लडकोको अपने अिस वर्तनसे कैसी परिस्थितिमे डाल देते है? अिस दुनियामे अुनके लिअे हम किस प्रकारका क्षेत्र तैयार करके रखते है? अिस तरह अपनी ओरसे होनेवाले कर्मोके वर्तमान और भावी परिणामोका मनुष्य सूक्ष्मता और दीर्घदृष्टिसे विचार करे, तो अपने व्यवहारके परिणामोका भीषण चित्र अुसकी नजरके सामने खडा रहेगा। मानवताकी अपनी तरफसे होनेवाली विडम्बना अुसके ध्यानमें आ जायगी। गलत मार्गसे बाहर निकलनेका वह प्रयत्न करेगा। अुसके मनमें सदाचारके प्रति

श्रद्धा पैदा होगी। और वह निश्चयी होगा तो अपने और दूसरोंके कल्याणके लिअे अपनेमें पैदा हुअी श्रद्धा पर अटल रहकर सदाके लिअे सदाचारी बन जायगा।

मानवताकी विडम्बना करनेवाले

स्वार्थ, दम्भ, कपट, असत्य, असयम, अविवेक, दुष्टता, क्रूरता, सात्विकतारहित अिन्द्रियजन्य भोग और अुनके कारण मानव-जातिकी तरफसे होनेवाले अनर्थ — अिन सबके कारण मानवताकी विडम्बना होती आअी है। धन, मान, कीर्ति और प्रतिष्ठाके पीछे पडे हुअे, विलासमें डूबे हुअे, व्यसनोंमें फसे हुअे, जवानीके नशेमें भरे हुअे, सत्ताके मदमें चूर, स्त्री-पुत्रके मोहके कारण कर्तव्यको भूले हुअे — ये सब लोग मानवताकी विडम्बना करते हैं, अैसा कहना पड़ता है। माता-पिताके प्रति अपना कर्तव्य न जाननेवाले, कलाके नाम पर वासनाकी वृद्धि करनेवाले, धर्मके नाम पर स्वार्थ साधनेवाले, सामूहिक धर्म न जाननेवाले मानवताकी विडम्बना ही करते हैं। अीश्वर-भक्ति करते-करते अपनेको ही अीश्वर माननेवाले, लोगोंमें अिस प्रकारकी भ्राति फैलानेवाले, अपनेको ही भगवान कहलवाकर लोगोंसे अपनी पूजा करानेवाले — अिन सबको मानवताकी विडम्बना करनेवाले कहनेमें हर्ज नहीं। हम मानव माता-पिताके पेटसे जन्मे हैं। अिसलिअे शरीर, बुद्धि और मनकी तमाम शक्तियोंका विकास करके, अुनकी शुद्धि करके, हमें मानवताकी पूर्णता प्राप्त करनी है। अिसका भान न रहनेसे शक्तिके जोरसे कोअी दानव बनता है, तो कोअी मोह और भ्रातिमें फसकर भगवान बननेका गर्व करता है। मनुष्यको न दानव बनना है और न अीश्वर। परन्तु मानवत्वमें व्यवहार करते हुअे सद्गुणों द्वारा चैतन्यको प्रगट करते करते अुसे मानवताकी सीमा तक पहुचना है। अुसे मानवताकी शाति, सुख और प्रसन्नता प्राप्त करनी है। अिसीमें अुसका विकास है। अिसीमें अुसकी पूर्णता है। और जिससे यह सिद्धि मिले वही अुसका धर्म है।

मानवताका गौरव

ये सब बाते स्पष्ट है। फिर भी मनुष्य भ्रातिसे तरह-तरहके मोहमे फसता है, अिसलिअे अपना आदर्श अुसकी समझमे नही आता, ध्येय अुसके ध्यानमे नही आता। मानवताका गौरव और मानवताकी विडम्बना, अिन दोके वीचका भेद वह समझ नही पाता। मनुष्यकी दुर्दम्य अिच्छायें कभी राक्षस बनकर, तो कभी देवत्वके मोहमे फसकर बाहर आती है। अिन दोनो मार्गोको टालकर मानवताका सीधा रास्ता पकडनेके लिअे शुद्ध विवेककी जरूरत है। यह विवेक न हो तो मनुष्य विलासको ही विकास समझ लेता है, भ्रातिको ज्ञान, दुर्वलताको सज्जनता, डरपोकपनको क्षमा, और मनमे आसक्ति होने पर भी जवरदस्ती किये गये त्याग और सयमको वैराग्य समझता है। भावना और योजना, अुदासीनता और शान्ति, जड़ता और स्थिरता, मोह और प्रेम, आसक्तिजन्य कर्म और कर्तव्यके वीचका भेद अुसकी समझमे नही आता। परन्तु मोह और भ्रातिको टालकर, अज्ञानको दूर कर, और विवेकको शुद्ध और सूक्ष्म बनाकर यह जानना चाहिये कि जीवनके अन्त तक हमे क्या प्राप्त करना है और अुसे प्रयत्नपूर्वक प्राप्त करना चाहिये। हम दुर्वलता और क्षुद्र कामनाके कारण देवताको ढूढते फिरते है, अिसलिअे हमें देवत्व श्रेष्ठ लगता है। विकट अवसर पर भी जो अपना शील रखकर मानवतासे जीवन विताता है, अुसके लिअे हमें कोअी विशेषता, आदर या पूज्य भाव महसूस नही होता, परन्तु अेकाध साधारण भावुकको भी हम देखते देखते अीश्वर-पद पर विठा देते है। अीश्वर-भक्तिसे, धार्मिक आचरणसे मनुष्यमे नम्रता, निरहकारीपन, कृतज्ञता वगैरा गुण आते है, फिर भी भक्तिके मार्ग पर लगा हुआ साधक थोडे ही दिनोमे अपना मनुष्यत्व भूलकर देवत्वमें सन्तोष मानने लगता है। अिससे यह दिखाअी देता है कि मान-प्रतिष्ठाका शौक मनुष्यको मानवतासे गिरा देनेमें किस तरह कारण बनता है। अिस प्रकारकी आकाक्षा

और अिच्छामें मानवताकी विडम्बना है। जिन-जिन आशाओं, तृष्णाओं और कामनाओंके कारण मनुष्य अपनी मानवताको भूल जाता है, वे तमाम मनुष्यकी हानि करनेवाली हैं, यह जानकर मनुष्यको सावधानी और संयमसे, धीरज और पुरुषार्थसे, विवेक और निरहंकारीपनसे अपनी मानवताका मार्ग स्पष्ट और सरल बनाना चाहिये। धर्म, कर्म, आनन्द, लाभ, अिच्छा, कामना, भावना, प्रतिष्ठा वगैरा सब प्रसंगोंमें अुसे अपनी मानवताका स्मरण रखकर चलना चाहिये। मानव-कर्तव्य और मानव-धर्मका अुसे सदा ही स्मरण रखना चाहिये। विश्वशक्तिसे, अीश्वरीय शक्तिसे प्रकट होकर अपने तक आ पहुंचे हुये अिस मानवताके दानको हमें अधिक शुद्ध और मानव-सद्‌गुणोंसे अधिक समृद्ध करके भावी सन्तानोंके कल्याणके लिअे मानव-जातिको समर्पित करना चाहिये। अिसीमें मानवता और मानव-जातिका गौरव है। यही सब धर्मोंका सार है। अिसीमें भक्ति और तत्त्वज्ञानकी परिसीमा है।

६

भक्तिशोधन — १

अीश्वरकी आराधना, भक्ति आदिकी कल्पनायें

मानवी दुर्बलता और कल्पना-शक्तिसे अीश्वर-सम्बन्धी कल्पना निर्माण हुअी, तबसे अुसके सहारे मनुष्य अपने दुःख, अज्ञान, कठिनाअियों, आपत्तियों और संकटोंका निवारण करने और धीरज तथा आश्वासन प्राप्त करनेकी कोशिश करता आया है। मानव प्रकृतिमें जैसे-जैसे सज्जनताकी वृद्धि होने लगी, वैसे-वैसे मनुष्यको लगने लगा कि अीश्वर सौजन्यकी मूर्ति और प्रेम, वात्सल्य, दया आदि गुणोंका सागर है और वह अुसके साथ गहरा सम्बन्ध बांधने लगा। अीश्वरके बारेमें भयानकता या अुग्रताकी कल्पना हो, तो मानव-मनमें अुसके लिअे प्रेम और भक्ति अुत्पन्न नहीं हो सकती। अुस अर्सेमें अुसकी आराधनाकी विधि जारी रहती है। आगे चलकर अुसीमें से तपकी कल्पनाअें पैदा होती हैं। अीश्वर-सम्बन्धी सौम्य कल्पनामें से ही आगे चलकर भक्ति, अुपासना आदि शुरू हुअे होंगे। अवतारवादके कारण अीश्वर दुष्ट-संहारक और दीनवत्सल दिखाअी देने लगा। अिस परसे अुसकी भक्तिके अनेक प्रकार निर्माण हुअे। तपकी तरह भक्तिमें भी सकाम भक्ति और अीश्वरके साथ तद्रूप होकर जन्म-मरणसे मुक्ति दिलानेवाली भक्ति — अैसे भेद पैदा हुअे। सकाम भक्तिमें से ही अनेक देवताओंकी अुत्पत्ति हुअी। अीश्वरको सगुण, साकार मानने लगनेके बाद अुसके दर्शनकी अिच्छा, अुत्कंठा, व्याकुलता वगैरा मनुष्यके मनमें पैदा होने लगी और अिन सबका मोक्षके साथ सम्बन्ध जोड़ा गया। अीश्वरका ज्ञान, दर्शन, साक्षात्कार, तद्रूपता, अुसके साथ समरस होना, अुसके साथ मिल

जाना आदि कल्पनाओंके कारण अीश्वरका सतत ध्यान, चिन्तन और अनुसंधान रहनेके लिअे अुसकी मूर्तिका सारे अुपचारोंके साथ पूजन, अर्चन, भजन, कीर्तन वगैरा अुपायोका भक्तजन आश्रय लेने लगा। अवतारकी कल्पनाके कारण अीश्वर और अुसकी लीलाके वर्णनोंसे भरे हुअे ग्रंथ निर्माण होने लगे। अुससे भावुकता बढने लगी। अुसके दर्शनकी आतुरताके कारण पैदा होनेवाली संसारके प्रति अुदासीनतासे वैराग्यकी अुत्पत्ति हुअी। वैराग्यके कारण प्रेमी भावुकोंके मनमें तपके संस्कार जाग्रत हुअे। अुनका परिणाम जानबूझकर अपनेको कष्ट-मय स्थितिमें डालनेमें आने लगा। अीश्वरके प्रेमस्वरूप होने पर भी अुसके दर्शनके लिअे खास कष्ट सहन किये विना वह प्रसन्न नही होता, अैसी विसंगत विचारसरणी पैदा हुअी। श्रवण, मनन, निदिध्यास और साक्षात्कार — यह अिस मार्गकी सिद्धिका क्रम माना गया और निदिध्यासके अनेक अुपाय निकले। नाम-स्मरण, ध्यान आदि साधनो द्वारा किसी किसीको साक्षात्कार होने जैसा महसूस होने लगा। जिन्हें अितनेसे यश नही मिला, अुनमें से कुछ लोगोंने श्रीकृष्णके दर्शनका सतत निदिध्यास रहनेके लिअे खुद राधा बननेका प्रयत्न शुरू किया। राधाकी प्रेमभावना अपनेमें लानेके लिअे वे हावभाव, पोशाक और भाषा वगैरा सभीमें राधाका अनुकरण करने लगे। अिसमें से अुस प्रकारके पंथ निकलने लगे।

परीक्षा

भक्तिकी अिस प्रकारकी कल्पनाओंके कारण हमारा किसी हद तक अेकांगी विकास जरूर हुआ, परन्तु अिससे दर्शन-साक्षात्कारकी मानवी पूर्णता साधनेके लिअे जो मार्ग अपनानेकी जरूरत थी वह हमें नही सूझा। शायद अुसके सूझने जैसी हमारी परिस्थिति अुस समय नही होगी। हमने मानवताके सर्वांगी विकासको अपने जीवनका ध्येय समझा होता, तो किसी भी अुपायसे अीश्वरका निदिध्यास रखकर तत्सम्बन्धी कल्पनामें लीन होनेमें हमें कृतार्थता महसूस न होती। श्रीकृष्णके

दर्शनके लिअे विवेकहीन साधनोके पीछे हम न पड़ते। निदिध्याससे अीश्वर-साक्षात्कार जैसा मालूम होनेके वाद भी हमने अुस अनुभवकी विवेकसे जाच की होती, तो हमें दिखाअी देता कि वह साक्षात्कार अीश्वरका नही, परन्तु निदिध्यास और अनुसंधान द्वारा अीश्वर-सम्वन्धी जो कल्पना हम अपने चित्त पर जमा रहे थे अुस कल्पनाका आभास है। अुस कल्पनाको रग, रूप, भव्यता, अद्‌भुतता वगैरा सव कुछ हमीने दिया है। अुसके जनक हम हैं, यह सत्य विचार करने पर हमारे ध्यानमें आ गया होता। अिस तरहका आभास अेकाध वार या वार-वार हो तो भी अुससे मानवताकी पूर्णता नही हो सकती, यह बात समय पर हमारे ध्यानमे न आनेके कारण और जीवन-सम्वन्धी अेकागी विचारोके कारण विवेकहीन और पुरुषार्थहीन कल्पनामें हम सच्ची भक्तिसे वहुत ही दूर वह गये।

भक्ति और अुपासनाके सच्चे लक्षण

जीवनमें हमे अीश्वर-विषयक श्रद्धा, भक्ति और निष्ठाकी वहुत जरूरत है। लेकिन अिन सवमे जितनी हद तक विवेक, पुरुषार्थ और व्यापकता होगी, अुतनी ही हद तक ये भावनाये हमे कृतार्थ कर सकेगी। अीश्वर-सम्वन्धी प्रेमसे हमारे चित्तमें केवल असात्विक भाव जाग्रत हो या अुन भावोके अतिरेकसे हम तद्रूपता या मूर्छा आ जाय, तो अिससे भक्तिकी परिसीमा नही हो सकती। सोचने पर ये सव लक्षण कदाचित् हमारी दुर्बलताके लक्षण भी ठहराये जा सकते हैं। तद्रूपतासे हम परमेश्वरके साथ समरस होते है और अुसके कारण हमारा अुसमें समर्पण होकर हमें मोक्षकी प्राप्ति होती है, अिस मान्यता और श्रद्धाके कारण यह अवस्था बहुत श्रेष्ठ मानी गअी है। परन्तु अैसा लगता है कि अिसमें वहुत वडा विचारदोष है। विश्वमे भरी हुअी अपार शक्तिसे निर्माण हुअे, 'मै' रूपमें माने गये शरीर, बुद्धि और मन-सहित चैतन्य द्वारा मानव कर्तव्योको पूरा करते रहनेमे भक्तिकी

परिसीमा है। यद्यपि विश्वशक्तिकी तुलनामें हम अणुके समान हैं, तो भी यह अणु अुसीका अंग होनेके कारण परमात्मामें जिन सात्विक गुणोंकी हम कल्पना करते हैं वे सब अंशरूपमें हममें हैं ही। अिन गुणोंका अुत्कर्ष और अुनकी पूर्णता साधनेकी कोशिश करना भक्तिका सच्चा लक्षण है। हम कहते हैं कि परमात्मामें दया, न्याय, वात्सल्य, अुदारता, प्रेम, क्षमा वगैरा गुण हैं। हम यह अपेक्षा रखते हैं कि संसारमें सर्वत्र फैली हुअी मानव-जातिमें भी ये सद्गुण हों। तो क्या अिन्हीं सद्गुणोंको अपनेमें लाना, अुनका अुत्कर्ष करना और अिस प्रयत्नमें ही विश्वशक्तिके सात्विक तत्त्वोंके साथ समरसता सिद्ध करना सच्ची तद्रूपता नहीं है? हममें अनेक शक्तियां और गुण सुप्त रूपमें निवास करते हैं, अुनमें से जो भी शक्ति या गुण जाग्रत करने और बढानेका हम प्रयत्न करेंगे, वे सब हमारे द्वारा प्रगट होते रहेंगे। यह अीश्वरीय नियम है। यह सृष्टिका धर्म है। हारमोनियम या ततुवाद्यकी जिस पट्टीको दबाते हैं, अुसीके अनुरूप स्वर अुसमें से निकलने लगते हैं। अिसी नियमके अनुसार मानवरूपमें व्यापार करनेवाली विश्वशक्तिके — परमात्माके — अंशमें से हमारे संकल्पके अनुसार परमेश्वरीय शक्ति और गुणोंका सतत प्रगटीकरण होता रहता है। अिसीमें सच्ची मानवता, समर्पण और समरसता है। विश्वशक्तिका कारबार अनेक प्रकारसे और अखंड रूपमें जारी है। अुस कारबारमें से हमारे हिस्सेमें आया हुआ कार्य हम भी अखंड रूपमें करते रहें, यही परमेश्वरकी सच्ची अुपासना है।

भक्तिकी गलत मान्यताने तपकी प्रवृत्ति

अीश्वर-सम्बन्धी अपनी ही कल्पनाके साथ तद्रूपता कर लेनेसे, चित्तको कुछ समय तक निर्व्यापार कर लेनेसे या भक्तिके काल्पनिक आनन्दमें मग्न या बेहोश हो जानेसे मानवताकी पूर्णता नहीं हो सकती। ये अपनी ही कल्पनामें रमे रहने या तन्मय होनेके आनन्द और समाधानके प्रकार हैं। अिसके लिये हमने जिस मात्रामें अपनेमें व्याकुलता निर्माण की होगी,

जिस मात्रामे अपना जीवन जानबूझकर कष्टमय बनाया होगा, अुसी मात्रामें अुसकी प्रतिक्रियाके रूपमे हममे आनन्द, प्रसन्नता या शान्ति प्रतीत होने लगती है, और अिसमें शक नही कि बार-बार आनदमय कल्पना करके वही स्थिति टिकाये रखनेकी कोशिश करनेसे वह कुछ समय तक रह सकती है। परन्तु अिस स्थितिकी जाच करने पर, अुसका कार्यकारणभाव जाचने पर, यह मालूम हो जायगा कि यह "ीश्वर-प्राप्तिका आनद" केवल हमारी निर्माण की हुअी अपनी कष्टमय स्थितिका और अपनी कल्पनाका परिणाममात्र है। जन्म-मरणके भयके कारण भावनाशील मनुष्यके मनमे वैराग्य और भक्तिप्रधान ग्रथोके पढनेसे अीश्वर-प्राप्तिकी व्याकुलता पैदा होती है। अुसमें अीश्वर-सम्बन्धी ज्ञान और प्रेमका भाग बहुत ही थोडा होता है और भय तथा कल्पनाका भाग ही ज्यादा होता है। अीश्वर-विषयक प्रेमके आनन्दके कारण ससारकी सुख-सुविधाओकी जरूरत मनुष्यको महसूस न होती हो, अुन सुख-सुविधाओके बिना मनुष्य आनद, अुल्लास और अुत्साहमे पुरुषार्थी जीवन व्यतीत कर सकता हो, तो अिसमें शक नही कि अीश्वर-सम्बन्धी प्रेम और आनन्द जीवनमें अत्यन्त आवश्यक साबित होगे। परन्तु जिन मनुष्योमे अीश्वर-सम्बन्धी प्रेम और वैराग्यका सचार हुआ है, वे जब जरूरी सुख-सुविधाओका आग्रहपूर्वक, जबरन् त्याग करके भक्ति, विह्वलता वगैरा बढानेकी कोशिश करते है, तब अुनमे भक्ति और प्रेमके अुत्कर्षके कारण जो सहज शान्ति और प्रसन्नता आनी चाहिये वह नही आती। अुनके बजाय आवश्यक कर्मों और कर्तव्योका त्याग करके जानबूझकर अेकागी और अैकान्तिक बनाये गये कष्टमय जीवनकी असह्यता ही अुन्हे अुत्तरोत्तर अधिक महसूस होने लगती है। अिस असह्यताके कारण होनेवाली व्याकुलता अीश्वर-सम्बन्धी प्रेमके कारण ही पैदा हुअी है, अैसा भ्रामक खयाल अुनमें पैदा हो जाता है। भक्तिकी गलत समझके कारण आग्रहपूर्वक त्याग और तपका मार्ग स्वीकार

करनेसे अपनी दिशाभूल और मानसिक स्थितिके कार्यकारणभाव अुनके ध्यानमें नहीं आते। अैसी स्थितिमें या तो अीश्वर-साक्षात्कारका भ्रम या आभास हुअे बिना अथवा अुस बारेमें दंभ शुरू किये बिना खुदके बनाये हुअे कष्टमय जीवनसे अुनका छुटकारा नहीं होता। अिस प्रकारके ज्यादातर भक्तोंका पूर्वजीवन त्यागमय तो बादका जीवन विलास और वैभव-संपन्न और आरामवाला देखनेमें आता है। अीश्वरीय प्रेम और निष्ठा जिनके हृदयमें हो, अुनमें औरोंकी अपेक्षा अधिक शान्ति, प्रसन्नता, अुत्साह वगैरा सहज होने चाहिये। सादे जीवनसे ही अुन्हें सन्तोष होना चाहिये। अपनी हरअेक शक्ति और विशेषताका अुपयोग निरहंकार वृत्तिसे, अीश्वरार्पण बुद्धिसे करते रहनेमें अुन्हें स्वाभाविक ही कृतकृत्यता महसूस होनी चाहिये। प्रेम या निष्ठाके लिअे अपना जीवन जानबूझकर कष्टमय बनानेका अुनके लिअे कोअी कारण नहीं।

साक्षात्कार आदि कल्पनाओंमें विचारदोष

अीश्वर-साक्षात्कार, आत्मसाक्षात्कार, ब्रह्मसाक्षात्कार या दर्शन, अीश्वरीय दिव्य प्रेम, परमेश्वरीय आनंद, अीश्वर-ज्ञान, आत्मज्ञान, ब्रह्मज्ञान आदिमें से किसी भी अनुभवकी प्राप्ति गुरुकृपासे, तपसे या भक्तिसे साधकको बिजलीकी चमककी तरह अेकदम हो जाती है, मायाका पड़दा अेकाअेक अुठ जाता है— अिस प्रकारकी मान्यता और श्रद्धा हममें चली आयी है। परन्तु अिसमें सत्यका थोड़ा भी अंश न होकर भ्रमका ही बड़ा हिस्सा है, अैसा अिस विषयके अनुभवकी जांच करनेसे पता चलता है। अीश्वर, आत्मा या ब्रह्म आदि तत्त्व अैसे स्थूल नहीं है या हमसे भिन्न नहीं हैं कि अुनका साक्षात्कार या दर्शन हो सके। अिसलिअे हमको अपना ही ज्ञान होता है, दर्शन होता है, या हमको अपना ही साक्षात्कार होता है या 'मैं कौन हूं' यह हम जान सकते है, अैसा

मानना अेक प्रकारका भ्रम है; और हमे दर्शन या साक्षात्कार हो गया है, अैसा मानना महाभ्रम है। ये सब हमारे चित्तकी ही वृत्ति-निवृत्तिके प्रकार हैं। चित्तके अभ्याससे और अुसमे होनेवाले अनुभवके निरीक्षणसे विवेकी मनुष्य अिन सब प्रकारोको पहचान सकता है और मानवी पूर्णताकी दृष्टिसे अुनकी अुपयुक्तता या अनुपयुक्तताको जान सकता है।

समरसताका जीवनकी दृष्टिसे विचार

अीश्वर, आत्मा, ब्रह्मकी कल्पनाके साथ चित्तकी तादात्म्यता साधनेसे या अन्तमे चित्तको निर्व्यापार करनेसे अिन तत्त्वोकी प्राप्ति होती है, अुनका ज्ञान होता है या अुनके साथ समरसता सिद्ध होती है, अिस खयालमे विचारदोष मालूम होता है। जिन-जिन तत्त्वोंके साथ हम तादात्म्य या समरसता साधनेकी कोशिश करते हैं, अुन तत्त्वोमे माने गये गुण हममें आते हो, तो ही यह कहा जा सकता है कि तादात्म्य या समरसता सिद्ध करनेका हमारा प्रयत्न अुचित है। अीश्वरके साथ समरसता सिद्ध करनेके बाद भी हममें पुरुषार्थ और समरसता न आये, दया, न्याय, अुदारता, प्रेम, क्षमा, वात्सल्य आदि सद्‌गुण हममे पूरी तरह न आये; अखड सत्कर्मपरायणता हममें व्याप्त न हो जाय, तो मानवी पूर्णताकी दृष्टिसे अुस तादात्म्य और समरसताकी कोअी कीमत नही मानी जा सकती। भापकी जडशक्तिकी मारफत, बडी नदियोसे निकाली गअी नहरो द्वारा या किसी जल-सचय द्वारा भी योजनाकी सहायतासे प्रचण्ड कार्य कराये जा सकते है, तो चैतन्यके अपार सागर जैसे परमात्माके साथ — ब्रह्मके साथ — हमारे अेकरूप या समरस हो जाने पर हमारे द्वारा भी अुस महाचैतन्यके अनुरूप, अुसे शोभा देनेवाले, कार्य होते रहे, यही सब दृष्टियोसे सुसगत और अुचित प्रतीत होता है।

श्रद्धा, भक्ति, निष्ठा — अिन श्रेष्ठ और पवित्र भावनाओंमें असाधारण सामर्थ्य है। जिस मात्रामें हममें संयम, पुरुषार्थ, सद्भावना और सद्गुण होंगे, अुसी मात्रामें वह सामर्थ्य प्रगट होगा। सारांश यह है कि जिस मात्रामें हममें धर्म होगा, जिस मात्रामें हमारा जीवन धर्ममार्ग पर चलता होगा, अुसी मात्रामें हमारी भावनाओंके प्रभावका अनुभव हमें होगा। धर्ममें सामर्थ्य लानेका काम श्रद्धाका है, धर्मको गति देनेका काम भक्तिका है और धर्ममें तेज लानेका सामर्थ्य निष्ठामें है। यह ध्यानमें रखकर हमें श्रद्धा, भक्ति और निष्ठाको अपने जीवनमें अुचित महत्त्व देना चाहिये।

७

भक्तिशोधन — २

त्याग और वैराग्यका भेद

हमारे लोगोंमें भक्ति और आराधनाकी अलग-अलग कल्पनायें और पद्धतियां प्रचलित हैं। वे सब किस तरह और कब निर्माण हुआी होंगी, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। फिर भी अुन कल्पनाओंके समाज या लोकमानसमें पैदा होनेके साधारणतः क्या कारण होंगे, अिस बारेमें कुछ अन्दाज लगाया जा सकता है। मनुष्यके छोटे-बड़े समूहमें रहने लगनेके बाद अुसके चित्तमें आराधनाका भाव पैदा हुआ होगा। अुस समय आराधनाका स्वरूप बहुत अंशमें सामूहिक रहा होगा, और अुसमें सामूहिक हितका — कमसे कम अपने दलके हितका तो — हेतु होगा ही। अुसके बाद व्यक्तिगत दुःख-शमनके लिअे भी आराधनाके प्रकार शुरू हुये होंगे। आराधनामें वैराग्यका भाव नहीं, परन्तु दुःख-शमन और सुख-प्राप्तिका हेतु होता है। पुनर्जन्मकी कल्पनाके बाद तपकी और तपसे त्याग और

वैराग्यकी कल्पना पैदा हुअी होगी। तपमे भी आगे चलकर अैहिक और पारलौकिक जैसे भेद दिखाअी देते है। मोक्षकी कल्पनाके वाद अुसीमे से पारमार्थिक हेतुवाले तपका विचार अुत्पन्न हुआ। त्याग और वैराग्यकी कल्पनाका निरीक्षण करने पर मालूम हो जायगा कि मनमें रही कामना अिस जन्ममे या अगले जन्ममे पूरी होनेकी अिच्छा और आशासे किये जानेवाले सयम और कड़े व्रतमे वैराग्य नही होता, परन्तु अुतने समयके लिअे त्यागकी भावना होती है। और अिस या अगले जन्मके लिअे भी वाहरी सुखोपभोगकी अिच्छा न करके अुसका स्थायी त्याग करनेमे वैराग्यकी भावना होती है। अिस परसे त्यागमे वहुत हुआ तो पारलौकिक और वैराग्यमे केवल पारमार्थिक हेतु होता है। मोक्षके हेतुसे कर्मक्षयकी विचारसरणी पैदा होनेके वाद ही वैराग्यकी भावनासे सयमका आग्रह मानव-मनमे पैदा हुआ होगा।

भक्तिकी कल्पनाका साधारण अितिहास

मानव-मनमे पहले देवताओकी कल्पना आनेके वाद अुसीमे से आराधनाकी और अुसके वाद तपकी कल्पना निकली हो, तो भी वहुजनसमाज देवताओकी आराधनामे ही लम्वे समय तक लगा रहा होगा। तिथि या पर्वके निमित्तसे अेकाध व्रत करनेके सिवाय साधारण लोगोके आचरणमे तपका सस्कार नही पाया जाता। मोक्षकी कल्पनाके वाद तपको पारमार्थिक दृष्टिसे महत्त्व मिला। कर्मक्षयके सिद्धान्तके कारण मोक्षके लिअे सन्यास जरूरी ठहरा। कर्मक्षयके लिअे ही चित्तलयके अुपायकी खोज हुअी। मोक्षमार्गी व्यक्तियोने ही अुसकी वृद्धि की। दर्शनोके अुपयोगमें जीव और जगतका सम्वन्ध अधिकाधिक शुद्ध और सरल बनानेकी नही, बल्कि मोक्षप्राप्ति करनेकी वृत्ति दिखाअी देती है। अवतारवादकी कल्पनाके वाद पौराणिक देवताओकी आराधना शुरू हुअी। आराधनाकी तहमे हमेशा सकाम हेतु ही होता है।

आराधना और तपकी मिश्रित कल्पनाओंसे भक्तिकी भावनायें निकली हुयी मालूम होती हैं। भक्तिमें सकाम और निष्कामके मुख्य दो भेद माने जाते हैं। ऐहिक सुखके लिये भक्ति करनेवाले सकाम और मोक्षके लिये भक्ति करनेवाले निष्काम भक्त कहलाते हैं। परन्तु सकाम भक्तिको आराधना कहें, तो भक्तिमें अिस तरहके दो भेद माननेका कारण नहीं रह जाता। तत्त्वज्ञान और अवतारवाद, दोनोंका मेल बिठानेके प्रयत्नमें से सगुण-निर्गुण, साकार-निराकार वगैरा औश्वर-सम्बन्धी कल्पनायें निकली हैं। अुनका मेल बिठानेके सतत प्रयत्नकी सिद्धिके परिणामस्वरूप परमेश्वरको निर्गुणसे सगुण और सगुणसे निर्गुण, निराकारसे साकार और साकारसे निराकार —अिस प्रकार अपनी सुविधाके अनुसार और प्रसंगोपात्त भावना और आवश्यकताके मुताबिक चाहे जैसा बना देना हमारे तत्त्वज्ञानमें साधारण खेल-सा हो गया है। प्रचलित देवताओंकी आराधनाके द्वारा कामनासिद्धि न होनेके कारण लोकमानसमें नये-नये देवताओंकी कल्पना पैदा होती रही है। हरअेक देवताकी अुत्पत्तिकी कथा अैसी ही मिलती है कि भक्तके संकटके समय अवतार लेकर अुसने अुसका संकट-निवारण किया, आज भी अेक खास निश्चित पद्धतिके अनुसार अुसकी आराधना की जाय, तो आराधकको वह संकटसे छुटाकर सुख और वैभवसे संपन्न कर देगा, अैसी अिस बारेमें लोक-श्रद्धा है। देवताओंकी आराधनाके लिये मूर्तिपूजाकी प्रथा पड़ी। वैदिक कालमें देवताओंकी आराधना थी। परन्तु यह कहीं भी नहीं जान पड़ता कि अुस जमानेमें मूर्तिपूजाका रिवाज था। अिस बारेमें शंका है कि अेकेश्वर-अुपासना या भक्तिकी रूढ़ि हमारे लोगोंमें किसी भी जमानेमें थी या नहीं। औश्वरको सगुण माने बिना भावभक्तिको आधार नहीं मिलता, और अुसे सगुण और साकार माने बिना मूर्तिपूजाको आधार नहीं मिल सकता। कामना, देवता और अवतारवादके कारण हमारे समाजमें मूर्तियों और अुनकी पूजाके प्रकारोंकी बेहद वृद्धि हो गयी है।

अुसके कारण लोकमानस भी वैसा ही बन गया है। त्याग कही-कही दिखाअी देता हो, तो भी अुसमे वैराग्य नही दिखाअी देता। अीश्वर-प्रेम और अीश्वर-निष्ठाके कारण समाज अुन्नत होता है, अुसमे सद्‌गुण रहते और वृद्धि पाते है। परन्तु केवल आराधनाके पीछे पडा हुआ समाज कामनिक और दुर्वल रहता है।

सकाम और निष्काम भक्तिका परिणाम

हमारी हमेशाकी अुचित जरूरते पूरी करनेके लिअे आवश्यक पुरुषार्थका, सुविधाओका और साथ ही अुनके लिअे जरूरी विद्या, कला और ज्ञानका अभाव, समाजमें परस्पर सहायता देकर अेक-दूसरेका दुख कम करनेके लिअे जरूरी सहयोगवृत्तिका अभाव, आत्मीयताकी विशाल भावनाका और तदनुरूप आचरणका यानी कुल मिलाकर सामूहिक भावनाका अभाव — अैसी कअी वैयक्तिक और सामाजिक प्रतिकूल परिस्थितियोके कारण देवताओकी आराधनाके सिवाय दुख या सकटके समय आशा दिलानेवाला और कोअी अुपाय न होनेके कारण बहुजनसमाज देवताओका आराधक बन गया है। दुखके मौके पर 'अीश्वरेच्छा', 'प्रारब्ध' जैसे शब्द कह कर अपने मनका सान्त्वन कर लेनेकी अुसे जो आदत पड गअी है अुसका भी यही कारण है। हम अपने दुखो, कठिनाअियो और सकटोके लिअे अुचित भौतिक अुपाय नही जानते। समुदायकी हमें मदद नही होती। 'दुनियामे कोअी किसीका नही', अिस निराशामय सूत्रके अनुसार हम सबका जीवन चला आ रहा है। आज भी अीश्वरभक्ति और धार्मिकताके जो प्रकार हममे पाये जाते है, अुनका विचार करे तो अुनमें भक्ति या अीश्वर-सम्बन्धी प्रेम हरगिज नही होता, बल्कि अपनी अिच्छा पूर्तिके लिअे देवताराधना ही चली आ रही है। देवताका आराधक अुस देवताको परमेश्वरका सर्वश्रेष्ठ स्वरूप मानता हो, तो भी आराधनाकी सारी पद्धतिसे यह स्पष्ट दिखाअी देता है कि परमात्माकी विशाल कल्पना करनेमें

हम असमर्थ हैं। अिसीलिअे हमारे समाजमें संकुचित स्वरूपके स्थल-देवता, जल-देवता, कुल-देवता, जाति या समुदायके देवता — अिस प्रकार अलग-अलग संकुचित स्वरूप, अधिकार और सामर्थ्य रखनेवाले देवों-सम्बन्धी कल्पनायें रूढ हुअी हैं। जैसे जातिको छोडकर समाज सम्बन्धी कल्पना करना हमारी शक्तिके बाहर है, अुसी तरह देवतासे अधिक व्यापक अीश्वरके विषयमें कल्पना करना भी हमारी शक्तिके बाहर है। अिसमें शक नहीं कि हममें महान् सामूहिक भाव पैदा नहीं होनेका कारण हमारी संकुचित आराधना भी है। अिसकी जडमें हमारी सकाम भक्ति ही है। अिसीसे देवता, मूर्तिपूजा और कर्मकांडकी वृद्धि हुअी है। परन्तु निष्काम मानी जानेवाली भक्तिका विचार करें, तो अैसा लगता है कि अुनमें भी हमारी असमर्थता, पंगुता और दुर्बलता ही कारण होगी। मालूम होता है कि संसारकी दिक्कतें, संकट या मरनेके बाद होनेवाली यातनायें, जन्म-मरणका भय और अिन सबके साथ मोक्षकी अभिलाषा वगैरा बातें हमारे निष्काम भक्तोंके वैराग्यका कारण थीं। अीश्वर-सम्बन्धी प्रेमके कारण जिन्हें संसार नीरस लगा हो और अुसके सुखके बारेमें भीतरसे स्वाभाविक वैराग्य पैदा हुआ हो, अैसे मनुष्य हममें मिलने मुश्किल हैं। अुनमें त्याग होगा, परन्तु वैराग्य शायद ही दिखाअी दे। और अिसीलिअे भक्तिके पहले आवेगमें त्यागी और तपस्वी जीवन बितानेवाले व्यक्ति कालान्तरमें गुरु और महन्त बन जानेके बाद सुखभोगी और वैभवप्रिय बने हुअे दिखाअी देते हैं। समर्थ रामदास कहते हैं:

संसार तापें तापला। त्रिविध तापें जो पोळला।
तोची अेक अधिकारी झाला। परमार्थासी॥

दासबोध ३–६–७

(जो संसारके दुःखसे तप्त हो गया है, जो आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक तीन प्रकारके तापसे जला हुआ है, केवल

वही परमार्थका अधिकारी होता है)। ग्रथोसे यह मालूम होता है कि परमार्थकी योग्यताके बारेमे हमारे महात्माओकी अिस प्रकारकी समझ थी। जब समाज-व्यवस्था अच्छी नही होती, जब समाजमे प्राकृतिक बाह्य कारणोसे आनेवाले सकट दूर करनेकी शक्ति नही होती, जब प्रामाणिक रीतिसे मेहनत करने पर भी अपना और अपने स्त्री-बच्चोका निर्वाह करना कठिन होता है, तब समाजमे अेक ओर झूठा वैराग्य और दूसरी ओर अनेक दुर्गुण बढते जाते है। जहा यह विश्वास नही होता कि सालभर मेहनत करके कमाया हुआ धन हमे निश्चिततासे और व्यवस्थित ढगसे भोगनेको मिल जायगा, जहा सकटमें कोओी किसीकी मदद नही करता, जहा, प्रेम, विश्वास और अेकताकी भावनायें नही, जहा सबकी रक्षा करने या न्याय करनेका सामर्थ्य नही, अुस समाजमे ससार-सुखके बारेमे ज्यादा निराशा, अुदासीनता वगैरा मालूम हो तो आश्चर्य नही। अिसी तरह अुसी स्थितिमें दूसरी तरफ समाजमे अन्याय और अत्याचारकी वृद्धि हो, तो अुसमें भी कोओी आश्यर्य नही। अिसमें शक नही कि सामाजिक दृष्टिसे यह अत्यन्त अवनत और लाचारीकी अवस्था है। अिसीमें से कोओी भक्त बनकर प्रख्यात हो जाये, तो वह अपने अनुयायियोका अेक पथ निर्माण करता है, वह अैसा बन्दोबस्त करता है कि यह पथ भिक्षासे या मठ-मदिर, देवस्थान और जागीरसे चलता रहे। परन्तु जो समाज-स्थिति हमारी पगुता, वैराग्य और भक्तिका कारण बनी, अुसे सुधारनेका प्रयत्न ज्यादातर कोओी भी नही करता। अैसी सूरतमें जैसे-जैसे साधु-सम्प्रदाय बढते गये, वैसे-वैसे यह गलत खयाल और अभिमान हममें बढता गया कि हम अधिकाधिक धार्मिक बनते हैं, हममे भक्ति और ज्ञानकी वृद्धि होती है। अिसके परिणामस्वरूप जीवनके लिअे आवश्यक और अुसे अुन्नत करनेवाले कर्ममार्ग और गृहस्थाश्रमकी अवहेलना होने लगी और आज हम अधिकाधिक पगु और असमर्थ हो रहे हैं।

वेद और अुपनिषद् जैसा महान् तत्त्वज्ञान हमारे देशमें बहुत पुराने समयसे प्रचलित है। रामायण, महाभारत जैसे कीमती ग्रंथ हजारो वर्षसे हमारे यहा पढे और सुने जाते रहे है, तो भी हममें सामूहिक भाव निर्माण नही होता, हमारा समाज समर्थ नही बनता। जीवनके लिअे जरूरी बोध अुस तत्त्वज्ञान और अुन बहुमूल्य ग्रंथोंसे न लेकर हम अपनी दुर्बलताके कारण और साथ ही अपनी जरूरते पूरी करनेके लिअे आवश्यक ज्ञान और सामर्थ्य वगैराके अभावके कारण अवतारवादी, देवतावादी और कर्मवादी बनकर केवल मूर्तिकी पूजा और आराधना करनेवाले बन गये है। मूर्ति ही हमारी परमेश्वर बन गअी है। हमारे देशके करोडो लोग अब भी भूत-पिशाचकी पूजा करते है। गाय, बैल, सर्प जैसे प्राणी; बड़, पीपल, शमी, अुदुम्बर, तुलसी जैसे पेड और पौधे, सबका कामनिक पूजन अभी तक हममें जारी है। अिस स्थितिसे जिन्हें अर्थोपार्जन होता है वे धर्मोपदेशक बनकर यही स्थिति कायम रखनेका प्रयत्न करते है। अिन सबमें आज भी हमारी दुर्बलता और अज्ञानका साक्षात्कार होता है।

देवी-देवताओंकी वृद्धिके कारण आअी हुअी पंगुता

पहलेके असख्य देवता और देवस्थान होते हुअे भी अभी तक अुनमें बढ़ती हो ही रही है। अीमानदार और सदाचारी गृहस्थ आदमीको समाजमें कोअी प्रतिष्ठित नही मानता। परन्तु जिसने ससार छोड दिया है अुसे और अपनेको भक्त कहलवानेवालेको बहुजन-समाज पूज्य मानने लगता है, अुसके चारो ओर अनुयायी अिकट्ठे होने लगते है। लोगोंको अेक नवीन आराध्य मिल जाता है। वे यह श्रद्धा रखते है कि अुनकी कृपासे अुनका योगक्षेम होता है या होगा। थोडे ही दिनोंमें वह भक्त महात्मा बन जाता है, गुरु बन जाता है। अिस प्रकार भावुकोंकी बढ़ती जानेवाली भक्तिके कारण समय

पाकर वह भक्त भगवान वन जाता है। अुसकी मृत्यु होते ही जो सामर्थ्य जीते जी अुसमे नही था, वह अुसके शवमे, शवके जल जाने पर राखमे और राखसे पत्थर-मिट्टीकी अुसकी समाधिमें या अुसके नामसे स्थापित की गअी अुसकी पादुकामे या मूर्तिमे, अिस क्रमसे वढ़ते-वढते अन्तमे वहा स्थिर हो जाता है। और समाजमे यह श्रद्धा रूढ हो जाती है कि अस समाधि या मूर्तिमे वैठकर वह महात्मा यानी वह मरा हुआ आदमी ससारका -- कमसे-कम अपने भक्तोका तो योगक्षेम अवश्य चलाता है। वह अेक देवस्थान या यात्राका धाम वन जाता है। जिन-जिन भावुको या यात्रियोकी तरफसे द्रव्यलाभ होता है, वे सव अुस स्थानका माहात्म्य वढाते है। परन्तु सवसे आश्चर्य और दुखकी वात यह है कि पुराने और अिस प्रकार हर साल वढते जानेवाले देवताओ, देवस्थानो और भगवानके अवतारोके सम्मिलित सामर्थ्यसे भी हमारा दैन्य, दारिद्रय और अज्ञान नष्ट नही होता, हमारी पगुता दूर नही होती, हममे पुरुषार्थ नही आता। हममें अैसी शक्ति नही आती, जिससे हमारी योग्य जरूरते अीमान-दारीसे पूरी की जा सके। अितना ही नही, सीधी सादी अिन्सानियत भी अभी तक हममे नही आती। वहुजनसमाजकी आज यह अवस्था है।

दुर्वल मनुष्य अपने आधार वढा ले, तो अिससे वह सवल नही वन जाता। अिस पर भी काल्पनिक आधारोसे तो अुलटी अुसकी दुर्वलता ही वढती है। हमारे समाजकी अैसी ही स्थिति है। हम अभी तक मानवताको महत्त्व नही देते। देवत्व या देवतापन हमें प्यारा लगता है। कुछ भी विशेषताका आभास होने पर हम अपनेको श्रेष्ठ मानने लगते है। कामनिक लोग हमारे पीछे पडकर हमें अेकदम पूज्य और देवता वना देते है। जैसे पत्थरको सिन्दूर लगाते ही अुसका वजरग वन जाता है, अुसी तरह जिसे अच्छी तरह गुजारा करना नही आता, जिसमें अपनी योग्य जरूरते अीमानदारीसे पूरी करने

लायक भी ज्ञान, शक्ति और पुरुषार्थ नहीं, अुसे समाज आराध्य बना लेता है। कारण, लोगोंको कामनापूर्तिके लिअे देवताकी जरूरत होती है। अुनकी दृष्टिमें शुद्धचित्त, सदाचारी, कर्ममार्गी गृहस्थ आदमीकी कोअी कीमत नहीं होती। अिस प्रकारकी भावुक सामाजिक मनोरचनाके कारण हममें देवतापद प्राप्त करना आसान है, परन्तु मनुष्य बनना कठिन है। जहां भावुकोंकी श्रद्धाके कारण पत्थरमें भी देवत्व आ जाता है, वहां हममें मनुष्यत्व आनेसे पहले भावुक हमें देवता या भगवान बना दें तो अिसमें आश्चर्य क्या? परन्तु मानवताकी दृष्टिसे यह स्थिति दोनों ओरसे बड़ी हीनता, अज्ञान और दुर्बलताकी दर्शक है। अिस स्थितिके कारण ही धर्म और अीश्वरके नाम पर समाजमें दम्भ चला आ रहा है और दिन-दिन समाजका पुरुषार्थ नष्ट होता रहा है।

सार यह कि अुच्च तत्त्वज्ञान, बहुमूल्य ग्रन्थ, लाखों देवता और अुतने ही मंदिर, अीश्वर-सम्बन्धी सगुण-निर्गुण, साकार-निराकार वगैरा कल्पनायें, सकाम-निष्काम भक्ति और आराधना किसीसे भी हमारी मानवताका विकास नहीं हुआ। अगर यह बात हमारे गले अुतरी हो कि हमने मनुष्यत्वको महत्त्व नहीं दिया, मानवधर्मकी कीमत नहीं पहचानी और सामूहिक ध्येयको जीवनका आदर्श नहीं बनाया अिसलिअे हम आजकी गिरी हुअी हालतमें पहुंच गये हैं, तो अुसके साथ ही यह बात भी हमारे ध्यानमें आ जानी चाहिये कि यह स्थिति ज्योंकी त्यों बनी रही तो हमारे सारे देवस्थान, मठ-मंदिर, पंथ, सम्प्रदाय वगैरा सारी बातोंके हमारी दुर्बलता, अयोग्यता और अज्ञानके प्रमाण और स्मारक बन जानेका समय पास आ पहुंचा है। हम अपनी संस्कृतिका कितना ही अभिमान रखें, तत्त्वज्ञान पर हमें कितना ही पांडित्य बताना आता हो, तो भी हमारी सारी परीक्षा हमारी मानसिक स्थिति, हमारे सद्गुणों और हमारे दिन प्रतिदिनके आचरणसे की जाती है। बहुजनसमाज आज किस भूमिका पर है, अुसे देखकर समाजकी योग्यता निश्चित की जाती है।

भक्तिका सच्चा स्वरूप

यह स्थिति हमे दुखद लगती हो और हमारा यह खयाल हो कि हम मनुष्य है और हमे मनुष्य बनकर जीना है, तो व्यक्तिगत सुखकी और अिसी तरह अीश्वर-सम्बन्धी भ्रामक ध्येयकी कल्पनाये हमे छोड देनी चाहियें। हमे शुद्ध विवेक जाग्रत करना चाहिये। हमें अैसा व्यापक और सामूहिक ध्येय बनाना चाहिये, जिससे हमारे पुरुषार्थ और सद्‌गुणोकी वृद्धि होती रहे। हमे सबके कल्याणका मार्ग स्वीकार करना चाहिये। अिसके लिअे अीश्वरके प्रति निष्ठाको हमें शुद्ध और व्यापक बनाना चाहिये। अुस निष्ठामे ही भक्तिका अन्तर्भाव होता है। अुस निष्ठाके जोर पर ही हम अपना जीवन सार्थक कर सकेगे, अैसी श्रद्धा हमारे अन्तरमे दृढ होनी चाहिये। चित्तकी शुद्धि और सद्‌गुणोकी अुपासना और अुस अुपासना द्वारा प्रसगानुसार दूसरोके लिअे अपने सुखका समर्पण ही परमात्माकी श्रेष्ठ भक्ति है, अैसा हमें यकीन होना चाहिये। निष्ठा अेक महान् शक्ति है। जीवनमे कर्तव्य और धर्मके अवसर पर जब-जब हमे अपना सामर्थ्य कम होता दीखे, तभी और अुसी जगह अिस महान् शक्तिका अुपयोग करके हमें अपनी सात्विकता और सामर्थ्यको बढाकर धर्ममार्गमे आगे बढनेकी कोशिश करनी चाहिये। अिसके लिअे हमे अीश्वर-सम्बन्धी परम शुद्ध, अत्यन्त व्यापक, महामगल और महासमर्थ भावना धारण करनी चाहिये। वह हमारे हृदयमें गहरी पैठकर जब हमारे खूनमें मिल जायगी, तो हमारे द्वारा होनेवाले हरअेक कर्ममें, हमारी वृत्तियो और भावनाओ, सबमें अुसी निष्ठा, भक्ति या श्रद्धाका दर्शन होता रहेगा। सद्‌गुण और सत्कर्मके रूपमें अुस महाशक्तिके अशका हमारे द्वारा यथासमय यथायोग्य प्रकटीकरण होता रहेगा। फिर हमें बार-बार अीश्वरकी सहायता नही मागनी पडेगी। अुस समय हमारे तमाम व्यवहार मानवधर्मके पोषक और सहायक बन जायगे। हमारा समस्त जीवन ही धर्ममय, श्रद्धामय, भक्तिमय और निष्ठामय बन जायगा। अीश्वरके साथ तादात्म्य प्राप्त

करने, अुसके लिये समर्पित होनेका यही मार्ग है। अिसीमें श्रद्धा, भक्ति और निष्ठाकी पराकाष्ठा है। अगर यह मार्ग हमें सिद्ध हो जाय तो व्यक्तिगत सुख और आनन्द सम्बन्धी भक्तिकी हमारी तमाम कल्पनायें लुप्त हो जायंगी। हमें यह अनुभव होगा कि हमारा अपना अुद्धार, समाजका अुद्धार, और संसारका अुद्धार अेक-दूसरेसे भिन्न नहीं। हमारा जीवन सहज ही परमात्माके साथ समरस हो गया हो, अैसा सदा शुद्ध, चेतन और व्यापक रहेगा। यही भक्ति, यही समर्पण और यही मानवताकी पूर्णता है।

८

भक्तिशोधन — ३

महाशक्तिकी शरणमें

हमारे शरीरमें जितनी शक्ति है अुसकी अपेक्षा सृष्टिमें यानी हमारे बाहर जो शक्ति है, वह अत्यन्त प्रचण्ड और अपार है, और जिस शक्तिके सामने हमारी कुछ भी न तो चलती है और न चलेगी, यह ज्ञान मानव-जातिके प्रारम्भिक कालमें भी मनुष्यको हो चुका होगा। अुस शक्तिके दुःखदायी अनुभवके कारण भयभीत और दीन बने हुअे मनसे, अुस शक्तिको देवता मानकर अुसके आगे अपनी दीनता प्रगट करके, अुसकी प्रशंसा करके, अुसकी शरण जाकर अुसका कोप शान्त करनेका प्रयत्न मनुष्य अुसी जमानेमें करने लगे होंगे। अुसका कोप अपने पर फिरसे न होने देनेके लिये अपनी प्रिय लगनेवाली वस्तुअें बारम्बार अर्पण करके अुसे सन्तुष्ट करनेकी कल्पना अुन्हें अुसी वक्त सूझी होगी। अिसी प्रकारकी विधियोंसे देवताओंकी आराधना शुरू हुअी होगी। भयसे दीनता, दीनतासे शरणागति और अुससे यदि कुछ अनिष्ट दूर होने या कुछ सुखप्राप्तिके अनुभव

जैसा हुआ तो कृतज्ञता, कृतज्ञताके वाद नम्रता और प्रेम, प्रेमसे श्रद्धा और श्रद्धासे भक्ति, भक्तिसे निष्ठा — अिस प्रकार वहुत लम्बे समयके अलग-अलग अनुभवो परसे मानव-मनमे अलग-अलग भावनायें अेकके वाद अेक पैदा होती रही है और अुनका विकास होता आया है।

विज्ञान, तत्त्वज्ञान और भक्तिका मानवजातिके अुत्कर्षके लिअे अुपयोग

आदिकालमे मनुष्यको कुदरतके कानूनोका अल्प ज्ञान था। धारण-पोषणके साधन केवल कुदरती थे। वादमे ज्यो-ज्यो अुसे प्रकृतिके धर्मोका ज्ञान होने लगा, त्यो-त्यो वह अपने परिश्रम और वुद्धिसे धारण-पोषणके दूसरे जरिये जुटाने लगा। अिसी क्रमसे जैसे-जैसे अुसका भौतिक ज्ञान वढता गया, मानव-जातिमे जैसे-जैसे सहयोगवृत्ति वढती गअी, प्रेम, विश्वास, आदर, परोपकार, अुदारता, वगैरा भावनायें और साथ ही सामूहिक कल्पनाये जैसे-जैसे मनुष्यमे वढती गअी, वैसे-वैसे महाशक्ति — देवता — के स्वरूपके वारेमें अुसकी कल्पना वदलती गअी और अुस शक्तिकी मददकी अुसे पहलेसे कम जरूरत मालूम होने लगी। अितने पर भी आराधनाकी पडी हुअी रूढि अुसने लम्वे अरसे तक कायम रखी। अिसमे अुसे अेक प्रकारकी मानसिक सान्त्वना मिलती रही।

जैसे महाशक्ति, देवता, परमेश्वर वगैरा हरअेक कल्पनामे अन्तर है, अुसी तरह आराधना, श्रद्धा, भक्ति वगैरा हरअेक भावनामे भी अतर है। महाशक्तिका डर लगता हो तो अैसी अवस्थामें मनुष्यके मनमें अुसके प्रति प्रेम या भक्तिभाव पैदा नही हो सकता। भय और आशा मनुष्यके मनमें शरणागत-भाव, दीनता और दास्यभाव पैदा करते है। परन्तु कृतज्ञता, नम्रता, प्रेम, भक्ति वगैरा भाव अुत्पन्न होनेके लिअे परमेश्वरके प्रति थोडी-वहुत मात्रामे तो भी निर्भयता और आत्मीयता महसूस होनेकी जरूरत होती है। वह दयासिन्धु और दीनवत्सल है; यह श्रद्धा पैदा होनेकी आवश्यकता रहती है। अिसी श्रद्धामे से प्रेम-

भक्ति वगैराका अुदय होता है। निष्ठाका भाव सबसे बादमें निर्माण होता है और अुसके लिअे बहुत वक्त लगता है।

प्रकृतिके नियमोंके बढ़ते जानेवाले ज्ञानमें से ही आजके विज्ञानका निर्माण हुआ है। अुन्हीं प्रकृतिके नियमोंकी खोज आगे बढ़ते-बढ़ते जब विचारकी मंजिल सृष्टिके आदि कारण तक पहुंच गयी तो अुनमें से तत्त्वज्ञानकी अुत्पत्ति हुअी। विज्ञान और तत्त्वज्ञानका विकास बहुत लम्बे समयसे मानवजातिमें धीरे-धीरे होता आया है। अिन सबका असर परमेश्वर-सम्बन्धी कल्पना पर हुआ और अुसकी अुग्रता कम होते होते अब वह हमें सौम्य और कृपालु प्रतीत होने लगा है। विज्ञान, तत्त्वज्ञान और परमेश्वर-सम्बन्धी भाव — अिन सबका मानवजातिकी सुख-सुविधा, विकास और अुन्नतिके लिअे किस प्रकार अुपयोग किया जाय, अिसका विचार संसारके ज्ञानी और मानवजातिके हितकी चिन्ता करनेवाले महापुरुषोंने समय-समय पर किया है। अिन्हीं विचारमें से मानवधर्मका ज्ञान अधिकाधिक स्पष्ट होता गया है। यह मानवधर्म अलग-अलग देशोंमें, अलग-अलग मानवसमूहोंमें भिन्न-भिन्न रूपमें प्रचलित है।

ज्ञान, विज्ञान, तत्त्वज्ञान, आराधना, श्रद्धा, भक्ति, निष्ठा वगैरा सब चीजें मानवधर्मकी सिद्धिके लिये हैं।

ज्ञान-अज्ञानयुक्त मानव-मन

मानव-मनमें अपने अज्ञानका स्पष्टतासे भान हुआ तबसे ज्ञानकी वृद्धि हुअी है। ज्ञानकी प्रगतिके साथ ही अज्ञानका भान भी स्पष्टतासे होता रहा है। किसी भी समयके मानव-मनकी जांच करें, तो यह मालूम होगा कि वह ज्ञान-अज्ञान दोनोंसे युक्त है। अिसमें अितनी बात विशेष ध्यानमें रखने लायक है कि मनुष्यमें जब ज्ञानवृत्ति जाग्रत होती है, तब अुसके अज्ञानका भान दब जाता है। अुस समय अुसके मनमें ज्ञानके लिअे आनन्द और अहंकारके भाव जाने-अनजाने स्फुरित होते हैं। अज्ञानके

भानको अगर तत्त्वत ज्ञान कहे, तो अुस ज्ञानकालमे अर्थात अज्ञानके स्पष्ट भानके समय मनुष्यमे नम्रता, कृतज्ञता, निरहकारिता वगैरा भाव अुठते है। मनुष्यमे ज्ञानदशा स्पष्ट हुअी तबसे अुसका व्यवहार अिसी ज्ञान-अज्ञानकी स्थितिमे चलता रहा है। वह अपनी ज्ञानदशा पर आरूढ होता है, तब प्राप्त ज्ञानको ही सर्वस्व और सर्वश्रेष्ठ मानकर अपने ज्ञान पर स्वयं ही खुश होता है और अुस खुशीमे कभी-कभी अपने ज्ञानका महत्त्व, अुसकी श्रेष्ठता और अुसके कारण अपनेको लगनेवाली धन्यता बोलकर या लिखकर व्यक्त करता है। सूक्ष्म दृष्टिसे देखने पर अिस निमित्तसे अुसका ज्ञान-अहकार प्रकट होता है। अीश्वरके बारेमें भी मनुष्यके मनके ज्ञान-अज्ञानका यही प्रकार पाया जाता है। जब अुसे अपने अज्ञानका भान होता है, तब वह अीश्वरके आगे अपनेको पामर और मन्दबुद्धि मानता है; अीश्वरको कोअी जान नही सकता, वह अनंत है, अपार है, कल्पनातीत है वगैरा बाते कहता है और हृदयमे नम्रता, कृतज्ञता, निरहकारिता वगैरा भाव धारण करता है। परन्तु यही मनुष्य जब ज्ञानाहकारमें अपने अज्ञानको भूल जाता है, तब यो कहने लगता है कि मैने अीश्वरको जान लिया है, मुझे अुसका साक्षात्कार हो गया है वगैरा। वह कल्पनातीत परमेश्वरकी स्थिति, मति (मानस)का वर्णन करने लगता है। वह अिस तरहका आभास अुत्पन्न करनेकी कोशिश करता है मानो अुसे अिस बातका निश्चयपूर्वक ज्ञान ह कि परमेश्वरको क्या प्रिय है, क्या अप्रिय है, वह किस बात पर कोप करता है और किससे सन्तुष्ट होता है। कभी वह प्रेमके आवेशमे आता है, तो कभी यो कहने लगता है कि मै खुद ही अीश्वर हू अथवा अीश्वर और मै अेक ही हू। अिस प्रकार मनुष्य अपनी ज्ञान-अज्ञान, अहकार-निरहकार, महानता और नम्रता वगैरा वृत्तियोका कभी पोषण तो कभी शमन करता है। जो ज्ञानकी कल्पनासे अुन्मत्त बन जाता है, अुसीको कभी-कभी नम्रता अच्छी लगती है। अिस परसे यह प्रतीत होता है कि मनुष्य

अपने अज्ञानका भान पूरी तरह नहीं मिटा सकता और साथ ही अपने ज्ञानका अहंकार भी नहीं छोड सकता।

ीश्वरके संपूर्ण ज्ञानकी अशक्यता

अनंत विश्वमें भरे हुअे सत् तत्वका — परमशक्तिका — संपूर्ण और यथार्थ ज्ञान मानव-मनको होना संभव नहीं। मनुष्यके पास अैसा साधन ही नहीं कि वह अितनी महान् शक्तिका आकलन कर सके या अुसकी कल्पना कर सके। मनुष्यकी बुद्धि मर्यादित है। अुस बुद्धिको पृथ्वीसे अनंत गुने विशाल क्षेत्रमें फैले हुअे असीम तत्वका ज्ञान हो जाय, यह संभव नहीं दीखता। अुस तत्वका विचार करते करते मन थककर स्तब्ध हो जाय, लीन हो जाय या नष्ट हो जाय, तो यह मान लेना कि अुस तत्वका ज्ञान हो गया जरा भी सत्य नहीं। तर्क करनेकी हमारी बुद्धि कुंठित हो जाय या मनका मनत्व नष्ट हो जाय, तो हम अिस तत्वमें मिल गये अैसा मान लेनेमें ज्ञान नहीं, परन्तु विचारकी भूल है। अनंतकी तुलनामें जो अणु जितना भी नहीं वह मनुष्य अपने लिअे यह कहे कि अुसे अनन्तका ज्ञान हो गया, तो यही मानना चाहिये कि अिसमें अुसके ज्ञानकी सिद्धि दिखाअी देनेके बजाय अुसके अहंकारका ही दर्शन होता है।

ज्ञान-स्थिति सम्बन्धी गलत मान्यता

अत्यन्त सूक्ष्मतासे विचार करने पर तत्वचिन्तक लोगोंने अैसा तर्क किया कि विश्वका विस्तार हमारे अनुभवमें अनंत रूपमें आता हो तो भी यह सारा विस्तार अेक ही महान् तत्वके विषयमें भासित होनेवाला और प्रतिक्षण बदलनेवाला आविर्भाव मात्र है। शरीर-बुद्धि-मन सहित अहंके रूपमें व्यापार करनेवाले हम भी अुसी तत्वके क्षणिक आविर्भाव हैं। हमारी कल्पनामें आनेवाला न आनेवाला सभी कुछ वह महान् तत्व है। अुसका आदि नहीं और अन्त भी नहीं। न तो यह बात है कि वह कभी नहीं था और

न यह कि वह कभी नही होगा। अिसी प्रकार अुन्होने अनत और अपने वीचके सम्वन्धके वारेमे और साथ ही दोनोके वीचके मूलभूत तत्त्वके वारेमें तर्क करके अपनी जिज्ञासाका शमन किया। फिर अिसी तर्कके साथ किसीने तादात्म्य प्राप्त करनेमे, किसीने अुसका तीव्र अनुसंधान रखनेमे, किसीने अिस सिद्धान्तको अपने मन पर मजवूतीसे जमानेमें या अुसके लिअे प्रयत्न करनेमे थोडी देरके लिअे मनका मनत्व मिटा दिया। किसीका मन कुठित हुआ, किसीकी वृत्तियोका थोडी देरके लिअे लय हो गया, तो वह यह मानने लगा कि अुसे अीश्वर, आत्मा और ब्रह्मका ज्ञान हो गया। कोअी अिसी अवस्थाको वार-वार अनुभव करनेकी कोशिश करने लगा और यह मानने लगा कि हम अीश्वररूप, आत्मरूप, ब्रह्मरूप हो गये। किसीने यह मान लिया कि अुसे 'मै कौन हू'का अनुभवपूर्ण हल मिल गया। अिसमें वहुत अश तक समझकी गडवडी मालूम होती है।

ईश्वभक्ति और स्वावलम्बन

अिन सव वातोसे खयाल होता है कि तत्त्वज्ञान, आत्मा और ब्रह्म वगैराके वारेमें हमारी भ्रामक मान्यताये दूर हुअे विना हमारा मानवताका मार्ग सरल नही होगा। भक्तिके नाम पर परावलम्वन और ज्ञानके नाम पर निष्क्रियता ही समाजमें वढती गअी हो, तो अुस भक्ति और ज्ञानकी हमें जाच-पड़ताल करनी चाहिये। भक्तिके कारण अीश्वर पर अपना सारा भार डालनेकी शिक्षा पाये हुअे लोगोमें दिन-दिन कमजोरी ही वढ़ती हो, तो यह आशा हरगिज नही रखी जा सकती कि अैसे लोग कभी भी स्वावलम्वी और स्वतंत्र होगे। जिन लोगोको किसी पर भी भार डालकर जीवन वितानेकी आदत पड जाती है, वे लोग कभी अीश्वर पर तो कभी राजा पर, कभी गुरु पर तो कभी महात्मा या नेता पर अवलम्वित होकर रहते है। यानी हमेशा पराधीन और परतत्र ही रहते हैं। अुनकी मनोरचना ही अिस प्रकारकी वन जाती है। अुन्हे

हमेशा किसी न किसी सहारेकी जरूरत होती है। असलमें विज्ञानकी मददसे मनुष्यको अपने और सबके भरण-पोषण और रक्षणके मामलेमें स्वाधीन होना आना चाहिये। अिसी प्रकार तत्त्वज्ञान, भक्ति, निष्ठा वगैराके कारण भी अुसमें जितेन्द्रियता, चित्तकी स्थिरता, गम्भीरता, निर्भयता, निश्चितता वगैरा सद्‌गुण आने चाहियें और अिन ओरसे भी अुसमें स्वाधीनता आनी चाहिये। अिस प्रकार विज्ञान, तत्त्वज्ञान, भक्ति वगैराका मानवता प्राप्त करनेमें सतत अुपयोग होना चाहिये। परन्तु यदि अैसा न हो और हम अुनके कारण दिन-दिन बल-हीन, विवेकहीन होते जाय, परतत्र और पराधीन बनते जायं, तो अैसा लगता है कि अुस विज्ञान, तत्त्वज्ञान या भक्तिका अुपयोग करनेमें हमारी तरफसे कोअी भारी भूल होती होगी। अितिहास परसे सारी मानवजाति और अलग-अलग मानव-समूहोंकी स्थितिका क्रमशः अध्ययन करके हमें अिस मामलेमें अपने निर्णय करने चाहियें। हमें अिस बातका विचार करना चाहिये कि सुखी और स्वाधीन बननेके लिअे हमें क्या करना है। व्यक्तिगत सुख-शान्तिकी कल्पना हमें छोड देनी चाहिये। समूहके कल्याणको महत्त्व देकर हमें मानव-जीवनका विचार करना चाहिये और अुसके बारेमें सिद्धान्त निश्चित करने चाहियें।

ज्ञान-विज्ञानकी मर्यादा

अिन बातोंका विचार करते समय हमें अितना निश्चित समझना चाहिये कि मनुष्य कितना ही जितेन्द्रिय, संयमी और अपरिग्रही हो, तो भी विज्ञानके बिना, भरण-पोषण और रक्षणके लिअे आवश्यक विविध विद्याओं और कलाओंके बिना और साथ ही मनुष्यों और दूसरे प्राणियोंके सहयोग या मददके बिना अुसका काम नहीं चलेगा। अिसी प्रकार विज्ञानमें आजकी अपेक्षा वह कितना ही आगे बढ़ जाय, भौतिक विद्यामें चाहे जितना पारंगत हो जाय और अपनी समाज-रचना कितनी ही निर्दोष और समर्थ बना ले, तो

भी जीवनमे धीरज, शान्ति और प्रसन्नता प्राप्त करनी हो और जीवनको पूर्ण बनाना हो, तो तत्त्वज्ञान, भक्ति, निष्ठा, सयम, जितेन्द्रियता, त्याग, परिग्रह-सम्बन्धी मर्यादा आदि बाते स्वीकार किये बगैर अुसका काम नही चलेगा। मनुष्यकी व्यक्तिगत शक्तिके अनुपातमे अुसके सम्बन्ध बहुत विशाल हो गये है। अुसके शरीर, बुद्धि और मनके धारण, पोषण और रक्षणके लिअे अुसे बहुतसे स्थूल और सूक्ष्म द्रव्योकी जरूरत होती है। 'मै कौन हू' अिसकी जाच करते-करते वह यह मान ले कि मै शरीर नही हू, तो भी अुसके शरीरके भाव नष्ट नही होते। शरीरकी जरूरते पूरी तरह मिटती नही, बुद्धि और मनको पोषण दिये बिना काम नही चलता। मानव सहायताके बिना निर्वाह नही होता। दूसरी तरफ केवल शरीरको ही 'अह' समझकर अुसके द्वारा सुखी होनेकी मनुष्य कितनी ही कोशिश करे, तो भी मनकी गूढ शक्तियो और सृष्टिकी अव्यक्त शक्तियो और गुण-धर्मोंका आधार लिये बिना अुसका जीवन चल नही सकेगा। मानवकी शक्ति-बुद्धि कितनी ही बढ जाय और मनुष्यको यह लगे कि हमारे सुखके सारे साधन हमारे हाथमे आ गये है, तो भी अुसकी शक्ति-बुद्धि और साधनोकी मर्यादाके बाहर रहनेवाली विश्वशक्ति अनत और अपार ही होगी, और अपनेमें बढती हुअी दिखाअी देने-वाली शक्ति-बुद्धिका पोषण और सवर्धन भी अुसी अपार विश्वशक्तिसे होता रहेगा। हमारे भीतर और बाहरके विश्वमे स्थूल, सूक्ष्म, प्रकट और गूढ सब मिलाकर बनी हुअी सम्पूर्ण शक्ति ही परमशक्ति अर्थात् परमात्म शक्ति है। वह व्यक्त और अव्यक्त दोनो रूपोमें नित्य निरन्तर कार्य करती है। हमारे द्वारा होनेवाली प्रत्येक क्रिया, विचार-धारा, विचार, विचारस्पन्द, मानसिक बल, प्रेरणा, भावना, कल्पना, तरग — सब अिसी शक्तिसे और अिसी शक्तिकी सहायतासे पैदा होते है। किसी भी भव्य या सूक्ष्मातिसूक्ष्म क्रिया या विचारको अुस शक्तिसे अलग करना सभव नही। कितना ही बड़ेसे बड़ा ज्ञानी

अथवा विज्ञानी पृथ्वी पर पैदा होनेवाले अन्न, जल और वायुके बिना अपने शरीरको कायम नही रख सकता। सृष्टिमें और सब शरीरोकी तरह मानव-शरीरका भी परमशक्तिसे ही निर्माण हुआ है और अुसी शक्तिसे पैदा हुये द्रव्यो द्वारा अुसका पोषण और वृद्धि होती है। मानव रूपमें पहचाना जानेवाला अुसी शक्तिका यह अश अुनी परम शक्तिके अलग-अलग रूप दिखाता हुआ, मन-बुद्धि द्वारा भिन्न-भिन्न कलायें, विद्याये और भाव प्रगट करता हुआ और अलग-अलग अवस्थायें पार करता हुआ अन्तमें अुस परमशक्तिमें ही विलीन हो जाता है। जन्म और मृत्युके बीचके समयमें अुसमें अलग 'आत्मत्व' का — 'अहता' का — भाव सतत जारी रहता है। यह 'अह' जागृति, स्वप्न, सुषुप्ति — तीनो कालमें अनुस्यूत रहता है। अुनका स्वरूप कभी स्पष्ट, कभी अस्पष्ट, कभी प्रकट और कभी सुप्त रहता है। वही 'अह' जब अज्ञानका भान होता है तब नम्रता कृतज्ञता और निरहकारिता दिखाता है और जब ज्ञानका भान या अहकार होता है, तब हम ही सारे ब्रह्मांड या विश्वमें व्याप रहे है अैसी वार्ता करने लगता है। मनुष्यमे अनेक परस्पर विरोधी भाव, गुण और धर्म है। अुन सबके द्वारा मानवके 'अह' का दर्शन और पोषण होता है। पहले कहा ही जा चुका है कि मनुष्यमें ज्ञान और अज्ञान दोनो है। वह केवल अज्ञानमें नही रह सकता और सम्पूर्ण ज्ञानी भी नही हो सकता। परन्तु दोनोंके द्वारा 'अह' का पोषण और समाधान करनेकी अुसकी कोशिश जारी रहती है। कभी तो 'अनत परमेश्वरको जानना सभव नहीं, हम अुनके आगे रजमात्र भी नही है' — यह मानकर जिस भूमिकासे मनुष्य शरणागतता, नम्रता, कृतज्ञता, निरहकारिता वगैरा भावनाओंका समाधान प्राप्त करता है; तो कभी यह मानकर कि परमेश्वरका स्वरूप, अुसकी स्थिति, गति, अुसका स्थान, मान वगैरा सब हम जानते है, वह ज्ञानका आनद और समाधान

प्राप्त करता है। यदि अैसा कहे कि अुसे सम्पूर्ण ज्ञान है, तो यह सहज ही मालूम हो जाता है कि अुसमे ज्ञानकी अपेक्षा अपार अज्ञान ही है। अितने पर भी अुसे अपनेमें जिस ज्ञानका अनुभव होता है, अुस ज्ञानसे अुसका 'अह' अितना विस्तृत और गाढ हो जाता है कि अुसके नीचे अुसके अपार अज्ञानका भान भी अुस वक्त ढक जाता है।

गूढ प्रश्नोके वारेमें जिज्ञासा

हमने किस लिअे जन्म पाया है? मनुष्यप्राणी सृष्टिमे पहले किस तरह अवतीर्ण हुआ? अुसके जन्मकी जडमें कौनसे कारण है? कौनसे अुद्देश्य है? अुसे अपने जीवनमे क्या प्राप्त करना है? अुसका जन्म अुसकी अिच्छासे हुआ है या अुसकी अिच्छा-अनिच्छाका अुसके जन्मके साथ कोअी सम्बन्ध नही? किस शक्तिने अुसे जन्म लेनेको मजवूर किया है? जन्म देकर अुस शक्तिने अुस पर अुपकार किया या अपकार? सृष्टिमे प्रतिक्षण होनेवाले अनत निर्माण और नाशका कर्ता कौन है? अिस सवमे अुसका हेतु क्या है? अिस सृष्टिसे लाखो गुनी वडी अगणित सृष्टिया, ग्रह, तारे, सूर्य-चन्द्र जैसे गोले, आकाशमें दर्शन देनेवाले और दर्शन तथा कल्पनाके परे रहनेवाले अनत विश्व — ये सव किस शक्तिसे निर्माण हुअे है? वे किस शक्तिके वल पर किसलिअे लाखो वर्पोसे अव्याहत रूपमें चले आ रहे है? अिन सवका आरम्भ कहासे हुआ और अन्त किसमें होगा? अिस तरहके कितने ही सवाल मनुष्यके मनमे अुठते है। अुनके यथार्थ अुत्तर नही मिलते। बुद्धि मूढ हो जाती है। तर्क कुठित हो जाता है। कल्पना वन्द हो जाती है। विचार रुक जाता है। परन्तु मानव-मनका समाधान नही होता। विश्वमें व्याप्त रहनेवाला सत्-तत्त्व हम खुद ही है, जिसका कभी नाश नही होता, जिसका न आदि है न अत, अुस मूल परब्रह्मके हम अश है। अिस प्रकार तर्कसे समझकर और अिस समझको मजवूत बनाकर तदाकार वृत्ति कर लेनेसे परमशक्ति और

विश्वका ज्ञान हो गया, यह समझकर अुसीमे आनंद माननेकी आदत डाल ले, तो कोअी शक नही कि अुसमें अेक प्रकारका आनंद आता है। परन्तु अुसे पूर्ण ज्ञान या मानवताकी पूर्णता न समझकर यह कहना अुचित होगा कि वह भी मानवी अहंकारका ही अेक स्वरूप है।

अीश्वरके नाम पर होनेवाले अनर्थ

परमेश्वरका स्वरूप कैसा है, यह न जानते हुअे भी अुसके बारेमें निश्चयपूर्वक ज्ञान देनेवाले शास्त्र या धर्मग्रंथ अलग-अलग देशोंमें और भिन्न-भिन्न भाषाओमें निर्माण हुअे हैं। लोगोमें अिस प्रकारकी श्रद्धा प्रचलित है और धर्मग्रंथोंमें अैसे वर्णन है कि किसी जगह परमेश्वर मनुष्यके पेटसे जन्म लेकर तो कहीं परमेश्वरका पुत्र या अुसका भेजा हुआ फरिश्ता या देवदूत बनकर आता है और लोगोंकी रक्षा करता है, लोगोको अुपदेश देता है। 'हम सब अेक ही परमेश्वरकी सन्तान है', 'हम सब भाअी भाअी है', अिस आशयके बोध-वचन धर्मपुरुष कहते आये हैं। परन्तु अनंत विश्वमें व्याप्त रहनेवाली शक्तिको ही यदि परमेश्वरकी संज्ञा सचमुच लागू होती हो, तो यह सम्भव नही कि वह सम्पूर्ण शक्ति किसी मनुष्यके पेटसे जन्म ले या कोअी मनुष्य अुनके पेटसे पुत्र रूपमें आये। यह मान्यता भी विवेक-युक्त नही कि अुसके दरबारमें से कोअी देवदूत पृथ्वी पर मनुष्य-जातिके अुद्धारके लिअे भेजा जाता है। अिसके बदले यह कहना अुचित होगा कि हम सब अेक ही विश्वशक्तिसे पैदा हुअे है और अिस सम्बन्धके कारण हम सब अेक ही है या भाअी भाअी है। परन्तु यदि हम सब मनुष्यकी सन्तानोकी तरह सचमुच ही अीश्वरके बालक होते, तो अलग अलग धर्मो या अीश्वरके नाम पर धर्मके अभिमान या आश्रयके कारण अपने स्वार्थकी खातिर आज तक जो मारकाट होती आयी है, वह कदापि नहीं होती। हम मानते है यदि वैसे ही सचमुच हम भाअी भाअी होते, तो हमारे बीच होते रहनेवाले घातक झगडों और

अुनसे होनेवाले अनर्थोको हमारा पिता आरामसे बैठा नही देखा करता। हम यह मानते है कि वह दयालु और वात्सल्यपूर्ण है। यदि अैसा होता तो अुसके नाम पर चली आअी गलतफहमिया और भयकर रीति-रिवाज वह खुद प्रगट होकर कभीका बन्द कर देता। परन्तु अीश्वरके साथ हमारा सम्बन्ध अिस किस्मका नही। दरअसल समझनेकी बात यह है कि चूकि हम मानव हैं अिसलिअे मानवधर्मकी सिद्धिके लिअे हम सबमे परस्पर प्रेम, विश्वास, अुदारता और अेकता पैदा होनी चाहिये, आपसमे सद्भाव पैदा होना चाहिये और बढता रहना चाहिये। हम अेक दूसरेके भाअी न हो, तो भी आज हमें अपनेमे भ्रातृभाव अुत्पन्न करके अुसे बढाना है। हम यह बात सिद्ध कर सकेगे तो ही मानव-जातिके किसी समय सुखी होनेकी आशा की जा सकती है। अिस प्रकार जब तक हम मानवजन्मका महत्त्व नही समझेंगे, तब तक हममें मानवताके लिअे सच्चा अभिमान पैदा नही होगा। और जब तक हम मानवधर्मके अुपासक बनना नही चाहेगे, तब तक परमेश्वरके लिअे हमारी सारी भावना, श्रद्धा और भक्तिका कोअी मूल्य नही। जैसे हम मानते है, वैसे हममे कितने ही परमेश्वरके अवतार होते रहे, कितने ही अीश्वरके पुत्र हममें आये और कितने ही देवदूत पृथ्वी पर चक्कर काटे, परन्तु अुससे मानव-जातिकी आपसी शत्रुता, हमारे द्वारा होती रहनेवाली घातकता, हमारी दुष्टता, छल, कपट, जुल्म, अन्याय वगैरा बुराअिया कम नही होगी। अुल्टे अीश्वरीय अवतार, परमेश्वरके पुत्र या देवदूतके नाम पर ये ही चीजे हम भयकर रूपमें करते नही हिचकिचायेगे।

अीश्वर-निष्ठा

हम यह चाहते हो कि ये बाते — ये बुराअिया न हो, तो हमे चली आ रही अीश्वर-सम्बन्धी और धार्मिक कल्पनाये सुधारनी चाहिये। अिसका विचार करके कि मानवताका ध्येय कितना विशाल, कितना पवित्र और सब प्रकारसे श्रेष्ठ है हमें अुसे अपनाना चाहिये। अिसके

लिअ हमें चित्तकी शुद्धि और सद्गुणोंकी वृद्धि, अिन दो मुख्य बातों पर जोर देना चाहिये। अिन वस्तुओंको प्राप्त करनेके लिअे हममें अीश्वर-निष्ठाका होना जरूरी है। वह हमारे जीवनमें, हमारे वर्तमानमें हमें प्रेरणा, बल, गति, स्फूर्ति और हिम्मत देनेवाली है। अुसके बिना हमारा केवल शारीरिक या बौद्धिक बल अपूर्ण है। अुस निष्ठाके द्वारा जीवन-सम्बन्धी हमारा अुच्च संकल्प दृढ होना चाहिये। परमात्मा-सम्बन्धी निष्ठामें और हमारे सत्संकल्पमें जो सामर्थ्य है, वह और किसी चीजमें नहीं है। परमात्माका ज्ञान हमें पूरी तरह नहीं हो सकता। अितने पर भी अुसके बारेमें आज हमें जितना ज्ञान है, अुस परसे भी हम अुस पर निष्ठा रख सकते हैं और अुस निष्ठाको बढा और दृढ कर सकते हैं। जीवनमें हमेशा अुपयोगी सिद्ध होनेवाला बल केवल निष्ठामें ही है। अिसमें शक नहीं कि अीश्वर-सम्बन्धी प्रेम और भक्तिभावमें अेक प्रकारका आनन्द है, परन्तु जीवनमें किसी कठिन अवसर पर जब अीश्वर-विषयक प्रेम, श्रद्धा और भक्तिभाव वगैरा डिग जाते हैं, तब मनुष्यका मन स्थिर रखनेमें केवल निष्ठा ही समर्थ होती है। जहां ज्ञान असमर्थ सिद्ध होता है, जहां विवेक पंगु बन जाता है, वहां निष्ठा हमारी तमाम शक्तियां जाग्रत करके हमारे मनको मजबूत बनाती है, हृदयको धैर्यसे भर देती है, सात्त्विकतामें तेज लाती है और सद्गुणोंको बल देती है। अिस प्रकार निष्ठा मनुष्यको सब तरहसे चेतना देनेवाली शक्ति है। जीवनमें अुसकी अत्यन्त आवश्यकता है।

६

तत्त्वज्ञानका साध्य

तत्त्वज्ञानकी निर्मिति

ससारके किसी भी प्राणीसे मनुष्यमे विचार-शक्ति अधिक है। मानव-जीवनके हर क्षेत्रमें अिस शक्तिका प्रभाव दिखाअी देता है। दु खका नाश करके सुखकी वृद्धि करनेके अुपाय मनुष्यने अपनी बौद्धिक शक्तिसे ही निर्माण किये है। सुखदु खके कार्यकारण-सम्बन्ध जानने और अिस ज्ञानकी मददसे सुखको वढाकर दु खका नाश करनेके अुपाय ढूढ निकालने और अुन्हे अमलमे लानेका प्रयत्न करनेसे ही अनेक शास्त्रो और कलाओका विकास होता रहा है। मनुष्य-जाति ठेठ प्रारम्भिक कालसे अिसी हेतुके पीछे लगी हुअी दिखाअी देती है। मानव-शरीरमे जो भी नअी नअी शक्तिया प्रगट होती गअी, अुन सव शक्तियो द्वारा मनुष्य यही हेतु पूरा करनेका प्रयत्न करता रहा है। कर्मेन्द्रियो और ज्ञानेन्द्रियो द्वारा अलग अलग विषयोका जितनी अलग अलग तरहसे रसास्वादन किया जा सके, अुतनी तरहसे करने और हर तरफसे दु खसे वचनेका अुसका सदासे प्रयत्न रहा है। अिस प्रयत्नसे आगे वढकर विचारवान मनुष्यके मनमें यह शका पैदा हुअी कि क्या ये शास्त्र, ये विद्याये और ये कलाये मनुष्यके दु ख और भय दूर करके अुसे सचमुच स्थायी रूपमे सुखी बना सकेगी? वडे से वडे प्रयत्नो द्वारा प्राप्त किया हुआ सुख आखिर तो अशाश्वत ही होता है। सुखानुभूति क्षणिक होती है, और अेक भय या दु ख टाल दें तो दूसरा सामने खडा ही रहता है। अिस प्रकारके मानव-जीवनमे और अैसी परिस्थितिमे क्या मनुष्य सचमुच कभी भी स्थायी रूपसे दु खरहित और सुखी हो सकेगा? कितने ही प्रयत्न करे और तरह तरहकी

खोज और अिलाज करे, तो भी मनुष्य बुढ़ापेको नहीं टाल सकता; अुनकी व्याधि नहीं टलती और मृत्यु तो किसीसे कभी टाली ही नहीं जा सकती। वह किस क्षण हम पर हमला कर देगी, यह नहीं कहा जा सकता। मनुष्यकी जीनेकी आशा कभी नहीं छूटती। अुपभोगकी — अिन्द्रियग्राह्य रसोंकी — अिच्छा कभी क्षीण नहीं होती। शरीर-सुखकी अिच्छा अुसे हमेशा रहा करती है। असी स्थितिमें जरा, व्याधि और मृत्युका भय मनुष्यको हमेशा लगता ही रहेगा। अिस बारेमें विद्वान-अविद्वानका भेद नहीं; सबल-निर्बल, अमीर-गरीब, राजा-रंकका फर्क नहीं। सारी मानवजाति अिस दुःख और भयमें हमेशासे फंसी हुअी है। अिस प्रकारकी शंकाओं और प्रश्नोंके कारण विचारवान मनुष्यका मन अधिक विचार करने लगा।

सुखकी अपेक्षा दुःखके मौके पर मनुष्यका मन ज्यादा जाग्रत बनता है और अुसके कारणोंकी खोज करनेकी तरफ झुकता है। असे ही मौकोंके कारण विचारशील मनुष्य जरा, व्याधि और मृत्युके बारेमें सूक्ष्मतासे विचार करने लगा। अिनके कारणोंकी खोज करने लगा। मृत्युके साथ साथ जन्मका भी अुसे सहज ही विचार करना पड़ा। जन्म, मृत्यु, जरा और व्याधि अिन चार अवस्थाओंमें से अुसे खास तौर पर जन्म और मृत्युका ही विचार करना पड़ा होगा, क्योंकि अेक मानव-जीवनका आरम्भ है और दूसरी अुसका अन्त है। जरा और व्याधिकी अवस्थायें मनुष्यको जन्मके कारण ही प्राप्त होती हैं। जन्म-मृत्युकी तरह ये अवस्थायें भी स्पष्ट हैं, परन्तु जन्मके पहले और मृत्युके पीछेकी दो अवस्थायें गूढ़ हैं। मनुष्यको मृत्युकी अवस्था भी जन्मके कारण ही प्राप्त होती है। अिसलिये जरा, व्याधि और मृत्यु न चाहियें तो जन्मसे ही बचना चाहिये। परन्तु विचारवान मनुष्यको यह मालूम हुआ होगा कि जन्म-मरणके रहस्यका पता लगाये बिना और अुनके कारण जाने बिना यह बात सिद्ध नहीं हो सकती। अिसलिअे वह जन्म-मृत्युके कारणोंकी खोज करनेकी तरफ

मुडा। मानव-जीवनमे मृत्यु जैसी भयानक, दु.खरूप और अनिवार्य दूसरी कोअी आपत्ति नही। मृत्युने ही मनुष्यको जीवनके विषयमे सूक्ष्म, गहरा और गभीर विचार करनेको प्रेरित किया होगा। मृत्युके कारणो और अुसके वादकी स्थितिका विचार करते करते अुसे जन्म और अुसके कारणोंका विचार करना पडा होगा। शरीर और अुसकी भिन्न भिन्न अवस्थाओका, मन-बुद्धि-चित्त-प्राण, चैतन्य, कर्मेन्द्रिया, ज्ञानेन्द्रिया, अुनके कार्य और परिणाम, सृष्टि और पचमहाभूत अिन सवका वह विचार करने लगा होगा। अिसी तरह मानवस्वभाव, विकार, भावना, संस्कार, गुण, धर्म, जाग्रति-स्वप्न-सुपुप्ति, त्रिगुण, प्राणिवर्ग तथा वनस्पतिवर्ग, अुनके भेद, अुनकी अवस्थाये, जीवमात्रका परस्पर आकर्षण-अपकर्षण वगैरा सभी सचेतन-अचेतन वस्तुओकी शोव करते करते अुसे अपना रास्ता निकालना पडा होगा। शरीरकी घटना-विघटना, सृष्टिका प्रिय-अप्रिय निर्माण-नाश और विश्वका अखड रूपमे चलनेवाला प्रचड कारवार — अिन सवका कर्ता कौन है? जन्म और मृत्यु किसकी आज्ञासे होते है? विचारशील लोगोके मनमे कुदरती तौर पर अिस विषयके विचार और प्रश्न अुठे होगे। अुनके विचारो, सवालो, शकाओ और खोजोसे ही तत्त्वज्ञान तैयार हुआ है। अुमीसे ओश्वर-परमेश्वर, प्रकृति-पुरुप, ब्रह्म-परब्रह्म, आत्मा-परमात्मा, पूर्व और पुनर्जन्म वगैरा कल्पनाये और विचार मनुष्यको सूझे है।

खोजके अन्तमें कृतार्थता

हरअेक विचारककी ज्ञानसवधी जिज्ञासा, अुत्कठा और व्याकुलता, अुसके वैराग्य, सचेतन-अचेतन सृष्टिके अुसके अवलोकन, निरीक्षण और परीक्षण, अुसकी बौद्धिक सूक्ष्मता और व्यापकता और अन्तमे अुसकी निर्णय-शक्तिके अनुसार अुसे अपनी खोजमें सिद्धि प्राप्त हुअी होगी। अुस परसे अुसने जन्म-मृत्यु और समग्र सृष्टिके बारेमे सिद्धान्त

निकाले होंगे। जिसीमें अुसे तृप्ति, समाधान, प्रसन्नता और जीवनकी कृतार्थता मालूम हुअी होगी। आगे चलकर बढ़ते हुअे अनुभव और ज्ञानके कारण, निरीक्षण और निर्णयशक्तिके कारण अपनी पहली मान्यतामें समय पाकर किसीके मनमें शंका पैदा हुअी होगी और अिन नअी शकाओंके साथ वह फिर खोज करने लगा होगा। या बादका विचारक पहले सिद्धान्त मंजूर न होनेके कारण अपनी शकाओंको लेकर अधिक सूक्ष्मता और व्यापकतासे अुसी खोजके पीछे लग गया होगा। जिस प्रकार तमाम चराचर तत्त्वोंकी बार-बार खोज करते-करते किसी विचारकके तर्ककी मंजिल विश्वके आदिकारण तक पहुंच गअी होगी। अुसके बाद अुसे निश्चयपूर्वक लगा होगा कि सबका आदिकारण-स्वरूप अेक ही सनातन अविभाज्य तत्त्व सकल विश्वमें व्याप्त है, और अुसकी सूक्ष्मता, विशालता और व्यापकता परसे अुसने अुसीको ब्रह्मतत्त्व कहा होगा। और विश्वके सजीव-निर्जीव अणुसे लेकर ठेठ ब्रह्माण्ड तक जो कुछ दृश्य-अदृश्य, गोचर-अगोचर, ज्ञात-अज्ञात, कल्पनामें आनेवाला और न आनेवाला है, वह सब — वह खुद भी — अुस महान और मूलतत्त्वका आविर्भाव है, जिस दृढ तर्क या अनुमान पर वह निश्चित रूपमें पहुंचा होगा और जिस ज्ञानको अुसने ब्रह्म-ज्ञान कहा होगा। विचारक जिस तत्त्वमें स्थिर हुआ, जिसके आगे विचार करनेकी अुसकी गति रुकी, जिस तत्त्व तक पहुंचकर अुसकी व्याकुलता शान्त हुअी, अुस तत्त्व या तर्कको मुख्य मानकर अुसने अपने अन्तिम निर्णयको अुस तत्त्वका बोधक या सूचक नाम दिया। जिस विचारकको सृष्टिके आदिकारणमें मुख्यतः नियामकता और शक्तिमत्ता दिखाअी दी, अुसने अुसे अीश्वर नाम दिया, जिसे व्यापकता और अनंतता दिखाअी दी, अुसने अुसे ब्रह्म कहा; जिसे यह लगा कि मनुष्य खुद भी अुसी विशाल तत्त्वका आविर्भाव है — जिसमें यह निश्चय दृढ हुआ कि शरीरका मुख्य तत्त्व यही है — अुसने अुसे आत्मतत्त्व माना। जिन्हें अत्यन्त परिश्रम, सतत सूक्ष्म अवलोकन और अभ्यास वगैराकी मददसे

अपनी खोजके अन्तमें यश मिला होगा, जिनके जीवनमें सत्य-ज्ञानके सिवाय और कोअी हेतु नही रहा होगा, जो वासनातृप्त, समस्त भौतिक विषयोके प्रति अनासक्त, ज्ञानके लिअे अत्यन्त व्याकुल और समर्थ होते हुअे भी विरक्त होगे, अुन्हे अपनी खोजके अन्तमे मिली हुअी सफलतासे कितना आनन्द, कितनी प्रसन्नता और कृत-कृत्यता महसूस हुअी होगी, अुसकी कल्पना हम जैसोको कैसे हो सकती है ! अेक ही अुच्च हेतुके पीछे तन-मन-धन सर्वस्व न्योछावर करके, अुसीको जीवनका अेकमात्र हेतु बनाकर, अुसके लिअे अपार परिश्रम करनेके परिणामस्वरूप जब अुन्हे अुसमे सफलता मिली होगी, तब अुन्हे कैसा लगा होगा ? अुन्हे अैसा लगा हो कि जीवन सार्थक हुआ, जीवनमे कोअी भी हेतु बाकी नही रहा और कोअी भी कार्य या कर्तव्य अब करनेको रह नहीं गया, और अिससे अुन्हे परमानन्द हुआ हो, तो अिसमे आश्चर्य क्या ? सृष्टिमें या अपनेमे, भीतर या बाहर अब कुछ भी जाननेको नही रह गया, अैसा प्रतीत होने पर अुन्हे परम कृतार्थता भी मालूम हुअी होगी । ज्ञानसे परिपूर्ण होनेके बाद जीवनकी अिच्छा नही और मृत्युका भय भी नही — अैसी अुनकी अवस्था हुअी होगी । किसी प्रकारका बन्धन नही, किसी तरहकी अिच्छा नही, अैसी स्थितिमे अुनके मनमें मोक्षकी कल्पना आअी हो तो वह भी स्वाभाविक था। अिसमे शक नही कि सत्यकी खोजका मूल हेतु, अुसके लिअे किया गया परिश्रम, चिन्तन, मनन, निदिध्यास, विरक्त स्थिति, स्वार्थका पूरी तरह अभाव, सब तत्त्वोकी हुअी खोज, अपने प्रयत्नमे मिली हुअी सफलता और अुससे प्राप्त हुअी ज्ञानावस्था — अिन सबका वह स्थिति स्वाभाविक परिणाम होना चाहिये। अिस प्रकार अेकसे अेक बढकर प्रखर, सूक्ष्म और गाढ विचारशील शोधको द्वारा किये गये प्रयत्नोसे निर्माण हुआ तत्त्वज्ञान हमे मिला है। यह सब अुन महाभागोकी कमाअी है ।

दर्शनकारोंका मानव-जाति पर अुपकार

अुन मूल दार्शनिकोंके बारेमें विचार करने पर अुनकी सत्य-ज्ञान संबंधी जिज्ञासा, अुत्कंठा और व्याकुलता, अुसके लिअे किया गया अुनका परिश्रम, अुनकी सूक्ष्म, कुशाग्र, मर्मस्पर्शी परन्तु व्यापक बुद्धिमत्ता; विषयको आरपार भेदकर ठेठ सत्य तक जा पहुंचनेवाली अुनकी दीर्घ, भेदक और पवित्र दृष्टि आदिका खयाल आते ही अुनके प्रति खूब आदर पैदा हुअे बिना नहीं रहता। भौतिक अिन्द्रियजन्य सुखके प्रति अुनका वैराग्य, प्रकृति, पंचमहाभूतोंसे लेकर मानव शरीर, मन, प्राण, चित्त, जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि वगैरा तक सारी चराचर सृष्टिका अुनका सूक्ष्म अवलोकन और निरीक्षण, साथ ही अिन सबके गुणधर्म और संस्कारोंका अुनका ज्ञान वगैरा बहुत ही आश्चर्यकारक लगता है। मोह और अज्ञानमें गोते खानेवाले संसारमें तत्त्वशोधनके पीछे पड़कर जिन महापुरुषोंने सत्यकी अुपासना की और अपने लिअे आवश्यक ज्ञान प्राप्त किया वे सचमुच धन्य हैं। मानव-जाति पर अुनके भारी अुपकार हैं। सारी मानव-जातिको अिस विषयमें अुनकी सदैव ऋणी रहना चाहिये।

तत्त्वज्ञानका विकास बादमें कैसे रुका?

परन्तु मालूम होता है कि तत्त्वशोधनका यह प्रयत्न भारतवर्षमें पहले जैसा जारी नहीं रहा। वह कभीका रुक गया है। अिससे तत्त्वज्ञानका आगे विकास हमारे देशमें हो नहीं पाया। अिसके कारणोंका विचार करने पर अैसा मालूम होता है कि हमने किसी समय तत्त्वज्ञानके साथ मोक्षका सम्बन्ध जोड़ दिया। तबसे हमारा शोधकपन खतम हो गया, केवल श्रद्धालुपन बढ़ना रहा और ज्ञानकी अुपासना बन्द हो गअी। मूल शोधकों और दार्शनिकोंको अपनी जिज्ञासा और परिश्रमका फल ज्ञान, शान्ति और प्रसन्नताके रूपमें मिल गया। अिस परसे किसी समय हममें यह

गलत खयाल पैदा हो गया कि अुनकी तत्त्वज्ञान सम्बन्धी विचार-सरणीको केवल मान लेनेसे ही हमे भी वैसा ही ज्ञान, शान्ति और प्रसन्नता मिल जायगी। अैसी शका होती है कि यह सब अुसीका परिणाम होना चाहिये। अेक वार अैसा मजबूत खयाल बन जानेके बाद अुसीसे ब्रह्मज्ञान, आत्मज्ञान, ब्रह्म-साक्षात्कार, आत्म-साक्षात्कार आदि कल्पनाये पैदा हुअी है और तत्त्वशोधक दार्शनिकोके आनद परसे ब्रह्मानद, आत्मानद, नित्यानद वगैरा अलग अलग आनन्दोकी कल्पना करके हमने आनन्दकी अुपासना शुरू की है। ज्ञान, आनद, कृतार्थता और बन्धनरहित अवस्था आदि सब किसके परिणाम है, अिसका विचार न करके हमने यह मान लिया कि अिन दार्शनिको और विचारको द्वारा पेश की गअी विचारसरणी ही अिन सब बातोका साधन है। अनेक प्रकारके परिश्रम करनेके बाद, हेतु सफल होनेके बाद और शोधकोकी ज्ञानकी आतुरता शान्त होनेके बाद अुनके चित्तकी जो स्वाभाविक अवस्था हुअी वह अिन सबके परिणामस्वरूप थी, अिस बात पर ध्यान न देकर हम केवल विचार-सरणीसे या आनदकी कल्पनासे कृतार्थता मानने लगे और मोक्ष प्राप्त करनेका प्रयत्न करने लगे। किसी समय हममे अिस प्रकारका भ्रामक विचार पैदा हो गया और परम्परासे मजबूत होते होते अुसने श्रद्धाका स्वरूप धारण कर लिया।

अमरीकाका प्रथम दर्शन होने पर कोलम्बसको अतिशय आनद हुआ और अुस भूमि पर पहला कदम रखने पर अुसने कृतार्थता अनुभव की। न्यूटनको अपनी खोजमे कामयाबी हासिल होने पर आनन्द और धन्यता महसूस हुअी। आज भी बड़े बड़े शोधको और वैज्ञानिकोको अपनी अपनी खोजो और प्रयत्नोमें सफलता मिलने पर आनन्दका अनुभव होता है। अिस परसे यह मानकर कि अमरीकाके दर्शन और अुस जमीन पर कदम रखनेमें ही आनन्द और कृतार्थता प्रतीत होनेका गुण है, या न्यूटनका सिद्धान्त समझ लेनेसे अुसे हुआ

आनन्द प्राप्त हो जाता है, या आजके शोधकोंकी खोजोंकी अुपपत्ति समझ लेनेसे अुन्हें होनेवाला आनन्द और कृतार्थता हमें भी मिल जायगी, कोअी अुसके अनुसार कोशिश करने लगे तो क्या वह अुचित होगी? हम अुसे ठीक मानेंगे? ज्ञानके दूसरे क्षेत्रोंमें जिस चीजको हम ठीक नही समझते या कभी नहीं समझेंगे, अुसको तत्त्वज्ञानके विषयमें अुसे दिये गये आध्यात्मिक स्वरूपके कारण ठीक समझते है, अुस पर श्रद्धा रखते आये है और अुस पर आज बडे बडे सम्प्रदाय चल रहे है।

मोक्ष-सम्बन्धी कल्पनाका आनंद

अिन सब बातोंका विचार करने पर खयाल होता है कि ज्ञान किसे कहा जाय? आनद और कृतार्थताका स्वरूप क्या है? अिन भावों या अवस्थाओंका निर्माण किस चीजमे होता है? ये किसके परिणाम है? — अिन सब प्रश्नोंका हमने सूक्ष्मतासे विचार नही किया। हम तत्त्वशोधक नही है। हममें शोधकी, जिज्ञासाकी, आतुरता नही है। हमें आनन्दकी अिच्छा है। मोक्षकी अिच्छा भी किसी किसीको होगी। परन्तु मूल शोधकको होनेवाले आनद या कृतार्थताकी अिच्छा हमें नही है। अितने पर भी हम यह मानते रहे है कि शोधककी खोज पूरी होने पर अुसे जो वस्तु निर्णयके रूपमें मिली, अुस निर्णयको हम अपने चित्त पर अनेक प्रकारसे जमा ले, तो जन्म-मरणसे मुक्त हो जायगे। यह मानकर कि अुस निर्णयको चित्त पर जमा लेना साध्य और अुसकी बताअी हुअी तात्त्विक विचारसरणी साधन है, अुसीको अलग अलग रूपको, आलंकारिक भाषा और पांडित्यपूर्ण तर्कवादसे पेश करके, ग्रंथ लिखकर और काव्य रचकर हम अपने पर और दूसरो पर अुसे जमाने लगे। यह हिप्नोटिज्मका अेक प्रकार है, ज्ञान नही। अिसमे कृतार्थता नही है। अुन्हीं कल्पनाओंको अलग अलग ढगमे रंगकर हम अपने पर अुनका रग चढाते रहे और दूसरोको भी अुनका रग चढाने और

अुनमे रमाने लगे। अिससे हमे जो आनन्द मिलता है, वह खोजके अन्तमे होनेवाले ज्ञानका आनन्द नही होता, परन्तु हमारे ही द्वारा अपने चित्त पर जमाअी हुअी कल्पनाका, हमारे ही मनमे यह जमाते रहनेका कि हम खुद कोअी दिव्य, अजर, अमर तत्त्व है और आनदकी धारणा रखकर पैदा किया हुआ आनन्द होता है। प्रत्यक्ष खोजसे होनेवाले ज्ञानका आनन्द और खोजकी विचारसरणीसे और आनन्दकी धारणा कर लेनेसे होनेवाला आनन्द, अिन दोमे बडा फर्क है। हमारे तत्त्व-ज्ञानके सम्बन्धमे अैसा ही कुछ हुआ होगा। मोक्ष हमारे जीवनका ध्येय है, तत्त्वज्ञानीको मोक्ष मिलता है, ज्ञानसे मोक्ष मिलता है, तत्त्वज्ञानीका ज्ञान हमने मान लिया और अुसे अपने चित्त पर जमा लिया, तो हमे भी मोक्ष मिल जायगा; अैसी हमारी श्रद्धा है। अिस श्रद्धाके दृढ होने पर मोक्ष निश्चित समझिये! अिस क्रमसे हममें अेक प्रकारकी जो श्रद्धा निर्माण हुअी, वह परम्परासे आज अितनी दृढ हो गअी है कि जिस दृष्टिसे मैं यह लिख रहा हूं अुस दृष्टिसे अिस विषयमें विचार करनेको शायद ही कोअी तैयार होगा।

शोधक और श्रद्धालुके बीचका भेद

तत्त्वज्ञानकी कअी अलग अलग प्रणालियां है। अुन सबमे अेक-वाक्यता हो सो बात भी नही है। अन्तिम सिद्धान्तके माननेमे तो अुनके बीच परस्पर विरोध भी जान पड़ेगा। तो भी जो जिस मतको अेक बार स्वीकार कर लेता है, वह अुससे अितना चिपट जाता है कि अुसे कितना ही समझाया जाय वह अपनी विचारसरणीको नही छोड़ता। कारण, वह शोधक नही परन्तु श्रद्धालु होता है। और हमारे तत्त्वज्ञानमें कोअी भूल है, यह मान लिया जाय या साबित हो जाय, तो हमारा तत्त्वज्ञान अपूर्ण सिद्ध हो जायगा; अिससे हमारे मोक्षमें और सद्गतिमे बाधा पड़ेगी; अितना ही नही परन्तु हम जिस सम्प्रदायके है अुसकी और अुसके मूल

प्रवर्तककी त्रुटि मानी जायगी, जिससे उस मूल प्रवर्तकके दिव्यपन या अवतारीपनके बारेमे शका पैदा होगी, हमारी श्रद्धा कम हो जायगी और खुद हम तथा हमारी परम्पराके तमाम साम्प्रदायिक अज्ञानी ठहरेंगे—इस प्रकारकी अनेक तरहकी शकाओ और भयके कारण आध्यात्मिक दृष्टिसे सर्वश्रेष्ठ माने गये तत्त्वज्ञानकी जाच करनेके लिये कोई तैयार नही होता। इस तरहके श्रद्धालु सिर्फ साम्प्रदायिक लोगोमें ही होते हो, सो बात नही। कोई सम्प्रदाय स्वीकार न किया हो तो भी आध्यात्मिक हेतुके लिये किसी विशेष तत्त्वज्ञानको माननेवाले लोगोमें भी ज्यादातर भूतकालके किसी महापुरुषकी दृष्टिसे ही तत्त्वज्ञानका विचार करनवाले होते है। श्रद्धालु होनेके कारण वे भी इसी दृष्टिसे विचार करते है कि उनकी विचारसरणीके बारेमें अश्रद्धा उत्पन्न न हो और श्रद्धा बढती रहे। साम्प्रदायिकोमे या असाम्प्रदायिकोमे कोई अभ्यासी व विचारक नही रहता, सो बात नही। परन्तु उनके अभ्यास और विचारका तरीका एक निश्चित रूप धारण किया होता है। वे अपनी मूल श्रद्धाको कायम रखकर अध्ययन करते है, इसलिये उनमे शोधक-वृत्ति होनेकी बहुत ही कम सम्भावना है। जो सचमुच शोधक होते है, वे केवल श्रद्धासे कोई बात माननेको तैयार नही होते। वे हर बातको तजरबेसे साबित करनेकी कोशिश करते है। चूकि जितनी शकाये और तर्क उठें उन सबको दूर करके उन्हे सत्य-ज्ञान प्राप्त करना होता है, इसलिये वे शका और तर्कसे डरते नही। परन्तु जिनकी तत्त्वज्ञान पर रही श्रद्धाकी जडमे मोक्षकी आशा होती है, वे जैसे भावुक भक्त अपनी पूज्य मूर्तिकी रक्षा करता है वैसे ही अपने तत्त्वज्ञानकी रक्षा करते है। जैसे वह भक्त अपनी मूर्तिको अलग अलग ढगसे सिगार और सजाकर अपनेमें आनन्द पैदा करनेकी कोशिश करता है, उसी तरह ये तत्त्वज्ञानी भी अपने माने हुये तत्त्वज्ञानको भिन्न भिन्न रूपको और आलकारिक भाषामे रोचक बनाकर आनन्द

पैदा करनेका प्रयत्न करते है। और अुस आनन्दके अनुसार आत्मा और ब्रह्मकी आनन्दरूपता वगैराका वर्णन करते है।

तत्त्वज्ञान और कल्पनाजन्य आनंदके बीच भेद

सत्यशोधन तत्त्वज्ञानका मुख्य हेतु है। अुसमे जो आनन्द है, वह सत्यज्ञानका है। अुस सत्यको शब्दोसे समझाना नही पडता और न अुपमा और अलकार द्वारा अुसमे माधुर्य लाना पडता है। ज्ञानसे आनन्द प्राप्त करनके लिअे पहले ज्ञानकी आतुरताकी जरूरत होती है। अुसे प्राप्त करनेके लिअे मेहनत करनी पडती है। जीवनका यही अेक अुद्देश्य रखकर सर्वस्वका त्याग करके अुसके पीछे लगना पडता है। अिस मार्गमें प्रखर बुद्धि और अत्यन्त लगनकी आवश्यकता होती है। और अिन सबके अतिरिक्त सत्यकी परख और निर्णय-शक्तिकी जरूरत होती है। ये चीजे जितनी मात्रामे हममे होती है, अुतनी ही मात्रामें हमें ज्ञानसे आनन्द मिलता है। वेदान्त या और किसी भी विचारसरणीको केवल मान लेनेसे, विश्वकी अुत्पत्ति या सहारका अुल्टासुल्टा क्रम ग्रथ द्वारा समझ लेनेसे, पचीकरण पद्धतिसे पचमहाभूतोकी अलग अलग पद्धतिका बटवारा समझ लेनेसे और अन्तमे 'आत्मा या ब्रह्म मै ही हू' अैसी धारणा चित्त पर सतत जमाते रहनेसे वह आनद हमे नही मिल सकता, जो खोजके अन्तमें प्राप्त होनेवाली सफलतासे मिलता है। मोक्षकी आशासे 'मै कौन हूं?' की जाच करनेका प्रयत्न करनेवाला श्रद्धालु साधक अूपर बताअी हुअी विचारसरणी द्वारा अपने मनको समझाते और मनाते हुअे अन्तमें 'मै ही आत्मा, मैं ही ब्रह्म हू; बाकीका सब कारबार, शरीर, मन, बुद्धि, प्राण वगैरा प्रकृतिका खेल है' अिस समझ पर पहुच कर 'अह ब्रह्मास्मि' के महावाक्य पर अपनी चित्तवृत्ति दृढ करनेका प्रयत्न करता है। सतत अभ्याससे अुसकी यह वृत्ति अितनी दृढ हो जाती है कि वह मानने लगता है कि यही सत्यका अनुभव है और यही आत्मबोध है। परन्तु

अुसके ध्यानमें यह नहीं आता कि यह आत्मबोध नहीं बल्कि वेदान्त-प्रणाली परसे हमारी ही बनाअी हुअी हमारी अेक चित्तवृत्ति है। जन्म-मृत्युके डरके कारण 'मैं कौन हूं' की जांच होनी चाहिये — अिस व्याकुलतासे साधक-दशामें अुसमें वैराग्यनिष्ठा रहती है। अिसके कारण अुनमें कुछ कुछ संयम और सद्गुण आ जाते हैं। बादमें तत्त्वज्ञानके अेकाध सिद्धान्तको मानकर यह समझ दृढ कर लेनेसे कि 'वही मैं हूं' अुनके चित्तकी व्याकुलता शान्त हो जाती है। अैसी हालतमें श्रद्धालु अभ्यासीका यह खयाल हो जाता है कि मुझे आत्म-साक्षात्कार हो गया और अुसे समाधान हो जाता है। तत्त्वज्ञानका अेकाध सिद्धान्त अिस तरहसे मानकर, अुसे अलग अलग रूपकोंसे सजाकर और अुसमें भिन्न भिन्न रस और आनन्द पैदा करके हम मन ही मन अपना रंजन करने लगे। और हमारे चारों ओर जमा होनेवाले भावुकोंके मनमें अुस आनन्दकी अिच्छा अुत्पन्न करने लगे। भूतकालमें अध्यात्मज्ञानमें श्रेष्ठ मानी गअी या अवतारी समझी गअी विभूतियां हम खुद ही हैं, अैसी कल्पना और विश्वास करके कोअी मस्तीका, तो कोअी श्रेष्ठताका जोश दिखाने लगा। अिस प्रकार हम अपनी भ्रामक वृत्तिका ही अपने तत्त्वज्ञानके नाम पर पोषण करने लगे, और अिसके लिअे अुन तत्त्वज्ञानमें से रास्ता निकालने लगे। हममें शोधकका गुण होता तो ज्ञानके नाम पर अैसी भ्रामक बातें न होतीं, हमने अुन शास्त्रका विकास किया होता, अुनसे हमें अनेक भौतिक और सात्त्विक लाभ हुअे होते और हम अुन्नत बने होते। परन्तु तत्त्वज्ञानका सम्बन्ध केवल मोक्षके साथ जोड दिये जानेसे वे लाभ नहीं हो सके। हरअेक सम्प्रदायने तत्त्वज्ञानकी कोअी न कोअी प्रणाली अवश्य स्वीकार की है। अिसका कारण हमारे महा-पुरुषों और सर्वसाधारण लोगोंमें चली आ रही यह श्रद्धा है कि तत्त्वज्ञानके बिना मोक्ष नहीं होता। अिसीलिअे अिस मार्गमें ज्ञानकी खोज न होकर श्रद्धालुपन बढता रहा है।

सचमुच हम तत्त्वोके शोधक और अभ्यासी बन जाय, तो पच-भूतात्मक सृष्टिके तमाम स्थूल-सूक्ष्म पदार्थो और साथ ही अुनके गुणधर्मोका ज्ञान हमे हुअे बिना नही रहेगा, ध्वनि, प्रकाश, विद्युत् जैसे गूढ और महान तत्त्वोके कार्य-कारणभावोका हमे ज्ञान होगा; मनुष्य और अन्य प्राणियोके गुणधर्म, सस्कार, स्वभाव वगैराका भी हमे ज्ञान होगा, मन, बुद्धि, चित्त, प्राण, चैतन्य आदि सबका सूक्ष्मातिसूक्ष्म ज्ञान हमारे सामने प्रगट होगा; सारी चराचर सृष्टि और साथ ही अुसके सूक्ष्म तत्त्वोके हम जानकार बनेगे। अिस प्रकार समस्त तत्त्वोकी खोज करते करते अगर हम तत्त्वज्ञानके आखिरी छोर तक पहुच जायगे, तो अिस विश्वमें हमसे कुछ भी अज्ञात नही रहेगा और अिस सारे ज्ञानका अुपयोग हम मानव-जातिके अुत्कर्ष और कल्याणके लिअे आसानीसे कर सकेंगे। अुस ज्ञानसे हमारे जीवनका स्वाभाविक झुकाव भूतमात्रका हित करनेकी ओर ही रहेगा। परन्तु अिनमें से किसी भी तत्त्वका शोध हमें न लगा हो और अिनमें से किसी बातसे हम मानव-जातिका कल्याण और भूतमात्रका हित न कर सकते हो, तो यह वस्तु ज्ञानमार्गमे सभव प्रतीत नही होती कि केवल आत्मतत्त्वका ज्ञान होनेसे हमे ब्रह्मसाक्षात्कार हो सकता है। सत्यकी दृष्टिसे देखा जाय तो यह केवल कल्पित और श्रद्धाकी बात ठहरेगी। अुसे ज्ञानकी सिद्धि नही कहा जा सकता।

तत्त्वज्ञानकी सिद्धि

अिन सब बातो पर विचार करनेसे मालूम होता है कि तत्त्व-ज्ञानका सम्बन्ध मोक्षके साथ न मानकर हमारी जीवनशुद्धि और सिद्धिके साथ जोडना चाहिये। मानवताके लिअे आवश्यक मालूम होनेवाली हरअेक बातको अधिक शुद्ध, अधिक तेजस्वी और अधिक प्रभावशाली बनानेका सामर्थ्य तत्त्वज्ञानमे होना चाहिये। मानव-जीवनमे धर्म, अर्थ और काम तीनो बड़े पुरुषार्थ है।

तत्त्वज्ञानका जीवनसिद्धिमें पर्यवसान

मनुष्यमात्रका सारा जीवन अिन तीन पुरुषार्थोंमें बंटा हुआ है। अिन तीनोंकी शुद्धि द्वारा ही जीवनशुद्धि और जीवनसिद्धि हो सकेगी। ज्ञानके बिना यह शुद्धि और सिद्धि संभव नहीं। अिसलिअे धर्म, अर्थ और कामको शुद्ध करनेकी ताकत ज्ञानमें होनी चाहिये। व्यक्ति और समष्टिका कल्याण परस्पर विरोधी या विघातक न होकर अेक दूसरेका सहायक बने, अिस दृष्टिसे धर्म, अर्थ और कामका विचार हो अिसके लिअे तत्त्वज्ञानकी खास तौर पर जरूरत है। यह आवश्यकता पूरी करनेकी शक्ति तत्त्वज्ञानमें हो तो ही धर्म, अर्थ और कामकी शुद्धि होगी और मानवधर्मकी सिद्धि होगी। हम जिसे तत्त्वज्ञान कहते हैं अुसमें यह शक्ति न हो, तो अुस तत्त्वज्ञानका विकास करके अुसमें यह शक्ति लानी चाहिये। ज्ञानमें यदि पुरुषार्थ न हो, शक्ति निर्माण करनेका गुण न हो, तो अुस ज्ञानमें और अज्ञानमें कोअी फर्क नहीं। दीपक और आगमें प्रकाश देनेकी शक्ति जरूर होगी। अगर यह अनुभव होता हो कि दीपकमें और अग्निमें वह शक्ति नहीं है, तो यह निश्चित समझना चाहिये कि वहां दीपक और आग नहीं, परन्तु अुनके बारेमें कुछ न कुछ भ्रांति ही है।

संक्षेपमें, तत्त्वज्ञानके आभास पर विश्वास न रखकर हमें अैसे तत्त्वज्ञानका आश्रय लेना चाहिये, जिसमें मानव-जीवनको सब तरफसे सफल बनानेका सामर्थ्य हो। भ्रमके पीछे न पड़कर यदि हम सचमुच ज्ञानकी प्राप्ति कर लें, तो अुसके साथ हममें पुरुषार्थ अवश्य आना चाहिये। ज्ञान प्राप्त कर लेनेके बाद अुसका अुपयोग करना अुस ज्ञानका स्वाभाविक परिणाम है।

१०

साध्य-साधन विवेक — १

भक्ति, योग और ज्ञान हमारे यहा आध्यात्मिक अुन्नतिके मार्ग माने जाते है। अिन मार्गोकी अुत्पत्ति अेक ही कालमे नही हुअी। समाजमे अिस प्रकारके किसी भी मार्गकी और साधनकी कल्पना व्यक्ति या समाजके किसी दु खके शमन, सुखके साधन या मनकी सात्वना और अुन्नतिके निमित्तसे होती है। और अुसीकी आगे वृद्धि होकर अुसमे से भिन्न-भिन्न बौद्धिक और मानसिक आनन्द प्राप्त करनेकी कल्पनायें निकलती हैं। अिन मार्गोका अन्तिम ध्येय मोक्ष होनेके कारण मोक्षेच्छु साधक अपनी रुचिके अनुसार मार्ग ग्रहण करके अपनी अुन्नतिका प्रयत्न करते रहे है। अिसमे सन्देह नही कि ये मार्ग और अुनके साधन कम या अधिक मात्रामे व्यक्तिगत विकासके सहायक हुअे हैं। परन्तु अुनमें रही व्यक्तिगत कल्याणकी कल्पनाके कारण सामाजिक और सामूहिक कल्याणकी भावना हममे पैदा नही हुअी, जिसके विना मानव-जातिकी प्रगति होना सभव नही। अिसके सिवाय, भक्ति, ज्ञान वगैरा मार्गोमे प्रत्यक्ष कर्मकी अपेक्षा हमारी कल्पना और भावनाका ही अधिक महत्त्व होनेके कारण अुनसे प्राप्त होनेवाले भिन्न-भिन्न लाभ भी विचार करने पर काल्पनिक लगते हैं। अुन मार्गोमे आनन्द न हो सो बात नही। परन्तु अुन मार्गोके साध्य-साधनका विचार करने पर मालूम हो जाता है कि अुस आनदके अधिकाश प्रकार हमारी अपनी ही कल्पना या भावना द्वारा निर्माण किये हुअे होते हैं। हमारी भक्तिके अनेक प्रकारो और आत्मज्ञान, ब्रह्मज्ञान-सम्बन्धी हमारी मान्यताओ और श्रद्धा परसे अैसा लगता है कि अिन सब

बातोंमें हम अलग अलग काल्पनिक सृष्टियां निर्माण करके अुनसे अपनी भावनाओंका पोषण, वर्धन और शमन करते रहे हैं।

भक्तकी मन-स्थितिका परीक्षण

अवतारवाद और ओश्वर-सम्बन्धी हमारी सगुण-साकारकी कल्पनाके कारण भक्तिमार्गमें बहुत ज्यादा काल्पनिकता पैदा हुओी नजर आती है। नवधा भक्तिसे हमारी भावतृप्ति नहीं हुओी, अिसलिअे मधुर-भक्ति जैसे प्रकार भी हमने पैदा किये हैं। ओश्वर कैसा है, अिसकी जानकारी न होते हुअे भी, अुनके रंगरूपके बारेमें कोओी ज्ञान न होने पर भी हमने अुसे रंगरूप देकर, अुसके पीछे मन, बुद्धि, चित्त और अिच्छाको लगाकर अुसकी भक्ति करनेकी प्रणालिकायें बनाओी हैं। अिस विचारके सत्य होनेमें शंका हो सकती है कि ओश्वरने लीलामात्र करके अनंत ब्रह्माण्डका निर्माण कर दिया; परन्तु यह बात तो निःसंशय है कि हम अपनी ओश्वर-सम्बन्धी कल्पनाओंका विचार करते समय ओश्वरको अपनी सुविधा, भावना और कल्पनाके अनुसार, जब जैसा चाहे बना देते हैं। ओश्वरके दर्शनके लिअे व्याकुल हुआ भक्त अुससे कहता है:—

काय तुझें वेंचे मज भेटी देतां। वचन बोलतां अेक दोन॥
काय तुझें रूप घेतों मी चोरोनि। त्या भेणें लपोनि राहिलासी॥
काय तुझें आम्हां करावें वैकुंठ। भेवों नको भेट आतां मज॥
तुका म्हणे तुझी न लगे दमोडी। परि आहे आवडी दर्शनाची॥

(हे प्रभु! मुझे दर्शन देने और मेरे साथ अेक दो बात करनेमें तेरा क्या खर्च होता है? क्या मैं तेरा रूप चुरा लूंगा, जो अिस डरसे तू छिपकर बैठा है? तेरे वैकुंठसे मुझे क्या करना है? डरे मत! अब मुझे दर्शन दे दे। तुकाराम कहता है कि तुझसे मैं कोओी भी चीज नहीं मांगता। सिर्फ तेरे दर्शनकी ही अिच्छा है।)

अैसी स्थितिमे अीश्वर क्या अनुभव करता है क्या नही, यह सब भक्त ही तय करता है। अुसे कैसी शकाये होती,होगी सो खुद ही कल्पना करके अुनका निराकरण भी खुद ही कर लेता है। अिस प्रकार देव और भक्त दोनोके पार्ट वह खुद ही अदा करता है। दर्शनोत्सुक अवस्थावाले भक्तोके अैसे अनेक अुद्गार मिलते है। अैसी व्याकुल स्थितिमे अपनी अिच्छानुसार, निदिध्यासके अनुसार, अुन्हे कोअी आभास हो जाय, तो अुसे वे अीश्वरका साक्षात्कार या दर्शन मानकर अपनेको धन्य और कृतकृत्य समझते है। कअी भक्त यदि ध्यान-अनुसधानके कारण अुन्हे तादात्म्य सिद्ध हो जाय, या अुसे सिद्ध करते करते अुनकी चित्तकी गति कुठित हो जाय या चित्तका लय हो जाय, तो यह समझकर कि वे अीश्वरके साथ तद्रूप हो गये अपने सायुज्य और मोक्षका निश्चय कर लेते है। अिन सब प्रकारोमें रही अलग अलग चित्त-स्थितियोका परीक्षण करने पर ये सब अपनी ही कल्पनामे रमे रहने और अन्तमें अुसीमें मग्न हो जानेके प्रकार मालूम होते है।

आत्मज्ञानीकी मन.स्थितिका शोधन

आत्मज्ञानके लिअे 'मै कौन हू?' की खोजमे निकले हुअे साधक स्थूल, सूक्ष्म, कारण और महाकारण शरीरोका व्यतिरेक करते करते, ये तत्त्व 'मै' नही हू अिस प्रकार चित्तको समझाते-समझाते और अुन तत्त्वोके बारेमे प्रतीत होनेवाली अहताको दूर करनेका प्रयत्न करते करते अन्तमें केवल 'अपने-पन' का भान करानेवाली वृत्ति तक जा पहुचते है और अुसी स्थितिको पूर्ण स्थिति समझते है। अुस स्थितिमे अुन्हे अैसा लगता है कि हमने जान लिया कि 'मै कौन हू'। और अुसीमे वे आनन्द और सन्तोष अनुभव करते हैं। वह 'मै' चार देह, तीन गुण, पाच भूत अिन सबसे अलिप्त है, अलग है, देहके अध्यासके कारण वह देहके साथ वध गया था। अुस देहाध्यासके छूट जाने पर 'मै कौन हू' को

जान लेनेके बाद अब मुझे दुबारा शरीर प्राप्त नहीं होगा; और अिसीको वे मुक्ति समझते हैं। मैं आत्मा स्वयं अलिप्त हूं, अैसा अभ्यास करके प्राप्त की हुअी स्थितिको यानी तूर्यावस्थाको वे आत्मस्थिति मानते हैं। कोअी सब वृत्तियोंका निरसन करके चित्तका लय साधते हैं। और अुनके बाद जो बाकी रह जाता है, अुसे 'मैं' समझकर अुसीको आत्मज्ञानकी आखिरी मंजिल मानते हैं—यानी अुन्मन स्थितिको आत्मस्थिति समझते हैं। अिसीको आत्म-साक्षात्कार मानकर अुसके आधार पर अपने मोक्षके विषयमें सुनिश्चित बनते हैं। हममें स्फुरित होनेवाला सत्-तत्त्व ही सारे विश्वमें भरा हुआ है, वही ब्रह्म है, अिस श्रद्धासे जो आत्मस्थिति परसे 'अहं ब्रह्मास्मि' की मंजिल पर चले जाते हैं, वे यह समझते हैं कि हमें ब्रह्म-साक्षात्कार हो गया। अिस प्रकार साधक अपनी रुचिके अनुकूल साधनसे और स्वयं साध सकें अैसी धारणासे अपनी बुद्धि और शक्तिके अनुसार चित्तकी भूमिका प्राप्त करते हैं और अुसीको ज्ञानकी आखिरी अवस्था समझते हैं तथा अुसमें होनेवाले अनुभवको अन्तिम जीवन-सिद्धान्त मानते हैं। अिसी भूमिका और अवस्थाको वे प्रयत्नपूर्वक दृढ करते हैं। परन्तु प्रायः अिनमेंसे कोअी भी साधक अपनी भूमिकाकी जांच नहीं करता, चित्तवृत्तिका परीक्षण नहीं करता। अिसलिअे अुनके ध्यानमें यह नहीं आता या अैसी शंका भी अुनके मनमें नहीं अुठती कि जिसे हम अनुभव समझते हैं वह सचमुच आत्माका अनुभव है या आत्माके बारेमें हमारी की हुअी कल्पना पर स्थिर और दृढ़ की हुअी चित्तकी वृत्ति है। अिसी प्रकार चित्तकी वृत्तियोंका लय हो जानेके बाद चित्तकी निर्व्यापार स्थितिमें रहनेवाली 'केवल' अवस्था ही आत्माका सच्चा स्वरूप है, अैसा जो लोग मानते हैं अुन्हें भी यह शंका नहीं होती कि अिस स्थितिमें हमें आत्माका ज्ञान होता है या हमारे शरीरका केवल विस्मरण होता है? जो ध्यान या योगके मार्गसे चित्तकी वृत्तियोंका निरोध करते करते अन्तमें चित्तका

लय करके निर्विकल्प अवस्था साधते है, वे अुसीको आत्माकी शुद्ध अवस्था मानते हैं। अिन साधकोका विश्वास होता है कि चित्तका लय कर लेनेसे कर्मक्षय हो जाता है, पुनर्जन्म मिट जाता है और मोक्षकी प्राप्ति हो जाती है। अिसलिअे लयावस्थाका समय भरसक लवानेका अुनका प्रयत्न होता है। अुनकी यह अिच्छा होती है कि आत्माकी शद्धावस्था सतत रह सके तो अच्छा। परन्तु 'मै कौन हूं?' की खोज करके अुस प्रयत्नमें सफलता प्राप्त किये हुअे आत्म-ज्ञानियो, 'अहं ब्रह्माऽस्मि' के अनुभवसे ब्रह्मज्ञानी बने हुअे व्यक्तियो, तथा निर्विकल्प दशा प्राप्त करके समाधि प्राप्त किये हुअे योगियो — सबका ध्येय मोक्ष ही होता है; और अुनमे से हरअेकका यह दृढ विश्वास होता है कि अुनके अपने अपने साधनो और अुनकी अन्तिम सिद्धिसे पुनर्जन्म मिट जायगा और मोक्ष मिल जायगा। परन्तु किस अचित्य और अतर्क्य कारणसे हमे सबसे पहला जन्म प्राप्त हुआ, अिस बारेमें अनुभवात्मक ज्ञान किसीको न होते हुअे भी वह मोक्षके बारेमे विश्वास कैसे रख सकता है, यह विवेकवान मनुष्यकी समझमें नही आ सकता। अिस मार्गके साधकोका खयाल है कि 'आत्मा' नामका बिलकुल ही अलग तत्त्व, जो शरीरके बन्धनमें असख्य जन्मोसे फसा हुआ है, किसी भी अुपाय या साधन द्वारा अलग किया जा सके तो हमारी मूल शुद्ध, बुद्ध स्थिति प्राप्त हो जायगी। अिसलिअे अिनमे से कोअी आत्माका, कोअी अीश्वरका और कोअी ब्रह्मका सतत चिन्तन करने या अनुसधान रखनेका प्रयत्न करके तादात्म्य या चित्तका लय प्राप्त करते है, और अिस स्थितिमे देहका विस्मरण हो जाय, सकल्प-विकल्प बन्द हो जाय और चित्तकी वृत्तिया नष्ट हो जाय, तो वे मान लेते हैं कि हम शरीरसे अलग हो गये, शरीरसे अलग आत्मतत्त्वका हमें अनुभव या साक्षात्कार हो गया। परन्तु अिसमे दरअसल परम्परा और ग्रन्थोके प्रमाण पर विश्वास रखकर किये गये अभ्याससे कुछ समयके

लिअे केवल शरीरकी विस्मृति ही प्राप्त होती है। अिसमें शक नहीं कि अिनमें यम-नियम, सदाचार वगैराके द्वारा चित्तकी शुद्धावस्था प्राप्त होती है, जो जीवनकी दृष्टिसे बहुत ही महत्वकी बात है। परन्तु अिस मान्यता और विश्वासमें विवेक और निरीक्षण दोनोंका अभाव जान पड़ता है कि अिस साधनसे आत्मज्ञान हो जाता है और अिसलिअे मनुष्य जन्म-मरणसे मुक्त हो जाता है।

चैतन्यका सतत प्रकटीकरण

सब अिन्द्रियोंको चेतना देनेवाली, बचपन, जवानी, बुढ़ापा, जाग्रति, स्वप्न, सुषुप्ति वगैरा तमाम अवस्थाओंमें अखंड रूपमें कायम रहनेवाली, मन, बुद्धि, चित्त, प्राण सबको प्रेरणा देनेवाली जो शक्ति है, वह यदि हम खुद ही है, तो यह कहना कि अुस शक्तिकी प्रतीति केवल चित्तकी लय अवस्थामें ही होती है और दूसरे समयमें नहीं होती, विवेक और अनुभवके साथ मेल नहीं खाता। यह भी सम्भव नहीं कि वह शक्ति हम स्वयं ही हैं, अिसलिअे चित्तका लय कर लेनेसे हमें अपना ही दर्शन या साक्षात्कार हो जाय। मन, बुद्धि और चित्त सहित सारी अिन्द्रियोंके सारे कार्य होते रहनेके कारण अुन निमित्तसे अुस शक्तिका ही प्रकटीकरण और दर्शन सतत होता रहता है। अिस प्रकटीकरणके हमेशा शुद्ध रूपमें होते रहनेके लिअे जिन साधनों और अुपायोंकी जरूरत है अुनका हमें अुपयोग करना चाहिये। देहके अध्याससे आत्मा किसी न किसी समय देहके बन्धनमें फंस गअी है और 'मैं ही आत्मा हूं' यह अध्यास दृढ़ करनेसे या चित्तका लय सिद्ध करके देहको भूल जानेसे वह जन्म-मरणसे मुक्त हो जाती है — अिन दो कल्पनाओं और श्रद्धाओं पर अिस सम्बन्धकी सारी विचारसरणी और साधनों तथा अुपायोंकी रचना हुअी है। परन्तु अिस विचारसरणी और साधनोंके कारण हमें अनुभवोंकी शोधक दृष्टिसे जांच करने पर अुनमें विचारकी सुसंगति

और अनुभवोका निरीक्षण दिखाओी नही देता। शरीर और आत्मा अथवा प्रकृति और पुरुष ये दो तत्त्व अेक दूसरेसे अत्यन्त भिन्न गुण-धर्मवाले होने पर भी अुनका अैक्य कैसे हुआ? कौनसे सुखकी आशासे शुद्ध-बुद्ध, नित्य-निरतर, सत्-चित्-आनन्दस्वरूप आत्मा अशाश्वत देहका अध्यास लेकर अुसके मोहमे फसी? और आत्मा या ब्रह्म-सम्बन्धी अध्याससे केवल थोडे समय तक शरीरको भूल जानेसे ही वह हमेशाके लिअे अुससे कैसे छूट जायेगी? शरीरके ही आधार द्वारा शरीरका भान भूल जानेका क्रम साधक रोज रखे, तो भी अुसी शरीरके अधिष्ठान पर व्युत्थान दशा स्वभावत आती ही रहेगी और वही स्वभावत अधिक समय रहेगी। चित्तकी अैसी प्रतिदिनकी प्रवृत्त और निवृत्त स्थितिमे आत्मा अपनी मूल शुद्ध-बुद्ध अवस्था कैसे प्राप्त कर सकेगी और जन्म-मरणसे मुक्त होगी — अित्यादि शकाओ और प्रश्नोका ठीक जवाब अभ्यासके बादके अनुभवसे भी विवेकी मनुष्यको नही मिलता। अिससे अिन सारी मान्यताओका परम्परागत विश्वासके सिवाय और कोअी आधार दिखाओी नही देता। आत्माकी मूल अवस्था निर्विकल्प है। अभ्याससे अुस अवस्थामे जानेके बाद अुसे अपनी मूल स्थिति प्राप्त हो जाती है, अिस प्रकारकी समझ अिन सब प्रयत्नोके मूलमें है। परन्तु अभ्यासमे होनेवाले अनुभवकी जाच करने पर पता लगेगा कि सविकल्प-निर्विकल्प अवस्थाये आत्माकी नही परन्तु चित्तकी है। यदि सर्वप्रेरक शक्तिको 'आत्मा' शब्द लागू होता हो, तो वह शक्ति सविकल्प भी नही और निर्विकल्प भी नही। जैसे सूर्यके सतत प्रकाशमान होनेसे अुसकी तरफसे प्रकाश देनेका कार्य सतत अखड रूपमें होता ही रहता है, अुसी तरह सर्वप्रेरक और स्वयभू शक्तिका कार्य भी सतत ही जारी रहता है। यह तथ्य ध्यानमे रखकर मोक्षकी आशासे अभ्यास या अध्यास द्वारा प्राप्त की हुअी अवस्थाका किसीको गलत महत्त्व नही मानना चाहिये।

भक्ति, ज्ञान, योग वगैरा मार्गोंमें जो लोग यम-नियम, सदाचार वगैराके द्वारा अपनी अुन्नति कर लेनेकी कोशिशमें रहते हैं, अुनके लिअे मनमें खूब आदर और सद्भाव होने पर भी जीवन-सम्बन्धी केवल परम्परागत और श्रद्धा-मान्य ध्येयके बारेमे अुपरोक्त विचार प्रकट करने पड़ते हैं। अिसमे शक नही कि चित्तकी शुद्धि करनेमे जो सफल हुअे होगे, वे किसी भी समय आदरके पात्र है। मानव-जीवनको शुद्ध रखनेमें और अिस प्रकारका वातावरण समाजमें बनाकर अुसे पोषित करनेमे अुनका जितना अुपयोग होता हो अुतने वे सचमुच ही धन्य है, अिसमें भी शक नही। परन्तु मानव-जीवनकी विशालता और पूर्णताका विचार करनेके बाद हम आजतक जो ध्येय श्रद्धापूर्वक मानते आये है वे अब अपूर्ण साबित हो रहे हैं, अिसलिअे अिस दृष्टिसे अब हमारी सारी आध्यात्मिक भावनाओ और ध्येयोका विचार करना जरूरी हो गया है। अिसके लिअे हमे यह देखना चाहिये कि अिन सारे मार्गों और साधनोंमे हममें मानव सद्गुणोंकी वृद्धि होती है या नही। अुनमें से किसी भी कल्पना, भावना या साधनमे समाजमें असत्य या दम्भ पैदा होने या फैलनेकी गुजाअिश रहती हो, अुनके कारण किसी भी भ्रामक कल्पनाको महत्त्व प्राप्त होता हो, समाजमे जडता, अन्ध-श्रद्धा, पामरता और परावलम्बन बढते हो, तो अिन सब बातोमे हमें सुधार करना चाहिये।

परम्परागत ध्येयोकी अपूर्णता

कुछ लोगोको किसी गूढ साधनसे अपनेमे परमेश्वरीय सामर्थ्य पैदा करके अुसके द्वारा अपना, दूसरोका या समस्त जगतका कल्याण करनेकी महत्त्वाकाक्षा होती है। अिस महत्त्वाकाक्षाकी तहमें अिस तरहकी कल्पनायें होती है कि अीश्वर किसी विशेष साधन या क्रियासे सन्तुष्ट हो जाता है और मनुष्यको दिव्य सामर्थ्य दे देता

दिव्य सामर्थ्यका भ्रम

है या अुस साधन और क्रियासे मनुष्यमें ही अीश्वरीय शक्ति प्रगट हो जाती है। अिस किस्मकी महत्त्वाकाक्षासे प्रेरित होकर किसी खास तरहकी साधना करनेवाले साधक मिलते है। परन्तु अभी तक कही देखनेमे नही आया कि अुनमे से किसीको भी सिद्धि मिली है और अुनमे जगतका कल्याण करनेकी शक्ति आ गअी है। अिस प्रकारके साधकोंके पूर्वजीवनके अनुरूप अुनके पिछले जीवनको महत्त्व प्राप्त होता है। साधक पूर्वजीवनमे ही किसी विशेपताके कारण प्रख्यात रहा हो, तो अुसके साधकपनको महत्त्व मिल जाता है और अुसके प्रयत्नकी ओर वडे-वडे लोगोका ध्यान लगा रहता है। परन्तु ज्यो-ज्यो अैसे साधकोका साधनामें समय बीतता है और सिद्धिकी दृष्टिसे कुछ प्राप्त होनेकी अुनकी आशा नष्ट होती जाती है, त्यो-त्यो अुनकी साधना और जीवनको भिन्न रूप मिलने लगता है और फिर केवल साधनाके नाम पर ही अुनका जीवन चलने लगता है। सिद्धिकी आशामें अुनका वहुत समय निकल जाता है। अितने समयमें वाहरकी परिस्थिति, दुनियाकी हालत, लोकमानस, कल्पना, आदर्श वगैरा बातोमे खूब फेरवदल हो जाता है। साधकके चित्त पर अुसका असर पडकर अुसकी पहलेकी मनःस्थिति वदलने लगती है। सिद्धिकी दृष्टिसे कुछ भी प्राप्त न हुआ हो तो भी बहुत समय तक जन-सम्पर्कसे — प्रवृत्तिसे — दूर रहनेके बाद वे समाजमे घुलमिल नही सकते। सामर्थ्यहीन और महत्त्वहीन स्थितिमे अेकान्त छोडकर अुन्हे बाहर आनेकी अिच्छा नही होती। सच पूछा जाय तो अैसे समय अपनी साधना, अनुभव, मन.स्थिति, प्रयत्नके अन्तमें अपनेको मिली हुअी सफलता-असफलता — ये सब बाते शास्त्रीय शोध और समाजके हितकी दृष्टिसे प्रगट करना अुनका कर्तव्य हो जाता है। परन्तु भ्रमके कारण, प्रतिष्ठाके मोहके कारण या दम्भके कारण वे अैसा करनेकी हिम्मत नही कर सकते। जैसे भक्ति, ज्ञान और योगमार्गके कितने ही साधक अपनी सफलता-असफलता कुछ न वताकर अपने ध्येयकी सिद्धि

हो जानेका दम्भ करते हैं, अुसी तरह दिव्य सामर्थ्यके पीछे पड़े हुअे साधक भी सिद्धिके मामलेमें मिले हुअे अपयशको प्रगट न करके दम्भ करने लगते हैं। जन-समुदायमें वे घुलमिल नहीं सकते और अेकान्त भी अुनसे सहन नहीं होता। तब वे अैसी प्रथा शुरू करते हैं जिससे लोग ही अुनके पास आने लगें। हमारे समाजमें शुरूसे ही खूब अन्धश्रद्धा रही है। अिसलिअे भावुक लोग अुनके दर्शनोंके लिअे जाने लगते हैं। समय पाकर अुनके आसपास समुदाय बढ़ता जाता है और अिस तरह समाजमें भ्रम फैलने लगता है।

अैसे साधकोंको सिद्धिकी दृष्टिसे कुछ भी प्राप्त न हुआ हो, तो भी कुछ समयके अेकान्तके कारण और हमेशा सूक्ष्म विचार और निरीक्षण करनेकी आदतके कारण स्वभावत: अुनके विचारोंमें सूक्ष्मता और मार्मिकता आ जाती है। साथ ही वे विद्वान् भी हों, तो अुनकी विचारशक्ति बढ़ जाती है। अिसलिअे वे विद्वत्तापूर्ण लेख लिख सकते हैं। गीता और अुपनिषदोंके वचनों पर वे अितने गूढ़ अर्थवाले लेख लिखते हैं कि शायद मूल गीता और अुपनिषत्कार भी अुन्हें समझ न सकेंगे। बल्कि अिसमें भी शंका है कि वे खुद भी अुनमें से कुछ समझ सकते हैं या नहीं। अुन्हें पढ़कर बुद्धिमान और भावुक लोगोंकी श्रद्धा दुगुनी हो जाती है। समझमें न आनेवाले लेखके भावको वे दिव्य मानते हैं और समझते हैं कि यह अुनकी सिद्धिका प्रताप है। अैसे साधकोंके आसपास अनुयायी और भक्त लोग जमा हो जाते हैं। अुन्हें कोअी भी दिव्य शक्ति प्राप्त नहीं हुअी और न अपने अुद्धारका ही मार्ग मिला है, फिर भी वे धीरे-धीरे जगदुद्धारक बन जाते हैं। भक्त लोग अुनका महत्त्व बढ़ा देते हैं। अिससे खुद अुनका महत्त्व भी बढ़ता है। सर्वसमर्पण, कृपा, प्रसाद, शक्ति-संचरण, साक्षात्कार और चमत्कारकी भाषा वहां शुरू हो जाती है। अैसे हरअेक साधकके भक्त अपनी भावुकताको पुष्ट करनेके लिअे अुस साधकको भगवान बना देते हैं और अुनके नाम पर अैसे काल्पनिक

चमत्कार प्रसिद्ध करते है, जिनसे अुनके दिलमे आनन्द हो और अद्भुतता प्रतीत हो। ये भक्त मानते है कि वडे-वडे युद्ध, अुनमे होनेवाली हार-जीत, अलग-अलग देशोकी राज्यक्रातिया, प्रतापी राजनैतिक पुरुषोकी मृत्यु वगैरा ससारकी तमाम महान घटनायें अुनके गुरुकी अिच्छा, आज्ञा और सामर्थ्यसे होती है। वे दुनियाको यह दिखाते है कि ससारके सारे अच्छे कामोका कर्तृत्व अुनके गुरुका है। साराश यह कि वे लोगोमे अैसी भावनाये फैलानेकी कोशिश करते है कि अुनका गुरु ही अेक जगह वैटकर जगतका सूत्र-सचालन कर रहा है। अिन सव वातोसे दुनियाका या किसीका भी अुद्धार नही होता, केवल अेक नया सम्प्रदाय ही निर्माण होता है। दुनियामे पहलेसे ही चले आ रहे भ्रम और दम्भमें वृद्धि होती है। किसीमे दिव्य तो क्या, थोडासा भी सामर्थ्य नही वढता। भक्त कहलानेवालोमे भी सच्ची श्रद्धा शायद ही होती है। परन्तु अपने जीवन और मनको आधार देनेके लिअे वे अेक प्रकारकी श्रद्धा मजवूत करनेकी कोशिश करते है। सम्प्रदायका महत्त्व वढानेका प्रयत्न दोनो तरफसे जारी रहता है। परन्तु अिन सव कोशिशोसे सार यही निकलता है कि जहा भ्रम है वहा दम्भ है, जहा दम्भ है वहा आडम्वर है और जहा आडम्वर है वहा शव्द-चातुर्य जरूरी होता है।

मनुष्यके मनमें कितनी ही गूढ शक्तिया है। अुन शक्तियोका विकास हो और साथ ही सद्गुणोकी वृद्धि हो, तो अिसमें शक नही कि मानव-जाति सुखी होगी। परन्तु जहा शक्तिके नाम पर अधश्रद्धा और दम्भ वढते हो, वहा समाजकी अुन्नति होना सभव नही दीखता। हमारे लोगोमें मानवताको महत्त्व नही दिया गया। किसीमे भगवान वननेकी महत्त्वाकाक्षा होती है, तो किसीको भगवान वनाकर अुसकी आराधना करनेकी वहुजनसमाजमे रुचि होती है। अिस स्थितिके कारण हममें तत्त्वज्ञान और मन शक्तिके शोधक और मानवताके अुपासक नही पाये जाते। अभी हममे सत्यके ज्ञानकी भूख नही जगी,

अिसलिअे साधक दशामें बहुत समय बितानेवाले साधक भी अपना सच्चा अनुभव दुनियाके सामने पेश नहीं करते। अुलटे पुराने भ्रमोंको ही वे और दृढ़ करते हैं। श्रद्धानुसार आगे चलकर अनुभव न होने पर वैसा कहनेकी हिम्मत हममें न हो, तो सत्यकी अुपासना नहीं हो सकती। सिद्धार्थ गौतमने कोअी संकोच और भय रखे बिना अपने अनुभव दुनियाको साफ बता दिये। अुनकी तरह अगर हरअेक साधक अपने सच्चे अनुभव प्रगट करे, तो अिस विषयके बारेमें हमारा अज्ञान दूर हो जायगा और हमारी सबकी सच्ची प्रगति होगी, हम सब भ्रम और दम्भसे छूट जायगे, ज्ञानका हमारा मार्ग सरल होगा और मानव-जाति सुखी होगी। अत्यन्त दुखके साथ कहना पड़ता है कि संसारकी अन्धश्रद्धा, वहम, अज्ञान, भ्रम, दम्भ और अिन सबके कारण होनेवाले पातकों और अनर्थोंका कारण साधकोंकी सत्यके बारेमें अवहेलना, विवेक और शोधकताका अभाव, अुनकी अधीरता, अुनका आलस्य, अुनकी सुख-सबंधी लोलुपता और जनहितके बारेमें अुनकी लापरवाही ही है।

शुष्क वेदान्तका भ्रम

आध्यात्मिक विषयमें सबसे भ्रमात्मक और अिसीलिअे अनर्थकारी मार्ग है 'मैं ही ब्रह्म हूं' यह मानकर साधनाके बिना स्वयंसिद्ध बननेका। अिस मार्गमें कोअी साधन नहीं, विधि नहीं, निषेध नहीं, कष्ट नहीं, किसी भी किस्मकी जिम्मेदारी नहीं, कर्तव्य नहीं। यह अैसा मार्ग है जिसमें मैं ही 'आत्मा' या 'ब्रह्म' हूं, यह हमेशा मनको मनाने और भावना कराते रहनेके सिवाय और कोअी साधन नहीं। अिस मार्गमें कोअी भी अेक तत्त्वज्ञान स्वीकार करके और अुसीमें अपना तर्कवाद शामिल करके अुसके द्वारा साधक खुद ही साध्य बन जाता है। वह 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' जैसे किसी महावाक्यका आधारमात्र ले लेता है। "हम स्वयं और हमारे सिवाय जो कुछ गोचर-अगोचर, कल्पनामें आनेवाला और न आनेवाला, स्थिर-अस्थिर, ज्ञात-अज्ञात है, वह

सब अेक ही महान तत्त्वका आभासमात्र है। किसी भी वाहरी परिवर्तनसे, स्थित्यंतरसे, मूल तत्त्वमे कोअी फेरवदल नही होता। वह विकार नही जानता, प्रकार नही जानता। अुसीसे विश्वका सतत आभास होता रहता है। अुसमे मायाके लिअे गुजाअिश नही। अुसी तत्त्वका आविर्भाव सर्वत्र भासित होता है। वहा माया आयेगी कहासे और रहेगी कहा? अज्ञानके निवारणकी यहा जरूरत नही। विशेष ज्ञान या ज्ञानस्थितिकी आवश्यकता नही। यहा कुछ हुआ ही नही, अिसलिअे कर्म या कार्यका आग्रह नही। अिसमे कोअी कर्ता नही। भूत, वर्तमान या भविष्यका अिसमे भेद नही। हरअेक व्यक्ति, हरअेक वस्तु, अणुरेणु भी आविर्भावकी दृष्टिसे अपने-अपने ढगसे पूर्ण ही है। वह अपने अुचित स्थान पर, अुचित स्थितिमे और अुचित गतिमे है। मनुष्य कर्म करे तो भी ठीक, न करे तो भी ठीक। आविर्भावकी दृष्टिसे अुन्नति-अवनति, नीति-अनीति आदि केवल कल्पनाये है। माया न होनेसे यहा भ्राति नही। वन्धन न होनेसे मोक्ष नही। जहा सव कुछ अनिवार्य ही है, वहा किसे बधन और किसे मोक्ष कहा जाय? आविर्भावका ज्ञान होना या न होना दोनो आविर्भावकी ही स्थितिया है, अिसलिअे दोनो अेक ही है। शुद्ध, वुद्ध, नित्य सनातन अेक ही तत्त्व अनेक रूपसे सजाया हुआ है। अुसका भान रहे और चित्तकी शान्ति वनी रहे, अिसलिअे महावाक्यका स्मरण रखना चाहिये। परन्तु न रखे तो भी मूलभूत तत्त्वमे या अुसके आविर्भावमे फर्क नही पडता।" अुनके अिस तत्त्वज्ञानमे सद्गुणोका आग्रह न होनेसे, जैसा हो वैसे ही जीवनको पूर्ण माननेके लिअे अिसी प्रकारकी विचारसरणी प्रस्थापित करनेमें अुनकी तर्कशक्ति काम करती रहती है। वैल, घोडा, पेड, पत्ते, फूल, घासका तिनका जो कुछ अुनकी नजरमें आये अुसी पर अपनी तार्किकता लगाकर वे अपना तत्त्वज्ञान और अपना मत दृढ करते रहते हैं। ये प्राणी, ये वस्तुयें जैसी है अुससे अधिक अच्छी क्यो नही है, यह प्रश्न या शका अज्ञान है। कोअी चीज वाहरसे चाहे जैसी

दीखती हो तो भी वह अुसका नाशवान स्वरूप है। सब चीजोंके बाह्य आविर्भाव क्षण-क्षण बदलते रहते हैं और वैसे ही बदलते रहेंगे। अिसलिअे विश्वकी सब चीजोंका अिस क्षण जो स्वरूप होना चाहिये, जिस स्थान पर अुन्हें होना चाहिये, अुसी स्वरूप और अुसी स्थानमें वे हैं। मैं भी अिस देहके आविर्भावके रूपमें जहां जैसा होना चाहिये वहीं और वैसा ही हूं। यह सृष्टि और मैं — सब यथा-तथ है। अिसीमें समाधान है। मैं अैसा क्यों और वैसा क्यों नहीं, यह विचार ही अज्ञान, दुःख और असमाधानका कारण है। अिसे चित्तमें न अुठने देना ही सच्चा साधन है; और यह न अुठे, यही सच्ची ज्ञानावस्था है। यह घासका तिनका कभी कहता है कि मैं अपूर्ण हूं? तो फिर मनुष्य होकर भी मुझे अपने आपको अपूर्ण क्यों समझना चाहिये? अुपनिषद्में कहा है:

> ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
> पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

(यह पूर्ण है, वह पूर्ण है, पूर्णमें से पूर्ण निकलता है, पूर्णमें से पूर्ण लेनेसे पूर्ण ही बाकी रहता है।) अिस श्लोकका रहस्य जब तक चित्त पर पूरी तरह जम नहीं जाता, तभी तक पूर्ण-अपूर्ण, ज्ञान-अज्ञान, अुन्नति-अवनति, सद्गुण-दुर्गुण, शुद्धि-अशुद्धिके भेद रहेंगे। यह रहस्य मालूम हो जानेके बाद भेद किसका और अुसे कौन मानेगा? सत्य ज्ञान, सत्य सिद्धान्त, 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' है।

अैसे साधक अपनी मनःस्थिति अैसी बनाते रहते हैं। अुन्हें अिस स्थितिके कारण अेक प्रकारका सन्तोष मिलता रहता है, क्योंकि अिस स्थितिमें अुन्हें अैसा लगता है कि सब कर्तव्योंसे, सारी जिम्मेदारियोंसे बिना कुछ किये ही छूट गये। अिस स्थितिमें मरजी हो तो अुपाधि ली जाय, न हो तो न ली जाय, प्रिय लगे अुस विषयमें मनको जाने दिया जाय, रम्य और आनन्दप्रद लगे सो किया जाय, अिस स्थितिमें

मनको कभी अैसा नही महसूस होता कि कोअी भी वात, कोअी भी काम आग्रहपूर्वक पूरा करना चाहिये। अैसी किसी झझटमें नही पडना चाहिये, जिससे चित्तका स्वास्थ्य जाता रहे। अैसी जीवनपद्धति रखनेके वाद अुसमे दुख और चिन्ताकी गुजाअिश नही रहती। अिसलिअे यह माननेका भ्रम स्वभावत हो सकता है कि यह ज्ञानकी परमावस्था है। हमारे देशमे अिस प्रकारकी विचारसरणीवाले पथ मौजूद है। अुनमे कोअी वुद्धिमान होता ही नही सो वात नही। परन्तु आम तौर पर आलसी, जडवुद्धि, पुरुपार्थहीन और अपने भीतरका कोअी भी दोष दूर न करके कोअी आध्यात्मिक विशेषता प्राप्त करनेकी महत्त्वाकाक्षा रखनेवाले वहुत वडी सख्यामे होते हैं। अिम मार्गमे अुन्हे निरुपाधिकता लगती है और प्रतिष्ठाकी महत्त्वाकाक्षाकी भी किसी हद तक तृप्ति होती है।

जीवन-कर्तव्य

परन्तु अिस विचारसरणीसे हर तरहके दोषको आश्रय मिलता है और अुसका पोषण होनेकी भी अिसमे भरपूर गुजाअिश रहती है। अिसलिअे कहना पडता है कि जिस विचारसरणीसे हम अपनी मानवता, अुसके फर्ज और अपना ध्येय भूल जाते है, वह तत्त्वज्ञान नही परन्तु वड़ा भारी भ्रम है। जिससे चित्तकी शुद्धि और सद्‌गुणोका सवर्वन न किया जा सके, जिसमें अपने-परायेका भाव प्रत्यक्ष आचरणमें कम करनेकी शक्ति नही, जिसमे विवेक, नम्रता और सेवावृत्ति जैसे सद्‌गुणोका महत्त्व नही, जिसमें कर्तृत्व और पुरुषार्थकी वृद्धिकी गुजाअिश नही, वह विचारसरणी या तत्त्वज्ञान या साधन कितना ही दिव्य, आकर्षक या रम्य लगे, तो भी मानव-जीवनको सफल करनेका अुसमें सामर्थ्य नही है। मानव-मनमें अनेक प्रकारके मोह प्रकट या सुप्त रूपमें निवास करते है। अतर्मुख हुअे विना, शुद्ध विवेक सूझे विना हम अपना मोह जान नही सकते। मानव-शरीरमें रहनेवाली सव शक्तियोकी शुद्धि और वृद्धि करके अपनी

पूर्णता प्राप्त करना जीवनका हेतु है। चित्तको शुद्ध करते करते और सद्गुणोंकी वृद्धि करते करते जब तक हमारा अहंकार नष्ट न हो जाय और वे सद्गुण ही हमारा स्वभाव न बन जायं, तब तक हमें आगे बढते रहना है। अैसी कल्पनामें न रहकर कि हम अकेले ही किसी श्रेष्ठ भूमिका पर आरूढ हैं हमें अिस प्रकारका कर्मयोग सिद्ध करना चाहिये, जिससे हम और हमारे आसपासका मानवसमाज सतत अुन्नत होता रहे। यह कर्मयोग ही मानवधर्म है। अिस कर्मयोगका आचरण करते हुओे हम सब अपनी अुन्नति करें, यही हमारा जीवन-कर्तव्य है।

११

साध्य-साधन विवेक — २

निर्विकारताका भ्रम

मानवताके मार्गमें जैसे धर्मविरुद्ध भोग, लालसा और व्यक्तिगत स्वार्थ बाधक हैं, अुसी तरह वैराग्य और जितेन्द्रियताकी गलत कल्पनायें भी बाधक हैं। सब अिन्द्रियोंके बारेमें मनुष्यको स्वाधीनता प्राप्त करनी है, अिसलिअे हरअेक पहलूका विचार करके अुसके सम्बन्धमें अपने निर्णय विवेकपूर्वक करने चाहियें। खास तौर पर ब्रह्मचर्य-सम्बन्धी हमारे आदर्शमें केवल काल्पनिकता हो तो असके अनिष्ट परिणाम होनेमें जरा भी देर नहीं लगती। कारण, अिस बारेमें भूलका पर्यवसान अन्तमें दम्भमें होता है। और अिस विषयमें भ्रम और दम्भकी जितनी वृद्धि हो सकती है, अुतनी दूसरे विषयों-सम्बन्धी गलत मान्यताओंके कारण नहीं हो सकती।

ब्रह्मचर्य और जितेन्द्रियत्व सम्बन्धी गलत विचारसरणीसे संपूर्ण निर्विकारताकी अतिशयताका काल्पनिक ध्येय निर्माण हुआ है। कुछ

साधक अिस प्रकारकी कल्पनामे फसकर अुसे पूरा करनेके पीछे लग जाते है। अुनका यह विश्वास होता है कि चूकि आत्मा निर्विकार है और हमी आत्मा है, अिसलिअे सब तरफसे अपनी निर्विकारताका अनुभव हुअे बिना हम मोक्षके अधिकारी नही होगे। अिस विश्वासके कारण वे गलत आदर्शों और साधनोमें फस जाते है। अुन्हे अिस विषयमे अपने आदर्श तय करनेसे पहले अिस बातका विचार करना चाहिये कि मनुष्यमे काम, क्रोध और लोभ क्या चीजे है? ये विकृतिया ही है या प्रकृति-स्वभाव है? अिनके द्वारा मानव-शक्तिका प्रगटीकरण होता है या केवल ह्रास ही होता है। अिन शक्तियोको अुचित मार्गसे लगा दिया जाय और अुनका अुचित कार्यमें अुपयोग किया जाय, तो मनुष्य अुन्नत हो सकेगा या नही? अुचित विचार और अुचित साधनसे अिन शक्तियोकी शुद्धि की जा सकती है या नही? हम जिसे विकार कहते है अुसके पीछे निसर्गका कोअी हेतु है या नही? यदि है तो क्या? अुसे मानव-जीवनके लिअे अुपयोगी और लाभदायक बनाया जा सकता है या नही? विकारोको पूरी तरह मिटा देनेकी जरूरत है या अुन्हे क्षीण और शुद्ध करके अपने अधीन रखनेकी जरूरत है? और अिनमे से कौनसी बात मनुष्यके लिअे प्रयत्नसाध्य है? वगैरा प्रश्नो पर गहरा विचार करना चाहिये।

अैसा खयाल होता है कि हम पर विकारोका वर्चस्व कायम हो जाने पर अुनकी धुनमे चाहे जैसा आचरण करनेके कारण होनेवाले अनर्थ और अुनके लिअे होनेवाले पश्चात्तापसे प्रतिक्रियास्वरूप अुत्पन्न हुअी वैराग्यकी भावनासे हम किसी समय निर्विकारताकी अतिशयताके ध्येय पर आये है। अिस बारेमे अनुभवात्मक दृष्टिसे बार-बार विचार करनेकी जरूरत होने पर भी परम्परासे चली आ रही श्रद्धाके कारण और साथ ही शोधकताके अभावके कारण हम अुस दिशामें सोचते नही। अिसलिअे अेक बार मान लिये गये गलत आदर्शोको हम ज्योके त्यो मानते आये है। सयम, ब्रह्मचर्य और

जितेन्द्रियताके पीछे पड़े हुये प्रामाणिक साधकको अुचित प्रयत्नसे अिस हद तक सफलता प्राप्त हो सकती है कि अुसके विकारोंका बल क्षीण हो जाय। अुस स्थितिमें भी वह यम-नियम और सदाचारका सतत पालन करके अपना अभ्यास जारी रखे, तो अुसके विकारोंका अवशिष्ट संस्कार भी अत्यन्त क्षीण हो जाता है और अुसका चित्त सहज ही अुसके अधीन रह सकता है। असी स्थितिमें भी किसी साधकके चित्तमें किसी अंतर्बाह्य कारणसे विकारोंका आवर्त अुठे, तो भी अुसे घबराये बिना संयमशील रहकर चित्तको शांत करना चाहिये। अिस प्रकार वह अपना निश्चय और प्रयत्न जारी रखे, तो अुसके जीवनमें स्वाभाविकता आने लगती है। जीवनमें शुद्ध व्यवहार और अुन्नतिके लिअे जितनी निर्विकारता जरूरी है और वह काफी है। परन्तु अिससे आगे बढ़कर जो साधक जान-बूझकर प्रतिकूल संयोग निर्माण करते हैं और अुनके द्वारा अपनी निर्विकारताकी परीक्षा और कसौटी करनेके भ्रममें पड़ते हैं, वे यम-नियम, सदाचार और नीतिके पालनमें शिथिल हो जाते हैं और अिसका परिणाम आगे जाकर खुद अुनके लिअे और दूसरोंके लिअे भी अनर्थकर ही होता है। अिस प्रकार अतिशयताके पीछे पड़े हुअे साधक अपने साधनमें फंस जाते हैं। फंसनेके बाद अधिकाधिक मोहमें पड़कर दम्भका आश्रय लेते हैं। अिन्हींमें से कभी-कभी वाममार्गके सम्प्रदाय पैदा होते हैं। अिसमें शक नहीं कि अिन सबका कारण ध्येय-सम्बन्धी हमारे गलत खयाल हैं।

संभाव्य ध्येय और अुसकी साधना

अिसके बजाय जीवनका ध्येय अुचित हो, संभाव्य हो, अुसके लिअे पात्रताके अनुरूप अुचित मार्ग और साधन मिल जाय, तो कोअी भी मनुष्य कभी भ्रममें न पड़ेगा। भ्रम न हो तो फिर दम्भका कारण न रहे और अुसका डर भी न रहे। अिसलिअे जीवनका ध्येय अुचित होना चाहिये। वह विवेकसे परखा हुआ और न्याय्य तथा धर्म्य होना चाहिये। वह

अितना अुदात्त होना चाहिये कि अुसकी तरफ जाने पर मानवी सद्गुणोका सहज अुत्कर्ष हो। अुसके बारेमें यह विश्वास होना चाहिये कि वह किसी भी समय अपना और साथ ही मानव समाजका कल्याण ही करेगा। अुसका साधन जनसमाजकी नीतिमत्ताकी भावनाके लिअे किसी भी प्रकारसे बाधक या विघातक न होना चाहिये। अुल्टे, अुसमें मौजूदा नीतिमत्ताको अधिकाधिक शुद्ध करते रहनेका स्वाभाविक सामर्थ्य होना चाहिये। साधनमे कठिनता हो, मर्यादा हो और नियमन हो तो भी कोअी आपत्ति नही, परन्तु अुसमे असभ्यता, अुच्छृखलता या अशुद्धता न होनी चाहिये। अुसके कारण आलस्य, जडता और अहकार पैदा न होने चाहिये। अुसमे अैसी सरलता होनी चाहिये कि कोअी भी मनुष्य अपनी पात्रताके अनुसार साधन स्वीकार करके ध्येयकी दिशामें प्रगति कर सके। अिस प्रकार ध्येय और साधनके बारेमें स्पष्टता और शुद्धता हो, तो अुसमे भ्रम और दम्भ पैदा होने या बढनेका कारण ही नही रहता।

प्रकृतिगत तत्त्वोंकी शुद्धि

मनुष्य जिन मूलभूत तत्त्वोसे बना है, जिस प्रकृति-धर्मके अनुसार अुसके शरीर, मन, बुद्धि और प्राण बने हुअे है और जिस धर्मके अनुसार अुनका पोषण-सवर्धन होता है, वे तत्त्व और वे धर्म किसी न किसी रूपमे अुसकी प्रकृतिमें हमेशा होगे ही। जो वृत्तियां, जो वासनाये, जो विकार मनुष्यके असख्य पूर्वजोसे चले आये है और अुसकी अुत्पत्तिका कारण बने है, वे अेक न अेक रूपमे अुसमें अवश्य दिखाअी देते रहेगे। यह समझना भ्रम है कि माता-पिताकी जो वृत्तिया हमारे जन्मका कारण बनी है, वे हमारे खूनमें हमेशाके लिअे मिट जायगी, और यह समझना महाभ्रम है कि अैसा हो गया है। अिस भ्रमसे ही दम्भ पैदा होता है। भ्रमका कारण मोक्ष सम्बन्धी महत्त्वाकाक्षा और दम्भका कारण क्षुद्र अभिलाषा और अहकार है। हमारे पूर्वजोकी तरफसे हमे जिन तत्त्वो और

वृत्तियोंका अुत्तराधिकार मिला है, अुनमें से किसीका भी हम संपूर्ण नाश नहीं कर सकते। अुनमें से जो वृत्तियां हमें अनिष्ट लगती हैं, अुन्हें ज्यादासे ज्यादा हम क्षीण कर सकते हैं, शुद्ध कर सकते हैं। चित्तवृत्तियोंका थोड़े समय तक लय कर सकते हैं, परन्तु अुनका संपूर्ण नाश कभी नहीं कर सकते। सृष्टिका यह धर्म नहीं, प्रकृतिका यह नियम नहीं। शुद्ध विवेक, अपने और दूसरोंके अनुभवोंका सूक्ष्म निरीक्षण, परीक्षण, पृथक्करण, वर्गीकरण वगैरा किये बिना ये बातें हमारे ध्यानमें नहीं आयेंगी।

मानव-मनके शोधनकी जरूरत

निर्विकारताके गलत आदर्श और मोक्षकी अभिलाषाके कारण मानव-मनका जैसा शोधन, निरीक्षण, पृथक्करण वगैरा होना चाहिये वैसा करनेकी तरफ अभी तक हमारे मनकी प्रवृत्ति नहीं हुअी। अिसलिये निर्विकार या जितेन्द्रिय होनेका प्रयत्न करनेवालोंके अुस विषयके सच्चे अनुभव, अुनके रास्तेमें आये हुअे विघ्न तथा अुन्हें मिली हुअी सफलता-असफलता वगैराका हमें कुछ पता नहीं चलता। भ्रम, अज्ञान, दम्भ, शोधकपनका अभाव अित्यादि कारणोंसे अिस विषयका शास्त्र तैयार नहीं हो सकता। अविवाहित अध्यात्मवादी ब्रह्मचारी माना जाता है। और, अुसी परसे यह समझकर कि अुसे आत्मप्राप्ति या ब्रह्मप्राप्ति हो गअी है, लोग अुसे मोक्षका अधिकारी मानते हैं। वह भी अैसा ही दिखाता है कि वह निर्विकार है। परन्तु अिससे अुनके सम्बन्धमें निर्विकारताका भ्रम कायम रहता है और दम्भकी गुंजाअिश रहती है। जब तक हमारी और लोगोंकी नीतिमत्ताके बारेमें हमारे चित्तमें सच्ची चिन्ता पैदा न होगी और शुद्ध विवेक करना हम सीख न लेंगे, तब तक धार्मिक, अीश्वर-सम्बन्धी और आध्यात्मिक बातोंमें हमारे काल्पनिक ध्येय वैसे ही रहेंगे। वैराग्य, निर्विकारता, ब्रह्मचर्य और जितेन्द्रियत्वके बारेमें हमारी गलत कल्पनायें वैसीकी वैसी ही रहेंगी। भ्रम और

दम्भ यो ही बने रहेगे। अगर हमे यह लगता हो कि यह स्थिति बदलनी ही चाहिये, तो जीवनके ध्येयके बारेमें हमे परम्परागत दृष्टि छोडकर विचार करना ही चाहिये।

मानव-धर्म

हमे अपना आदर्श और आजका धर्म निश्चित करते आना चाहिये। अिसके लिअे हमे मानव-जातिका अितिहास, मानव-जातिकी आजकी स्थिति और मनुष्यका मानस — अिन सबका विचार करना चाहिये। मनुष्यमे रहनेवाली तमाम शारीरिक, बौद्धिक और मानसिक शक्तिया; व्यक्तिगत, कौटुम्बिक, सामाजिक, धार्मिक या राष्ट्रीय हेतुसे अुन-अुन क्षेत्रोमे होनेवाला अुन सबका अुपयोग और अुसके परिणाम, मनुष्यके सुख-दु ख, अुसकी आशाये, आकाक्षाये और अभिलाषाये, मनुष्य मनुष्यके बीचका और अन्तमे बडे-बडे मानव-समूहोके बीचका सहयोग और सघर्ष वगैरा अनेक बातोको ध्यानमे रखकर मनुष्यमात्रका ध्येय क्या होना चाहिये, अिसका हमें विचार करते आना चाहिये। किस ध्येय और साधनसे मनुष्य-जातिका दु ख कम होगा और अुसे स्थायी सुखकी ओर — कमसे कम लम्बे समय तक टिके रहनेवाले सुखकी ओर — ले जाया जा सकेगा, मनुष्यमात्रकी शक्तिका यथायोग्य विकास होता रहेगा, अुसकी वृद्धिके साथ साथ शुद्धि भी की जा सकेगी, अपनी अुचित जरूरते अीमानदारीसे पूरी करनेके लिअे हरअेकको अुचित साधन और अवसर मिलते रहेगे, सबको परस्पर अुन्नति करनेवाला तथा समाधान और प्रसन्नता देनेवाला सहयोग और सहवास मिलता रहेगा; अेक-दूसरेके साथका सघर्ष कम होगा, — यह सब हमे ढूढ निकालना चाहिये। आज मानव-समाजको अिस प्रकारकी परिस्थितिकी और अुसे निर्माण कर सकनेवाली योजनाकी जरूरत है। वह योजना ही मानव-धर्म है। अुस मानवधर्मका आचरण करनेके लिअे ही हमारा जन्म है। मनुष्यकी शक्तियोकी वृद्धि और शुद्धि मानवधर्मसे ही होगी। मनुष्य-मात्रमे रहनेवाली सघर्ष, द्वेष, वैर आदि दुर्भावनायें नष्ट होकर अुनके स्थान पर सामूहिक प्रेम, सामूहिक कल्याण, सामूहिक अुन्नति वगैरा

सद्भावनायें जाग्रत होंगी और अुनका विकास अिस मानवधर्मसे ही हो सकेगा। अिस धर्मका अनुसरण करनेसे ही मनुष्य व्यक्तिगत सुख और अुत्कर्षकी सकुचित कल्पनामें निकलकर हरअेक बातका व्यापक रूपमें — सामूहिक कल्याणकी दृष्टिसे — विचार करना सीखेगा। मनुष्यमें रहनेवाली विविध शक्ति-बुद्धिका, सद्भावनाओंका और मानव-जीवनके ध्येयका अिस दृष्टिसे विचार करने पर प्रचलित भक्ति, ज्ञान, योग आदि मार्गों और साधनोंमें प्राप्त होनेवाले व्यक्तिगत लाभ सकुचित और काल्पनिक मालूम होते हैं।

आस्तिकता और नास्तिकताकी व्याख्यायें

धन, विद्वत्ता, कीर्ति, स्त्री-पुत्र आदि परिवार द्वारा सुखी होनेकी अिच्छा करनेवालोंको हम अज्ञानी और मोहवश मानते हैं। अलग अलग अिन्द्रियों द्वारा सुखानुभव करते रहनेसे जीवन कृतार्थ होगा, अैसा माननेवालोंको हम विषय-वासनाओंके गुलाम मानते हैं। हम यह समझते हैं कि सत्ताकी मददसे सारे सुख अपने हाथमें रखनेकी अभिलाषा या महत्त्वाकाक्षा रखनेवाले सत्ताके मदमें हैं। परन्तु अीश्वरदर्शन, अीश्वरप्राप्ति, आत्मदर्शन, निर्विकार अवस्था वगैराके पीछे लगे हुअे लोग परम्पराके कारण या पूर्ण विवेक न करनेके कारण जीवनका ध्येय निश्चित करनेमें भूल करते हैं, यह कहा जाय तो हमें मंजूर नहीं होता। अिन सब ध्येयोंमें कहां और किस तरह गलत खयाल घुसे हुअे हैं, अिसकी हम कभी जांच नहीं करते। क्योंकि अिन ध्येयों और जिस मोक्षके लिअे अिन्हें धारण करना होता है, सबके लिअे हमारे मनमें अत्यन्त श्रद्धा होती है। अिसलिअे अुसके बारेमें शंका करनेमें किसीको नास्तिकता लगती है, श्रद्धाहीनता लगती है तो किसीको अपनी दुर्गति होनेका डर लगता है। परन्तु अिस मामलेमें हमें विश्वास रखना चाहिये कि जीवन सम्बन्धी हमारे माने हुअे ध्येयोंकी जांच करके देख लेनेमें हानिका कुछ भी डर नहीं। ज्ञान और विवेकका जीवनमें बहुत ही

महत्त्व है। ध्येयकी जाच करनेसे हमारे ज्ञानकी वृद्धि होती हो, हमारी गलत धारणाये या मान्यताये हमारे ध्यानमे आती हो, तो अिससे हमारी दुर्गति होनेका डर रखनेका कारण नही है। जब तक हम चित्तशुद्धिको महत्त्व देते है; विवेक, नम्रता, क्षमा, दया, सयम वगैरा गुणोके आराधक है; जब तक अीश्वरनिष्ठा हमारे हृदयमे जाग्रत है, और सबसे महत्त्वकी बात तो यह कि जब तक हम मानवताके अुपासक है, तब तक हमे किसी भी अनिष्टका डर नही है और न नास्तिकताकी शका रखनेका ही कोअी कारण है। नास्तिक वह है जो अपने शरीरको ही सर्वस्व मानता है और अुसे सुखी करनेके लिअे जिसे दुष्टता, क्रूरता, अन्याय या कोअी भी नीच काम करना जरा भी नही खटकता। जिसे जीवकी अपेक्षा जडका मूल्य अधिक लगता है वह नास्तिक है। फिर भले ही वह किसी भी धर्मग्रथको या अीश्वर, आत्मा, परमात्मा वगैरा किसीको भी माननेवाला हो या न हो। आस्तिकता-नास्तिकताका अिसके साथ कोअी सम्बन्ध नही। जो दूसरेका दु ख नही जानता, विवेक, नम्रता, दया, सेवावृत्ति आदि गुण जिसके हृदयमे नही; दूसरेका सुख देखकर जिसे सन्तोष नही होता, अुल्टे मत्सरसे जिसका हृदय जलने लगता है, वही दरअसल नास्तिक है। मानवताकी दृष्टिसे नास्तिकताकी यह व्याख्या है। अिस पर विचार करके सर्वोच्च और पवित्र माने हुअे हमारे ध्येयोकी जाच करना चाहिये। अुन्हे शुद्ध, अुदात्त और सत्यपूर्ण बनानेमें हमारा अकल्याण नही परन्तु निश्चित रूपमे कल्याण ही है।

मोक्षसिद्धिके बारेमें शका

केवल मोक्ष सम्बन्धी कल्पनाका विचार करे तो यह मालूम होता है कि हममें मोक्षसिद्धिको माननेवाले जो अनेक सम्प्रदाय है, अुन सबके तात्त्विक विचारो और साधनोमे अेकवाक्यता नही है। अेक कहता है कि ब्रह्मचर्यादि पाच महाव्रतोका निरपवाद पालन हुअे बिना मोक्ष नही मिलता, तो दूसरा निश्चित रूपमे यह मानता

है कि निष्काम बुद्धिसे हिंसा करने या अलिप्त होकर सारे भोग भोगते रहनेसे मोक्षप्राप्तिमें बाधा नहीं पड़ती। अेक कहता है कि कर्मक्षयके बिना जन्म-मरण नहीं टलते, तो दूसरा यह प्रतिपादन करता है कि संसारमें कमलवत् रहें तो मोक्षमें कोअी रुकावट नहीं आती। मोक्षके लिअे अेक वैराग्यकी पराकाष्ठा करता है, तो दूसरा यह मानता है कि मोक्ष वाममार्ग द्वारा ही मिलेगा। अेक नैष्ठिक ब्रह्मचर्यको मोक्षप्राप्तिके साधनके रूपमें अत्यन्त महत्त्व देता है, तो दूसरा मरते दम तक परिपूर्ण अैश्वर्य और अनेक स्त्री-पुत्रोंके परिवारमें रहकर मोक्षका विश्वास रखता है। अिन सब बातोंसे यह शंका होती है कि मोक्ष किसी खास तरहके रहन-सहन या आचरण द्वारा मरनेके बाद प्राप्त होनेवाली निश्चित अवस्था नहीं, परन्तु अपने-अपने परम्परागत विश्वाससे मानी हुअी केवल कल्पना तो नहीं होगा? और, मरनेके बाद किसे मोक्ष प्राप्त हुआ या किसकी क्या गति हुअी, यह समझनेका कुछ भी साधन या ज्ञान किसीको अुपलब्ध न होनेके बावजूद हरअेक साम्प्रदायिक अपनी-अपनी साधन-प्रणालीके जोर पर मोक्षके बारेमें विश्वास रखता है, अिसका कारण क्या अपनी मानी हुअी कल्पनाके प्रति अुसकी श्रद्धा ही नहीं है? अिन सब शंकाओं पर हमें विचार करना चाहिये और अपनी मान्यता, ध्येय और साधनमें जो भी वाञ्छनीय परिवर्तन किये जा सकें, कर लेने चाहियें। केवल अपनी कल्पना या अनुभवमें मग्न रहनेसे यह बात सिद्ध नहीं होगी। हमें अनुभवको जाग्रत रखकर, तटस्थ होकर और शोधक बनकर अुसकी जांचका कार्य करना चाहिये। वृत्ति, कल्पना, तर्क, अनुमान, अनुभव आदि सारे भेद हमें जानने चाहियें। जो सत्यकी खोज करना चाहते हैं, धर्ममय जीवनका आग्रह रखनेवाले हैं, अुनका आनन्दके अुपासक बननेसे काम नहीं चलेगा। साधनके अन्तमें होनेवाले अनुभवमें या अनुभवके आनन्दमें ही जो लीन हो जाता है, अुसके द्वारा सत्य-शोधन नहीं हो सकता। अिसलिअे हमें अिस विषयके शोधक बनना चाहिये।

मनुष्यत्व ही हमारी स्थायी अवस्था है

दु खको टालने और सुख पानेके लम्बे समयके प्रयत्नसे मनुष्यको पता लगा कि वह सर्वथा दु खरहित सुख अिस लोकमे या अिस जन्ममे प्राप्त नही कर सकता। अत अिसके लिअे अुसने स्वर्ग या दूसरे लोकोकी कल्पना की। लेकिन अुससे भी मनुष्यको अिस विषयमे सन्तोष नही हुआ। अिसलिअे वह अिस निर्णय पर पहुंचा कि दु ख नही चाहिये तो मनष्यको सुख भी छोडना चाहिये, और यदि सुख न छोडा जा सके तो दु खको स्वीकार करना ही चाहिये। अैसा लगता है कि अिस प्रकार अपने अुत्तरोत्तर चढनेवाले अनुभव परसे मनुष्य अिस सम्बन्धके अपने निर्णयोको बदलते-बदलते जन्ममरणसे मुक्त होनेकी कल्पना तक आया होगा। कुछ ज्ञानी पुरुषोने सुख-दु खको समान माननेका अुपदेश किया है। अुसका आशय यह है कि मनुष्यको केवल वैयक्तिक सुख-दु खका विचार न करके अपने कर्तव्यका, धर्मका विचार करना चाहिये। व्यक्तिगत सुख-दु खके हेतुसे ही मनुष्य आचरण करता रहे, तो वह सबके लिअे कल्याणप्रद धर्मका पालन नही कर सकेगा। अितना ही नही अन्तमें व्यक्तिगत मानसिक सन्तोष भी अुसे प्राप्त नही होगा। अिसलिअे सुख-दु खको समान मानना अुसे सीखना चाहिये। अुसका रहस्य ध्यानमें रखकर मनुष्यको तात्कालिक और व्यक्तिगत सुख-दु खको महत्त्व न देते हुअे सामूहिक सुख-दु खका विचार करना चाहिये था और चित्तकी शुद्धि और सद्‌गुणोकी वृद्धिका आग्रह रखकर मानवता प्राप्त करनेका विचार और प्रयत्न करना चाहिये था। अुसे सुख-दु खकी सकुचित कल्पनायें फेककर आत्मीयताकी व्यापक कल्पना धारण करनी चाहिये थी। परन्तु अैसा न करके अुसने अुल्टे अपने ही जन्म-मरणसे मुक्त होकर सुख-दु.खसे छूटनेका प्रयत्न जारी रखा। यह मानकर कि अिस जन्मके मनुष्यत्वका भान नष्ट किये विना जन्म-मरण नही मिटेगा, मनुष्यने औश्वर-विषयक

कल्पनाके साथ तद्रूप होनेका प्रयत्न करके हम औश्वरके साथ समरस हो गये अैसा माना; हम आत्मरूप, सत्-चित्-आनन्दस्वरूप हैं अैसा निश्चय किया, चित्तका लय करके मनुष्यत्वका भान भुलाया; यह धारणा रखकर कि हमी अनन्त ब्रह्माण्डमें — विश्वमें — व्याप रहे हैं, अैसा माना कि हमी ब्रह्मस्वरूप हैं; अपने मनुष्यत्वका विचार छोडकर अपने बारेमें दूसरी बडी-बड़ी विशाल और दिव्य कल्पनायें करके अुन्हें चित्त पर जमानेके लिअे तरह तरहकी कोशिशें कीं, परन्तु अिनमें से अेक भी प्रयत्न द्वारा वह अपने मूल मनुष्यत्वको नहीं भुला सका। अिस विषयमें अुसे अभी तक जरा भी सफलता नहीं मिली। अिसलिअे हमारी मानवता ही हमारी सच्ची, स्थायी और कभी न छोडी या भुलाअी जा सकनेवाली अवस्था है। अिसलिअे अिसमें शक नहीं कि अुसी मानवताको पूर्णता तक ले जानेका प्रयत्न करना हमारा कर्तव्य है और अुसमें सफलता प्राप्त करना ही मानव-जन्मका ध्येय है। अिसमें किसी भी तरहकी केवल मानी हुअी कल्पना नहीं है। अिसमें मरनेके बाद प्राप्त होनेवाले ध्येयकी बात नहीं। अिसमें किसी किस्मका भ्रम नहीं, अिसलिअे अिसमें दम्भके लिअे भी स्थान नहीं, गलतफहमीकी भी गुंजाअिश नहीं। अपनी शक्ति-बुद्धि और मानसिक भावनाओंका अुत्कर्ष करते करते, चित्तकी शुद्धि करते करते और सद्गुणोंकी वृद्धि करते करते अपनी मानवताका विकास करना ही हमारा जीवनकार्य है।

मानवताकी शुद्धि और वृद्धि ही ध्येय है

अिस प्रयत्नमें मनुष्य दुःखसे सर्वथा न भी बच सके, तो भी अुसके लिअे निराश होनेका कोअी कारण नहीं। अितनेमें वह मनुष्यतासे ही अूब जाय तो काम नहीं चल सकता। हमें अिसका विचार करना चाहिये कि हम स्वयं अज्ञान, मोह, लालच, क्षणिक और क्षुद्र सुखकी स्पृहा, और साथ ही अपने दोषों और दुर्गुणोंके कारण कितने दुःख निर्माण करते हैं। अिसी तरह अिसका भी विचार

करना चाहिये कि अपने ही जैसी मानसिक स्थितिवाले समाजकी तरफसे कितने दुःख निर्माण होते है। हमारे और दूसरोके दोषोके कारण और हम सबमे मानवताका विकास न होनेके कारण जो दुःख हम सबको भोगने पडते है अुनका कर्ता कौन है? परमेश्वर या हम? अिसका हमें विचार करना चाहिये। अुन दुःखोके हमी सब मिलकर यदि कर्ता हो, तो हमारे ही निर्माण किये हुअे दुःखोसे डरकर और तंग आकर मर जानेके बाद मोक्षकी अिच्छा और आशा करनेका क्या अर्थ है? अिसलिअे दुःखसे छूटनेके लिअे औश्वरस्वरूप, आत्मरूप या ब्रह्मरूप बननेका प्रयत्न न करके, या हम वैसे है अैसी मान्यता न रखकर, जन्मसे प्राप्त हुअे अपने मनुष्यत्वको कायम रखकर हम सब अुसीकी शुद्धि-वृद्धि करनेका प्रयत्न करे, तो आजके मानवी दुःखोका सम्पूर्ण अन्त न हो सकने पर भी हमारे ही दोषोके कारण पैदा होनेवाले कितने ही दुःख नष्ट हो जायगे, कितने ही दुःख सह्य बन जायगे और कितने ही दुःखोमे निहित दुःख-सम्बन्धी कल्पनाये नष्ट हो जायगी। अज्ञान चला जाय, ज्ञान जाग्रत हो जाय, कर्तव्यनिष्ठा स्थिर हो जाय, चित्तकी शुद्धि हो और सद्‌गुण और पुरुषार्थकी वृद्धि होने लगे, तो सुख-दुःख सम्बन्धी हमारी पहलेकी कल्पनाये और व्याख्याये भी बदल जायगी। हममें प्रेम और विश्वास, मैत्री और अुदारता, अैक्य और सद्‌भाव बढते जाय, तो अेक-दूसरेके लिअे सहन किये जानेवाले कष्टोमे भी हमें धन्यताका अनुभव होगा। यह कल्पना हमे छोड देनी चाहिये कि मानव-जीवन केवल सुखमय ही होना चाहिये। औमानदारीसे जीवन बितानेके लिअे जो कष्ट और परिश्रम अुठाने पडते है, अुन्हे दुःख मानना हमारे लिअे ठीक नही। कर्मेन्द्रियो या ज्ञानेन्द्रियो पर पडनेवाले खिचाव और अुसके परिणाम-स्वरूप होनेवाली कुछ प्रतिकूल सवेदनाओको हमें दुःख नही समझना चाहिये। अुनसे अनुचित अुपायो द्वारा बचनेकी हमें कोशिश न करनी चाहिये। हमें देखना चाहिये कि अुस खिचावके कारण और साथ ही

प्रतिकूल सवेदनाओंके परिणामस्वरूप हम अुन्नत होते है या नही। अगर अुन्नत विचारोंसे हम वह खिचाव और प्रतिकूल सवेदनायें शान्त कर सके, तो यह निश्चित समझनेमें हर्ज नही कि अुससे हमारी अुन्नति ही हुअी है। अिस प्रकार मानव जीवनका, अुसके दु:खो और कठिनाअियोका विचार करके अुनमें से भी अपनी अुन्नति करनेका रास्ता हम निकाल सके, तो आजके दु ख हमें भयंकर नही लगेंगे। हमें अिसका यकीन हो जायगा कि मानवता प्राप्त करना ही हमारा ध्येय है। हम मरणोत्तर दशाके बारेमें निश्चिन्त हो जायंगे। अिस प्रकार हमें सच्चे मानवधर्मका दर्शन होगा, तो अिसमे शक नही कि अुसीका आचरण करके हम सब कृतकृत्य होगे।

१२

व्यक्त-अव्यक्त विचार — १

संचालक शक्तिके बारेमें शंका और प्रश्न

ज्ञानपूर्वक और अिच्छापूर्वक विश्वकी अुत्पत्ति, स्थिति और लय करनेवाली सचालक और शासक शक्ति है या नही? यदि हो तो अुसका स्वरूप क्या है? अुसके लिअे ठीक सज्ञा क्या काममें ली जा सकती है? अित्यादि प्रश्न बहुत प्राचीन कालसे चले आ रहे है। अिस शक्तिके विषयमें विचार करनेवालोंने अुसके लिअे अीश्वर, परमेश्वर, परमात्मा, ब्रह्म वगैरा संज्ञायें काममें ली है। कुछ विचारक यह कहते हैं कि विश्वमें अनत शक्ति है जरूर, परन्तु वह ज्ञानपूर्वक या अिच्छापूर्वक कुछ नही करती। अुनमें ज्ञान, बुद्धि, भावना, अिच्छा वगैरा न होनेसे अुसके सब काम जड़वत् होते है — जैसे पानीके प्रवाह या अग्निसे कुछ कार्य होते है, परन्तु वे पानी या अग्नि द्वारा बुद्धिपूर्वक नही किये जाते और न अुनके पीछे अुनकी अपनी अिच्छा हो सकती है। यह तो सभी स्वीकार

करते है कि विश्वमें शक्ति है और वह हमारे शरीरमें समाअी हुअी शक्तिसे कही वडी है, असीम है। यह भी सव मंजूर करते है कि अुस अपार शक्तिको अपने अनुकूल वनाये विना हमारा जीवन सुखरूप नही हो सकता। परन्तु वडा प्रश्न यह है कि वह शक्ति अपने आप अपनी अिच्छानुसार हमारा जीवन वनाती और विश्वके कार्य करती है या जड होनेके कारण हम अपनी वुद्धि, ज्ञान और सामर्थ्यसे अुसे अपने अनुकूल वनाकर हमे जैसा चाहिये वैसा अपना जीवन वनाते है और विश्वके काम कुदरती तौर पर होते रहते है?

शरीर-सम्वन्धी 'अह' का विचार

अिस विषयका विचार करने पर खयाल होता है कि मनुष्य अपनेको विश्वसे अलग मानकर यह सवाल हल करनेकी कोशिश करता है। मगर अुसे जरा दूसरे ढगसे विचार करके पहले यह तय करनेका प्रयत्न करना चाहिये कि विश्वकी और हमारी अेकता और भिन्नताकी मर्यादाये क्या है। हमें अपनेमें सदा स्फुरित होनेवाले 'अह' के कारण अैसा महसूस होता है कि हम विश्वसे अलग है। हमारे शरीर द्वारा होनेवाले सुख-दु.खका ज्ञान हमे अिस 'अह' के कारण ही होता है। और अिसी प्रकारके सतत अनुभवके कारण हम यह समझते है कि हमारा शरीर ही हम है और वही हमारे अपनेपनकी मर्यादा है। नीदमें वह 'अह' सुप्त रहता है, अिसलिअे अुतने समयके लिअे हमें अपना भान नही रहता। हमारे पैदा किये हुअे वच्चोका परिवार ममताके कारण हमें अपना लगता है। अुनके सुख-दु खका हम पर असर होता है। अितने पर भी हमे अपने देहके लिअे अपनेपनका सवसे ज्यादा भान होता है। मनुष्यके अलावा दूसरे जानवरोकी हालत देखें तो अुनमें भी अपने शरीरके प्रति ममत्व और अपनेपनकी भावना होती है। अिस दृष्टिसे देखने पर मनुष्यको भी अपने शरीरके लिअे अपनापन लगता हो, तो अिसमे अुसकी कोअी विशेषता नही। जीवदशाकी दृष्टिसे देखकर भी अैसा नही कहा जा

सकता कि अुसमें अुनका कोअी विकास हुआ है। परन्तु मनुष्य विश्वमें — सृष्टिमें — अव्याहत रूपमें होनेवाले व्यापारकी तरफ नजर डाले और अुस परसे 'अपनेपन' का विचार करे, तो अुसकी दृष्टि कुछ न कुछ विशाल हुअे बिना नहीं रहेगी। जिस शरीरकी मर्यादाके अनुसार हम अपना अपनापन मर्यादित करते हैं, वह शरीर क्या हम खरीदकर लाये हैं या किसीसे मागकर लाये हैं? खरीद या मांगकर लाये हों तो अिससे ज्यादा अच्छा, निरोगी, सुन्दर, बलवान या कार्यक्षम शरीर क्यों नहीं लाये? अगर हमने स्वयं ही अुसे धारण किया हो, तो भी यही सवाल अुठता है कि हमने अिससे अच्छा शरीर क्यों नहीं धारण किया? शरीर द्वारा क्या प्राप्त करनेके लिये हमने अुसे खरीदा? क्या पानेके लिअे अुसे मागकर लाये? अथवा कौनसे सुखके लिअे हमने अुसे धारण किया? और हमने अुसे किसी भी तरह प्राप्त किया हो अथवा किसी भी कामके लिअे धारण किया हो, तो भी अुसे प्राप्त करनेसे पहले हम किस हालतमें थे? सृष्टिका क्रम और व्यवहार देखते हुअे हम अपना शरीर खरीद कर नहीं लाये, मागकर नहीं लाये और अपनी अिच्छासे हमने अुसे धारण भी नहीं किया; परन्तु विचार करने पर अैसा लगता है कि वह विश्वकी अतर्क्य और अद्भुत कलासे निर्माण हुआ है। हम अपने शरीरका प्रारम्भ भी किस क्षणसे मानें? जबसे हमें अपने 'अहं' का स्पष्ट भान हुआ तबसे या हम दुनियामें आये तबसे? 'गर्भपनेमें हाथ जुडाया' की हालत थी तबसे या मातापिताके शरीरमें अणुमात्र थे तबसे? या अुससे भी पहले जब अिस विश्वमें — सृष्टिमें — हमारी अुत्पत्तिका कारण बननेवाले सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्त्व अगोचर स्थितिमें सचारित होते थे तबसे? हम अपने शरीरका आरंभ कबसे समझें? किस स्थितिका निर्देश करके हम मानें कि वहांसे हमारे शरीरकी निर्मितिका प्रारम्भ हुआ? हम यह मानते हैं कि हमारे शरीरमें जो खून बह रहा है वह सब हमारा ही है, परन्तु क्या हमें अिसका भी

पता है कि अिस खूनमें हमारे कितने ही पूर्वजोका खून रूपान्तर पाते पाते हम तक आ पहुचा है? क्या सचमुच हम यह भी जान सकते हैं कि हमारे सस्कार, स्वभाव, गुण, दोष, आरोग्य और व्याधिके साथ कितने व्यक्तियो और वाह्य पदार्थोका सम्वन्ध है? जिस तरह हम अपनी ही अेक अलग भापा वोलकर नही वता सकते, क्योकि वह सवकी भापाओके अनुकरणका मिश्रण होता है, अुसी तरह हम अपना ही अेक अलग ज्ञान नही वता सकते। हमारा शरीर रोज थोडा घिसता है। अुसके कुछ परमाणु नष्ट होते हैं तो दूसरी ओर हम सृष्टिमे से अलग अलग द्रव्य सतत आत्मसात् करके अपने शरीरको रोज नया भी वनाते हैं। अुसकी धारणाशक्ति कायम रखते हैं। तात्त्विक दृष्टिसे देखे तो हमारे शरीरमे हर क्षण अुत्पत्ति, स्थिति और लय जारी है। हमारी वुद्धि, भावना या सस्कारमे स्पष्ट या अस्पष्ट सतत फेरवदल होता रहता है। हम देखते देखते छोटेसे वडे और वडेसे वूढे वनते हैं। थोडे ही समयमे कालेसे सफेद वनकर हमारा रूप वदल जाता है। हममे 'अह' का भान शुरू हुआ तभीसे हम कभी किसी अेक ही स्थितिमें स्थिर नही रहे, मगर किसी अज्ञात दिशाकी तरफ हमारा गमन दिनरात जारी रहा है। चद्र, सूर्य, तारे, ग्रह, नक्षत्र और पृथ्वीमें से अेक भी स्थिर नही। अुनकी तरह ही हम भी स्थिर नही, सतत किसी अेक दिशामें चलते रहते है। किसी न किसी समय हमारा रास्ता पूरा हो जाता है। जिस शरीरको हमने अपना माना, वह विपरीत स्थितिमें जा पहुचता है और हमारा 'अह' अेक क्षणमे हमेशाके लिअे लुप्त हो जाता है। और फिर शरीरका कण-कण कहा गया, वादमे अुसका क्या हुआ, अिसका किसीको भी पता नही लगता। आगमें से निकला हुआ धुआं थोडे समय तक दिखाअी देता है, वादमें अुसके कण, अुसके सूक्ष्म द्रव्य विश्वमें कहा गये, कहा जाकर फैल गये, अुनकी क्या गति हुअी, जैसे अिसका पता नही लगता, वैसे ही जिस शरीरको हम 'अह' मानकर पालते-पोसते हैं, सम्हालते हैं, अुसका भी

हाल होता है। अुनके प्रारंभका हमें पता नहीं और अुसकी अंतिम गति भी हमें मालूम नहीं। बीचके समयके 'अहं'के लिये ही हमें अुसके प्रति अपनेपनका भान होता है।

निमित्तमात्र 'अहं'

अुस 'अहं'की दृढ़ता कम करके, अुसे कुछ सौम्य बनाकर हम जिस बातको सूक्ष्मतासे देखें कि विश्वके और हमारे बीचका सम्बन्ध और व्यवहार कैसे होता है, तो हमें क्या दिखाअी देगा? विश्वके अपरम्पार अवकाशमें — विश्वव्यापी व्यापारमें — अैसे अशाश्वत शरीरके आधार पर जिस 'अहं'का अनुभव होता है, जिसकी रचनाके बारेमे हमें यह पता नहीं कि वह कब शुरू हुअी, जिसकी निर्मितिके बारेमें किसीको यह ज्ञान नहीं कि वह किस नियमके अनुसार हुअी और यह भी पता नहीं कि वह कब नष्ट होगा और किस चीजमें मिल जायगा। जैसे दीया प्रतिक्षण नये नये द्रव्य जलाता है, तो भी अखड रूपमें जलता दिखाअी देता है, पानीके परमाणु सतत बदलते रहने पर भी जैसे नदीका प्रवाह अेक-सा अखडित बहता जान पडता है, अुसी तरह जिस शरीरके आधार पर 'अहं'का स्फुरण होता रहता है अुसके परमाणु नित्य बदलते रहने पर भी यह महसूस होता रहता है कि वह अखड रूपमें अेक ही है। दीया और नदी जड वस्तु होनेके कारण अुनमें दूसरे द्रव्योंको आत्मसात् करके अपनी वृद्धि करनेका सामर्थ्य नहीं। परन्तु मानवशरीरमें अेक खास मर्यादामें जिस प्रकारकी विशेष शक्ति है। जिस शरीरकी अुत्पत्ति विश्वसे होती है। अुनके द्रव्योंसे जिसका पोषण होते होते अमुक हद तक जिसकी वृद्धि होती है। बादमें विश्वके द्रव्योंको आत्मसात् करनेकी अुसकी शक्ति या धर्म मन्द पड जाता है और अुसका क्षय होते होते आखिर सारी क्रिया बन्द होकर वह नष्ट हो जाता है, और अुसके परमाणु विश्वमें विलीन हो जाते हैं। हमारे शरीरका व्यापार जारी रहने — शरीरके केवल जिन्दा रहने — में भी अुनके द्रव्य हररोज खर्च होते हैं और

रोजके खान-पानसे अुसमे नये परमाणु वनते है। रोज खर्च होनेवाले और शरीरसे वाहर निकलनेवाले द्रव्य रोज अनजाने विश्वमे मिल जाते है और विश्वके नये द्रव्योसे शरीरकी हड्डिया, मास और लहू वनते है। अिस दृष्टिसे विचार करे तो विश्वका लेन-देनका यह व्यवहार अुसके भीतर ही अखड रूपसे होता रहता है। विश्वमे अनत शरीर, अनत पदार्थ निर्माण हुअे है और होते है। विश्वकी तुलनामे अेक अणुमात्रमे स्फुरित होनेवाले 'अह' के कारण अुनमे से अेक शरीरको हम अपना कहते है। अुस अणुकी अुत्पत्ति, स्थिति और लय विश्वधर्मके अनुसार जारी है। विश्वके लेन-देनके कारवारमें हमारा शरीर वीचके थोडे समयके लिअे अेक निमित्तमात्र है।

चित्त-चैतन्यकी विलक्षणता

अिस निमित्तमात्र शरीरमें स्पष्ट दशाको पहुची हुअी अलग अलग अिन्द्रिया, बुद्धि, मन, चित्त और अुनकी शक्तिया दिखाअी देती है, अिसी प्रकार अिन सवको चेतना और प्रेरणा देनेवाला चेतन तत्त्व है। अिनका विचार करे तो विश्वके दूसरे तत्त्वोकी तुलनामे ये तत्त्व अद्‌भुत मालूम होते है। 'अह' के रूपमें परिचित शरीरमें मन, वुद्धि, प्राण, चित्त और चेतनका ही महत्त्व है। चित्तके कारण ही 'अह'का स्पष्ट भान होता है और चेतनके कारण ही वाह्य विश्वके द्रव्योको आत्मसात् करके शरीर, बुद्धि, प्राण — सवका व्यवस्थित धारण हो सकता है। विश्वके अिस प्रचड और अखड व्यापारमे मानवशरीरको महत्त्व मिलनेमे ये ही कारण है और हमें विश्वकी प्रतीति होनेमे भी ये ही कारण है। चित्त और चेतनके कारण हम विश्वका व्यापार और अुसमें अपनी निमित्त-मात्रता जान सकते है। विश्वकी अपारता जाननेकी महत्त्वाकाक्षा भी अिस अणुमे अिस चित्त और चेतनके कारण ही रहती है। नही तो, कितना वडा यह अनत विश्व, अुसका कितना अपरम्पार व्यापार! अुसकी तुलनामें मानव तो अणुमात्र जैसा है। परन्तु यह

अणुमात्र अुसमें रहनेवाली अिस चेतनताके प्रभावसे ही चित्तादि अिन्द्रियों द्वारा अनंत पर अपना काबू करने या विश्वको अपने अनुकूल बनानेकी महान आकांक्षा रखता है। विज्ञानके बल पर आज अुसकी प्राप्त की हुअी सफलता; जल, थल, भूगर्भ, आकाश — सभी जगह अुसका होनेवाला संचार, अुसकी कअी ओरसे बढाअी हुअी अपनी शक्ति, वैसे ही विश्वके जिन तत्त्वोंसे अुसका निर्माण हुआ, अुन मूल तत्त्वोंकी खोज करने और अपनी अुत्पत्तिका क्रम और अितिहास जाननेकी अुसकी जिज्ञासा, अुन तत्त्वोंके साथ अेकरूप होनेकी दिशामें अुसे कभी कभी होनेवाला आकर्षण और अुत्कंठा वगैरा बातोंका विचार करें, तो विश्वकी ओर, अुसके अपार व्यापारकी ओर देखकर अुसका अनंतत्व ध्यानमें आने पर जैसे हमारा मन आश्चर्यमें डूब जाता है, वैसे ही अितने छोटे शरीरमें रहनेवाले चित्त-चैतन्यकी विलक्षण शक्ति देखकर भी मन आश्चर्यसे भर जाता है। सूक्ष्मसे सूक्ष्म और साथ ही महान तत्त्वोंसे भरा हुआ यह विश्व, अुसके छोटे-बडे स्थलचर, जलचर प्राणियोंकी अुमटती हुअी प्राणिसृष्टि, वनस्पति-सृष्टि, अुसकी मृदु, सुन्दर, आकर्षक, महान, भव्य और साथ ही विचित्र और विकराल घटनायें और वस्तुयें, भिन्न भिन्न अिन्द्रियों द्वारा अनुभव किये जानेवाले सृष्टिके परस्परविरोधी गुण-धर्म — अर्थात् कुल मिलाकर सूर्यके प्रकाशमें और रातके अंधेरेमें हमें अनंत प्रकारसे होने वाले विश्वरूप-दर्शनसे जैसे हम आश्चर्यचकित होते हैं, अुसी तरह मानवी चित्त-चैतन्यकी विलक्षणता, अुसका विश्वको अपने अनुकूल बना लेनेका प्रयत्न, अुसकी ज्ञान-शक्तिकी सूक्ष्मता, तीव्रता और व्यापकता देखकर भी मन आश्चर्यमें डूब जाता है।

आदिकारणसे विश्वका विकास

अिस परसे यह भी विचार आता है कि चित्त-चैतन्य द्वारा आज जिन गुणों और धर्मोंका दर्शन होता है, वे सारे गुण-धर्म विश्वमें अप्रकट अवस्थामें शुरूसे ही होने चाहियें। शरीर, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, चेतन आदि सब वस्तुयें विश्वमें से ही किसी खास क्रमसे अगणित संयोगोंमें भिन्न-भिन्न रूप लेते लेते आजके

स्वरूपमें आओी होनी चाहिये। अितना ही नही परन्तु विश्व भी अपने अुस पारके अव्यक्त और अगोचर आदिकारणसे अगणित समय वाद व्यक्त और गोचर स्थितिमे आया होना चाहिये। आजके ज्ञात विश्वमें सवसे आश्चर्यजनक वस्तुये चित्त और चेतन ही हैं। । अिनके कारण ही विश्वका विश्वपन है, वस्तुका वस्तुपन है। चित्त और चैतन्य आजके स्वरूपमे न होते, तो विश्वकी चर्चा भी कौन करता? चित्त-चैतन्यकी अिस जोडीको सचमुच ही विश्वके विकासका अद्भुत प्रकार माने, तो तर्ककी दृष्टिसे लगता है कि अुसमे आज स्पष्ट दिखाओी देनेवाले गुण-धर्म सुप्त रूपमें विश्वमे और अुसके अव्यक्त अगोचर आदिकारणमे भी होने चाहियें। विश्वमे रहनेवाले तत्त्वोका विकास होते होते अुसके चेतन दशामे आ पहुचनेके वाद भी अैसा अनुभव होता है कि अभी तक अुसकी प्रकट अवस्थाका विकास हो रहा है। अिससे अुल्टे चेतन दशामे आनेसे पहलेके अत्यन्त पूर्वतर विश्वका और अुसके आदिकारणका विचार करने पर अैसा लगता है कि अुसमें भी ये सारे गुण-धर्म होने चाहियें। अनत कालसे विश्वकी यह सुप्तावस्था टूटते टूटते आज प्रकट दशामे आओी है।

विश्व और हमारे बीच भेद और अभेद

आज भी दुनियामे जो पदार्थ जड मालूम होते है, अुनमे भी जीवमे रहनेवाले तमाम गुण-धर्म, शक्ति, वुद्धि, मन, प्राण, चेतन वगैरा सुप्त और सुप्ततर अवस्थामें होने चाहिये। अुन पदार्थोमें से ही हमे ये तत्त्व हररोज मिलते है। वे हमारे शरीरके साथ घुलमिल जाते हैं और अुनके सुप्त गुण-धर्म हमारे द्वारा प्रगट होते हैं। वाहरके पदार्थोका हम खान-पानके रूपमे अुपयोग न करे और बाहरका प्राणवायु न ले तो हमारा शरीर टिक नही सकेगा। हमारे शरीरका जितना अश प्रतिदिन नष्ट होता है, वह वाहरके पदार्थोंके गुण-धर्मोसे पूरा हो जाता है। हररोज अेक ओर शरीरका नाश और दूसरी ओर अुसमें वृद्धि — अिस नियमसे

हमारा शरीर चलता है। अिनमें से अेकमें भी कोअी विगाड़ हो जाय तो शरीरका स्वास्थ्य नष्ट हो जाता है। वह विगाड लम्बे समय तक रहे तो शरीर अनेक व्याधियोंसे पीडित होता है और अन्तमें अुसका नाश हो जाता है। अिस पर विचार करनेसे मालूम होता है कि गेहूं और चावलके दानेमें भी हममें रहनेवाले तमाम गुण-धर्म सुप्तावस्थामें होने चाहियें। अुनमें भी चेतन तत्त्व होना चाहिये। जिस प्राणीके शरीरमें गेहूं या चावलके रूपमें वह जाता है, अुसके रंग, रूप, आकार और गुण-धर्मका पोषक बनकर वह अुसके द्वारा प्रगट होता है। घास, लकडी और मिट्टीमें भी ये सारे गुण-धर्म और चेतन तत्त्व होने चाहियें। जिससे किसी भी जीवका पोषण होता है, अुसमें अवश्य ये तत्त्व होने चाहियें। फिर वह जीव मनुष्य हो, अन्य प्राणी हो या वृक्ष-वनस्पति हो। जिनमें क्षय और वृद्धिकी अवस्थायें हैं, अुनमें लेन-देनका और अपनी विशेषता मर्यादित काल तक बनाये रखनेका धर्म जरूर है। ये सब बातें और अुनके धर्म और क्रम ध्यानमें रखनेसे मालूम होता है कि विश्वके ही गुण-धर्म और चेतन हममें होनेसे हमारा अस्तित्व कायम रहता है। और हममें से जो कुछ बाहर निकलता है अुसका भी विश्वमें पोषणके तौर पर अुपयोग होता है और वह भी दूसरे जीवोंके गुण-धर्म और चेतनका पोषक और पूरक बनता है। विश्वके अिस अखंड व्यापारमें हरअेक जीव अपने 'अहं' के कारण अपनी भिन्नता अनुभव करता है। अुसका शरीर नष्ट हो जाय तो भी अुससे पैदा होनेवाली संतानके रूपमें, अुसकी जातिके रूपमें अुसकी परम्परा कायम रहती है। अुसके 'अहं' की विरासत भी जारी रहती है। विचार करनेसे मालूम होता है कि यह 'अहं' भी विश्वके गुप्त गुण-धर्मोंका अेक स्पष्ट स्वरूप होना चाहिये। अिस 'अहं' में ही वह विशेषता बनाये रखनेका धर्म और शक्ति है। अिस 'अहं' में ही वंशतंतु आगे चलानेका धर्म होना चाहिये और वह जीवके द्वारा प्रगट होता होगा। अिस दृष्टिसे देखें तो जो विश्वमें है सो हममें है और

जो हममें है वही विश्वमे है। जैसे गर्भमे रहनेवाले सुप्ततर अवयव और गुण-धर्म यथासमय प्रगट होते होते अपने पूर्णस्वरूपमें मनुष्यमे दिखाअी देते है, अुसी तरह विश्वमें रहनेवाले गुण-धर्म चेतनमें और चेतनके बढते जानेवाले प्रभावमें दिखाअी- देते है। अत विश्वमें और हममे फर्क अितना ही है कि अेक सुप्त चेतन है और दूसरा प्रकट चेतन है। तत्त्वत अिसमे कोअी फर्क मालूम नही होता। अेकमे सुप्त चेतन तत्त्वका अगाध और अनत सग्रह है और दूसरेकी प्रकट अवस्था कितनी ही बढ जाय तो भी अुसकी मर्यादा है। हमारी बढती जानेवाली प्रकट अवस्थाको किसी भी समय मूल सग्रहमे से ही पोषण मिलता है। मेघ-मडलमें रहनेवाला अगाध जलतत्त्व और अुसमें से गिरा हुआ हमारे घरमें सुन्दर चांदीके पात्रमे रखा हुआ बरसातका पानी — यह दृष्टान्त विश्व और हमारी अेकता और भेदका खयाल आनेमें किसी हद तक अुपयोगी होगा।

विश्वका अखंड व्यापार

'अह' के कारण ही हमे अैसा लगता है कि हम सब अेक-दूसरेसे भिन्न है। शायद अिस भिन्नतामे भी हमारा कुछ न कुछ कल्याण होगा। अिस भिन्नताके कारण ही हममें पुरुषार्थ, ज्ञान वगैरा बढानेकी महत्त्वाकाक्षा और दूसरे सद्‌गुण जाग्रत होकर वृद्धि पाते होगे और अुन सबकी पूर्णावस्था होनेके बाद वह 'अह' अपना काम पूरा करके यथासमय अपनी मूल स्थितिमें विलीन हो जाता होगा। विश्वकी मूल अव्यक्त स्थितिमे भी अुसमें कुछ न कुछ स्पन्दन होता ही होगा। अिस स्पन्दन-प्रतिस्पन्दनकी अवस्थामे से विश्वके व्यक्त दशामें आनेके बाद, अुसी स्पन्दनके अधिक स्पष्ट दशामे आते आते अुसका रूपान्तर स्फुरणमे हुआ होगा। अुस स्फुरण-प्रतिस्फुरणमे से कालान्तरमे अस्पष्ट चेतन और अुसीमें से स्पष्ट चेतन आविर्भूत हुआ होगा। आगे जाकर चेतनमे रहनेवाली भानकी शक्तिका विकास होते होते अुसके अनुरूप चित्त और दूसरी अिन्द्रिया

निर्माण हुअी होगी। अिंद्रियोंके साधन द्वारा भान-शक्तिकी वृद्धि और भान-शक्तिके अनुरूप अिन्द्रियोंकी क्षमता, अिस प्रकार अेक-दूसरेकी मददसे चैतन्यमें—जीवमें—मनुष्यमें विश्वको अपने अनुकूल बना लेनेकी आकांक्षा पैदा हुअी है। बढते बढते वह आजकी हालतमें आ पहुंची है। अिस तरह देखें तो विश्वमें और हममें भिन्नता नहीं है। अप्रकटसे प्रकट और प्रकटसे फिर अप्रकट, अैसा यह खेल है। विश्वमें सुप्त रहनेवाले तत्त्व और गुण-धर्म हम तक अैसी प्रकट अवस्थामें पहुंचते हैं और अुसके बाद अुसीमें से भिन्न स्वरूप पाकर हमारी रोजकी शरीर-यात्रा चलाते हैं और बादमें फिर रूपान्तर पाकर रोज-रोज विश्वमें विलीन होते हैं। वहां भी स्थायी रूपमें विलीन न होकर प्रकट दशामें आनेकी ओर अुनका क्रम पहलेकी तरह ही जारी रहता है। अिस प्रकार यह विश्वचक्र, विश्वका यह व्यापार सतत — अखंड रूपमें — चलता रहता है।

विश्वका और हमारा अिस प्रकारका अखंड सम्बन्ध है। हम अेक-दूसरेमें मिले हुअे या भरे हुअे हैं। 'अहं' के कारण ही हमें कुछ न कुछ भिन्नता महसूस होती है। बाकीका सब व्यवहार देखते हुअे दोनोंके लिअे कहीं भी भिन्नताकी मर्यादा नहीं बांधी जा सकती। पृथ्वीसे लाखों मील दूर रहनेवाले सूर्य, चंद्र और नक्षत्रोंका भी असर हम पर सतत होता रहता है। अलग-अलग ऋतुओंका भला-बुरा असर हम पर होता है। वृक्ष, बेल और वनस्पतिका असर अनजाने हम पर होता है। हमारे कुटुम्ब, समाज, देश, राष्ट्र, मानव-जाति — अिन सबका हम पर और हमारा सब पर थोडे-बहुत अंशमें अच्छा-बुरा, परन्तु सबका सब पर सतत असर होता ही रहता है। अपने केवल शरीरसम्बन्धी 'अहं' को थोड़ा भूलकर हम सूक्ष्म और व्यापक दृष्टिसे विश्वके व्यापार और हमारे अपने शरीर, मन, बुद्धिके व्यवहार, अिन दोनोंके सम्बन्धकी जांच करके देखें, तो यह निश्चित प्रतीत होता है कि हमें कुछ किसी प्रकारका ज्ञान होगा।

१३

व्यक्त-अव्यक्त विचार — २

विश्वसे संकल्प-सिद्धि तक आया हुआ चेतन

विश्वसे निर्माण हुअे हमको 'अपनेपन' का भान चेतन और चित्तके कारण है। चेतन और चित्तके निर्माणसे पहले विश्वकी क्या स्थिति होगी, अिसकी थोडीसी कल्पना हम अपनी गाढ निद्रावस्थासे कर सकते है। चेतन और चित्तका प्रादुर्भाव होनेसे सृष्टिकी क्रियाशक्तिमें कुछ विशेष प्रकारका सकल्पपूर्वक और ज्ञानपूर्वक फर्क पडने लगा। और जैसे-जैसे मनुष्यके चित्तका मन और वुद्धिके धर्मो द्वारा विकास होने लगा, वैसे-वैसे सृष्टिकी ज्ञान और क्रियाशक्ति तेजीसे वढने लगी। अैसा लगता है कि विश्वके शुरूके स्पन्दन और स्फुरण मानवजगतमें विशेष तीव्रता, दृढता और व्यापकतासे चालू हुअे होगे। चित्त और चेतनकी अधिक स्पष्ट और जाग्रत दशाके कारण ही मनुष्यको अिस सृष्टिमे विशेषता और महत्त्व मिला है और ज्ञान, भाव, क्रिया वगैराकी दृष्टिसे अुसके चित्त-चैतन्यकी व्यापकता वढती जाती है। विश्वमें से विकसित होते होते चेतनताको प्राप्त करके चित्तकी स्पष्ट दशा मिलनेके वाद मनुष्यमे रहनेवाला 'अह' दृढ हुआ है। अिसलिअे अुसका अलगाव अुसे अधिक स्पष्ट रूपमें विदित होने लगा है। चित्तकी स्पष्ट दशाके कारण अुसमें सवेदना और संकल्प-शक्ति जाग्रत हुअी है। ज्ञान और क्रियाशक्तिकी मददसे वह अपने कोअी-कोअी सकल्प पूरे कर सकता है। अपनी भावना-शक्तिसे समुदायको अनुकूल वनाकर कोअी महान सकल्प भी पूरा कर सकता है। अिसे पूरा करनेके काममें अुसे

समुदायके सब लोगोंके ज्ञान, क्रिया, भाव और संकल्प-शक्तिकी मदद मिलती है। अिसके परिणामस्वरूप मनुष्यको जबसे यह महसूस होने लगा कि अुसमें अपनी और समुदायकी अिच्छायें और हेतु पूरे करनेकी शक्ति आयी है, तबसे अुसके मनमें ये शंकायें और सवाल अुठने लगे कि दुनियामें अीश्वर जैसी कोअी 'कर्तुमकर्तुम्' समर्थ शक्ति है या नहीं? विश्वमें रहनेवाली शक्ति जड़ है या चेतन और ज्ञानपूर्ण?

विश्वके पोष्य-पोषक धर्म

चेतन, चित्त और साथ ही अिन्द्रियोंकी बढ़ती जानेवाली शक्तियां, अुन शक्तियोंके लिअे आवश्यक साधनोंकी प्राप्ति, भाव, गुण, ज्ञान अित्यादि—अिन सबकी सहायतासे मनुष्य अपने आपको ही अपने सुख-दुःखका कर्ता मानने लगा हो तो अिसमें आश्चर्य नहीं। संकल्प-शक्ति मनुष्यको प्राप्त हुअी अेक महान शक्ति है। अुस शक्तिके आधार पर मनुष्य कुछ कठिन हेतु पूरे कर सकता है, अिसलिअे अुसमें आत्मविश्वास पैदा हो गया है। परन्तु अुसके कारण यद्यपि अुसे अपनी भिन्नता और कर्तापन महसूस होने लगा हो, तो भी अुसे अपना 'अहं' थोड़ा भुलाकर विश्वके व्यापार और अपनी सब शक्तियोंका विचार करना चाहिये। अिनके कार्यकारण-भावकी जांच करनी चाहिये। अपना चित्त, चेतन और संकल्प-शक्ति मनुष्यको अलग लगते हों, तो भी अुसे जानना चाहिये कि जब मूल विश्व ही कुछ कुछ सचेतन और स्पष्ट दशामें आया, अुसके बाद अुसीमें से अधिक जाग्रत और सचेतन होकर वे हमारे हिस्से आये हैं। चूंकि अुनका प्रकटीकरण हमारे शरीर द्वारा होता है और अुस शरीरके लिअे हममें 'अहं' भाव स्फुरित होता है, अिसलिअे हमें अैसा लगता है कि यह सारी कमाअी और पुरुषार्थ केवल हमारे अकेलेके ही हैं। परन्तु सत्य और ज्ञानकी दृष्टिसे अैसी प्रतीतिका ज्यादातर अज्ञान ही सिद्ध होना संभव है। जब माताके पेटमें गर्भ बढ़ता है, तब अुसमें

आकार-विकार दिखाअी देने लगते है, माताके शरीरसे अुसका पोषण होता है। अुस समय माता अुसका पोषण करती है या वह अपना पोषण आप कर लेता है? अिसका जवाव अेकदम देना कठिन है। और अिसका कोअी अेकतर्फा जवाव गलत भी सावित हो सकता है। अुस समय माताका अुदर ही अुसका ब्रह्माड होता है। अिस ब्रह्माडसे स्वतत्र जीव बनकर वाह्य जगत्में आनेके वाद भी वह अपनी शक्तिके जरिये वढता है या विश्वकी परिपालन शक्ति, धर्म और भावनाके जरिये अुसका पोषण और सगोपन होता है, यह तय करना भी मुश्किल है। फिर वह जीव या मनुष्य वडा होकर ज्ञान और कर्तृत्वमे मातासे वढ जाय और अुसकी परवाह न करे, तो अितनेसे यह सावित नही होता कि वह मातासे श्रेष्ठ है। अुस हालतमे ज्यादासे ज्यादा यह कहा जा सकता है कि अुसका 'अह' वहुत दृढ हो गया है। जैसे अकेला वीज पेडकी अुत्पत्ति और वृद्धिका कारण नही होता, परन्तु अुसके साथ ही पानी, खाद, हवा, मिट्टी, सभाल और दूसरी अनुकूलतायें भी अुसका कारण होती है और जैसे यह कहना ठीक होगा कि अिन सवके सुप्त गुण-धर्मोका पेडके रूपमे पूरी तरह प्रकटीकरण होता है, अुसी तरह यह कहना वास्तविक होगा कि गर्भ, मनुष्य और पेड — अिन सवकी अुत्पत्ति और वृद्धि मूल विश्वशक्तिसे और विश्वमे रहनेवाले गुण-धर्मोके कारण ही होती है। सवकी अुत्पत्ति विश्वकी सृजनशक्ति और धर्मसे होती है। सवका पोषण और सगोपन पालन-शक्ति और वात्सल्य-भावनासे होता है। विश्वशक्तिसे प्रकट दशामे आये हुअे धर्मोकी मददसे हम सवका विकास होता है, विश्वमे रहनेवाले पोष्य-पोषक धर्म माता और गर्भमे आते है और अुनके द्वारा अिन धर्मोका दर्शन और कार्य होता है। परस्परावलम्बी धर्मोमे किसका महत्त्व ज्यादा और किसका कम माना जाय? अैसी स्थितिमें अिन दोनो गुण-धर्मोका मूल जिस विश्वशक्तिमें है, अुस विश्वशक्तिको ही महत्त्व देना ठीक और न्याय्य है।

हमारे कर्तृत्वके कारण हमारा अहंकार बढ़ा हो, तो हमें देखना चाहिये कि हमारा कर्तृत्व सचमुच हमारा अपना है या नहीं। हमारा शरीर विश्वके व्यापारमें अेक निमित्तमात्र वस्तु है, अुसमें कुछ भरा जाता है अिसलिअे वह बढ़ता है और अुसमें से कुछ न कुछ रोज विश्वमें फेंका भी जाता है, अिस व्यवहारमें शरीर बीचमें केवल अेक सचेतन कोठी जैसा लगता है। चेतनाके कारण यह कोठी कुछ समय तक बढ़ती है और फिर क्षीण होकर संपूर्ण नाशको प्राप्त हो जाती है। अुसमें बीचमें जो अपनापन लगता है वह नाममात्रका है, असलमें तो वह विश्वप्रकृतिका अेक खेल है। अिसी तरह हमारे चित्त, चेतन, प्राण, संकल्प, ज्ञान, विवेक, भाव, संस्कार, गुण, विचार वगैरा विशेष रूपसे अनुभवमें आनेवाले सब गुण हमें विश्वसे ही प्राप्त हुअे हैं। वे हम तक मानवजातिकी विरासतसे आ पहुंचे हैं। और अुन सबका पोषण-वर्धन भी विश्वके अुन्हीं तत्त्वोंसे होकर हमारे द्वारा अुनका अधिक स्पष्ट दशामें प्रकटीकरण होता है। विश्वके कुल मिलाकर अपरंपार व्यापारकी तुलनामें यह बिलकुल तुच्छ बात है। परन्तु अपने 'अहं'के कारण हमारा कर्तव्य हमें अितना महान और भव्य लगता है कि अुसके आगे विश्वका अगाध कर्तृत्व हमें दिखाअी नहीं देता। सच पूछा जाय तो विश्वके कर्तृत्वके सामने हमारा अहं और कर्तृत्व अणुके बराबर भी होगा या नहीं, अिसमें शंका होती है।

'अहं'की मर्यादा

हमारे प्राण, संकल्प, ज्ञान वगैरा अूपर बताअी हुअी सभी बातें हमें विरासतमें मिलती हैं, अिसलिअे अैसा अहंकार रखना अुचित नहीं कि ये सब हमारी ही कमाअी हैं। अिसी तरह हममें होनेवाला अुनका वर्धन या विकास भी केवल हमारा ही कर्तृत्व है, अैसा भी हम नहीं कह सकते। फेफड़ोंकी खराब हवा बाहर निकालकर बाहरकी अच्छी हवा लेकर ही हम जीते हैं। अिसके लिअे

विश्वके आन्दोलनोंके परिणाम

बाहर अच्छी हवाका होना जरूरी है। अिसी प्रकार विश्वमे भी अच्छे तत्त्व हो तो ही वे हममें प्रविष्ट होकर हमारे द्वारा प्रगट हो सकते है। हमारे शरीरमें चेतन, चित्त, प्राण और सकल्पकी केवल स्पष्ट दशा है। परन्तु अुनका सचय हमारे पास बहुत थोडा है। जैसे शरीरको रोज अच्छे अनुकूल द्रव्योका पोषण न मिले तो वह कायम नही रह सकता, वैसे ही हमारे चेतन, चित्त, प्राण वगैराको भी बाहरसे पोषण न मिले तो अुनकी स्थिति भी कायम नही रहेगी। हममें दिखाअी देनेवाले ये सारे स्पष्ट तत्त्व विश्वमे हमेशा अस्पष्ट दशामे अपरपार मौजूद ही रहते है। ये तत्त्व दृष्टिको दीखनेवाले या किसी भी अिन्द्रिय-गोचर व्यक्त पदार्थमे अव्यक्त रूपमे रहते है। पदार्थोमे कितने विलक्षण गुण-धर्म अव्यक्त रूपमे निवास करते है, यह वनस्पति और औषधिका थोडासा अध्ययन करने पर मालूम हो जाता है। वायर-लेस, रेडियो या ध्वनिशास्त्रसे अब हमे यकीन हो गया है कि ध्वनिकी तरगें हजारो मील दूर तक जाती है, और बिजलीकी तथा विशेष यन्त्रोकी मददसे वे हमे गोचर हो सकती है। अिससे साबित हो जाता है कि हमे गोचर न होनेवाली अव्यक्त तरगोके अपार आन्दोलन पृथ्वी पर सतत जारी रहते है। अिसी प्रकार विश्वमे सर्वत्र प्राणतत्त्व, मनतत्त्व, बुद्धितत्त्व, चेतन, सकल्प, सस्कार, ज्ञान, विचार — अिन सबकी तरगोके आन्दोलन भी सतत जारी रहते है। ये आन्दोलन अच्छे-बुरे दोनो प्रकारके होते है। सृष्टिमे जैसे सुगध और दुर्गंध है, वैसे ही सत्सकल्प और असत्सकल्प; सद्विचार और दुर्विचार, सद्गुण और दुर्गुण, सत्कर्म और असत्कर्म, अिन सबके आन्दोलन हमेशा होते रहते है। विश्वमें ही अुत्पत्ति, स्थिति और लयका धर्म होनेसे अुसमें सदा सक्रमण होता ही रहता है। विश्वका यही धर्म चित्त और चैतन्यमे अलग-अलग सत्-असत् कर्म, विचार और सकल्पके रूपमे मानवजगतमें प्रगट रूपसे दिखाअी देता है। विश्वमें सतत होनेवाले सक्रमणोके अव्यक्त आन्दोलन, मनुष्य तथा अन्य चेतन जगत् द्वारा होनेवाले

भिन्न-भिन्न कर्म, संकल्प, विचार और संस्कारके असंख्य आन्दोलन और अिन सबकी अनंत प्रकारकी तरंगें विश्वमें सतत जारी हीं रहती हैं। अैसी कल्पनातीत असंख्य तरंगोमें से हरअेक जीव अपनी अपनी जीवदशाके अनुसार अनुकूल तरंगें अपनेमें धारण करके अपने चित्त, चेतन, प्राण और संकल्पका पोषण करता है। यह क्रिया अुसके द्वारा ज्ञानपूर्वक न भी होती हो तो जैसे पेड़ कुदरतसे — मिट्टी, पानी, हवा वगैरासे — अपने अनुकूल तत्त्व कुदरतके नियमानुसार खींच लेता है और अपनी वृद्धि करता है, या जैसे गर्भ माताके शरीरमें से अपने लिअे जरूरी तत्त्व, संस्कार, दूसरे गुण-धर्म और मानवजातिका अुत्तराधिकार अनजाने लेता है और अपनी विशेषता बढ़ाता है, अुसी तरह दूसरे जीव या मनुष्य भी बाहरके आन्दोलनोंमें से सजातीय तरंगें खींचकर अुन तत्त्वोंको आत्मसात् करता है। भिन्न-भिन्न स्वाद और गुण-धर्मवाली वनस्पति अेक ही जमीन और पानीमें से अपने अनुकूल द्रव्य खींचकर अपने-अपने स्वाद और गुण-धर्मका पोषण करती हैं। मनुष्यके प्राण, चित्त, चेतन, संकल्प, विचार आदिको भी जरूरी अनुरूप तत्त्व विश्वमें होनेवाले कल्पनातीत आन्दोलनों और तरंगोंसे मिलते हैं। हम शुद्ध चरित्र होनेका संकल्प कर लें, तो विश्वमें आन्दोलित होनेवाली अुसी किस्मकी तरंगें हमारे चित्तकी ओर मुड़ेंगी, हममें अेकरस होंगी और हमारे मूल संकल्पको बल पहुंचायेंगी। और हमारे संकल्प, विचार, हेतु अशुद्ध और हीन होंगे, तो विश्वकी अपवित्र तरंगें हमारे चित्तको ढूंढती आयेंगी और हममें घुलमिलकर हमें अधिक हीन बना देंगी। विश्वके अिसी नियमके अनुसार हमारे शुद्ध-अशुद्ध विचारों और संकल्पोंकी तरंगें भी सतत बाहर फैलती रहती हैं और विश्वके शुद्ध अशुद्ध आन्दोलनों और तरंगोंमें वृद्धि करती हैं। अिस पर विचार करनेसे स्पष्ट हो जाता है कि शुद्ध या अशुद्ध विचार और संकल्प धारण करनेवाला और कर्म करनेवाला मनुष्य स्वयं शुद्ध या अशुद्ध होता रहता है, और विश्वमें भी अुसी प्रकारके

आन्दोलनो और तरगोकी वृद्धि करता है। विश्वका यह नियम है। सृष्टिका यह धर्म है। परमेश्वरका यह कानून है। अिस दृष्टिसे देखते हुअे विश्वमे सदैव होनेवाले आन्दोलनोमे से ही शुद्ध या अशुद्ध तरगें हममे आती है और वहा अधिक स्पष्ट रूप धारण करके हमारे द्वारा बाहर निकलती है। अिस समय, अिस क्षण मेरे द्वारा प्रकट होनेवाले ये विचार केवल मेरे ही है, यह मै नही कह सकता। असख्य लोगोके अस्पष्ट सकल्पो और विचारोकी तरगे विश्वके आन्दोलनोमें से कुदरती तौर पर मुझ तक आकर शायद मेरे द्वारा अधिक स्पष्ट रूपमे बाहर निकलती होगी। परन्तु यह कार्य मेरे हृदयमे कोअी न कोअी शुभेच्छा हो तो ही विश्वके नियमानुसार अिस ढगसे होगा।

सत तुकारामने कहा है कि:

आपुलिया बळे नाही मी बोलत। सखा कृपावत वाचा त्याची।
काय म्या पामरे बोलावी अुत्तरे। परि त्या विश्वभरे बोलविले॥

(मै अपनी खुदकी ताकतसे नही बोलता। मेरा सखा कृपालु हरि है, अुसीकी यह वाणी है। मेरे जैसा पामर क्या बोल बोले? परन्तु अुस विश्वभर प्रभुने मुझसे कहलवाये है।) अिन अनुभवपूर्ण अुद्‌गारोमें विश्वका यही नियम — परमेश्वरका यही कानून — दिखाअी देता है।

मानवताका प्रारम्भ

विश्वके व्यापारमें हम केवल निमित्तमात्र हो, तो भी अुस विश्वशक्तिमे से हमारे चित्त-चैतन्यमे कुछ विशेष शक्तिया आअी है। वे शक्तिया है विवेक, सकल्प, सयम और निग्रह। हममे रहनेवाले ‘अह’ के कारण अिन विशेष शक्तियोका हमें भान होता है। अिन विशेष शक्तियोका पोषण विश्वके अुन्ही अव्यक्त तत्त्वोसे होता हो, तो भी हम किसी हद तक अपनी अिच्छानुसार अिनका अुपयोग कर सकते हैं — अितनी छूट और स्वतत्रता हमें विश्वशक्तिके किसी निश्चित नियमसे ही मिली हुअी है। अगर हम अुसका अुपयोग करके

अपना चित्त शुद्ध रखनेका प्रयत्न करते रहें, तो हमारे हृदयमें विश्वकी शुद्ध तरंगें दाखिल होकर हमसे सत्कर्म करानेमें सहायक होंगी। विश्वकी अवस्थामें सदैव सक्रमण और अुसीसे विकास होते होते हमे मानव स्वरूप प्राप्त हुआ है। यह स्वरूप अुस विश्वका केवल आवर्त्त या आविर्भाव नही है। अिस स्वरूपकी निर्मितिका कोअी निश्चित क्रम है। विशेष परम्परासे वह अिस स्थितिको पहुचा है। अुसके पीछे विश्वका कोअी अटल नियम है। अिससे अिस प्रकार निर्माण होनेवाले मानवके चित्त-चैतन्यमें कोअी विशेष सामर्थ्य आया है। और अुस सामर्थ्यको काममें लेनेकी अुसे थोडी स्वतत्रता है। वह सामर्थ्य और वह स्वतत्रता अिस विश्व-व्यापारका विशेष परिणाम है। विश्वके गुण-धर्मोंसे ही अुन सामर्थ्यका पोषण होता है। सस्कारोंके अनुसार विचार पैदा होनेका स्पष्ट धर्म मानव-चित्तमे दिखाअी देता है। अुनमें से किसी विचारको सकल्पका रूप प्राप्त होने पर दृढतासे अुस पर डटे रहने की शक्ति भी अुसमें आ गअी है। अुस शक्तिके साथ ही विवेक, सयम वगैरा अपनी दूसरी शक्तियोका अुपयोग करके अपनी मानवताका पोषण करते रहना विश्वके नियमानुसार मानवका सहज धर्म बन गया है। हम अपने चित्तको सदा सत्सकल्पमय रखें और सत्कर्मरत रहें, तो विश्वके अुसी प्रकारके शुद्ध आन्दोलनोकी तरंगें ग्रहण करनेके लिअे वह हमेशा तैयार और योग्य बना रहेगा। विश्वके नियमानुसार यह अुसका धर्म हो जायगा। अुस अवस्थामें अशुद्ध सकल्प या अशुद्ध कर्म हमारे चित्तको स्पर्श भी नहीं कर सकेगा। जैसे कस्तूरी, केसर वगैरा पदार्थ विश्वके अुन अुन परमाणुओंके निसर्ग-नियमसे जमा होनेके फलस्वरूप बने हुअे घनरूप हैं, वैसे ही अपना चित्त शुद्ध रखनेका हमारा सकल्प हो, तो हमारी ग्रहणशीलता और विश्वके आन्दोलनोंके व्यापारके कारण विश्वके केवल अच्छे सकल्प और सत्कर्मकी तरंगें हमारे चित्तमें प्रवेश पायेंगी और प्रकट होंगी तथा हममें से भी अिसी किस्मकी तरंगें बाहर निकलती रहेंगी।

सृष्टिके अमुक सुगंधित तत्त्व कस्तूरीके रूपमे अेकत्र हो जाते है और अुसमे से फिर वे सृष्टिमें फैलते रहते हैं। यही हाल हमारे शुद्ध सकल्पसे हमारे चित्त-चैतन्यका होगा। मानव-चित्तमे विशेष रूपमें रहनेवाली सकल्प-शक्तिका अुपयोग मनुष्य विवेकपूर्वक करे, तो अुसमे मानवोचित तत्त्व आते रहेगे और अुसके द्वारा अुनका शुद्ध प्रकटीकरण होता रहेगा। पिचकारीमें अैसी योजना होती है कि कोअी भी पतला या प्रवाही पदार्थ खिचकर अन्दर आ जाता हैं। परन्तु यह हमे विवेकपूर्वक फैसला करना पडता हैं कि अुसके द्वारा कौनसा प्रवाही पदार्थ अन्दर खीचा जाय। पिचकारीसे स्वच्छ और अस्वच्छ दोनो तरहका पानी खीचा जा सकता है और दुनियामें दोनो तरहका पानी है। साधारणत हमारी सकल्प-शक्तिमें पिचकारी जैसा ही गुण-धर्म है। अिसलिअे मानवताकी दृष्टिसे हममे केवल सकल्पकी दृढताका होना ही काफी नही है। परन्तु अुसके साथ ही विश्व-शक्तिकी शुद्ध तरगोको खीचनेमें हमें अपनी सकल्प-शक्तिका अुपयोग करना चाहिये। अिस प्रकार हमें हमेशा मानवोचित गुणोको अपनाकर अपनेमें और दुनियामें अुनकी वृद्धि करनी चाहिये। हमारा अैसा सकल्प और हेतु हो, तो विश्वके नियम और गुण-धर्म हमे सदा सहायता देते रहेगे। हम अपनी मानवता बढाते रहें और अुन्नतिका प्रयत्न करते रहे, तो दुनियामें अेक तरफ प्रत्यक्ष मानवता बढती रहेगी — विश्वशक्तिके सुप्त गुणो और धर्मोका अुसके द्वारा प्रकटीकरण होता रहेगा और दूसरी तरफ हमारे शुद्ध सकल्पो और सत्कर्मोंके कारण विश्वके शुद्ध आन्दोलनोमें वृद्धि होकर अुन्हे गति मिलती रहेगी। और अुन सबका परिणाम हम सबके लिअे शुभदायक होगा।

परमशक्तिके प्रति कृतज्ञता

अिसमे शक नही कि विश्वमें अशुद्ध संकल्पो और अशुद्ध कर्मोकी तरगो और आन्दोलनोका जोर बहुत है। अितने पर भी जिस जिसको अपनी मानवता गौरवरूप लगती हो, जिन्हे यह महसूस होता हो कि विश्वके अनत सर्जन-विसर्जनमें से मानव अेक विशेष सामर्थ्यशील प्राणी निर्माण हुआ है, अुन सबको विश्वमें मानवता बढानेका

सतत प्रयत्न करना चाहिये। जिस विश्वमें हमारा अकेलेका अलग कर्म नहीं है। विश्वमें सबके कर्म, सबके संकल्प, सबके लिअे — अेक दूसरेके लिअे — सुखद या दुःखद, अुन्नतिकारक या अवनतिकारक होते हैं। तत्त्वतः किसीका कर्म अलग नहीं। हम सब विश्वशक्तिसे पैदा हुअे हैं। अुसीसे हम सबके शरीर पाले-पोसे जाते और बढ़ते हैं। और अन्तमें अुसीमें ये सब मिल जायेंगे। हम सबको अिसी विश्वशक्तिके चेतन, प्राण, चित्त, मन वगैरा सूक्ष्म तत्त्वोंमें से ये तत्त्व मिलते हैं। और हमारे द्वारा अुनका स्पष्ट प्रकटीकरण होता है। हमारे तमाम गुण-धर्म अिसी विश्वशक्तिके स्पष्ट स्वरूप हैं। जो विश्वमें है वही हममें प्रगट रूपसे दिखाओ देता है और जो कुछ हममें है सो सब विश्वमें सुप्त दशामें है। हमारा और विश्वकी अनंत शक्तिका अन्योन्य सम्बन्ध है। अिसमें मानवकी विशेषता अितनी ही है कि अुसमें विश्वके कुछ नियम जानने लायक ज्ञानशक्ति प्रकट हो गयी है। वह अपनी अपूर्णता अुस विश्वशक्तिकी आराधना, श्रद्धा, भक्ति और अुसके प्रति निष्ठासे दूर कर सकता है। अिस श्रद्धा-भक्ति और निष्ठाका सूत्र हमारी संकल्प-शक्तिमें है। अिस संकल्प-शक्तिकी मददसे मनुष्य अपने लिअे आवश्यक तत्त्व, आवश्यक गुण-धर्म विश्वमें से अपनेमें ला सकता है, यह भी अुसकी विशेषता है। जो तत्त्व हमारे लिअे आवश्यक हैं अुन सबका अपार संचय अनंत शक्तिमें भरा हुआ है। अुसमें से जो भी चाहिये सो लेकर हमें सबके दुःखका नाश करके सबकी मानवताकी वृद्धि करनी है। विश्वका क्रम और धर्म हमारे अनुकूल है। अिस धर्मकी मददसे यह सब हमारे संकल्पके अनुसार होगा। अिस सबमें हम केवल निमित्तमात्र हैं। यह ज्ञान केवल मनुष्यको ही हो सकता है। अिसलिअे जिससे हमें अिस ज्ञान, शक्ति, मति, गुण, धर्म वगैराकी प्राप्ति होती है और जिससे हम सबकी निर्मिति हुआी है, अुस विश्वशक्तिके प्रति — परमशक्तिके प्रति — सदा कृतज्ञ और भक्तिपूर्ण रहना, अुस पर

निष्ठा रखना हमारा मुख्य कर्तव्य है। अिस निष्ठामे कल्पनातीत सामर्थ्य है। अिसी निष्ठामे अनत शक्तिके साथ समरस होकर अुसके गुणोका हमारे द्वारा प्रकटीकरण करनेका सामर्थ्य है। जिस शक्तिमे से चित्त और चेतन स्पष्ट दशामें आये और आज सारी जलस्थल सृष्टि असख्य मानवो और मानवेतर छोटे-बडे प्राणियोसे भरी दिखाअी दे रही है और अुन सबका भरण-पोषण होता है, जिस शक्तिमे से चित्त और चेतनके अधिकाधिक विकसित होते होते मानव पैदा हुआ और आजकी स्थितिमें आ पहुचा है, जो सबकी तमाम शक्तियोका पोषण करनेवाली और अुनकी नियामक है, जिस शक्तिके कारण मानवके चित्त-चैतन्यका प्रभाव अधिकाधिक विशाल क्षेत्र पर पडता जा रहा है, वह शक्ति जड है या चेतन? अुसमें ज्ञान, गुण, भाव और कर्तृत्व है या नही? अिसका फैसला करना मनुष्यकी नम्रता, कृतज्ञता, प्रेम, भक्ति और निष्ठा वगैरा पर अवलबित है। मातृभक्त और पितृभक्त पुत्र मातापितासे कितना ही अधिक ज्ञानी और पुरुषार्थवाला हो जाय, तो भी अुनके साथ नम्रताका बरताव करके अुनके प्रति कृतज्ञ और निष्ठावान रहता है, और अैसेको ही हम आदरणीय मानते हैं। विश्वकी अनत शक्ति और हमारे बीचके सम्बन्धमे मातापिता और पुत्रके सम्बन्धसे अनत गुना फर्क है, कारण विश्वशक्तिके साथ हमारा सम्बन्ध अुनसे ज्यादा गहरा, अेकरस और जीवनव्यापी है। अैसी हालतमे अुस परमशक्तिके लिअे — परमात्माके लिअे — हमारे हृदयमें कृतज्ञता, नम्रता और पूज्यताके भाव रहे तो अिसमें हमने अधिक क्या किया?

१४

सामूहिक कर्म और कर्मफल

वैयक्तिक मोक्षकी अशक्यता

पिछले दो अध्यायोकी व्यक्त-अव्यक्त विचारसरणी अगर पाठकोके गले अुतरी होगी, तो अुनके ध्यानमें यह आया होगा कि हम और विश्व तथा हमारे द्वारा किये जानेवाले कर्म, सकल्प, विचार और विश्वका व्यापार, अुत्पत्ति, स्थिति और लय वगैरा अितना मिलाजुला और अेकत्र होता है कि अुसमें से हमारी अपनी कोअी चीज अलग नही की जा सकती। शरीरसे लेकर चैतन्य तक जो कुछ भी हम अपना समझते है, अुस सबका निर्माण विश्वशक्तिसे होता है और अुसी शक्तिकी पूरी मददसे अुसका पोषण होता है और अपने गुण-धर्मके अनुसार सबका अुसी शक्तिमें लय होता है। जिसे हम अुत्पत्ति, स्थिति और लय कहते है, अुसका थोडासा विचार करने पर मालूम होगा कि अुत्पत्ति किसी न किसीका लय है और लय किसी न किसीकी अुत्पत्ति है; और क्षण क्षणमें होने-वाली सक्रमण अवस्थामें स्थिति किसे कहा जाय, यह अेक सवाल ही है। बीजके नष्ट हुअे विना पेड नही होता। लकडीके जले विना अग्नि प्रकट नही होती और अुसके बुझे विना कोयला या राख नही बनती। असलमे अिस विश्वमें कुछ भी नष्ट नही होता। अेक ही वस्तुके केवल रूपान्तरमात्र होते है। विश्वमें ये फेरबदल सतत होते रहते है। विश्वका यही व्यवहार है। अिसीमें से — अिसी सक्रमण अवस्थामें से — मानवका निर्माण हुआ है। अज्ञान अवस्थामें अिसी सृष्टिकी किसी शक्तिको वह देवता मानने लगा। आगे जाकर अिसके प्रति अुसमें सद्भाव पैदा हुआ। अुसमें से अुसने भक्ति, आत्मज्ञान, ब्रह्म-

ज्ञान वगैराकी कल्पना करके वन्धन और मोक्ष निर्माण किये। जीव-शिव, आत्मा-परमात्मा, ब्रह्म-परब्रह्म वगैरा विचारो या कल्पनाओसे अुसने शान्ति प्राप्त करनेकी कोशिश की। कर्मवाद, पुनर्जन्मवाद निर्माण किये। चौरासी लाख योनियोकी कल्पना की। परन्तु विश्वशक्ति और मनुष्यके वीचके व्यक्त-अव्यक्त सवधका विचार करनेसे अैसा नही लगता कि विश्वमे अैसी कोअी योजना है कि हरअेक मनुष्यके अलग-अलग कर्म होते है और अुनके फल भोगनेके लिअे अुसका पुनर्जन्म होता है। हमारे सवके और विश्वके कर्म अितने ज्यादा मिले-जुले और अेक-दूसरेके साथ गुथे हुअे है कि अिस वातकी किसी भी तरह जाच कर सकना सभव नही दीखता कि अुनमें से कौनसा कर्म हमारा अकेलेका है और अुनमें से कौनसे कर्मका कौनसा परिणाम है। कोअी भी कर्म स्वतत्र, अकेला या अलग नही होता, परन्तु अनेक छोटे-वडे कारणो यानी भिन्न-भिन्न कर्मों और क्रियाओका परिणाम होता है। और वे कारण और कर्म भी अुनसे पहलेके अनेक कारणोके परिणाम होते है। अैसी स्थितिमे कोअी भी कर्म तत्त्वत. किसी अकेलेका नही हो सकता। जिस शरीरको हम अपना ही मानते है, वह भी हमारा अकेलेका नही है। अुसका धारण, पोषण और रक्षण हमारे अकेलेसे नही हो सकता। अुसमें कुदरत, प्राणियो और अनेक मनुष्योंके कार्य, परिश्रम, ज्ञान और भावनाओका हिस्सा है। यह काम कअी कारण-सयोगोके मिलनेसे होता है, वे सारे कारण-सयोग हमारे अकेलेके हाथमे नही होते। अिसी न्यायसे कर्मके फलो और कर्मके परिणामोका तत्त्वत विचार करे, तो किसी भी कर्मके परिणाम सृष्टिमें अनत रूपमें परपरासे जारी ही रहते है। अुन सवको हम कर्मके फल नही मानते। परन्तु हम कर्मका जो परिणाम चाहते है अथवा अुसका सुख-दु खात्मक जो तात्कालिक परिणाम हम पर होता है, अुसीको हम अुसका फल कहते है। अथवा विशेष तीव्र रूपमे अनुभव होनेवाली किसी भी सुख-दु खात्मक घटनाके आ पडने पर जव अुसके तात्कालिक

कारण समझमें नहीं आते, तब हम यह मानते है कि वह अुससे पहलेके कर्मका या अुससे भी आगे बढकर पूर्वजन्मके कर्मोका फल है। हमने यह न्याय ठहरा रखा है कि पुण्यका फल सुख और पापका फल दुख है, और अुसका अमल अिस जन्ममें न हो सके तो अुसके लिअे नये जन्मकी कल्पना अुपयोगी साबित हुअी है। सामाजिक नीतिके रक्षकोको भी समाजकी सुव्यवस्था रखनेके काममें अिस लोकश्रद्धासे थोडी सहायता मिलती रही है, अिसलिअे अुन्होने भी अिस कल्पना और श्रद्धाका पोषण किया है। परन्तु ससारके भिन्न-भिन्न मानव-समूहोकी पाप-पुण्यकी कल्पनायें भिन्न-भिन्न है। अैसी हालतमें पाप-पुण्यके फलका न्याय अुन मानव-समूहोकी अपनी-अपनी कल्पना या श्रद्धाके अनुसार होता है या अुसके पीछे मनुष्यमात्रको लागू होनेवाला कर्म-फल सम्बन्धी सृष्टिका कोअी निश्चित और अटल धर्म या अीश्वरी कानून है, अिसकी खोज अभी तक नही हुअी। अिसी प्रकार मनुष्यको अिस जन्ममें जो सुख-दुख भोगने पडते है, वे पूर्वजन्मके अुसके किस कर्मके परिणाम है, यह भी अभी तक कोअी खोज नही सका है। अितने पर भी हममें यह विश्वास पीढी दर पीढी चला आ रहा है कि अिस जन्मके कर्म आगेके जन्ममें भोगने पड़ते है, बल्कि हमारा विश्वास है कि यह जन्म अिससे पहलेके जन्मोंके कर्मो पर चलता है। परन्तु विचार करने पर लगता है कि कर्म और अुसके फल सम्बन्धी यह दृष्टि बडी सकुचित है। मानव-जातिकी विशालताका, मनुष्य-मनुष्यके बीचके परस्पर गुथे हुअे और साथ ही सबके अेक-दूसरेके साथ मिले-जुले और अुलझे हुअे सम्बन्धका और वास्तविक स्थितिका अुसमें विचार नहीं किया गया है। हमें अपने ही कर्मका फल मिलता है, अिस कल्पना और विश्वासमें 'स्व' सम्बन्धी हमारी कल्पना अपने शरीरको छोडकर जरा भी आगे बढी नहीं दीखती। मनुष्यके व्यापक मनकी, सम्बन्धकी और वास्तविक स्थितिकी दृष्टिसे वह मान्य नही हो सकती। असलमें, कोअी भी कर्म हमारा अकेलेका नही और हमारा चाहा

हुआ परिणाम या अुसका तात्कालिक होनेवाला परिणाम ही अुसका फल भी नही। हम सबके कर्म, सकल्प, भावनायें, विकार वगैरा सबके आन्दोलन विश्वमे अव्यक्त रूपमें सतत होते रहते है और अिन आन्दोलनोके परिणाम सब पर होते है। अिस दृष्टिसे देखने पर मालूम होगा कि हमारे कर्म सामूहिक है और अुनके फल या परिणाम भी सामूहिक है तथा अुनकी परम्परा विश्वमे सतत जारी है। अिसलिअे हमारा अकेलेका ही कर्मक्षय हो जायगा और केवल हमें ही मोक्ष मिल जायगा, यह आशा करनेके लिअे कोअी आधार या गुजाअिश नही है।

'अहं' के कारण अमरत्वकी अिच्छा

अितने पर भी मनुष्यमे स्पष्ट दशामे प्रकट हुआ 'अह' अितना जबरदस्त है कि वह अेक स्थानसे हट जाता है तो दूसरे स्थानमे मजबूतीसे चिपट जाता है। स्थूल शरीर हमारा नही है, वह शाश्वत नही है, यह अच्छी तरह समझ लेने पर स्थूल परका 'अह' सूक्ष्मसे चिपट जाता है। अुसे वहांसे हटा दिया जाय तो वह कारण पर, वहासे महाकारण पर और अन्तमे अिस विचार या कल्पना पर आकर अुसीसे मजबूतीके साथ चिपट जाता है कि हमारी 'आत्मा' सबसे अलग है। और अुसकी मुक्तिका आग्रह रखता है। हमारे भीतरके 'अह' का अैसा प्रभाव है। अेक बार निर्माण हुआ 'अह', आत्मविचारसे ही क्यो न हो, अमरत्वकी ही अिच्छा रखता है। मनुष्यको अपने 'न होनेकी' कल्पना बरदाश्त नही होती। 'आत्मा' सचमुच अमर, नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त है या नही, अिस बारेमें शका हो, तो भी अिसमें शक नही कि मनुष्य 'स्व' सम्बन्धी किसी भी कल्पनासे अमर, नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त रहनेकी अिच्छा रखता है।

सामूहिक न्याय

दुनियाका न्याय देखते हुअे अैसा नही कहा जा सकता कि कर्मका फल कर्म करनेवालेको ही मिलता है। मेहनत अेक करता है और अुसका फल सुख-स्वास्थ्यके रूपमें दूसरोको भी मिलता है। सपत्तिका सुख अुसका कमानेवाला ही नही भोगता। व्यक्तिका धन बच्चो या अुसके वारिसोको

भी मिलता है। यही नियम दुखके वारेमें भी दिखाओी देता है। सत्कर्मका फल आत्मप्रसादके रूपमें — संतोषके रूपमें — केवल करने-वालेको ही मिलता है। ज्ञानकी शान्ति शोधक या विचारकको ही मिलती है। पर भौतिक सुखके मामलेमें अैसा जान पडता है कि सबके अच्छे-बुरे कर्मोंका फल सभीको भुगतना पड़ता है। अिसमें देश, काल वगैराकी मर्यादा जरूर रहेगी। अुसमें भी न्याय अन्तमें सामूहिक ही होगा। सत्कर्मका फल सन्तोषके रूपमें कर्ताको मिलता हुआ दीखता है, फिर भी अिस वारेमें सूक्ष्म विचार करें, तो वह सत्कर्म विश्वमें होनेवाले कितने ही अव्यक्त आन्दोलनों, तरंगों, अिच्छाओं और संकल्पों तथा कितने ही लोगोंके पूर्वप्रयत्नों, कितने ही लोगोंसे मिले हुअे संस्कारों और प्रेरणा वगैराका परिणाम होता है। कर्मका फल जिसका अुसे ही मिलना चाहिये, यह न्यायदृष्टि अेकाकी रहने-वाले प्राणीके लिअे ठीक है; परन्तु जो प्राणी समूह बनाकर रहते हैं, जिनका जीवन सामूहिक होता है अुनमें वैयक्तिक स्वरूपका न्याय संभव नहीं। जो पशुपक्षी व प्राणी अकेले रहते हैं, अुनमें यह नियम है कि हरअेकको अपने परिश्रमके अनुसार खाने-पीनेको मिलता है। परन्तु मानव-जीवन केवल निसर्ग पर नहीं चलता। अुसमें मानवी शक्ति, बुद्धि, भाव, नीति आदि सबका समावेश है। हमारे हरअेक प्रयत्नके साथ हमसे पहलेकी अनेक पीढ़ियोंके ज्ञान और पुरुषार्थका सम्बन्ध है। हमारे शरीरमें अपने कअी पूर्वजोंका खून है। हमारे कर्मके साथ बहुतसे व्यक्तियों, प्राणियोंके ज्ञान और परिश्रमका सम्बन्ध है। भावना, प्रेम, मैत्री, वगैराके कारण सबके साथ हमारे सामाजिक सम्बन्ध हैं। मनुष्यके बिना कुटुम्ब नहीं। कुटुम्बके बिना गाँव नहीं। गाँवके बिना प्रान्त नहीं। अिस तरह अेकसे अेक बढ़कर और अलग-अलग किस्मके सम्बन्धसे हम सब अेक-दूसरेके साथ अेकत्र बंधे हुअे हैं। मनुष्य समाजसे अलग नहीं है। अिसलिअे अुसका अपना अलग कोअी महत्त्वपूर्ण धर्म नहीं है। वह विश्वसे पैदा हुआ है और अुसीमें मिला हुआ है।

'अह' के कारण किसी समय अपनेमे पैदा हुअी भिन्नताकी भावनाको वह कअी तरहसे वढाता और दृढ करता रहा है। अिस 'अह' की शुद्धि करके वह अपनी ओर देखेगा, विश्वका सारा व्यापार जानेगा, तो सामूहिक भावना पर आ जायगा और व्यक्तिगत 'आत्मत्व' और मोक्ष वगैरा कल्पनाओके वधनसे छूटकर अपनी सच्ची स्थिति पर पहुच जायगा।

कर्मकी परिणाम-परम्परा

कर्मके फल या परिणामके लिअे कर्ताके अगले जन्म तक अिंतजार करनेका सचमुच कोअी कारण नही, क्योकि कर्मके सकल्पके साथ ही कर्ताके चित्त पर अुसके परिणाम शुरू हो जाते है। और तभीसे अुसकी तरगे भी विश्वमे फैलने लगती है। कर्म हो जानेके वाद अुसके भले-बुरे नतीजे भी कर्ताको और जहा जहा वे पहुचते है वहाके सव लोगोको प्रत्यक्ष भोगने पड़ते है। अुन परिणामोसे पैदा होनेवाले कअी तरहके परिणामोकी परम्परा दुनियामे जारी रहती है। विश्वका व्यापार अिसी तरह अखड रूपमे चलता रहता है। कर्मके सकल्प और भाव विश्वकी अुसी प्रकारकी तरगो और आन्दोलनोमें तुरन्त मिलकर अुन्ही तत्त्वोमे वृद्धि करते है। प्रत्येक मनुष्य या दूसरा कोअी प्राणी अपने-अपने सकल्पके अनुसार या चित्तके धर्मके अनुसार अुन आन्दोलनोके तत्त्वोको आत्मसात् करके अुन्हे अुसी प्रकारके सकल्प या कर्म द्वारा पुन प्रगट करता है। अुसमें से भी नअी तरगें अुठती है और फिर विश्वमें फैलने लगती है। स्थूल कर्म और अुनके भौतिक परिणाम विश्वमे व्यक्त रूपमे होते है और सकल्प या कर्मकी भावना-तरगे विश्वके व्यक्त-अव्यक्तको मदद देती है। अिस प्रकार क्रिया-प्रतिक्रियाके न्यायसे कर्म, सकल्प और भावका चक्र व्यक्त-अव्यक्तके आधार पर विश्वमे सतत जारी ही रहता है। व्यक्तिके मरनेसे यह चक्र वन्द नही हो जाता। वह विरासतके आधार पर आगे जारी रहता है। विरासतका अर्थ यहा केवल वश-परम्परा या रक्तका

सम्बन्ध न मानकर कर्म और संकल्पकी सजातीयता समझना चाहिये। मनुष्यकी मृत्युके समय अुसके चित्तमें जो संकल्प तीव्र रूपमें बसे होंगे, जो अिच्छायें, भावनायें और हेतु अुत्कट रूपमें रहे होंगे, अुनकी तरंगों और आन्दोलनोंका मृत्युके बाद विश्वमें अधिक तीव्रतासे फैलना या जारी रहना संभव है। शरीरका कण-कण जैसे पंच-महाभूतमें मिल जाता है, अुसी तरह सारे जीवनमें अुसने जो सत्त्व या तत्त्व प्राप्त किया होगा, वह विश्वमें रहनेवाले सजातीय सत्त्व या तत्त्वमें मिल जाता है। विश्वके मूल आन्दोलनोंमें अुसके कारण वृद्धि होती है। सन्त पुरुषकी मृत्युसे विश्वके सत्त्वमें वृद्धि होती है और अुसके आन्दोलनोंकी तरंगें सात्त्विक व्यक्तियोंके हृदयोंमें प्रविष्ट होकर अुनकी सात्त्विकताकी वृद्धि करती हैं और वहांसे सत्कर्मकी प्रवृत्तियां जारी रहती हैं। दुष्ट मनुष्यकी मौतसे अुसमें रहनेवाले तत्त्व विश्वकी सजातीय तरंगोंमें मिलकर दुष्ट हृदयों द्वारा अपना काम करते हैं। ये आन्दोलन पापके क्षेत्रमें जल्दी असर करते हैं, और अुनके परिणाम दूर तक होनेके लिअे लम्बे समयकी जरूरत होती है।

विचार-संशोधनकी जरूरत

हमारे भले-बुरे कर्मोंका फल अिस जन्ममें नहीं तो दूसरे जन्ममें भी सुख-दुखके रूपमें हमीको भुगतना पड़ता है, अिस प्रकार लोगोंकी श्रद्धा होनेके कारण समाजमें कुछ समय तक नीतिके संस्कार टिके और बढ़े भी। अिस श्रद्धाके मूलमें लोगोंमें यह समझ थी कि अीश्वरके घर या कुदरतमें न्याय है। और कुछ समय तक समाज पर अुसका अच्छा असर भी हुआ। परन्तु बादमें यह हालत नहीं रही। अब अिन मान्यताओंमें संशोधनका समय फिर आया है। अब अिस बारेमें शंका अुठी है कि हमारे कर्मोंका फल खुद हमींको भोगना पड़ता है या नहीं; अितना ही नहीं, परन्तु अब कअी लोगोंको यह खयाल होने लगा है कि पुनर्जन्म, कर्मवाद वगैरा तमाम मान्यतायें गलत हैं। अिसका बहुजन-समाज पर जल्दी ही बुरा असर होना

सभव है। अैसे समय अीश्वर, भक्ति, पुनर्जन्म, मोक्ष वगैराके वारेमे लोगोकी श्रद्धा मिटे, अिसके पहले ही विचारवान और जनहित-चिन्तक व्यक्तियोको समाजके सामने सही विचार रखकर अुसमें नीति और सदाचारकी भावनाये जाग्रत करना और अुन्हे दृढ करना चाहिये। नही तो पूर्वश्रद्धासे छूटे हुअे लोकसमाजके नास्तिकतामे फस जाने और स्वैराचारी होनेका वडा भय है। अिस अवस्थामे यदि कअी लोग यह महसूस करे कि अैसा होनेके वजाय धर्मकी गलत और भ्रामक मान्यताये होना भी अच्छा है, तो आश्चर्य नही।

कर्म और अुसके फलकी विशाल कल्पना

हमारे कर्मका फल खुद हमें तो भोगना ही पडता है, परन्तु साथ-साथ दूसरोको भी भोगना पडता है, अिस नियम पर अव हमें विश्वास रखना चाहिये। मानव जगतका न्याय सामूहिक पद्धति पर चलता है। अिसलिअे हमारे कर्मोका फल केवल हमें न मिलकर समूहको भी मिलेगा और समूहके कर्मोका फल समूहके साथ हमे भी मिलेगा। अपने कर्मोका फल हमें अिस जन्ममें या दूसरे जन्ममें भोगना पडता है, अिस मान्यतामें अपनेपनकी कल्पना अिस जन्म और दूसरे जन्मके 'अपने' तक ही अर्थात् अपने जीव तक ही सीमित रहती है। अिसमें सकुचितता और अवलोकन-शक्तिकी अपूर्णता मालूम होती है। अिसलिअे यह सकुचित कल्पना छोडकर हमे अपनेपनकी विशाल कल्पना धारण करनी चाहिये। अिसीमें मानवताका विकास है, अिसीमे न्यायकी विशाल भावना है। हमारा आत्मभाव जैसे-जैसे व्यापक होता जायगा, वैसे-वैसे यह न्याय हमे अुचित दिखाअी देने लगेगा। मानव-जीवन, मानव-सम्वन्ध, मानव-सकल्प और विश्वके व्यक्त-अव्यक्त व्यापार — सवकी दृष्टिसे यह मान्यता और यह न्याय अधिक अुदात्त, सत्य और श्रद्धेय है। अिस न्यायनिष्ठासे हम रहेगे तो हममें आपसमे प्रेम, विश्वास और अेकता वढेगी, हममें समभाव पैदा होगा और कुल मिलाकर हम सव

मानवताकी दिशामें प्रगति करेंगे। अिसके लिअे हमें अपने कर्मों और संकल्पोंका विचार करके अुनमें रहनेवाली अशुद्धता निकाल फेंकनी चाहिये। हमें शुभ कर्म करने चाहियें और शुभ संकल्प धारण करने चाहियें। हम सबकी शुद्धि और अुन्नतिके लिअे हमें सत्कर्मरत और सद्‌गुणी बनना चाहिये। जैसे प्रेमी और कल्याणेच्छुक मातापिता अपनी संतान पर अच्छे संस्कार डालने और अुसकी अुन्नतिके लिअे खुद संयमी, सद्‌गुणी और सदाचारी रहते हैं, अुसी प्रकार सारी मानव-जाति पर हमारा प्रेम हो, सबके प्रति हमारे मनमें सहानुभूति हो, तो समस्त मानव-जातिके लिअे धर्म्य मार्गसे कष्ट सहन करनेमें हमें धन्यताका अनुभव होगा। केवल अपने विषयकी संकुचित भावनासे कष्ट सहन करनेके बजाय मानवता और अेकताकी विशाल भावनासे कष्ट सहन करनेमें जीवनकी सच्ची सार्थकता है।

१५

ध्येय-निर्णय

जीवनका ध्येय क्या हो, यह मानव-जीवनका सबसे बड़ा प्रश्न है। मनुष्यके आचरण और अुसके जीवनकी छोटी-बड़ी बातोंका रुख तथा अुसका पुरुषार्थ और अुसके सामाजिक सम्बन्ध — अिन सबका आधार अुसके जीवनके ध्येय पर होता है। अिसलिअे ध्येय निश्चित करनेमें भूल या दोष न रहना चाहिये।

ज्यों-ज्यों समय बीतता है, ज्यों-ज्यों दुनियाके बारेमें हमारा अनुभव बढ़ता जाता है, त्यों-त्यों अनेक विषयोंकी हमारी कल्पनाओं और विचारोंमें परिवर्तन होते रहते हैं। अिसी प्रकार जीवनके ध्येयके बारेमें भी अुचित परिवर्तन होनेकी जरूरत है। ये परिवर्तन ठीक समय पर न हों, तो अुनके कठोर परिणाम व्यक्ति और समाज दोनोंको

भोगने पडते है। अिसलिअे जीवनका ध्येय तय करते वक्त मनुष्यको देश, काल, परिस्थिति, अपनी जरूरते, अपनी भावनायें, अपना मन और अन्तमे अपना और मानव-जाति दोनोका श्रेष्ठ कल्याण— अिन सब बातोका जितना व्यापक, दीर्घ और सूक्ष्म विचार किया जा सके अुतना करना चाहिये।

सुख-दुःखसे छूटनेकी कल्पना

सुखसे प्रीति और दु खसे अप्रीतिकी भावना मानव-जातिमें शुरूसे आज तक ज्योकी त्यो चली आ रही है। मनुष्यके लिअे सुखकी अिच्छा बिलकुल स्वाभाविक है, और यह अिच्छा पूरी करनेके लिअे वह अनेक सकटोका सामना करता है। अत्यन्त दु खमय स्थितिमे भी मनुष्य किसी न किसी सुखकी आशा पर ही जीता है। वर्तमान या भविष्यके किसी भी सुखके साथ चित्तका सम्बन्ध जुडा हुआ न हो, तो मानव-जीवनका टिकना ही सभव नही। भविष्यके सुखके साथ चित्तका जो सम्बन्ध होता है वही आशा है। मानव-मनका कही न कही और कभी न कभी सुखके साथ सम्बन्ध होना ही चाहिये। मनका यह धर्म है। अिसी धर्ममें से स्वर्गकी, सुखमय परलोककी और पुनर्जन्मकी कल्पना निर्माण हुअी है, और अन्याय, दुष्टता और दुराचरण करनेवालेको कभी न कभी सजा जरूर मिलनी चाहिये, अिस न्यायवृत्तिमे से नरककी कल्पना निकली है। जैसे दु खनाश, सुखप्राप्ति वगैरा बाते हमारी अिच्छानुसार अिस जन्ममें नही होती, अुसी प्रकार सब जगह यह नही दिखाअी देता कि सत्कर्मके अच्छे और दुष्कर्मके बुरे फल जगतमे मिलते रहते है। अिसलिअे अिन सब बातोके बारेमें मनुष्यने स्वर्ग, पुण्यलोक, नरक और पुनर्जन्म वगैरा कल्पनाओके द्वारा अपने मनसे व्यवस्था और न्याय निश्चित कर दिये हैं। यह व्यवस्था करनेके बाद भी मनुष्यके ध्यानमें आया कि जीवमात्रके साथ सुख-दु ख लगे ही हुअे है, कितनी ही अुत्तम परिस्थितिमें जन्म हुआ हो तो भी सपूर्ण दु खनाश और सब प्रकारसे सुखप्राप्तिकी स्थिति

मनुष्यको प्राप्त नहीं हो सकती। तब मनुष्यके समझदार मनने यह बात स्वीकार की कि दुःख न चाहना हो तो सुख भी छोड़ना होगा, अेक न चाहिये तो दूसरी प्रिय वस्तुका भी त्याग करना होगा; जन्मके साथ ही सुख और दुःख दोनों मनुष्यके पीछे लगे हुअे हैं, अिसलिअे दुःखसे छूटनेके लिअे सुख छोड़नेको तैयार हुअे सिवाय और अुपाय नहीं। अुन दोनोंको टालना हो तो जन्मको टाले सिवाय दूसरा मार्ग नहीं। अिसके लिअे जन्म न पाना यानी मोक्ष प्राप्त करना चाहिये। और अिस तरह मोक्ष ही जीवनका ध्येय बना। मनुष्यका ध्येय यही है और वह योग्य है, यह साबित करनेके प्रयत्नमें अलग-अलग शास्त्र निर्माण हुअे, अुसीसे प्रवृत्ति-निवृत्तिके वाद पैदा हुअे, कर्मवाद भी अुसीसे निर्माण हुआ और तत्त्वज्ञानका भी वहींसे आरम्भ हुआ। अुस ध्येयको प्राप्त करनेके साधनोंके विचारसे कर्मक्षय, सन्यास वगैरा बातें अेकके बाद अेक निर्माण हुआीं और अिस प्रकार वह ध्येय सशास्त्र बना। अिसी परसे और संन्यासी, त्यागी और ज्ञानी लोगोंके सद्व्यवहार तथा संयमशील और शान्त जीवनके कारण मोक्ष और अुनके साधनोंके बारेमें साधारण जनतामें श्रद्धा फैली और परम्पराने दृढ हुआी।

गृहस्थाश्रम और धर्ममार्गकी अुपेक्षा

जिस समय समाजके सदाचारी व्यक्तियोंने मोक्षकी कल्पना या ध्येय स्वीकार किया, अुस समय व्यक्ति और समाजका अुससे कुछ न कुछ कल्याण हुआ होगा, अिसमें शक नहीं। परन्तु अिस विषय पर विचार करनेसे यह अनुमान होता है कि जबसे अिस कल्पनाके कारण आगे चलकर गृहस्थाश्रम और दूसरे कर्तव्योंके प्रति अनादर पैदा होने लगा और धर्ममार्गके बारेमें समाजमें शिथिलता आअी, तबसे हमारी अवनति शुरू हुअी होगी। मोक्षकी कल्पना बहुजन-समाजके मनमें दृढ हो जानेके बाद और व्यक्ति तथा समाज पर अुसके अनिष्ट परिणाम शुरू होनेके बाद ध्येयके

वारेमें विचारवान लोगोको ज्यादा विचार करना चाहिये था। लेकिन अुस समय अैसा नही हुआ। अिसलिअे गृहस्थाश्रमके वारेमें अुत्पन्न हुआ अनादर जैसेका तैसा कायम रहा। लोगोको अिस अनिष्टसे वचानेके लिअे किसी महात्माने समाज पर निष्काम कर्मयोगका सिद्धान्त और विचारसरणी जमानेकी कोशिश की। परन्तु अिसका भी अन्तिम ध्येय मोक्ष ही होनेसे गृहस्थाश्रम और कर्ममार्गके विषयमें पैदा हुअी अुदासीनता कम न हुअी और अुसका गया हुआ महत्त्व फिर नही लौटा। आज हमारा रहन-सहन और वर्ताव वगैरा सन्यासपरायण न होने पर भी गृहस्थाश्रमके वारेमें हमारे मनमे सच्चा आदर और सद्भाव नही है। गृहस्थाश्रममें रहते हुअे भी हम सवका यह दृढ खयाल होता है कि वह दोषमय और पापमय है और अैसा ही रहेगा। गृहस्थाश्रमके सुखकी आसक्ति हमसे छूटी नही है। अुसके वारेमें हमारा कोअी भी रस कम नही हुआ है। अपनी आसक्तिसे हम अपनेमे और समाजमें कितने ही दोष और दु ख वढाते है। फिर भी हमारी अिस समझके कारण कि ससार दोपरूप और दु खरूप ही रहेगा, अुसके वारेमें कोअी दु ख न माननेकी वृत्ति हममें दृढ हो गअी है। गृहस्थ-जीवन अैसा ही रहनेवाला है, यह हम मानते आये है। अिसलिअे हमें अुसके वारेमे विचार करनेकी वात कभी नही सूझती। अितनी भारी जडता हममें आ गअी है। गृहस्थ-जीवनमे पवित्रता, प्रामाणिकता, सत्य, अुदारता, सयम और निस्पृहतासे रहनेकी कल्पना ही समाजसे लगभग नष्ट हो गअी है। व्यक्तिगत स्वार्थसाधन ही संसारका ध्येय वन गया है। किसी दु ख, आघात या अपयशके परिणामस्वरूप ससारसे वैराग्य या घृणा हो जाय, तो संन्यास लेकर मोक्षके पीछे लग जाना चाहिये, अैसी समझ और मनोवृत्ति आम तौर पर जनसमाजमें होनेसे हम नैतिक और भौतिक दृष्टिसे वहुत ही हीन दशाको पहुच गये हैं। भक्तिमार्गी सन्तोने समाजमें भक्तिका प्रचार करके लोकमानसको शुद्ध करनेका प्रयत्न किया; परन्तु अुनका ध्येय

भी मोक्षकी तरह अीश्वरके साथ तद्रूप होनेका, निवृत्तिपरायण ही था, अिसलिअे गृहस्थाश्रमका गया हुआ पावित्र्य और पुरुषार्थका बल वापस नहीं आ सका।

सामाजिक वृत्तियोका अभाव

मोक्ष जैसे वैयक्तिक ध्येयके कारण सामूहिक लाभ और कल्याणके लिये जिन सामूहिक विचारो, वृत्तियो और सद्‌गुणोकी जरूरत है वे हममें अभी तक नही आये है। हरअेक मनुष्य अपने-अपने कर्मके अनुसार सुख-दुःख भोगता है, हम किसीको सुखी या दुःखी नही कर सकते; वैसा हम कर सकते है, अिस मान्यतामें भ्रांति है। अिस प्रकारकी शिक्षा हमे कितने ही समयसे मिलती रही है। यह शिक्षा व्यक्तिगत श्रेयकी दृष्टिसे कितनी ही अूची मानकर दी गयी हो, तो भी वह हमें अत्यन्त स्वार्थी बनानेका कारण सिद्ध हुअी है। अैसा लगता है कि आजकी बुराअियोंके बहुतसे बीज अिसी शिक्षामें होने चाहियें। धन, विद्वत्ता, वैभव या अन्य किसी भी विशेष प्राप्तिसे खुद सुखी होना और अिसी तरह मोक्ष प्राप्त करके अपना कल्याण साधना — अिस सबमें किसी भी तरह सामूहिक कल्याणका प्रश्न, विचार या अुद्देश्य दिखाअी नही देता। अिससे मालूम होता है कि व्यक्तिगत लाभकी अिन शिक्षाके कारण ही हममें सामाजिक या सामूहिक वृत्तिका अभाव है। हमारे आचार-विचारमें व्यापकता नही है और सभी जगह संकुचितता दिखाअी देती है। अिसके अन्य अनेक कारण होते हुअे भी यह निश्चित मालूम होता है कि यह शिक्षा भी अिसका अेक महत्त्वपूर्ण कारण है।

अिसका हमारी आजकी व्यक्तिगत, कौटुम्बिक, सामाजिक और राष्ट्रीय स्थिति पर अनिष्ट परिणाम नजर आता है, या यों कहें कि अिन सबका परिणाम ही हमारी आजकी स्थिति है। यह अत्यन्त दुःखकी बात है कि हमारी ध्येय सम्बन्धी कल्पनामें समयानुसार जो परिवर्तन होना चाहिये था, वह नही हुआ। मोक्षका

ध्येय जिस समय माना गया, अुस समय विचारशील मनको वही
योग्य लगा होगा। अुस समयकी वैयक्तिक और सामाजिक स्थिति,
धार्मिक और आध्यात्मिक कल्पना आदि सबमे से अुसी प्रकारके ध्येयकी
कल्पना सूझना स्वाभाविक होगा। परन्तु समय जाते अिन सब बातोमे
परिवर्तन होने पर भी अगर हम अुसी कल्पना और अुसी ध्येयको
पकडे रखे और अुसके दुष्परिणाम भोगते रहे, तो यही कहना होगा
कि आजकी स्थितिसे हमारा अुद्धार होनेकी कोअी आशा नही।

सामूहिक हित ही अेकमात्र ध्येय

अिसलिअे अगर हमे सचमुच अैसा लगता हो कि यह स्थिति
अवनत और शोचनीय है, तो अुसे बदलनेका हमे
निश्चयपूर्वक प्रयत्न करना चाहिये। अिसके लिअे
हमे कोअी अुदात्त और योग्य ध्येय स्वीकार करना
चाहिये। अिसके विना छुटकारा नही। हम मनुष्य
है, और यदि मनुष्यकी तरह हमें जीना है, तो यह बात पहले
हमारे हृदयमें पूरी तरह जम जानी चाहिये। मानवी सद्गुणोसे
युक्त हुअे विना हम अैसा कभी नही कर सकेगे। मनुष्य अकेला
रहनेवाला प्राणी नही, परन्तु समूहमें और अेक-दूसरेके साहचर्यमें
रहनेवाला है। अिसलिअे व्यक्तिगत कल्याण या हितकी कल्पना ही
हमें दोषास्पद माननी चाहिये। हमे निश्चयपूर्वक समझ लेना चाहिये
कि अकेलेका हित सचमुच हित ही नही है, बल्कि अेक व्यक्तिकी
स्वार्थपूर्ण क्षुद्र या महान अभिलाषा है। और अुससे आज
नही तो कल सामूहिक दृष्टिसे हानि हुअे बिना नही रहेगी। किसी
व्यक्तिको प्राप्त धन, विद्या और सत्ताका अुपयोग सबके हितमें
किया जाय, तभी अुसका सदुपयोग या धर्म्य अुपयोग हुआ, अैसा
समझना चाहिये। सब तरफसे और सब दृष्टियोसे सामाजिक बने
बिना हममें मानवता नही आयेगी। जिससे मानवमात्रका कल्याण
होता हो वही हमारा धर्म है। मानवमात्रमे हम भी आ ही गये।
हममें यह श्रद्धा होनी चाहिये कि हमारा धर्म हमारा अहित न

करेगा, बल्कि सबके साथ हमारा भी हित ही करेगा। मानव-सद्‌गुणों पर ही मनुष्यका — हम सबका — जीवन चल रहा है। जहां-जहां हमें सद्‌गुणोंकी कमी दिखाओ दे, वहीं दु:खका प्रसंग आता है, फिर भले वह सद्‌गुणोंकी कमी हमारी अपनी हो या दूसरोंकी हो। अुन कमीसे हम या दूसरे अवश्य दु:खी होंगे। अिसलिअे यदि हम सब सुखी होना चाहते हैं, तो हम सबको अवश्य सद्‌गुणी बनना चाहिये। यह बात हमें दृढतासे माननी चाहिये और अुस दिशामें हमारा सतत प्रयत्न होना चाहिये। हम समाजकी अेक अिकाओी हैं और हम सबका मिलकर ही समाज बना है। हम सबके अच्छे बुरे व्यवहार, अिच्छाओं और भावनाओंका परिणाम हम सब पर होता ही रहता है। अिस संसारमें यह नियम नहीं है कि हर व्यक्तिके हर कर्मका अच्छा बुरा नतीजा केवल अुसे ही अलग-अलग भोगना पड़े। हम अैक्यके सामाजिक सम्बन्ध और न्यायसे अिन तरह बंधे हुअे हैं कि हम सबके कर्मोंका फल हम सबको भुगतना पड़ता है। अस्वच्छता, अव्यवस्थितता दोष है और अुनके परिणाम रोगके रूपमें या दूसरी तरह सब मनुष्योंको भुगतने पड़ते हैं। मनुष्य समाज बनाकर अेकत्र रहता है। अैसी हालतमें हम अकेले स्वच्छ रहें या हम अकेले अपने घरको साफ रखें, तो अिसीसे हम बीमारियोंसे बच नहीं सकेंगे। हम, हमारा घर और साथ ही दूसरे लोग और हमारा गांव, सब साफ न हों, तो अिससे पैदा होनेवाले रोगरूपी अनर्थसे हम बच नहीं सकेंगे। गांवमें महामारी फैल जाने पर अुसके दुष्परिणाम सभीको भोगने पड़ते हैं। जैसा यह प्रकृतिका नियम है, वैसा ही नियम मनुष्यके दूसरे व्यवहारमें भी है। मनुष्यको विचार करके अेक-दूसरेके साथके मानव सम्बन्धों, कर्मों और अुनके परिणामके नियम खोजने चाहियें; कार्य-कारणभावकी जांच करनी चाहिये। अैसा करने पर अुसे विश्वास हो जायगा कि हम सब अेक-दूसरेके कर्मसे बंधे हुअे हैं। आज भी समाजमें जो बड़े-बड़े झगड़े होते हैं, अुन्हें

पैदा करनेवाले कौन है? और अुनके अतिशय दुखद परिणाम किसे भोगने पडते है? युद्ध कौन निर्माण करते है और अुनमें प्राणो तकका सर्वनाश किसका होता है? अिन सब बातोका विचार करने पर मालूम होता है कि कर्मका परिणाम केवल करनेवालेको ही नही भुगतना पडता, परन्तु अेकके कर्मोका दूसरेको, अनेकोको अथवा सबके कर्मोका सबको, अिस न्यायसे भुगतना पडता है। दुनियामे यही व्यवस्था या न्याय जारी है। परन्तु चूकि जीवनका व्यक्तिगत ध्येय अेक बार हमने श्रद्धापूर्वक मान लिया है, अिसलिअे अुसे छोडकर हम नअी दृष्टिसे विचार करनेको तैयार नही होते। दुनियामे जो न्याय प्रत्यक्ष चल रहा है, अुस पर ध्यान न देकर पूर्वजन्म-पुनर्जन्मकी कल्पनासे कर्मवादका आश्रय लेकर अपनी पूर्वश्रद्धा कायम रखनेका प्रयत्न हम करते आये है। परन्तु व्यक्तिगत ध्येयकी कल्पनासे आज तक हमारा जो अहित हुआ है और अुस कल्पनाके कारण बने हुअे हमारे अेकागी स्वभावके फलस्वरूप आज भी हमारा और हमारे समाजका जो अहित हो रहा है, अुसे ध्यानमें रखकर हमें समाज, राष्ट्र, मानव-जाति वगैरा सबके हितकी दृष्टिसे अपने ध्येयका विचार करनेकी जरूरत है। अिसीको मानवधर्म कहा जा सकता है।

सद्गुण-संपन्नतामें आत्मत्वका विकास

प्रचलित धर्मोकी योग्यता अिस बात परसे निश्चित करनी चाहिये कि अुनमे सद्गुणोको कितना महत्त्व दिया गया है। सद्गुणोके बिना धर्म नही है। सद्गुणोके बिना मानवता नही है। धर्मकी योग्यता परमेश्वरकी शरणमें जानेकी अुसमें बताअी गअी पद्धतिसे, अीश्वरकी आराधना करनेके कर्मकाड परसे, अुसमें की गअी पाप-पुण्यकी सूक्ष्म समीक्षा परसे, मरणोत्तर मिलनेवाली गति सम्बन्धी कल्पना परसे या अुसकी लोकसख्या परसे नही ठहराअी जानी चाहिये; परन्तु अिस बात परसे ठहराअी जानी चाहिये कि अुसमें सद्गुणोका, सयमका और मानवताका कितना महत्त्व सिखाया

गया है। मनुष्यको जीवनभर प्रयत्न और कष्ट सहन करके अपना 'आत्मत्व' विकसित करना है, और यही मनुष्य-जन्मकी परम सिद्धि है। धारण किये हुअे शरीरमें ही सारा 'आत्मत्व' है, यह मानकर अुसकी हर तरह रक्षा करनेका प्राणिमात्रका स्वभाव होता है; परन्तु सब जगह आत्मभाव और समभाव देखना, अनुभव करना और अुसके अनुसार आचरण करना सिर्फ मनुष्यको ही कभी न कभी सिद्ध हो सकता है। जिस आचरणसे यह सिद्धि प्राप्त हो सकती है, अुसीको मानवधर्म कहा जा सकता है। मानवधर्मका आधार समताके आचरण पर है। जितनी मात्रामें यह समता हमारे आचरणमें आयेगी, अुतनी ही मात्रामें हममें मानवता प्रकट होगी और अुतनी ही मात्रामें हमारा 'आत्मभाव' व्यापक बनेगा। हमारी धर्मबुद्धिके परिणामस्वरूप हमारा 'आत्मत्व' कमसे कम मानव-जाति और हमारे सहवासके प्राणियों तक तो व्यापक होना ही चाहिये। अिस आत्मत्वको विशाल करनेके लिअे और अपनेमें समभावका विकास करनेके लिये हमें सद्गुणोंका अनुशीलन करना चाहिये। सद्गुणोंके बिना समभाव आयेगा नहीं और टिकेगा भी नहीं। दया, मैत्री, बंधुता, वात्सल्य, सत्य, प्रामाणिकता, अुदारता, क्षमा, परोपकार वगैरा सद्गुणोंसे समभाव पैदा होता है और बढता है। सद्गुण सद्गुणोंके सहारे बढ सकते हैं या टिक सकते हैं। अिसलिअे मनुष्यको अनेक गुणोंका आसरा लेना पड़ता है। सब गुणोंकी अुपासनाके बिना मानवता आ नहीं सकती। दया, मैत्री आदि गुण संयम, त्याग, वैराग्य, निर्भयता और निःस्पृहता आदि सद्गुणोंके बिना रह नहीं सकेंगे। प्रेम-भावके बिना सद्गुणोंमें माधुर्य नहीं आयेगा। अिसलिअे तमाम सद्गुणोंको हमें अपने हृदयमें आश्रय देकर अुनका विकास करना चाहिये।

मानवताका प्रारम्भ विवेक और चित्तशुद्धिके प्रयत्नमें और अन्त सद्गुणोंकी परिसीमामें होता है। चित्तशुद्धिके लिअे संयमकी जरूरत

है और सद्‌गुणोकी परिसीमाके लिअे पुरुषार्थकी आवश्यकता है। मानव-सद्‌गुणोमे किस गुणकी कब, कहा और कितनी जरूरत है, अिसका निर्णय करनेवाले विवेककी आवश्यकता जीवनमे शुरूसे लगाकर आखिर तक हमेशा रहती ही है।

विवेक, सयम, चित्तशुद्धि और पुरुषार्थ अिन मुख्य साधनो द्वारा हमारा और समाजका कल्याण साधकर मानवताकी परम सिद्धि प्राप्त करना ही मानव-जीवनका ध्येय है।

१६

मानवताकी सिद्धिकी दिशा*

पहले आत्मसन्तोषके बारेमें थोडासा लिखूगा। अिससे केवल निवृत्ति-परायणतासे मिलनेवाला आत्मसन्तोष और सद्‌भावनापूर्ण और अुचित कर्माचरणसे प्राप्त होनेवाला सन्तोष, अिन दोनोके बीचका अन्तर स्पष्ट हो जायगा।

निवृत्तिके आत्मसंतोषकी स्थिरताके बारेमें शंका

अगर मानव-जीवनका ध्येय यही मान ले कि मनुष्य अपने भीतरी शत्रुओको जीतकर और वासनाका क्षय करके आत्मसन्तोष साध ले और मोक्ष प्राप्त कर ले, तो अुस (ध्येय)के लिअे निवृत्ति-परायण विचार-सरणी, कर्मत्याग और निरुपाधिक रहन-सहन अुचित है। सुखदुःख कर्माधीन है — कर्मका फल जिसका अुसको ही भोगना पडता है — अुसमें कोअी कम-ज्यादा नही कर सकता, अैसी दृढ श्रद्धासे मनुष्य अपने और दूसरोके सुख-दुःखके प्रति अुदासीन रहनेकी कोशिश करता रहे, या अधिकसे अधिक विशेष अुपाधिमें न पडकर सहज ही दूसरेके

* अेक साधकको पत्र द्वारा दिया हुआ अुत्तर (१९४२)

लिये कुछ किया जा सकता हो तो करनेकी वृत्ति रख सके, और जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि वगैराके बारेमें लगनेवाले भय और दुखको "मैं ही शुद्ध, बुद्ध, नित्य, निर्विकल्प हूं", अैसी आत्मविषयक धारणासे शान्त करनेमें सफल हो जाय, तो अैसा लगता है कि मुझे आत्मसंतोष मिल सकेगा।

फिर भी भीतरी शत्रुओंके दमन, वासनाक्षय, कर्म और सुख-दुख सम्बन्धी विशेष प्रकारकी श्रद्धा और आत्मा-सम्बन्धी धारणा वगैराने या अैसे ही किसी अभ्यास या धारणासे प्राप्त हुआ आत्म-सन्तोष हमेशा कायम रहेगा या नहीं, अिस बारेमें मुझे शंका मालूम होती है। जिस मनुष्यमें शुरूसे ही भावनाशीलता, क्रियाशक्ति और पुरुषार्थ वगैराकी कमी हो, अुसे अिस किस्मके अभ्यास और धारणासे आत्मसन्तोष जल्दी मिल तो सकता है; परन्तु अिसमें शक है कि अुसका भी वह सन्तोष हमेशा कायम रहेगा या नही। क्योंकि यह बात हम सत्य मान ले कि दीर्घ प्रयत्नसे मनुष्य अपने षड्रिपुओंको जीतनेमें पूरी सफलता हासिल कर सकता है, तो भी अुसके लिअे यह सिद्ध कर सकना संभव नही मालूम होता कि किसी भी मौके पर और किसी भी परिस्थितिमें चित्तमें शुभ वृत्तियोंको अुठने ही न दे अथवा अुनका जोर न बढने दे। मनुष्य अपने चित्तमें अुठनेवाले विकारोंको शम, दम वगैरासे शान्त करनेमें सफलता प्राप्त कर ले, तो भी दुनिया पर रोज-रोज आ पडनेवाली अनेक आपत्तियों— बाढ, भूकम्प, अग्निप्रलय, महायुद्ध, अकाल, व्याधि, दारिद्र्य जैसी मानव-जाति पर टूट पडनेवाली आपत्तियों और विपत्तियों — और अिसी तरह हमारे आसपास और हमारे सामने होनेवाले अन्याय, क्रूरता, दुष्टता, जुल्म वगैरा घटनाओंको देखने हुअे भी, चारों तरफ दयाजनक स्थिति दीखने पर भी मनुष्यके चित्तमें कोअी शुभ और सात्त्विक भावना अुत्पन्न न हो, अैसी चित्तकी अवस्था वह साध सके, यह संभव नहीं लगता। और चित्तकी अैसी अवस्था हुअे बिना यह असम्भव लगता है

कि अुसका आत्मसन्तोष कायम रहे। अेक तरफ वह अैसी अवस्था प्राप्त नही कर सकता और दूसरी तरफ क्रियाशीलता और पुरुषार्थका अभाव होनेकी हालतमे अुसे चित्तमे अुठनेवाली सद्भावनाओके कारण पैदा होनेवाले असन्तोष और व्याकुलताको कर्मसिद्धान्त (सुख-दुःख अपने अपने कर्मोके अधीन है) की विचारसरणीका आश्रय लेकर शान्त करनेका प्रयत्न करना पडता है। अिसलिअे आपत्तिके हर मौके पर — दया, न्याय, अन्यायका प्रतिकार, आदि शुभ और सात्त्विक भावनाये चित्तमें अुठनेके प्रत्येक अवसर पर — चित्तकी सतोष-स्थिति कायम रखनेके लिअे कर्तृत्वके अभावमें किसी भी विचारसरणीसे चित्तको जड बनानेके प्रयत्नके सिवाय अुसके पास और कोअी अुपाय नही रहता।

निवृत्तिमार्गी लोगोंका अुचित कर्माचरण द्वारा प्राप्त किया हुआ सन्तोष

परन्तु अिस प्रकार अपने मनको जड बनानेकी मनुष्य कितनी ही कोशिश करे तो भी यह सम्भव नही दीखता कि वह सदाके लिअे जड बन जायगा, क्योकि मनुष्य-प्राणी अिस किस्मकी जडता और अज्ञानका त्याग करते करते आजकी मानवता तक — चेतनता तक — आ पहुचा है। जिन व्यक्तियोमें यह मानवता और चेतनता भरपूर थी और अिनके कारण जिनमे भावनाशीलता, क्रियाशक्ति और पुरुषार्थका अभाव नही था, अुन्होने संन्यास या भक्तिमार्गको अगीकार करके निवृत्ति-परायण जीवन स्वीकार करनेके बाद भी, बाहरसे निवृत्तिका प्रतिपादन करनेके बावजूद, कितनी ही प्रवृत्ति की है। ससारको माया समझकर, अुसे त्याज्य मानकर अथवा मृगजल कहकर भी अुन्होने अिस मृगजलमें ही अपने सप्रदायके नये संसार पैदा किये। साराश यह कि बाहरसे वे कुछ भी प्रतिपादन करते रहे, लेकिन अुनमें जो भावनाशीलता और पुरुषार्थ था, अुन्होने अपना-अपना रास्ता निकाल लिया। अिस दृष्टिसे अुनके जीवनका विचार करने पर अैसा

नहीं मालूम होता कि अुन्होंने केवल किसी खास तरहकी धारणासे या किसी निवृत्ति-परायण विचारसरणीसे आत्मसन्तोष प्राप्त किया और अुसे कायम रखा; परन्तु अुनके चरित्र परसे यह मालूम होता है कि अुन्होंने अपनी भावनाशीलता, क्रियाशक्ति और पुरुषार्थको अुचित कर्माचरणमें लगाकर और अुनका विकास करके ही आत्मसन्तोष प्राप्त किया और अुसीके कारण अुनका वह सन्तोष टिका रहा।

शाश्वत आत्मसतोष

सद्भावना और पुरुषार्थका अधिकाश अभाव, निरुपाधिक रहन-सहन, निवृत्ति-परायण विचारसरणी, मोक्षकी अुत्कठा वगैराके कारण किसीको आत्मसन्तोष मिला हो, तब भी कुछ अन्तर्बाह्य प्राकृतिक कारणो और नियमोंसे अथवा बाह्य सात्त्विक सस्कारो या विवेकसे अुसकी भीतरी जड़ता ज्यो-ज्यो कम होगी, त्यो-त्यो अुसके चित्तमें परिवर्तन होता जायगा और पहली धारणाका चित्त पर हुआ परिणाम नष्ट होता जायगा। अैसी स्थितिमें अपना आत्मसन्तोष बनाये रखना अुसको कठिन होगा। लम्बे समयके निरुपाधिक रहन-सहनके कारण, कर्मशिथिलताके कारण और धारणाके विशेष प्रकारके अभ्यासके कारण यदि वह विकलाग मनुष्य जैसा हो गया होगा, यानी सद्भावना जाग्रत हो जाने पर भी अुसे कार्यमें परिणत करनेकी अुसकी शक्ति नष्ट हो गअी होगी, तो अुस स्थितिमें अुसका सन्तोष टिका रहना लगभग असम्भव है। परन्तु सद्भावनाके साथ ही जिसकी कर्तृत्वशक्ति भी जाग्रत हो अुठेगी, वह किसी भी स्थितिमे से अपना मार्ग निकाले बिना नही रहेगा। जो श्रेयार्थी होगा और जिसमें जीवनका सच्चा ध्येय समझमें आने ही अुसे प्राप्त कर लेनेकी अुत्कट अिच्छा होगी, वह कदाचित् किसी कारणसे ध्येय तक न पहुच सके तो भी जहा तक अपने प्रयत्नसे पहुचेगा अुसीने अुसे सन्तोष होगा और वह सन्तोष अुसके पहलेवाले आत्मसन्तोषकी अपेक्षा निश्चित रूपसे अधिक सच्चा और स्थायी होगा।

विचारवान मनुष्यके मनमे अैसे और भी कुछ प्रश्न और शकायें समय-समय पर अुठती है। पराये दुखसे दुखी होकर सतत कर्मरत रहनेवाले मनुष्योकी भी ससारकी महान् प्रवृत्तियो और कार्योके फैलावसे वे खुद और दुनियाके लोग सुखी न होकर अकसर दुखी होते पाये जाते है। तो फिर केवल परदुख-भजनकी वृत्तिसे प्रवृत्ति-परायण होनेके वजाय निवृत्ति-परायणतासे स्व-सतोष प्राप्त करनेको ही जीवनका ध्येय मान ले तो क्या हर्ज है? अिसी तरह ससारके दुखका नाश करनेके लिअे और अुसे सुधारनेके लिअे बहुतसे व्यक्तियोने भयकर कष्ट और यातनायें सहन की और मौका पडने पर अपने प्राण भी अर्पण कर दिये, तो भी अैसा लगता है कि दुनियाका दुख अभी तक ज्योका त्यो है और ससार अभी तक पहलेकी ही तरह विन-सुधरा है। तो फिर कर्मरत होनेमे भी क्या लाभ है?

कर्मरत रहनेके बारेमें शंका

अिस किस्मके सवाल और शक विचारशील मनुष्यके मनमें अुठना स्वाभाविक है। परन्तु केवल परदुख-भंजनकी वृत्तिके पीछे पडनेसे वह या दुनिया सुखी ही होगी, यह मानना ठीक नही। अिस वृत्तिके साथ विवेक, तारतम्य, औचित्य, योजकता वगैरा आवश्यक सद्गुण मनुष्यमें होने चाहिये। परन्तु ये सद्गुण अुसमें न हो, आवश्यक सद्गुणो और कर्तृत्वशक्तिका सहयोग न हो, अपनी पात्रताकी अपेक्षा — शक्तिकी अपेक्षा — कार्यका अधिक विस्तार कर लिया जाय, कार्य अथवा योजनामें कही न कही दोष हो या मनुष्यमें परदुख-भजनकी वृत्तिका केवल व्यसन अथवा तृष्णा ही हो, तो अिस वृत्तिसे कोअी सुखी न होगा, अुलटे अुसके और दूसरोके दुखी होनेकी ही सभावना है। पात्रता न होने पर भी केवल धनतृष्णासे बढाया हुआ व्यापारका विस्तार जैसे कर्ता अथवा अुसके वारिसोका दिवाला निकलनेका कारण बन जाता है, अुसी तरह परदुख-भजनकी वृत्तिकी

बूतेसे ज्यादा प्रवृत्तिका परिणाम

केवल तृष्णासे होना संभव है। भले किसी अेक ही शुभ वृत्तिका व्यसन क्यों न हो, वह व्यसन और अुस वृत्तिकी अतिशयता कभी किसीके लिअे कल्याणप्रद नहीं हो सकती। अतिशयता और निवृत्ति-परायणताकी केवल निरुपाधिकता, दोनोंसे बचकर मनुष्यको अपने कल्याणका मार्ग निकालना है। सद्‌गुणोंका सामंजस्य सिद्ध न हो, अुनका सुमेल साधना न आता हो, तो सद्‌गुणोंका प्रभाव नष्ट हो जाता है। अितना ही नहीं, ये सद्‌गुण ही किसी समय अपने और दूसरोंके नाशका कारण बन जाते हैं। अिस प्रकार अगर सद्‌गुण दुर्गुणोंका परिणाम लायें, तो अुन्हें सद्‌गुण भी किस तरह कहा जाय?

चैतन्यका शुद्ध प्रकटीकरण

मनुष्यका ध्येय किसी भी मार्गसे आत्मसन्तोष प्राप्त करना है या अपनी जड़ताका नाश करके मानव सद्‌गुणोंसे युक्त होना? ध्येयकी भिन्नताके अनुसार साधनमें, मार्गमें और विचारसरणीमें भी भिन्नता रहेगी। हममें जो जड़ता है अुसे मिटाकर अपने जीवनमें सब तरहसे सात्त्विकता लानेको अपना ध्येय मानें, तो हमें शरीर, बुद्धि और मनको क्रियाशील बनाना चाहिये। चित्तमें अुत्पन्न होनेवाले आवेगोंसे क्रियाशीलता पैदा होती है। चित्तमें शुद्ध और अशुद्ध दोनों प्रकारके आवेग अुठते हैं। अुनमें से अशुद्ध आवेगोंका निग्रह करके और अुन्हें क्षीण करके मनुष्यको शुद्ध आवेगोंको गति और पोषण देना चाहिये। सद्‌भावना और सद्‌गुण शुद्ध आवेगोंके लक्षण हैं। अिन सद्‌भावनाओं और सद्‌गुणोंको अुचित कार्यमें परिणत करनेसे या लगानेसे अुनकी गति और शक्ति बढ़ती है। अिस प्रकार अुनकी गति और शक्ति और साथ ही शुद्धि बढ़ती रहे तो हमारी जड़ताका नाश होता है। जब तक शरीर, बुद्धि और मनमें कहीं भी जड़ताका अंश रहे तब तक हमारे विकासके लिअे गुंजाअिश है; तब तक हमारे लिअे आगे बढ़नेका, अुन्नत होनेका, मार्ग है। अिस प्रकार

जडताका जब पूरी तरह नाश हो जायगा, तब हमारे शरीर, बुद्धि और मन तीनोंके द्वारा हमारी सात्त्विकता और चेतनता ही प्रगट होती रहेगी। क्या सब अंगोंसे, सभी तरफसे चेतनस्वरूप होनेका यही अुचित मार्ग नहीं है? और अगर यह मार्ग मनुष्यको मिल जाय और सिद्ध हो जाय, तो "मैं ही नित्य, निर्विकल्प, चेतनस्वरूप आत्मा हूं" अिस तरह रटते रहनेकी और अभ्याससे अैसी भावनाको दृढ करते रहनेकी कोअी जरूरत है? और अिस दृष्टिसे विचार करने पर वह पहलेकी आत्मसन्तुष्ट स्थिति, जिसमें जडता रह सकती है और सहन हो सकती है, क्या पूर्ण चेतन स्थिति कही जा सकती है?

विशालताकी ओर प्रयाण

मानव-ध्येयका अेक और दृष्टिसे भी विचार किया जा सकता है। मनुष्यके सम्बन्ध ज्यों-ज्यों विशाल और व्यापक होते जाय, त्यों-त्यों अुनमें सद्भावनाओं, सद्गुणों और पुरुषार्थकी अनेक प्रकारसे विशालता और व्यापकता आनेकी जरूरत होती है। अगर वह अिस तरह न आये, तो मानव-जीवन पूर्ण नहीं हो सकता। जिस समय मनुष्यके सम्बन्ध सकुचित क्षेत्रमें ही समाये रहे होंगे, अुस समय सद्गुणों और पुरुषार्थके विशाल बननेकी गुंजाअिश ही नहीं रही होगी। अैसे समय मनुष्यकी धर्मकी कल्पनाका स्वरूप भी सकुचित ही रहा होगा। अुस सकुचित धर्म-कल्पनासे अुसका और अुसके समाजका काम अुस वक्त चल सका होगा, परन्तु मित्र या शत्रुके नाते मनुष्यका सम्बन्ध पहलेकी अपेक्षा अधिक व्यापक मानव-जातिके साथ कअी तरहसे आने लगनेके बाद भावना, सद्गुण, धर्म, कर्तव्य वगैराके बारेमें अुसकी पहलेकी समझमें परिवर्तन हुअे बिना और अुन सभीमें विशालता और व्यापकता आये बिना काम नहीं चलेगा। मनुष्यके धर्म और कर्तव्यकी मर्यादा संसारके साथ अुसके सम्बन्धके अनुसार सहज ही व्यापक और विशाल माननी पड़ेगी। परन्तु जो समाज यह बात नहीं जानता

या जानते हुअे भी अिस बातकी ओर ध्यान नही देता और अपने बढते जानेवाले सम्बन्धोंको खयालमें रखकर अपनी धर्म-कल्पनामें और अपने स्वभावमें परिवर्तन नही करता, वह समाज दिन-दिन अधिकाधिक दीन, लाचार और आत्मविश्वासहीन बनता जाता है। संकीर्णता न छोडनेके कारण अुसे कअी तरफसे दुःख और अपमान सहने पडते है और मानवताकी दृष्टिसे व्यक्ति और समाज दोनों, कुल मिलाकर अधोगतिकी तरफ जाते हैं।

भारतवर्षके लोगोका पतन शुरू हुआ तबसे अुसका अितिहास देखें तो यही बात साफ तौरसे दिखाअी पडेगी। हमारे अितिहाससे दिखाअी देता है कि ज्यो-ज्यो हमारा अलग-अलग मानवसमूहोंके साथ सम्बन्ध होता गया, त्यो-त्यो हमारा पतन ही होता गया। नहीं तो जनसंख्याकी अितनी बहुतायत और धारण-पोषणके लिअे आवश्यक वस्तुओंकी अितनी समृद्धि होने पर भी अितने बडे राष्ट्रकी अैसी दीन-हीन अवस्था क्यों हो? अिसका विचार करने पर खयाल होता है कि संकुचित परिस्थितिसे निकलकर व्यापक परिस्थितिके साथ हमारा सम्बन्ध होनेके बाद हमें अपनेमें जो व्यापकता पैदा करनी चाहिये थी, अुसे पैदा न करनेका ही यह सारा परिणाम है।

अब यह विश्वासके साथ नही कहा जा सकता कि संकीर्णतासे निकलकर व्यापकता पैदा करनेसे मनुष्य अेकदम सुखी ही हो जायगा। मानव-जाति कभी भी दुःखसे छूटकर पूरी सुखी हो सकेगी या नही, या कभी हो सके तो किस अुपायसे हो सकेगी, यह कहना बहुत कठिन है। फिर भी अितनी बात हम साफ तौर पर समझ सकते है कि दीन, हीन और असहाय अवस्थाके सुख-दुःखोंसे मानवताकी विशालताकी ओर जानेसे प्राप्त होनेवाले सुख-दुःखमें कुछ न कुछ विशेषता है। जिस स्थितिके दुःखोंमें दीनता, विह्वलता, अुद्वेग और पश्चात्ताप हों, अुस स्थितिके बजाय जिस स्थितिमें दुःखके साथ ही मनकी दृढता और निश्चय भी कायम रहे, जिसमें दुःखमें भी अुद्वेग

और पश्चात्ताप न हो और जिसमे निष्ठा, आत्मविश्वास और धन्यता दुःखमें भी मनुष्यको न छोड़ती हो, वह स्थिति दुःखरहित न होते हुअे भी क्या पहलीसे निःसन्देह गौरवास्पद नही है? अिसी तरह जिस स्थितिके सुखमे लोलुपता या अुन्माद न हो और जिसमे स्वार्थ, तृष्णा, मोह या दूसरी कोअी भी हीन वृत्ति न हो और जहा सुखमें भी धर्मनिष्ठा न छोडनी पडती हो, वह स्थिति पूर्ण सुखमय न हो तो भी क्या अुसमें कोअी विशेषता नही है? क्या शुद्ध, सात्त्विक और सुखमय जीवन कभी भी अिसी मार्गसे प्राप्त होना सभव नही? अैसा लगता हो कि दुनियाकी हालत जैसी पहले थी वैसी ही अब भी है या अुसके दुःख दूर होकर सुखकी वृद्धि हुअी अैसा स्थूल रूपमें नजर न आता हो, तो भी अुस स्थितिमें कही-कही मानवताका यथार्थ रूपमें विकास हो रहा है, यही अुसकी विशेषता है। हर युगमें अुस समयकी परिस्थितिके अनुसार अिस प्रकारकी विशेषता पाअी गअी है। यह बात सही है कि मनुष्यके लिअे अभी तक मानव-जीवन पूरी तरह साध्य नही हुआ है; फिर भी अुसे सिद्ध करनेकी अुसकी कोशिश जारी है।

महानताकी ओर गति

मानव-जीवनके विकास-क्रमका अेक और प्रकार हमारे ध्यानमे आ जाय तो सभव है कि मनुष्यका ध्येय निश्चित करनेमे हमें मदद मिल सकेगी। हरअेक जीवमें 'मैं' पनका अेक भान होता है। मनुष्यमें वह ज्यादा स्पष्ट रूपमें दिखाअी देता है। अिस भानके साथ ही अेक प्रकारकी सत्तावृत्ति भी मनुष्यमें है। अिस 'आत्मभान' और 'सत्तावृत्ति' की वृद्धि करनेकी स्वाभाविक प्रेरणा मनुष्यमात्रमें है। जैसे आत्मभान-रहित कोअी मनुष्य नही मिल सकता, अुसी तरह अिस प्रेरणासे मुक्त भी कोअी दिखाअी नही देता। अपना अल्पत्व छोडकर महानता प्राप्त करना अिस सत्तावृत्तिमें रहा हुआ अेक सहज भाव है। अपनी पात्रता, सामर्थ्य और स्वभावके अनुसार सात्त्विक

अथवा राजस अुपायोंके जरिये हर मनुष्य महानता प्राप्त करनेके पीछे पड़ा हुआ है। स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब, परिवार, राज्य, धन, मान, अैश्वर्य वगैराकी प्राप्तिके द्वारा मनुष्य अपनी 'सत्ता' और अपनी 'आत्मता' बढ़ाकर महान बननेका प्रयत्न कर रहा है। यही महानता कोअी सेवाके, कोअी भक्तिके और कोअी ज्ञानके साधनसे प्राप्त करनेका प्रयत्न करता है। कोअी अपने सामर्थ्यके द्वारा बाहरी दुनियाको अपने वशमें करके अपनी 'आत्मता' बढ़ाकर बड़ा बननेकी कोशिश करता है, तो कोअी जगतके मूलभूत तत्त्वके साथ — आदि तत्त्वके साथ — तद्रूप होकर महान बननेका प्रयत्न करता है। छोटे बच्चेसे लेकर महापुरुष तक और रंकसे लेकर राजा तक सब अल्पताका त्याग करके महानताकी ही अिच्छा करते हैं। मनुष्यकी गति स्वाभाविक तौर पर अुसी दिशामें दिखाअी देती है। "लहानपण देगा देवा। मुगी साखरेचा रवा"। (हे भगवान, तू मुझे छोटापन दे, क्योंकि शक्करकी डली चींटीको ही मिलती है।) अिस प्रकार संत तुकारामने कहा है। अिसमें अूपरसे देखने पर छोटेपनकी — अल्पत्वकी — माग की हुअी दिखाअी देती है। लेकिन अुनकी असली दृष्टि छोटेपन पर नहीं, परन्तु नम्रता द्वारा प्राप्त होनेवाली 'शक्कर'के लाभ पर यानी महानताकी प्राप्ति पर ही थी, अैसा थोड़ा विचार करने पर मालूम होता है। भक्ति द्वारा अीश्वरके साथ तद्रूप होना क्या और ज्ञान द्वारा विश्वके साथ समरस होनेका प्रयत्न करना क्या, दोनोंमें महानताकी प्राप्तिकी ही कल्पना है। सात्त्विक या राजस अुपायों द्वारा मनुष्य जहा तक अपनी सत्तावृत्ति, अपना आत्मत्व सक्रिय और प्रत्यक्ष रूपमें बढ़ा सकता है, वहा तक बढ़ाकर आगेका ध्येय पूरा करनेके लिअे वह कल्पना, भावना या धारणाका आश्रय लेकर अपने मनका समाधान करनेकी कोशिश करता है। मनुष्यके सद्गुण और पुरुषार्थ मर्यादित होनेके कारण सक्रिय रूपमें सारे विश्वके साथ समरस होना अुसके लिअे सम्भव नहीं; अिसलिअे

मनुष्य अिस धारणा और चिन्तनसे कि "सब चराचरका अधिष्ठान ब्रह्म मै ही हूं" अपना समाधान करनेका प्रयत्न करता है। अपार आत्मता और महानताकी प्राप्तिके ये काल्पनिक प्रकार है। अिन तमाम बातो परसे हम अितना साफ समझ सकते है कि अल्पता किसीसे भी सहन नही होती। प्रत्यक्ष न सध सके तो कल्पनासे ही मनुष्य महानता प्राप्त करनेका समाधान चाहता है।

सद्‌गुणों द्वारा जगतके साथ समरसता

अिन सब भावनाओ और कर्तृत्वमे से केवल राजस अुपाय और कल्पनाजन्य धारणा और भावनाका भाग हटा दें, तो यह कहा जा सकता है कि शेष बची हुअी प्रत्यक्ष सात्त्विक भावना और कर्तृत्वके जरिये मनुष्यका आत्मीय-भाव जितना सक्रिय रूपमें दिखाअी दे अुतनी ही अुसकी प्रगति हुअी है। और यह सिद्ध है कि अुतनी ही सच्ची महानता अुसमें है। राजस वृत्तिके प्रभावसे जो सत्ता या जो महानता बढती है, अुससे व्यक्ति और समाज दोनोमे से किसीका भी कल्याण होना सभव नही। जिस सत्ताको प्राप्त करनेके लिअे दुष्ट मनोवृत्तियो और साधनोका सहारा लेना पडता है और जिसकी जडमे केवल अैहिक स्वार्थके सिवाय दूसरा कोअी हेतु नही, अुस सत्ताको हमेशा बाहरके विरोधका भय रहता है और वह कभी स्थायी नही रह सकती। परन्तु दया, क्षमा, बन्धुता, वात्सल्य, मित्रता, अुदारता, सत्य, प्रामाणिकता, समता वगैरा सद्भावनाओके प्रत्यक्ष आचरणसे जो सत्ता और आत्मता बढती है, अुसे व्यक्ति और जगतके लिअे कल्याणप्रद होनेके कारण विरोधका भय कभी नही होता। सारी दुनिया अपनी सत्तावृत्तिका विकास करके अिस तरह अपनी महानता साधे, तो जगतमें सघर्ष होनेका कोअी कारण ही न रह जाय। वह महानता अशाश्वत नही, शाश्वत होगी। क्या ससारके साथ सक्रिय रूपमे समरस होनेका यही कल्याणप्रद मार्ग नही है? जैसा पहले कहा जा चुका है, अगर मानव-जीवनका

यही ध्येय और साध्य मान ले कि हरअेक व्यक्तिको अपनी जडता दूर करके सब पहलुओंसे, सब तरफसे कर्मों द्वारा हमेशा शुद्ध चेतन रूपमें प्रगट होते रहना चाहिये और जगतके साथ क्रियात्मक रूपमें अेकरूपता और समरसता साधनी चाहिये, तो क्या हर्ज है?

१७

सन्त-सज्जनोंके अुपकार

सन्त-सज्जनोंका प्रयत्न

हरअेक विवेकी और श्रेयार्थी मनुष्य अपने साथ ही अनायास दूसरोंकी मानवताका विकास करता है। परन्तु विवेकी सन्त-सज्जनोंने अत्यन्त कष्ट अुठाकर, मौका पड़ने पर अपनी जान देकर भी मानवताकी वृद्धि की है। अैसे सन्त-सज्जनोंके मानव-जाति पर अपार अुपकार है। मनुष्यकी पशुता, जडता, अज्ञान, क्रूरता, वगैरा महान दुर्गुण दूर करके अुसमें मानवता जाग्रत करनेकी अुन्होंने सारी जिन्दगी कोशिश की है। आपसके लौकिक भेद भुलाकर, अूच-नीचका भाव छोड़कर, धन, विद्या, बल अथवा जाति सम्बन्धी क्षुद्र अहंकार और साथ ही मान, प्रतिष्ठा वगैराका मोह छोड़कर सब अेक-दूसरेके साथ प्रेम, सरलता और समतासे रहें और आपसमें कलह, मत्सर या वैर न करें, अिस तरहका अुपदेश अुन्होंने मानव-जातिको समय-समय पर दिया है। यह अुपदेश सबके हृदयमें जमानेके लिअे कुछ सतोंने यह कहा कि हम सबमें अेक ही 'आत्मतत्त्व' खेल रहा है, तो कुछने हमें यह समझाया कि हम सब अेक ही परमेश्वरकी सन्तान हैं। कुछने यह कहा कि हम सब अेक-दूसरेके भाअी भाअी हैं, तो कुछने हमें यह अुपदेश दिया कि घट घटमें अेक ही 'राम' रम रहा

है। अिस सबका सार यही था और है कि हम सबकी मानवता जाग्रत हो, वृद्धिगत हो, हम सब निर्दोष हो और हम सबमें समभाव पैदा हो। अुन्हे विश्वास था कि यह समभाव ही मानव-जातिकी सच्ची सिद्धि है। अिसीके लिअे अुन्होने अपने मनकी पवित्रता सिद्ध की, अपनेमे सद्‌गुणोकी वृद्धि की और सारी मानव-जातिको अपने जैसी बनानेका प्रयत्न किया।

द्वैतबुद्धि दूर करके समता प्राप्त करना ही मानव-जीवनकी अतिम सिद्धि हो, तो भी अुसे प्राप्त करनेके लिअे देश-काल-परिस्थितिके अनुसार आचार, व्यवहार, आपसके बरतावके नियम वगैरा साधनोमें फेरबदल करना पड़ता है। यह बात जानकर सत-सज्जनोने वैसा प्रयत्न किया है। समाजकी सुस्थितिके लिअे अेक बार की गअी व्यवस्थामें लम्बे समयके बाद स्थायी वर्ग या वर्णभेद पैदा हो गये और परिणामस्वरूप सत्ता और सपत्ति कुछ विशेष वर्गोंके हाथमें चली गअी। अिस सत्ता और सपत्तिके कारण होनेवाले अनर्थोंसे समाजको बचाकर अुसे मानवताकी तरफ मोड़नेके लिअे सन्तोको अपने-अपने जमानेमें बडी तकलीफें अुठानी पड़ी है। अिन सबकी तहमे अुनका अितना ही अुद्देश्य था कि मानव-जातिकी क्षुद्रता और हीनताका नाश हो और वह अपनी अंतिम सिद्धि प्राप्त करे। अिसके लिअे अुन्होने कभी भक्तिको, तो कभी ज्ञानको, कभी योगको तो कभी कर्मको महत्त्व देकर भाव, ज्ञान, धारणा और कर्म-कौशल द्वारा मनुष्यमें पवित्रता और सद्‌गुणोका विकास किया। नीति, सदाचार, शील और चारित्र्य ही जीवनको शोभा देनेवाली सच्ची सपत्ति है, यह बात हरअेक आदमीके दिल पर जमानेके लिअे अुन्होने भरसक प्रयत्न किया। अपने माधुर्य और वैराग्य द्वारा, साथ ही भक्तिभाव और प्रेम द्वारा जगतकी कटुता और सताप, स्वार्थ और कपट कम करनेमें अुन्होने अपना जीवन खपा दिया। अुन्होने अपनी शान्ति और सौजन्यसे ससारके त्रिविध ताप हलके किये; भोगाधीन और भोगलुब्ध जगतको

संयमके पाठ पढाये; अुसे विलाससे वैराग्यकी तरफ मोड़ा तथा मोहसे कर्तव्यके मार्ग पर लगाया। पापियोंको अुन्होंने पुण्यवान बनाया; पतितोंको पावन किया। खुद मानव बनकर संसारको मानवता सिखाअी। आज दुनियामें जो थोडी बहुत मानवता दिखाअी देती है, जो सद्गुण पाये जाते हैं, वे सब अुन्हींके पुरुषार्थके फल हैं। अेक सज्जनताको निकाल दें तो धन, बल, विद्या, सत्ता, अैश्वर्य या और किसी भी सिद्धिमें मनुष्यकी पशुता, अज्ञान, मोह, जडता वगैरा दुर्गुणोंका नाश करनेका सामर्थ्य नहीं। सत्य, ब्रह्मचर्य, अहिंसा वगैरा महाव्रत धारण करनेका सामर्थ्य सज्जनताके सिवाय और किसीमें नहीं, यह बात अुन्होंने हमारे गले अुतारी। अिसके लिअे हम सब अुनके अत्यन्त ऋणी हैं। यह शंका मनमें अुठती है कि यदि अैसे सन्त-सज्जनोंका जन्म न हुआ होता तो क्या आज हमारी हालत हिंस्र प्राणियों जैसी ही नहीं होती? सन्त कबीरने अिसी परसे कहा होगा कि हरिभक्त संत-सज्जन पैदा न हुअे होते, तो 'जल मरता संसार' — संसारके लोग तापत्रयसे जलकर मर गये होते। आज भी आध्यात्मिक क्षेत्र और मार्गमें पैर रखने और अपने तापत्रयको कम करनेके लिअे अुनके ग्रंथों और वचनोंके सिवाय हमारे पास और कोअी अवलम्बन नहीं है।

संतोंकी अुन्नतिका क्रम और विवेक

जिन्हें अैसे सज्जनोंका सहवास मिला हो और मिलता हो, वे धन्य हैं। भारतवर्षमें अनेक सन्त-सज्जन हो गये हैं। अिस विषयमें हम भाग्यशाली हैं। अुनके ग्रंथोंमें पाये जानेवाले अुनके स्वानुभवके वचन, अुनके अुद्गार, साधककी बहुमूल्य संपत्ति हैं। देश, काल, हमारी वर्तमान परिस्थिति, हमारे आदर्श और हमारी मुश्किलें — अिन सबका विचार करके हमें अुनका अुपयोग करना चाहिये। वे तमाम वचन अेकसे महत्त्वके नहीं हैं। वे अेक ही सर्वश्रेष्ठ

भूमिकासे नही कहे गये है, अथवा अेक ही स्थितिके अनुभवसे निकले
हुअे सर्वमान्य सिद्धान्त भी नही है। सत-सज्जन भी भिन्न-भिन्न
अवस्थाओसे, अलग अलग अनुभवोसे वोध लेते-लेते, जीवनको सही
दिशामे मोडते-मोडते मानवताके विकास तक पहुचे होते है। अुनके
वचनोमे से कुछ अुनकी साधक दशाके आरभकालके होते है। अुस समय
प्रत्यक्ष अनुभवकी अपेक्षा कल्पना, भावना या श्रद्धाका ही अुनके
चित्त पर ज्यादा प्रभाव होता है। और अिसलिअे अुस समयके
अुनके वचनोमें ये ही चीजे ज्यादा दिखाअी देती है। अुस वक्त वैराग्य,
दुनियासे अरुचि, 'हमारा कोअी नही' की भावना, क्रियाकाड, मनकी
व्याकुलता, साधनके वारेमे कट्टरता, अेकान्तप्रियता, वगैरा पर जोर
रहता है और चित्तमे ज्ञानकी अपेक्षा अज्ञान ही ज्यादा होता है।
अुसके वादके मध्यकालमे कल्पना, भावना वगैराका वेग मन्द पड
जाता है। मनुष्यमे शोधकवृत्ति आ जाती है। सत्य-असत्यका
निर्णय करनेवाली वुद्धि जाग्रत हो जाती है। सयम सिद्ध होने लगता है।
चचलता कम हो जाती है। थोडी स्थिरता भी आती है। दुनियाकी
तरफ देखनेकी दृष्टि वदल जाती है। अैसा लगने लगता है कि
जगतके दु खका, अुसकी विपरीत परिस्थितिका, कोअी अुपाय मिले
तो अच्छा। लोगोके प्रति अरुचि कम हो जाती है। किसी भी अेक
ज्ञानकी भूमिका दृढ करनेका प्रयत्न जारी रहता है। और फिर
अतिम कालमें मन स्थिर और शान्त हो जाता है। अुचित विवेक
सूझता है। कल्पनाये मिट जाती है। भावनायें विवेकका अनुसरण
करती है। श्रद्धामे रहनेवाला अज्ञान और भोलापन नष्ट हो जाता
है। सन्देह कम हो जाते है। जगतके प्रति आत्मीयता प्रतीत
होने लगती है। क्रियाकाडका अन्त आ जाता है। वैराग्य-सम्वन्धी
अतिशयता और कट्टरपन चला जाता है और सयममें स्वाभा-
विकता आ जाती है। अुग्रता नष्ट हो जाती है। करुणा पैदा होती
है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की व्यापकता आ जाती है। समता

स्थिर हो जाती है और अिन सबके द्वारा प्राप्त करनेकी चीज — मानवता — मिल जाती है। अिस प्रकार अलग-अलग भूमिकाओं और अवस्थाओंको पार करते करते सन्तोंकी अुन्नति होती है। अिसलिअे अुनके सभी वचनोंको प्रमाण या सिद्धान्तरूप न मानकर हमें अुनमें से अैसे वचन विवेकपूर्वक ढूंढ निकालने चाहियें, जो हमारे साध्य और साधनकी दृष्टिसे अुपयोगी हों। अगर अिस तरह हम न कर सकें, तो संभव है अुनके अनुभव और ज्ञानका हमें सच्चा लाभ न मिले और हम अुनके अज्ञानको ही ज्ञान समझकर अुसमें समाधान मान लें। अिसलिअे विवेकको जाग्रत करके, बुद्धिको कुशाग्र बनाकर, हमें अुनके वचनोंका अपने कल्याणके लिअे अुपयोग करना आना चाहिये। हमें यह फैसला करते आना चाहिये कि हमें खुदको और समस्त मानव-जातिको मौजूदा परिस्थितिमें श्रेष्ठ आदर्शकी तरफ पहुंचनेके लिअे आज किस साधनकी जरूरत है। भाव-भक्तिसे केवल ग्रंथोंके प्रमाणको या चली आ रही परम्पराको मान लेनेसे हमारा काम नहीं चलेगा। हरअेक संत-सज्जनने अपने-अपने समयकी परिस्थितिमें से विवेकपूर्वक अपना रास्ता निकाला है। अिसीलिअे अुन्होंने विवेक और विचारकी महिमा गाअी है। 'विवेकासहित वैराग्याचें बळ' (विवेकके साथ वैराग्यका बल) प्राप्त हो, अैसी अिच्छा करके संत तुकारामने यह निश्चय किया था कि 'सारीन विचारें आयुष्या या' (यह जिन्दगी विचार द्वारा पूरी करूंगा)। और लोगोंको भी वे यह अुपदेश देते थे कि 'न धरावी चाली करावा विचार' (रूढ़िसे न चिपटे रहकर विचार करना चाहिये।) समर्थ रामदासने भी विवेकको ही जीवनका सर्वश्रेष्ठ गुण माना है। संत ज्ञानेश्वर कहते हैं कि पूर्ण सत्त्वगुणी पुरुषकी 'सर्वेन्द्रियां अगणीं। विवेक करी राबणी' (अुनकी सब अिन्द्रियोंमें विवेक काम करता है), अैसी स्थिति होती है। वे संत और विवेकका नित्य सम्बन्ध यों बताते हैं कि 'संत तेथ विवेक' (जहां संत वहां विवेक)।

अिसलिअे हमे भी विवेकको जीवनका प्रधान गुण मानकर सारे जीवनमें अुसका अुपयोग करनेकी आदत डालनी चाहिये।

तत्त्वज्ञान, भक्ति और मोक्षके बारेमे हमारे और किसी सन्तके विश्वासोमें फर्क हो, तो भी अुससे अुनके प्रति हमारा आदर जरा भी कम न होना चाहिये। जो नीति, सदाचार, चारित्र्य, शील, पवित्रता आदिके अुपासक होते हैं, जिन्हे सत्यके बारेमें जिज्ञासा होती है, जिन्हे लोकहितकी आतुरता होती है, जिनके मनमे भूतमात्रके लिअे जबरदस्त करुणा होती है, जिनके हृदयमे अपने-परायेका भाव नही होता, जिनके अतरमे अीश्वरके प्रति अपार निष्ठा होती है, अैसे वैराग्यशील संत-सज्जन किसी भी समय सबके लिअे परम वदनीय ही है। अुन्होने अपने-अपने समयमे अुपलब्ध साधनो द्वारा यथाशक्ति ज्ञान प्राप्त करके नि स्वार्थ भावसे सबको दिया। अैसा महान् कार्य करते हुअे भी अुसका अभिमान न रखकर अुन्होने अिस प्रकार नम्रतासे विनती की है कि 'सकळाच्या पाया माझे दडवत। आपुलाले चित्त शुद्ध करा।'* अिस प्रकार निरहकार होकर मानव-जातिकी सेवा करते समय अुन्होने द्रव्य, मान, कीर्ति, प्रतिष्ठा, किसीकी भी अपेक्षा नही रखी। अपने सुखकी परवाह नही की। दु खका खयाल नही किया। लोकलाज नही मानी। अपने ज्ञानका ढोग नही किया। गुरुपनका दम्भ नही किया। परमात्माका स्मरण करके अुन्होने लोकसेवा की और की हुअी सेवा अुस परमेश्वरको ही अर्पण कर दी। गरीबी, अपमान, विडम्बना, भूख, प्यास, तकलीफ, मौत—सब कुछ अुन्होने अपने और मानव-जातिके कल्याणके लिअे सहन किया। अुन्होने अिस तरह कष्ट सहन न किया होता, अुनके चरित्रो और वचनोकी हमे जानकारी न होती, तो

* सबके चरणोमें मेरा दण्डवत् प्रणाम है। सब अपना चित्त शुद्ध करे।

संकटके समय हिम्मतके साथ शीलकी रक्षा करते हुये आचरण करनेके लिये हमें कौनसा आधार था, और आगे भी रहेगा? जिस प्रकार विचार करनेसे हम पर और सारी मानव-जाति पर अुनके अनंत अुपकारोंका ख़याल होता है और कृतज्ञतासे गद्गद होकर संत तुकारामकी तरह हमारे हृदयोंसे भी यही अुद्गार निकलते हैं:

काय द्यावे त्यासी व्हावे अुतराअी।
ठेविता हा पायी जीव थोडा॥

—अुनके ऋणसे मुक्त होनेके लिअे अुन्हें क्या दें? ये प्राण अुनके चरणोंमें अर्पण कर दें तो भी थोडा ही है।

विवेक और साधना

पहला भाग

विभाग २ : साधनविचार (चित्तका अभ्यास)

१

ध्यानाभ्यासका पथप्रदर्शन — १

मानवचित्त अेक बडी अद्‌भुत वस्तु है। अुसमें कितनी सुप्त शक्ति है, अिसका अभी तक किसीको पूरा पता नही लगा है। जीवनके सुख-दुःख, लाभ-हानि, अुन्नति-अवनति, सद्‌गुण-दुर्गुण वगैरा सबका सम्बन्ध चित्तके साथ है। अिस चित्तको यदि हम सब प्रकारसे अच्छा बना सके, यदि अुसे सर्व सद्‌गुणोका भण्डार बना सके, तो जीवनके तमाम सवाल हल हो जाय और जीवन कृतार्थ होनेमें देर न लगे। अिसके लिअे हमे अपना चित्त स्थिर करना होगा, शुद्ध करना होगा। अुसे दृढ और बलवान बनाना होगा।

अन्तःकरणका स्वरूप और कार्य

यहां चित्त, बुद्धि और मन शब्दोके बारेमे और अुनके कार्योके बारेमें थोडासा स्पष्टीकरण कर ले, क्योकि अिस विषयका निरूपण करनेमे अिन शब्दोका बार-बार अुपयोग करना पडेगा। अिन तीन नामोसे यह न समझा जाय कि ये तीन अलग-अलग सूक्ष्म अिन्द्रिया है। कार्य करनेके साधन होनेके कारण अिन्हे 'करण' कहते है। वास्तवमे यह करण अेक ही है, परन्तु अुसकी अलग-अलग कार्यशक्तियो परसे अुसे अलग-अलग नामोसे पहचाना जाता है। जाग्रतिमें यह करण सतत कार्यरत रहता है। स्वप्नमे अुसका काम थोडा-बहुत जारी रहता है। सुषुप्ति यानी गाढ निद्रामें अुसका काम बन्द हो जाता है। अिस प्रकार जाग्रति और स्वप्नकी दो अवस्थाओमे वह कभी कार्यरहित नही होता। सवेरे जाग्रतिके

पहले क्षणमें अुसके कार्यका स्पष्ट रूपमें प्रारम्भ होता है और गहरी नींद आने तक अुनका काम जारी रहता है। यह 'करण' बाहर दिखाअी नहीं देता, अिसलिअे अुसे अन्तःकरण कहते हैं। किसी भी विचारका आरंभ, अस्पष्ट स्फुरण, स्मृति, तर्क, कल्पना, अनुमान, संकल्प, अवलोकन, निरीक्षण, परीक्षण, तारतम्य, विवेक, योजना, समय-सूचकता, प्रसंगावधान, ज्ञान, काम, क्रोध, लोभ वगैरा विकार; चिंता, भय, शोक, दुःख और अिसी तरह प्रेम, वात्सल्य, दया, अुदारता वगैरा भाव — ये सब अुसी अेक करणके कार्य हैं। अिनमें से कुछ कार्य अुनमें चलते हों तब हम अुसे चित्त कहते हैं, कुछ कार्योंके समय अुसे बुद्धि कहते हैं, तो कुछ और कार्योंके अवसर पर अुसीको मनके रूपमें पहचानते हैं। वास्तवमें ये सब काम करनेवाला करण अेक ही है। अुसी अेक करणमें भिन्न-भिन्न कार्यशक्तियां हैं। अिन शक्तियोंका अिस करण द्वारा स्पष्ट मालूम होनेवाला जो पहला स्वरूप या स्फुरण है, अुसे हम आम तौर पर वृत्तिके नामसे जानते हैं। जाग्रतिमें अैसी अनेक वृत्तियोंका समिश्र प्रवाह अेकसा जारी रहता है। प्राकृतिक धर्म, अपने संस्कार और पूर्वजीवनके आधार पर यह प्रवाह चलता है। कभी वह हमारे व्यवहारके कार्योंके अनुसार होता है, तो कभी अुस प्रवाहकी वृत्तियां हमारे व्यवहारको दिशा प्रदान करती हैं। यह विषय ध्यानमें आनेके लिअे अितना समझमें आ जाय तो काफी है।

अन्तःप्रवाहकी शुद्धि

हमारे अन्तरमें दिन भर चलनेवाला वृत्तियोंका प्रवाह शुद्ध नहीं होता। अुनमें कअी अनिष्ट और अहितकर वृत्तियोंका भी मिश्रण होता है। अुन वृत्तियों और अुसी प्रकारके कर्मोंके कारण हम स्वयं दुःखी और अवनत होते हैं, और वही वृत्तियां और कर्म दूसरोंके दुःख और अवनतिमें भी कारण बनते हैं। अिसलिअे यदि हम चाहते हैं कि हम सब दुःखोंसे छूट जायं और हम

सबको शान्ति प्राप्त हो, तो हमे अपनी वृत्तियोका प्रवाह शुद्ध करना चाहिये। अुस प्रवाहको शुद्ध न करके दु खसे बचने और सुख प्राप्त करनेके लिअे हम अकेले या सब मिलकर कितने ही अुपाय करें, तो भी अुससे कोअी लाभ नही होगा — यह अिस दृष्टिसे विचार करने पर निश्चित प्रतीत होता है।

जैसे यह कहना गलत है कि हमारा और दूसरोका सुख केवल बाह्य परिस्थितियो पर निर्भर करता है, अुसी तरह यह कहना भी गलत है कि बाह्य परिस्थितियोसे अुसका कोअी सम्बन्ध नही है। जैसे अुत्कृष्ट रसानुभव केवल हमारी रसनेद्रिय पर आधार नही रखता, वैसे ही केवल बाह्य वस्तु पर भी अुसका आधार नही है। परन्तु हमारी रसनेद्रियकी शुद्धि और तीक्ष्णता तथा पदार्थकी शुद्धि और स्वादिष्टता दोनो पर अुसका आधार होता है। अिसलिअे हमे अपने और दूसरोके सुख-दु खका विचार करते समय सिर्फ बाहरी हालतका विचार न करके अपनी और दूसरोकी वृत्तियोका भी विचार करना चाहिये। दु खके समय या सुखमे बाधा डालनेवाला अवसर आने पर हम ज्यादातर केवल बाह्य परिस्थितिका ही विचार करते है। बहुत हुआ तो अुस वक्त दूसरोके दोषोका भी विचार कर लेते है। परन्तु हम अिस बातका शायद ही विचार करते है कि हमारी किस वृत्तिके कारण दु खका यह प्रसग आ पडा है, कौनसे सद्गुणके अभावके परिणामस्वरूप हमे यह दु ख होता है या हमारे सुखमे रुकावट आअी है, अथवा कौनसी सद्वृत्ति धारण करनेसे अिन सब दु खोका निवारण हो सकता है। हम यह चाहते है कि बाह्य वस्तुअे और दूसरोकी मनोवृत्तिया और स्वभाव सदा हमारी सुख-सुविधाके अनुकूल रहे, अिस तरहकी हम कोशिश भी करते है। परन्तु अन्तर्मुख होकर स्वय अपनेमें ही रहनेवाले दु खके कारणोको हम कभी नही खोजते। हमारा मन हमेशा बाहर दौडनेवाली वृत्तियोके प्रवाहमें ही मग्न रहता है। अुसमें भी दु ख,

शोक, भय, चिन्ता, अुद्वेग वगैराके मौके पर हमारी वृत्तियां क्षुब्ध हो जाती हैं और अिससे अुस प्रवाहको वेग मिलता है। अैसे वक्त चित्तको प्रवाहसे निकालकर परिस्थितिका, अपनी मनोवृत्तियोंका और अिच्छाओंका अलिप्त होकर, स्थिर होकर और शान्त होकर विचार करना हमारे लिअे बड़ा मुश्किल हो जाता है। वृत्तियोंका प्रवाह हमारी अिच्छाओंके अनुसार दौड़ता है। अिच्छायें हमारी अिन्द्रियोंमें रहनेवाले रसोंके अनुसार चलती हैं। अैसी स्थितिमें सारी परिस्थितिका और अपना अवलोकन करके, निरीक्षण-परीक्षण करके, अुचित निर्णय देनेवाला विवेक हमें नहीं सूझता। अुलटे, दुःखका नाश करनेके लिये अविवेक और अुद्वेगसे तत्काल कुछ न कुछ करके हम अपनी पहली स्थितिको अधिक कठिन और अपने मनको ज्यादा कमजोर बना देते हैं। अविवेकी प्रयत्नमें कभी-कभी तात्कालिक सफलता मिलती-सी दिखाओी देती है और क्षुब्ध मनोवृत्तियां कभी-कभी थोड़े समयके लिअे शान्त भी हो जाती हैं। परन्तु अनुचित अुपायोंसे सफलता पानेके प्रयत्नमें दूसरोंकी न्याय्य मनोवृत्तियोंको पहुंचाये गये आघातोंकी प्रतिक्रिया तभीसे शुरू हो जाती है। अुसके अनिष्ट परिणाम हमें कभी न कभी भोगने ही पड़ते हैं। अिसके सिवाय अुस मार्गसे दुःखमुक्त होनेके प्रयत्नकी अपनी आदत हमें धीरे-धीरे अवनतिकी ओर ले जाती है। और जिस मात्रामें वह हममें घर करके बैठ जाती है, अुस मात्रामें अुसे निकाल डालना हमारे लिअे बादमें मुश्किल हो जाता है। अिसलिअे दुःखके मौके पर हम अपनी चित्त-वृत्तियोंकी जांच करके अुन्हें अुचित रुख देकर दुःखसे छूटनेकी कोशिश करते रहें, तो हमारे दुःख ठीक रास्तेसे दूर हो जायेंगे, हमारी और दूसरोंकी भी अवनति टल जायगी और हमारी अुन्नति होगी। किसी भी दुःख या विशेष सुखके मौके पर हमारा चित्त स्थिर, शुद्ध और दृढ़ रहे, हमारी विवेकबुद्धि जाग्रत, तीक्ष्ण और प्रखर रहे, तो हमारी तरफसे अपनी और दूसरोंकी अुन्नतिके लिअे बाधक और प्रतिबंधक

बाते कभी नही होगी। अुस समय हमें अपनी और दूसरोकी अुन्नतिके लिअे साधक और पोषक विचार और अुपाय सूझेंगे।

चित्तकी अैसी स्वाधीनता जीवनकी अुन्नतिकी दृष्टिसे बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। परन्तु दुखमुक्त होनेके लिअे अथवा सुखमय शान्ति प्राप्त करनेके लिअे सयम, चित्तकी स्वाधीनता वगैरा शक्तिया प्राप्त करनेकी बात अधिकतर किसीको नही सूझती। कदाचित् किसीके ध्यानमें अैसा विचार आ भी जाय, तो दूसरोकी तरफसे पुष्टि या पथ-प्रदर्शन नही मिलता। अैसी हालतमें कोअी अपनी बुद्धिसे थोडी-बहुत कोशिश करे तो भी वह काफी नही होती। अिसलिअे जब अुसे अैसा अनुभव होता है कि अपने अन्तरके पूर्व सस्कारो और बाह्य प्रतिकूल परिस्थितिकी ताकतके सामने अपनी कुछ चलती नही, तो वह अैसा करनेका प्रयत्न छोड़ देता है और पहलेके ही विकारपूर्ण मार्गमें पडकर पहले जैसा ही जीवन ज्यो-त्यो गुजारने लगता है। परन्तु जिसके चित्तमें अपने श्रेयकी प्रबल अिच्छा और तीव्र सकल्प हो, अुसे कैसा ही सकट और कठिनाअिया आयें तो भी चित्तकी स्वाधीनताका प्रयत्न कभी छोडना नही चाहिये। परमात्मा पर और अपने शुद्ध सकल्प पर निष्ठा रखकर अपने ज्ञानकी मददसे अुसे अपने मार्गमें स्थिर और दृढ रहना चाहिये, अपना अभ्यास लगनके साथ बराबर जारी रखना चाहिये और अुसके लिअे प्रयत्नकी पराकाष्ठा करनी चाहिये।

चित्तकी स्वाधीनताके लिअे अभ्यासकी जरूरत

हमारा चित्त स्थिर, दृढ और पवित्र हो जाय, तो अुसमें रहनेवाली सुप्त शक्तिया अपने आप जाग्रत हो जाती हैं। अुन शक्तियोकी मददसे श्रेयार्थी साधकको आगेके मार्गका ज्ञान होता है। अुसे ज्ञानके साथ धैर्य और धैर्यके साथ शान्ति और प्रसन्नता मिलने लगती है। अुस हालतमें वह किसी भौतिक सुखसे लुब्ध होकर अुसके अधीन नही होता; अथवा किसी दुखसे अुद्विग्न

होकर अुसके आगे हार नहीं मान लेता। अुनके शरीर पर शारीरिक दुःखके परिणाम थोड़े बहुत दिखाअी दें, तो भी अुसके चित्तमें दीनता नहीं आती या अुनके चित्तकी स्थिरता भंग नहीं होती। कोअी भी प्रयत्नशील मनुष्य चित्तकी अैसी अवस्था प्राप्त कर सकता है, परन्तु हम यह बात कभी ध्यानमें ही नहीं लेते। हमारी यह गलत धारणा है कि चित्तको अपने वशमें रखनेकी कोशिश करना, अिस दृष्टिसे अुसका अभ्यास करना, साधु-संतों या योगी-महात्माओंका काम है। क्या कभी अैसा कहा जा सकता है कि दुनियामें अन्नपचनकी जरूरत कुछ खास आदमियोंको ही है या अुनसे ही वह बात हो सकती है और दूसरोंको जिसकी बिलकुल जरूरत नहीं या अुनसे यह बात नहीं हो सकती? भोजन करनेवाले प्रत्येक मनुष्यको जैसे अुसे पचानेकी और शरीर धारण करनेवाले हरअेकको शरीर अच्छा रखनेकी जरूरत है, वैसे ही प्रत्येक मनुष्यको अपना चित्त शुद्ध रखनेकी भी आवश्यकता है। जिनके चित्तमें काम, क्रोध और लोभ पैदा हो सकते हैं, जिसके चित्तमें आशा, तृष्णा और वासनाका विद्रोह होता है, जिनके चित्तमें अनेक मलिन वृत्तियां अुठकर अुसे कुमार्गमें ले जा सकती हैं, अुन आदमीको, चाहे वह साधु, संत, योगी और महात्मा हो या साधारण आदमी हो, अपना चित्त स्वाधीन, शुद्ध और दृढ़ रखना आना ही चाहिये। साधु-संत तो चित्त स्वाधीन रखकर शान्ति प्राप्त करें और साधारण लोग अपनी मलिन वृत्तियोंके कारण अपने और दूसरोंके जीवनका नाश करें, अैसी अीश्वरकी आज्ञा, योजना या अिच्छा नहीं है, यह बात हमें निश्चयपूर्वक समझ लेनी चाहिये, और हममें से हरअेकको अपना शरीर निरोगी और चित्त शुद्ध और दृढ़ करनेका प्रयत्न करना चाहिये। हमारे चित्तकी मलिनता, पंगुता, पराधीनता, अस्थिरता और सद्गुणोंकी न्यूनता मानवताको शोभा नहीं देगी। अिन दोषोंके लिअे हमें शर्म आनी चाहिये और अुन्हें नष्ट करनेका हमें निश्चय करना चाहिये।

अिसके लिअे हमें अुचित अभ्यास करना चाहिये और अैसा आत्मविश्वास रखना चाहिये कि हम अपने अभ्यासकी सहायतासे अिस मार्गमे निश्चित सफलता प्राप्त करेगे।

अभ्यासकी पूर्व तैयारी

यह अभ्यास प्रत्यक्ष रूपसे शुरू करनेके पहले मनुष्यको अतर्मुख होकर आत्म-परीक्षण करनेकी आदत डालनी चाहिये। अुसे अपने अतर्वाह्य जीवनकी जाच करके देख लेना चाहिये। अिसमे अुसे पहले यह तलाश कर लेना चाहिये कि चित्तको सहज ही अस्थिर, चचल और मलिन करनेवाली अतर्वाह्य वाते और कारण कौनसे हैं। अपने व्यवहारोको अच्छी तरह परख लेना चाहिये। फिर अुन कारणो और व्यवहारोमे दिखाअी देनेवाली अनुचित वाते पहलेसे ही छोड देनी चाहिये। असत्य, अप्रामाणिकता, दुष्टता, कपट, दभ आदि सवसे सम्वन्ध तोड़ देना चाहिये। व्यसन, वुरी आदते, आलस्य, जडता, कुमित्र और समय खराव करनेवाली और वार-वार लालचमे फसानेवाली सब वातोका त्याग करना चाहिये। अुनका मोह कम न किया जा सके, तो भी अुसमें वृद्धि हो अैसा कुछ न करना चाहिये। सद्व्यवहारसे आजीविका चलाकर अपनी जिम्मेदारिया पूरी करनेकी कोशिश करनी चाहिये। शरीर, कपडे, अपने काममे आनेवाली चीजें, अपनी जगह वगैरा साफ रखनेका आग्रह रखना चाहिये। वोलनेमे विवेक रखा जाय, सत्य और परिमितता रखी जाय और वाणी मधुर रखी जाय। अति वाचालता, कर्कशता तथा अमर्यादित, कठोर, तीव्र, आक्रोशयुक्त, असत्य, अविवेकी, निष्कारण और अप्रिय भाषण — वाणीके ये सव दोष दूर कर दिये जाय। खान-पान शुद्ध और पौष्टिक रखा जाय, अुसमें भी परिमितता रखी जाय। अुग्र और तीव्र स्वादवाला और मादक खान-पान न किया जाय। हमेशा थोडी भूख रखकर खाया जाय। हम खाअू न वने। भोजन करते समय और वादमे प्रसन्न रहे। सतापमे, अुद्वेगमे और क्षुव्ध और अप्रसन्न

स्थितिमें अन्नग्रहण न किया जाय। अिसी तरह सारा चित्त भोजनमें ही रखकर या असतुष्ट होकर अुसकी चर्चा या छानबीन करते हुअे भोजन न किया जाय। आहारकी शुद्धि पर शरीर, प्राण और चित्तकी शुद्धिका आधार है। अन्नकी शुद्धि और भोजनके समयके हमारे संकल्पके अनुसार शरीरमे रस बनते है, अिसलिअे भोजनके समय हमारे चित्तमें अैसे सकल्प रखने चाहियें, जिनसे अमृततुल्य प्राणदायक सात्त्विक परिणाम पैदा हो। हम स्वय परिश्रमी बने। सेवा या कोअी भी सत्कर्म करनेमे हमें आलस्य या शर्म न मालूम हो। निन्दा और कुसंगसे बचे। सदा अच्छा पठन, मनन और चिन्तन करते रहे। सबसे महत्त्वकी बात यह है कि सत्संग रखा जाय। सत्सगका अर्थ किसी महान साधुका सग नही है। जिसकी सगतिमें हमारा मन पवित्र रहे तथा पवित्रताके लिअे हमारी अिच्छा और रुचि बढती रहे वही सत्सग है। यह काम पठनसे हो सकता है, मननसे हो सकता है और रोजका नित्य कर्म सदभावना और कर्तव्यबुद्धिसे करते रहनेसे भी हो सकता है। हमारे बन्धु, पुत्र, मित्र, पडोसी, नौकर, मा, बाप, बहन, पत्नी वगैरामे से जिसकी सगतिमे हमारा चित्त निर्मल रहे और अुसकी निर्मलता बढती रहे, अुसे सत्सग कहनेमें कोअी हर्ज नही। और अगर साधु-महात्माओंकी संगतिमे हममे मोह और चचलता बढती हो, तो अुस सगको कमसे कम हम अपने लिअे वर्ज्य मानें। नियमित और व्यवस्थित बनें। दया, स्नेह, निरभिमानपन, सत्य, अुदारता, कर्तव्यनिष्ठा, सयम और औचित्य हमारे व्यवहारमें स्वाभाविक रूपमें ही दीखने चाहियें। हमारा शरीर, हमारी कर्मेन्द्रिया, ज्ञानेन्द्रिया और मन सबके चौबीसों घंटेके व्यापारकी तरफ हमारा पूरा ध्यान होना चाहिये। अुनकी अनुचित क्रियाओंको दृढतापूर्वक रोकना चाहिये। अपने आचार और विचारमें मेल रखना चाहियें। सवेरे जल्दी अुठकर और विशुद्ध होकर भावपूर्वक प्रार्थना या स्तोत्र बोलनेकी आदत रखें। और खास तौर पर ध्यानमें रखनेकी बात यह है कि अपने हृदयमे सदा विवेकको जाग्रत रखें।

हमें अूपर लिखे अनुसार आदते डालनेकी कोशिश करनी चाहिये। अिस कोशिशसे हमारी चित्तवृत्तिमें ज्यादा फर्क न पडे, तो भी अनुचित व्यवहारका बलपूर्वक त्याग और आग्रहपूर्वक अच्छा बरताव तो हम निश्चित रूपसे कर ही सकेंगे। हम अपने श्रेयकी अिच्छा रखते हो, तो अिसमें हमे बलात्कारकी कोअी बात नही लगेगी। जीवनकी अिस अवस्थामें हमारा चित्त अपने अधीन नही होता, अिसलिअे कुछ बातोमें आग्रह रखना पडेगा। परन्तु अिससे हमारे पूर्वसस्कारोमे और चित्तमें धीरे-धीरे परिवर्तन होता रहेगा। कुछ बुराअियोसे हम सहज ही बच जायगे और कुछ अच्छे परिणाम भी जीवन पर होते दिखाअी देगे और अुनके कारण हमे अिस मार्गमे रस आने लगेगा। अिससे हमारे शुभ सकल्पमें बल आयेगा। बुरी आदते, व्यसन, फिजूल खर्च वगैरा अनुचित बाते जीवनमें मिटने लगेगी। व्यर्थ बीत रहा जीवन अच्छे रास्ते और अच्छे कार्यमें व्यतीत होने लगेगा। अपना समय व्यर्थ खोनेवाले लोग हमसे दूर हो जायगे। कुमित्र हमे अपने आप छोड देंगे। दोष निकल जायगे। हमारा रास्ता साफ हो जायगा। सन्मित्र मिलने लगेगे। भले आदमी हमे ढूढते हुअे आयेगे। अिस समय हमारे बाह्य कार्यके समान हमारा अन्तर शुद्ध न हुआ हो, तो भी हमारी यह अिच्छा और कोशिश बनी रहेगी कि वह शुद्ध हो जाय।

आसन और प्राणायामका अभ्यास

हमारी अिस किस्मकी बाहरी तैयारी हो जानेके बाद हम अुसके आगेकी कोशिश शुरू करे। जब शरीर-शुद्धि, आचरण-शुद्धि और व्यवहार-शुद्धि जारी हो, तभी हमें प्राण-शुद्धिकी तरफ मुडना चाहिये। अिसके लिअे प्राणायामका अभ्यास किया जाय। थोडेसे आसन सीख ले। यह ध्यानमे रखें कि हमें प्राणायाम और आसनो द्वारा प्राण और शरीरकी भी शुद्धि करनी है। प्राणायामसे फेफडोकी अशुद्ध हवा बाहर निकाली जाती है और

हरअेक लम्बी सांसके साथ बाहरकी अच्छी हवा भीतर ली जाती है। जब यह क्रिया जारी हो, तब हर बार जो भीतरी और बाहरी कुंभक होगा अुसमें चित्तकी चंचलता कम होगी। प्राण और सूक्ष्म वायुवाहिनियों पर अिसका अच्छा असर होता है। आसन और प्राणायामके अभ्याससे पाचनक्रिया सुधरती है। जठराग्नि अच्छी तरह काम करने लगता है। आसनोंके कारण हल्का व्यायाम होता है और हड्डियोंके जोड़ोंमें अिकट्ठा हुआ मल ढीला होकर निकल जाता है। शरीरमें स्फूर्ति और अुत्साह बढ़ने लगता है। अैसा मालूम होता है मानो नित-नया चैतन्यका संचार होता हो। संक्षेपमें आसन और प्राणायामसे शरीरकी निरोगिता और शुद्धिमें बड़ी मदद मिलती है।

अभ्यासके लिअे स्थान और समय

अिस अभ्यासके लिअे कुछ दिन स्वतंत्र रूपसे देनेकी जिसकी परिस्थिति हो, वह दूर अेकान्तमें शान्त स्थान पर जाकर यह अभ्यास करे। जिसकी अैसी स्थिति न हो, अुसे अपनी परिस्थितिके अनुसार सबसे शान्त जगह पर करना चाहिये। अिस अभ्यासके लिअे प्रातःकालसे पहलेका समय सबसे अधिक अनुकूल है। रातकी विश्रांतिसे सब थकावट अुतरकर शरीर और मन स्वस्थ हो जाते हैं। अुस समय प्रवृत्तिकी शुरुआत नहीं होनेके कारण अुनमें चंचलता आअी हुअी नहीं होती। प्रवृत्तिमें लग जानेके बाद चित्त स्वाभाविक ही रजोगुणी हो जाता है। अिसलिअे विश्रांति पूरी मिल जानेके कारण जड़ता और तमसे बाहर निकले हुअे चित्तको रजोगुणी होनेसे पहले ही सत्त्वगुणी विचारमें, अभ्यासमें, लगा दिया जाय और अपने भीतरके शुद्ध रजका हम अिस काममें अुपयोग कर लें, तो अुस समय हमारे प्रयत्नमें जल्दी सफलता मिल सकती है। यह अभ्यास हम नदीतट पर, जलाशयके पास या पर्वत, पहाड़ या पहाड़ी जैसी अूंची जगह पर अेकान्तमें करनेका क्रम रखें, तो हमें सृष्टिकी अनुकूलताका

अनुभव और लाभ स्वाभाविक ही अधिक मिलेगा। सारी सृष्टि अंधेरेसे अुजेलेमे आ रही है; पेड, पत्ते, फूल सब अपने ढगसे प्रफुल्लित हो रहे है, दसो दिशायें तेजसे भर रही है; पशुपक्षी, जीवजतु जाग्रतिके मार्ग पर है — अैसे समय जो भी सकल्प हम करते है, वह आसानीसे चित्त पर मजबूतीसे जम जाता है। जैसे जैसे यह समय बीतता है, वैसे वैसे सृष्टिमें गडबड शुरू होती है। सूर्य प्रदीप्त हो जाता है। हमारा चित्त भी प्रवृत्तिमय बनकर चचल होता जाता है। अिसीलिअे सब प्रकारसे अुचित और अनुकूल प्रात.कालमें स्नानादि द्वारा पवित्र होकर पूर्वाभिमुख या अुत्तराभिमुख बैठकर रोज नियमित रूपसे आसन-प्राणायामका अभ्यास किया जाय।

२

ध्यानाभ्यासका पथप्रदर्शन — २

अेकाग्रताके लिअे अंतर्बाह्य प्रतीक

आसनोके अभ्यासमे आसनकी स्थिरता और प्राणायामसे प्राणकी शुद्धि किसी हद तक सिद्ध हो जानेके बाद साधक ध्यानाभ्यास शुरू करे। जरा भी अस्वस्थता मालूम हुअे बिना साधक जिस आसन पर कुछ समय स्थिरतासे बैठ सके अुसीको अभ्यासके लिअे चुनना चाहिये। अुस पर सीधे (मेरुदण्ड सरल रखकर) बैठकर और परमात्माका चिन्तन करके अपने ध्येय और सत्सकल्पका वह स्मरण करे, और अुस स्थान पर चित्तको अेकाग्र करनेका प्रयत्न करे, जो अुसे सहज ही आकर्षक लगे। चित्तको अेकाग्र करनेके लिअे बाहरी साधनो या चीजोकी जरूरत जितनी कम होगी, अुतनी अभ्यासमे जल्दी सिद्धि मिलेगी। नासिकाग्र, हृदयका मध्यभाग, भ्रूमध्य, श्वासोच्छ्वास, प्रणव, नामजप — अिनमे से किसी

पर भी चित्तकी धारणा की जा सके तो अच्छा। अिनमें से किसी पर भी चित्त स्थिर न हो सके, तो दिशा, तारा, अग्नि, दीपक, नीलवर्णकी गोल आकृति — अिनमें से जिस किसी पर भी सध सके चित्तको स्थिर करनेकी कोशिश की जाय। यह भी न हो सके तो दिव्य गुणोंवाले पुरुषकी मूर्तिका अन्तरमें चिन्तन किया जाय। वह भी न किया जा सके तो अुसका चित्र तैयार करके अुसे सामने रखकर अुसके भ्रूमध्य पर अपनी दृष्टि स्थिर की जाय। वहां भी चित्त न लगे तो ध्यानाभ्यासके लिअे अभी मेरी पात्रता नहीं, अैसा समझकर साधक सत्संग बढाये, सत्पुरुषोंके चरित्र पढे, अुनके गुणोंका विचार करे, अुन गुणोंका अनुकरण करनेका प्रयत्न करे और प्रकट नामजप करे। प्रार्थना और स्तवन द्वारा चित्तकी शुद्धि करनेकी कोशिश करे। परन्तु श्रेयका मार्ग छोडकर अविवेकी न बने। अिस प्रकारका अपने अनुकूल साधन करते करते चित्तमें अेकाग्रता प्राप्त करनेकी शक्ति आ जायगी। अुदात्तता और अुदारतासे कर्तव्य करते करते भी मनुष्यके चित्तका चांचल्य कम हो जाता है और अुनकी सुप्त शक्ति जाग्रत होती है। और कालान्तरमें वह अभ्यासके लिअे योग्य बन जाता है।

साक्षीवृत्तिकी आवश्यकता

चित्तको अेकाग्र करनेकी हमें आदत न होनेसे वह शुरूमें स्थिर नहीं होता। जिस वस्तु, संकल्प, विचार या गुण पर हमने धारणा की हो, वहांसे चित्त बार-बार हटेगा। अुस वक्त अुसे नाम पर स्थिर करनेकी कोशिश की जाय। वहां भी स्थिर न हो तो मन ही मनमें स्तवन या स्तोत्र बोलने लगे और अुसके अर्थ या भावमें अुसे तन्मय करनेका प्रयत्न करे। अिस प्रयत्नसे भी चित्त अेकाग्र न हो और वह बार-बार संकल्प-विकल्पमें फंसता हो, तो अुसे अेकाग्र करनेका आग्रह अुस समय छोड दिया जाय। परन्तु साधक अपनी स्थूल बैठक यानी अपना आसन और अपना संकल्प

न छोडे। चित्त जैसे तरगाकार हो वैसे अुसे होने दे। परन्तु अुस समय अुसकी हरअेक लहरको जाननेवाली अेक जाग्रत और साक्षी वृत्ति निर्माण की जाय। वह वृत्ति अितनी जाग्रत रहनी चाहिये कि चित्तकी प्रत्येक तरग पर, चित्तकी गति पर, अुस साक्षीवृत्तिका पहरा रहे। कभी-कभी यह साक्षीवृत्ति तरगकी मग्नतामें वह जाय या डूब जाय, तो भी हमारा मूल सकल्प अुस वृत्तिको वार-वार जाग्रत करेगा। अुस साक्षीवृत्तिसे सब तरगोका निरीक्षण किया जाय। अिस प्रकार चित्तकी प्रवाहित शक्तिका विभाजन होकर ज्यो-ज्यो साक्षी-वृत्तिकी जाग्रति अखण्डित रहने लगेगी, और ज्यो-ज्यो चित्त अुसी वृत्तिसे भरता रहेगा, त्यो-त्यो सकल्प-विकल्पात्मक तरगोका जोर मन्द पडेगा और क्षीण होते होते अन्तमे अपने आप खतम हो जायगा। अुसके खतम होते ही साधकको फिर अपने चित्तको मूल धारणा पर लानेका प्रयत्न करना चाहिये।

चित्तशक्तिकी जाग्रति

चित्त सदा कोअी न कोअी रस ढूढता है। जब तक यह रस नही मिलता, तब तक वह अैसा विषय ढूढता रहता है जिससे रस मिले। अिस अवस्थामे यह खयाल होता है कि वह स्वभावसे चचल ही है। अपनी जरूरतका रस और विषय मिलते ही वह स्वभावत अुसमें तन्मय हो जाता है। अुसका यह धर्म ध्यानमे रखकर हमें अुसे अच्छे विषयकी तरफ मोडना चाहिये और वहा अेकाग्र करना चाहिये। चित्तकी अेकाग्रतामें महान शक्ति भरी हुअी है। ज्ञानके पीछे अेकाग्रतासे लगनेके कारण ही दुनियामें महान आविष्कार हुअे हैं और होते हैं। हम भी शुद्ध धारणा पर चित्तको केन्द्रित कर सके तो हममें महान शक्ति जाग्रत होगी। सूर्यकी किरणोको विशेष काचकी मददसे अेक जगह केन्द्रित करनेसे अुन्ही किरणोमे जलानेकी शक्ति पैदा हो जाती है। पानीके प्रपातको सतत अेकसी विशेष अूचाअी परसे निश्चित गतिसे और निश्चित मात्रामें वहता रखा जा सके, तो

अुससे प्रचण्ड शक्ति पैदा होती है। बढ़अीका गिरमिट लकड़ी पर अेक ही जगह घुमाते रहनेसे लकड़ीमें आरपार छेद हो जाता है। अिसी तरह चित्तशक्तिको विषयाकार बनाकर बाहर न आने दिया जाय और अेक ही शुभ संकल्प पर केन्द्रित किया जाय तो अुससे महान शक्ति निर्माण होती है। संकल्पकी दृढ़ता, वृत्तिको केन्द्रित करनेमें तीव्रता और सातत्य, वृत्तिको बाहर फैलने न देनेसे यानी चित्तशक्तिका अपव्यय न होने देनेसे हुआ हमारी अन्त शक्तिका सञ्चय आदि अनेक कारणोंसे हमें अपने प्रयत्नमें सफलता मिलती है। अिसलिये साधक अिन सब बातोंको ध्यानमें रखकर अभ्यासमें लगा रहे।

व्याकुलता और अुसका शमन

श्रेयके लिये साधकमें केवल अुत्कंठा हो परन्तु अुसकी तुलनामें अभ्यासका जोर कम हो, तो अुसमें केवल व्याकुलता बढ़ने लगेगी। अुत्कंठाके अनुसार अभ्यास और पथप्रदर्शन न मिलनेसे विलक्षण व्याकुलता बढ़ जानेके हमारे सन्तोंके अनेक अुदाहरण अुपलब्ध हैं। अिस मार्गमें अुत्कंठा होनी चाहिये, तीव्र अिच्छा होनी चाहिये, परन्तु गलत व्याकुलताकी जरूरत नहीं है। अुचित मार्ग मिले तो प्रयत्नमें क्रमशः सफलता मिलती है और अुसके कारण धीरे-धीरे अुत्कंठाका शमन होता ही रहता है। अुस सफलताके साथ ही साधकका आत्मविश्वास बढ़ता जाता है। साधन पर श्रद्धा जमती है और बढ़ती जाती है। अिसलिये साधकको अपने चित्तका, बर्तावका और अभ्यासमें क्या क्या व्यत्यय और अनुभव होते हैं अुनका हमेशा निरीक्षण करना चाहिये। सफलता न मिले और केवल अुत्कंठा बढ़े, तो अुसे समझना चाहिये कि अुचित साधन नहीं मिला; या जिस साधनका वह प्रयोग कर रहा है, अुसे निभानेकी अुसकी परिस्थिति और अुसकी सात्विकता नहीं है। सफलता न मिलती हो और अुत्कंठा घट रही हो, तो यह समझना चाहिये कि श्रेयके लिये

अुसकी अिच्छा कम हो रही है और अुसके चित्तको भीतरसे किसी और चीजका आकर्षण है। अिस प्रकार साधकको समय समय पर अपने चित्तकी जाच करनी चाहिये। अभ्यासमें प्रगति न होकर केवल व्याकुलता ही वढती हो, तो विवेकसे अुसे कम करके अभ्यासमें अुचित फेरवदल कर लिया जाय। सत्सग रखा जाय। मनको शान्त किया जाय। थोडे समय आराम लेकर फिर अभ्यास शुरू किया जाय। चित्तके पूर्वसस्कारो या अुसकी अशुद्धिके कारण अभ्यासका वल कम होता हो तो अुस समय प्रार्थनाका क्रम रखा जाय। हृदयपूर्वक की गअी प्रार्थनामें वड़ी ताकत है। प्रार्थनाके तीव्र सकल्पसे अशुभ संस्कारोका वल घटेगा। शुभ सस्कार जाग्रत होगे और दृढ होगे। ज्ञानका अुदय होगा। सद्‌गुणोमें प्रगति होगी। अिस प्रकार हमें अपना अुद्देश्य पूरा करनेके काममे अुस समयकी प्रार्थना और स्तवन सहायक होगा।

अभ्यासमें आनेवाले विघ्न

अिस प्रयत्नसे हमारे चित्तमें वल आनेके वाद हम धारणाको सिद्ध करनेके पीछे लग जाय। अुससे वृत्ति विचलित होती हो, तो चित्त कहा कहा जाता है, किसमें रमता है, किस विषयमें अनजाने तन्मय होता है, अुसमें से कव किस तरह वाहर निकलता है — साधकको अिन सब वातोका शोध लगाना चाहिये। अुनके कारण ढूढने चाहियें। कारण मिल जानेके वाद अुस स्थितिसे छूटनेके लिअे अपने जीवन-व्यवहारमे फेरवदल करना जरूरी और सभव हो तो वह करके देखे। किसीकी सगतिसे चित्तमें विक्षेप होता हो तो अुस सगतिसे वचे। अभ्यासके समय कौन कौनसी अिन्द्रियोको कौनसे रस वाधक होते है, कौनसे सस्कार, कल्पनायें और भावनायें विघ्न डालती है, अिसकी जाच की जाय और अुन्हे विवेकसे दूर किया जाय। जीवन-सिद्धिके मार्गमे ये रस कितने विघातक होते है, अिसका वार-वार विचार किया जाय। मनको निर्मल वनाया जाय। अभ्यासमे निद्रा, तंद्रा या

जडता आवे, तो अिसका विचार किया जाय कि रोजकी विश्रांति हमारे लिअे काफी है या नही। काफी आराम लेनेके बाद भी अभ्यासके समय तन्द्रा आवे, तो यह देखना चाहिये कि खानपानमें कोअी दोष तो नही? यह हमारा रोजका क्रम है कि चित्त विषयसे निकलते ही निद्रामें विलीन हो जाता है। जब हम चित्तको अेक केन्द्र पर लानेका प्रयत्न करते है, तब दूसरे सारे विषयोको, स्मृतियोको, वृत्तियोको हटाकर चित्तमें अेक ही सकल्प रखनेका प्रयत्न करते है। अैसे समय दूसरे तमाम विषयोंसे निकला हुआ चित्त हमारे सोचे हुअे सकल्पको, गुणको या विचारको धारण न कर सके, तो हमारी हमेशाकी आदतके मुताबिक वह निद्रामे लीन हो जाता है। निद्रासे पहलेकी स्थिति तंद्रा है। तद्रासे पहलेकी स्थिति जडता है। चित्त अन्य विषयोंमे छूट जाय परन्तु शुभ सकल्प धारण न कर सके, तो वह जडतामें यानी तमोगुणमें प्रवेश करता है।

प्रज्ञा-प्राप्ति

हममें अपनी अशुद्ध वृत्तियोका निरोध करके शुभ सकल्प धारण करनेकी और वहीं चित्तकी तमाम ताकत केन्द्रित करनेकी शक्ति आनी चाहिये। अुसके केन्द्रित हो जानेके बाद अुस संकल्पको बीचमें रखकर अुससे सम्बन्धित गुणोंकी और विचारोंकी स्फुरणा होने लगेगी। हमारे ध्यानमें आने लगेगा कि अुस संकल्पका, अुसके गुणोका और विचारोका अपनी और मानव-जातिकी अुन्नतिके साथ कैसा और कितनी तरहका सबंध है। मानव गुण-धर्म, सस्कार और स्वभाव पर हमारे धारण किये हुअे संकल्पका क्या परिणाम होगा, अिसकी हमें यथार्थ कल्पना होने लगे तो समझना चाहिये कि अभ्याससे हमारी प्रज्ञा शुद्ध हो रही है। परन्तु अुसे अभ्यासकी पूर्णता न समझकर अितना ही समझना चाहिये कि हमें प्रज्ञाके रूपमें अभ्यासका फल मिल रहा है।

विक्षेपोंकी चढ़ती-अुतरती गति

साधक यह भरोसा न रखे कि अभ्यासकी अूची स्थितिमे पहुचनेके बाद ध्यानके समय हममे कोअी अशुभ स्मृति जाग्रत नही होगी। और अैसी स्मृति जाग्रत हो अुठे तो अुससे घबराना या निराश न होना चाहिये और न अुसीमे रममाण रहकर मग्न होना चाहिये। अैसे समय सावधानी न छोडकर अुस स्मृतिको मिटानेकी कोशिश करे। यह न सध सके तो देखना चाहिये कि अुस स्मृतिकी गति किस ओर है। यह स्मति अतरमे से अुठी है या किसी बाह्य निमित्तसे अुठी है? क्या वह स्मृति वृत्तिका रूप धारण कर रही है? अुसमें से भी सावधानीके साथ अभ्यास पर आनेका प्रयत्न करना चाहिये। वह भी न किया जा सके तो अिस पर नजर रखी जाय कि चित्तका प्रवाह कैसे-कैसे रग धारण करता है। हम विशेष सावधान रहे और सकल्प पर आनेकी हममे लगन हो, तो चित्त अुस प्रवाहसे छूटकर पुन अभ्यास पर आ जायगा। अैसे समय चित्तमे अुठनेवाली अशुभ स्मृतिकी गति, अुसकी चचलता, बढती हुअी मात्रामे है या घटती हुअी मात्रामे, अिसकी साधकको जाच करते रहना चाहिये। चित्तमें अुठनेवाली स्मृतिका वृत्तिमे होनेवाला स्पष्ट रूपान्तर, बादमें अुसकी क्षणिकता या दीर्घता, अुसकी मन्दता या तीव्रता, अुसमें से अुठनेवाले दूसरे सकल्प-विकल्प, अुसके बाद अुसीमें से अेकसे अेक अधिक अशुद्ध वृत्तियोका चित्तमें होनेवाला अुद्भव, अुसके कारण होनेवाली व्याकुलता, अुस व्याकुलतासे स्थूल विषयोकी ओर होनेवाला चित्तका कम-ज्यादा आकर्षण, और अन्तमे अिन सबमें से चित्तको अभ्यास पर लानेके लिअे आवश्यक प्रयासकी कम या अधिक मात्रा — अिन सब परसे साधक जान सकता है कि हमारे चित्तकी अवस्था किस प्रकारकी है और वृत्तियोका जोर बढ रहा है या घट रहा है। अशुद्ध वृत्तियोकी बढती हुअी तीव्रता या विविधता और अुनके साथ होनेवाली चित्तकी

तदाकारता और स्थूल विषयोंकी ओर आकर्षण — अिन सब बातोंसे जानना चाहिये कि वृत्तियोंकी गति बढ रही है और अभ्यासके लिअे बाधक है। और स्मृतिके रूपमें वृत्तिके जाग्रत हो जानेके बाद चित्त अुसीमें न रमता रहे, अुसके प्रवाहमें न बह जाय और जल्दी सचेत होकर अपने साधनमें लग जाय, तो यह समझना चाहिये कि अशुद्ध वृत्तियां क्षीण होने, अस्त होनेके मार्ग पर है। अुसे यह विश्वास रखना चाहिये कि अिसी अभ्यासमे वे अधिकाधिक क्षीण होती जायगी। अभ्यासकालमें धारण किये हुअे संकल्पके सिवाय दूसरी अच्छी-बुरी वृत्तिया और सस्कार चित्तमें जाग्रत होते रहते है। परन्तु अभ्यासकी दृष्टिसे ये दोनों बाधक ही होते है। धारण किये हुअे सकल्पके सिवाय या अुस संकल्पमें दृढता लानेवाले किसी और सकल्प या वृत्तिके सिवाय अन्य किसी भी अच्छी या बुरी वृत्ति या सस्कारकी जाग्रति अभ्यासमें सहायक नहीं हो सकती। अिसलिअे साधकको जानना चाहिये कि अुसमें कैसी वृत्तिया अुठती है। ध्येयके लिअे अुत्कंठा, अुसके लिअे अुचित साधनमार्ग, अभ्यासके विषयमें सतत प्रयत्नशीलता और सावधानी वगैरा बाते साधकमे जिस मात्रामें होगी, अुसी मात्रामें अुसे जल्दी या देरसे अपने प्रयत्नमें सफलता मिलेगी।

ध्येय-सम्बन्धी जाग्रति

साधकके मार्गमे बाहरकी बातोंकी अपेक्षा अुसके अपने पूर्वसंस्कार और आदते ही ज्यादा बाधक होती है। धारण किये हुअे सकल्प पर स्थिर न रहकर चित्त कभी भी अनजानमें वहांसे हटकर अेक विचारसे दूसरे पर और दूसरेसे तीसरे पर — अिस तरह विभिन्न रूपमें जाते जाते कहीं न कहीं हमेशाकी आदतके किसी भी रसानुभवकी स्मृतिमें रम जाता है और वहां लीन होकर शान्त होता है। अुसमें वहांसे थोडा बाहर निकलनेके बाद साधक सावधान होता है। वह फिर अपने चित्तको पहली धारणा पर केन्द्रित करनेके प्रयत्नमें लग जाता है। यह हाल बहुत बार होने पर

अुसीमे से अेकाग्रता प्राप्त होती है और वह दीर्घकाल तक टिकती है। अिस प्रकार प्रयत्न करते करते साधकको सफलता मिलने लगती है। अभ्यासमें जब थोडी गति होने लगती है, तो साधकको अुसे रोज किये बिना चैन नही पडता। आगे चलकर अुसे अिसमे अितना आनन्द आने लगता है। यह स्थिति भी विक्षेपरहित नही होती। निद्रा और तद्राको दूर करके पूर्वसंस्कारोका बल घटाते घटाते और चचलता मिटाते मिटाते साधक आगे बढे, तो भी अुसके चित्तमें किसी समय पूर्वस्मृति और सस्कार जाग्रत हो अुठते हैं। अभ्यासमे सफलता प्राप्त हो जानेके बाद यह करेगे और वह करेगे, अैसे तरह तरहके सकल्प-विकल्प चित्तमें अुठने लगते है। वे अभ्यासमें चचलता लाते है। अुन्हे भी हटाकर साधक आगे बढता है। अुसके ध्यानमें स्थिरता आती है, जाग्रति आती है, अुसकी प्रज्ञा प्रखर होती है, अुसे स्फूर्ति और प्रसन्नता अनुभव होने लगती है, अिन्द्रियोकी सूक्ष्म शक्तिया जाग्रत होने लगती है। नाडीस्फुरण, मद श्वासोच्छ्वास, प्रकाश, ध्वनि, स्पर्श वगैराके तरह तरहके पहले कभी न हुअे सूक्ष्म और सुखद अनुभव होने लगते हैं। वाणीमे स्फूर्ति और तेजस्विता आती है। शरीर हलका मालूम होने लगता है। अिस प्रकार अिन्द्रियोकी शुद्धि और तीक्ष्णताके कारण पचविषयोके भिन्न-भिन्न प्रकारके सूक्ष्म अनुभव साधकको होने लगते है। अिन अनुभवोसे साधकको समझना चाहिये कि अुसकी अिन्द्रिया शुद्ध और तीक्ष्ण हुअी है और अुनकी बढती जानेवाली तमाम शक्तिका अुपयोग अिसी अभ्यासमे करते रहकर अुसे आगे बढना है। अिस तरह अभ्यासमे विश्वास रखकर अुसे अधिक वेग देना चाहिये। यदि साधक अैसा समझनेके बजाय अुस अल्प अनुभव और शक्तिके मोहमें फस जाय और अुसमें रम जाय, तो वह अभ्यासमे आगे नही बढ सकता। अिस स्थितिमें अुसके शब्दमें माधुर्य पैदा होकर अुसे थोडीसी शब्दसिद्धि भी हो जायगी। नेत्रोमें तेज आकर अुनका प्रभाव भी पडने लगेगा। कदाचित् शक्ति-सचरण

भी अुसे सिद्ध हो जायगा। परन्तु अिनमें से किसी बातमें अुसका सच्चा कल्याण नहीं। अभ्यासकी दृष्टिसे ये सब विक्षेप हैं। अिन शक्तियोंका अुपयोग अपने आगेके अभ्यासमें कर लेना ही साधकका काम है। अिसके लिअे अुसे सतत जाग्रत रहकर किसी भी प्रकारके मोहमें नहीं फसना चाहिये। विक्षेपोंको पहचान कर अुसे हर हालतमें अुनसे बचना ही चाहिये। यह समझकर कि अुनमें तन्मय होने या अुनके द्वारा प्रतिष्ठा प्राप्त करनेमें मेरा कल्याण नहीं है, साधकको अैसे समय अपना ध्यान सकल्पसिद्धि, चित्तशुद्धि और सात्त्विकता पर ही स्थिर रखना चाहिये और बाकीकी बातोंके प्रति वैराग्यवृत्ति रखनी चाहिये। ध्यानाभ्यासके दरमियान जो सात्त्विकता अनुभवमें आती है, अुसका जितना अंग प्रत्यक्ष व्यवहारमें टिके, अुतनी ही अुसकी सच्ची सात्त्विकता है, अैसा अुसे समझना चाहिये। और अुन सात्त्विकताका व्यवहारमें अुपयोग करते समय ध्वनि, प्रकाश वगैरा सूक्ष्म चिह्नोंका अनुभव न हो तो अुसके लिअे साधकको चिन्ता करनेकी जरूरत नहीं। क्योंकि ये चिह्न सच्ची सात्त्विकताके नहीं, परन्तु अुसकी ज्ञानेन्द्रियोंकी सूक्ष्म शक्तियों और अुनकी तीक्ष्णताके लक्षण हैं। न तो वे सात्त्विकताके लक्षण हैं और न अिन प्रकारकी तीक्ष्णता प्राप्त करना अुसका ध्येय है। दिव्य या अद्भुत लगनेवाले किसी अनुभव या शक्तिको महत्त्व न देकर अुसे यह देखना चाहिये कि अुसके साथ-साथ अपने अशुद्ध संस्कारोंका जोर घट रहा है और सात्त्विकता बढ़ रही है या नहीं। हमारी धारणाका यही हेतु है। अुसे अिस बातकी तरफ ध्यान देना चाहिये कि अुसका शुद्ध संकल्प व्यवहारमें भी जाग्रत रह सकता है या नहीं और अुसकी स्वप्नदशा भी अुत्तरोत्तर शुद्ध होती जा रही है या नहीं। अिस अभ्यासमें साधन और साध्य दोनोंकी तरफ लगातार ध्यान देना पड़ता है। ध्यान करते करते साधकके चित्तकी स्थिति बराबर बदलती जाती है। अुस समय अुसकी ज्ञानेन्द्रियोंकी

मूल करण पर, अुनके गोलको पर सूक्ष्म असर होता है। अिसके परिणामस्वरूप अैसे अनुभव होने लगते है, जिनकी पहले कल्पना भी न की गअी हो। अुनमे से किसी किसीकी अद्भुतताके कारण साधकका चित्त अुसीमे रमने लगता है। अिसी दिशामे शक्तिका विकास करनेका सकल्प रखा जाय, तो ज्ञानेन्द्रियोकी वह सूक्ष्मता और शक्ति वढाअी जा सकती है। ध्येयका विस्मरण हो जाय अथवा अुस पर दृढ न रहा जा सके, तो साधक अैसे आकर्षणमे फस जाता ह। कुछ लोग अिस दिशामें जिज्ञासाके कारण भी चले जाते है। परन्तु जिसके गले यह वात निश्चित रूपसे अुतर गअी हो और अिस कारण जिसे अिस वातका कभी विस्मरण न होता हो कि यह अभ्यास चित्तकी स्वाधीनताके लिअे है और स्वाधीनता मानवताकी पूर्णताके लिअे है, वह कभी किसी आकर्षणमें नही फसेगा।

अभ्यासका सार

साधकने ध्यानके लिअे वाहरकी चीज लेकर स्थूल ध्यानसे प्रारम्भ किया हो, तो भी ज्यो-ज्यो अुसकी वृत्ति स्थिर होती जायगी त्यो-त्यो अुसका वाह्य ध्यान छूटता जायगा और सूक्ष्म ध्यानमें अुसका प्रवेश होता जायगा। सकल्प, गुण, भावना और विचार, अिनमे से किसीको भी अन्तरमें सकल्पित स्थान पर वृत्तिका केन्द्र वनाना आ जाय, तो माना जा सकता है कि अभ्यासमे गति होने लगी है। अनुसधान और प्रवाहका सातत्य अिसमें मुख्य वाते है। ये दो वाते सिद्ध हो जाय तो चित्तमें स्थिरता आ जायगी। चित्त दृढ हो जायगा। अभ्यासकालमें चित्तमें अनेक शुभ भावनाये जाग्रत होती है। ये भावनाये अुचित कर्ममें परिणत होनी चाहियें। अुनके अिस तरह परिणत होनेसे अुन्हीके आधार पर दूसरी भावनाओका भी अुदय होगा और ये भावनायें भी कार्यमें परिणत होने लगेगी। अिस प्रकार सद्भावना, सत्कर्म और सद्गुण द्वारा हमारा जीवन अुत्तरोत्तर समृद्ध होता जायगा। हमारे जीवनके सव व्यवहारोकी शुद्धि होगी और अुन सवका

परिणाम हमें शान्तिके रूपमें मिलेगा। यह स्थिति सिद्ध करनेके लिअे साधकको ध्यानके अभ्यासके साथ ही अपना व्यवहार और जीवन अधिकाधिक शुद्ध बनानेका प्रयत्न करते रहना चाहिये। सत्कर्माचरण हमारा स्वभाव बन जाना चाहिये। अिस किस्मकी कोशिशसे हमारी अशुद्ध वृत्तियोंका पूरी तरह नाश होगा या नहीं, यह हम आज भरोसेके साथ नहीं कह सकते। फिर भी अितना तो निश्चित कह सकते हैं कि अिस प्रयत्नसे हमारी अशुद्ध वृत्तियां धीरे-धीरे अितनी क्षीण हो जायंगी कि हमें चाहे जैसे अनुचित मार्गकी तरफ कभी घसीट कर नहीं ले जा सकेंगी और न अुनका कुछ बुरा असर ही हम पर होगा। अितनी बात हम अिस जीवनमें कर सकें तो भी काफी है। हममें रहनेवाली अशुद्धि नष्ट हो जाय, हम सब वृत्तियोंको जान सकें, अुनकी अुत्पत्ति, स्थिति और लयका क्रम हम समझने लग जायं, हमारा चित्त अपने वशमें आ जाय और हमेशा वशमें रहे, सद्-भावनायें जाग्रत हों, अुनका विकास हो और हम अुन्हें सत्कर्ममें परिणत कर सकें और अिस प्रकार चित्तकी शुद्धि और सद्गुणोंके साथ हममें पुरुषार्थकी वृद्धि हो, तो जीवनमें और कुछ करनेको रह नहीं जाता। सारे अभ्यासका सार यही है।

अभ्यासकी सिद्धि

अभ्यास करनेवाले साधकमें अनेक प्रकारके गुणोंकी जरूरत होती है। अुनमें तारतम्य रखना, मौका पहचानकर चलना और किसी भी प्रसंगमें अुचित मार्ग ढूंढ निकालना, अिन तीन गुणोंकी अत्यन्त आवश्यकता है। अपने चित्तको स्वाधीन रखनेके लिअे अेकाग्रता, शुद्धता, दृढ़ता, कोमलता और स्थिरता जैसी चित्तकी अवस्थायें अुसे सिद्ध होनी चाहियें। अुन्हें सिद्ध करनेके लिअे चित्तवृत्तियोंका निरीक्षण, परीक्षण, पृथक्करण, केन्द्रीकरण तथा अलग-अलग स्थानमें संयोजन करना और अिनमें किस चीजकी कब कितनी जरूरत है यह पहचानना अुसे आना चाहिये। पहचाननेके बाद तदनुसार व्यवहार करना आना चाहिये। चिन्तन,

मनन, निदिध्यासन, अनुसधान और अनुशीलन — अिनमे से हरअेक बात आवश्यकतानुसार अुसे करते आना चाहिये। वृत्तिको दृढताके साथ कब धारण करना, अुसे कव छोडना, अेक वृत्तिमे से चित्तको दूसरी श्रेष्ठ वृत्तिमें कैसे लगाना, सकल्पको कैसे दृढ करना, अुसको दूसरे सकल्पमें कैसे विलीन करना, वगैरा सव बाते सिद्ध करनेके लिअे साधकको अूपर बताये हुअे गुणोकी बडी जरूरत है।

मानव-जीवन विशाल है। अुसके सम्बन्ध व्यापक है। अुन सबके साथ न्याय करनेके लिअे हममें जरूरी चित्तशक्ति और गुण होने चाहियें। चित्तके कारण ही हमारा जगतके साथ सम्बन्ध है। अिस चित्तमें केवल अेकाग्रता, केवल शुद्धता, केवल कोमलता या दृढता हो तो अुससे हमारा जीवन सार्थक नही होगा। जीवनमें कभी हमें अेकाग्रताकी जरूरत होती है, तो कभी चित्तशक्तिको कअी जगह अेक ही वक्त बाट देना पडता है। हरअेक प्रसगका मर्म या रहस्य अुसी क्षण पहचानकर मनुष्यको अपने हित या रक्षाके लिअे अुसका अुपयोग करना पडता है। कभी चित्तको केवल स्थिर रखना पडता है, तो कभी कोमल और कभी न्यायनिष्ठुर बनाना पडता है। अिसलिअे चित्तकी केवल अेकागी स्थिति साधना अिस अभ्यासका हेतु नही है। किसी भी प्रकारकी अेकागिता या अभ्याससे सहज ही आनेवाली शक्तिका दुरुपयोग करनेकी अिच्छा — अिन दोनोमें से कोअी भी चीज हममें कभी पैदा नही होनी चाहिये। शरीर-स्वास्थ्य, आरोग्य और बौद्धिक तीक्ष्णता यानी किसी भी विषयको समझने योग्य बुद्धिकी पात्रताकी जीवनमे जितनी जरूरत है, अुससे भी मनुष्यको चित्तकी स्वाधीनताकी अधिक जरूरत है। अिसके लिअे जाग्रतिके सारे समयमे हमें अिस वारेमे अभ्यासी रहना चाहिये। नित्यके व्यवसायमे, कर्ममें, अपना चित्त स्वाधीन रखनेका हमें अभ्यास होना चाहिये।

जो नित्यके जीवनमें ही चित्तकी शुद्धि, अुसकी स्वाधीनता, सद्भावनाओ और सद्गुणोका विकास कर सकता है, अुसे आसनस्थ होकर

चित्तको किसी अेक शुभ सकल्प पर खास तौर पर केन्द्रित करनेकी जरूरत नही है। जो अपने मानव-कर्तव्य सात्त्विकता और निरहकार भावसे स्वाभाविक रूपमे अदा कर सकता हो या जिसे कर्तव्य कर्म करते करते अिस स्थितिको पहुचनेका अपने लिअे विश्वास हो, अुसे अिस प्रकारके खास प्रयत्नकी जरूरत नही है। अुसे सिर्फ यह बात पूरी तरह समझ लेनी चाहिये कि चित्तकी स्वाधीनता प्राप्त किये विना मानवता सिद्ध नही की जा सकती। किसी खास प्रकारके साध्यके लिअे और साधनकी नैतिकता और सरलताके लिअे आग्रह होना चाहिये। अिसमें शका नही कि जो नित्यके साधारण व्यवसायी जीवनमें ही किसी विशेष प्रकारका साधन किये विना भी अपने मानव-कर्तव्य पवित्रतासे सरलतापूर्वक और निरहकार होकर पूरे कर सकते हो वे धन्य है।

३

लय अवस्थाका शोधन

अलिप्त स्थिति

पिछले अध्यायमें यह बताया गया है कि मानवताकी दृष्टिसे चित्तकी स्वाधीनताकी कितनी जरूरत है। यह स्वाधीनता मनुष्यको विशेष अभ्यास करके या हमेशाके जीवनमें ही अत्यन्त विवेक और सावधानीसे रहकर प्राप्त करनी चाहिये। अुसे प्राप्त किये बिना मानव-जीवनका अुन्नत होना सभव नही, यह बात हमें निश्चित समझ लेनी चाहिये। चित्तके सदा स्वाधीन रहनेके लिअे अेकाग्रता, स्थिरता, दृढ़ता और शुद्धता — ये चार मुख्य सिद्धिया जरूरी है। पिछले अध्यायमें बताये गये अभ्याससे हम अुन्हें प्राप्त कर सकें, तो अुनके द्वारा हममें चित्तको स्वाधीन रखनेकी शक्ति आयेगी। आवश्यक प्रसग पर चित्त-वृत्तिका निरोध करना और अुचित वृत्तियोंको प्रेरणा और गति देना

इम सिद्ध कर ले, तो जीवनकी सफलताके लिअ अधिक चित्तशक्तिकी या अुस दिशामे किये जानेवाले अभ्यासकी मनुष्यको जरूरत नही है। अिस अभ्याससे हमारी धारणाशक्ति और सकल्पशक्ति वढती है। चित्तमे दृढता आती है। हममे अेक विवेकप्रधान जाग्रत वृत्ति अखण्ड रूपमें काम करने लगती है। वह हमारा स्वभाव वन जाती है। अेकाग्रताका अभ्यास करते समय जव चित्त चचल और वेकावू होकर वार-वार वट जाता है और विक्षिप्त होकर सकल्प-विकल्पमें पडने लगता है, तव अुस सारी घटना पर ध्यान रखनेवाली अेक वृत्ति निर्माण करनी पड़ती है। वहीसे अिस जाग्रत वृत्तिका स्पष्ट रूपमें आरम्भ होता है। अुसे पिछले अध्यायमें 'साक्षीवृत्ति' कहा गया है। अितने पर भी वह केवल साक्षी यानी तटस्थ वृत्ति नही है; और न केवल जाननेवाली वृत्ति ही है, परन्तु अुसका मुख्य अश सावधानीका है, अर्थात् वह विवेकयुक्त होती है। चचलताको योग्य समय पर रोक कर चित्तको योग्य स्थानकी तरफ मोडनेका भाव भी अिस वृत्तिमें होता है। अिस प्रकार अनेक महत्त्वकी वृत्तियोंसे मिलकर यह अेक वृत्ति वनी होती है। अिस वृत्तिका अिस अभ्यासमें वार-वार काम पडता है, अत· वह मजवूत होती है। वह सव वृत्तियोको, सव गुणोको, सव कर्मोंको, सव व्यवहारोको और चित्तके सव परिवर्तनोको जानती है, परन्तु खुद किसीमें रम नही जाती, कही भी तन्मय नही होती। वह तद्रूपताको जानती है, परन्तु खुद तद्रूप होकर नही रहती। वह सवको जानकर व परखकर, सवसे अलिप्त और सावधान रहकर, सतत कार्य करनेवाली वृत्ति है। जैसे-जैसे वह जाग्रत, स्थिर और सूक्ष्म होती जायगी, वैसे-वैसे अुसके निरीक्षण-परीक्षणके और अुसके पृथक्करणके वाहर किसी वृत्तिका अेक अश भी नही रहेगा। और अितना करने पर भी वह सवसे अलिप्त रहेगी। वह सावकको किसी भी कर्ममे भान न भूलने देगी और अुसे योग्य मर्यादामें रखकर सुख-दु ख, आशा-तृष्णा और राग-द्वेषसे अलिप्त रखेगी। जीवनके

हरअेक कार्यमें अुसके साथ रहकर वह अुसे धर्ममार्गमें स्थिर रखेगी। जिस प्रकार अभ्यासकालमें और व्यवहारके समय वह सदा अुनके चित्तमें होगी और समय पाकर अुसका स्वभाव बन जायगी।

अिस प्रकारका अभ्यास किये बिना भी विवेकी, सावधान और संयमी मनुष्य दुनियाके व्यावहारिक कार्य करते हुअे अिस प्रकारकी अलिप्त और जाग्रत स्थिति प्राप्त कर सकता है। यह बात नहीं कि वह नित्य आसनस्थ होकर अभ्यास करनेवालेको ही प्राप्त होती है। जिसका चित्तशुद्धि और सदाचरण पर जोर है, जो किसी भी कामको अुसके हेतु और परिणामका दीर्घदृष्टि और सब पहलुओंसे विचार किये बगैर शुरू नहीं करता, जो दक्षता और तत्परतासे तथा ज्ञानपूर्वक कार्य करते हुअे और कार्यके अन्तमें लाभ-हानिमें से कोअी परिणाम आने पर अपनी सावधानी नहीं खो बैठता, और व्यवस्थित रूपमें कार्य करते हुअे भी निरहंकारतापूर्वक आचरण करता है, अुसे भी अलिप्तताकी यह भूमिका प्राप्त हो सकती है। यह भूमिका प्राप्त हुअे बिना कोअी भी मनुष्य सावधानी, अुदारता, दक्षता और विवेक-पूर्वक व्यवहार नहीं कर सकता। यह संयमी जीवनके बिना प्राप्त नहीं हो सकती। कर्मेन्द्रियों, ज्ञानेन्द्रियों और चित्तके किसी भी अच्छे-बुरे वेगमें तन्मय होकर अुसीमें बह जानेवालेको यह स्थिति प्राप्त नहीं हो सकती। अिस अवस्थाको सब सद्भावनाओं और सद्गुणोंका ठीक मेल बैठाकर जाग्रत रखना पड़ता है। जीवनकी दृष्टिसे यह अत्यन्त महत्त्वकी अवस्था है।

निर्विकल्प अवस्था

परन्तु किसी साधकको चित्तकी निर्विकल्प अवस्था तक पहुंचकर अुसकी आगेकी अवस्थायें देख लेनी हों, तो अुसे चित्तकी स्थिरताका अभ्यास बढ़ाना चाहिये। जिससे अुसे चित्तकी सविकल्प और निर्विकल्प दशाओंका ज्ञान होगा। चित्त स्थिर करना साधकको आ जाय, तो अुस समय वह प्रयत्न करके अुस अवस्थाको जानने-

वाली अेक वृत्ति जाग्रत कर सकेगा। अूपर बताअी हुअी अलिप्त स्थितिका केवल साक्षित्वका भाग ही अुस वृत्तिमें रहेगा। वह लगभग तटस्थ अवस्था ही होगी। अुसी वृत्तिका सतत अनुसधान रखा जाय, तो वह अेक स्वतत्र वृत्तिके रूपमें दृढ हो सकती है। कोअी अुसीको साक्षी अवस्था कहते है। परन्तु साधकको अिससे आगे जानेकी अिच्छा हो, तो चित्तके तमाम संकल्प, सारे विचार छोड़ देने चाहियें और चित्तको नि सकल्प और निर्विचार करनेका प्रयत्न करना चाहिये। चित्तमें अुठनेवाले किसी भी सकल्प या विचार पर चित्तको केन्द्रित या स्थिर न करके जो संकल्प या विचार आयें, अुसका केवल साक्षित्व साधने और अुसे दृढ करनेका प्रथम प्रयत्न करना चाहिये। कालान्तरमें अुन संकल्पो और विचारोको चित्तसे गति या प्रेरणा मिलना बन्द हो जाने पर वे धीरे-धीरे मन्द होते जायगे और आगे जाकर अपने आप बन्द हो जायगे, और केवल साक्षित्वका भावमात्र रह जायगा। अैसी स्थितिमें चित्त किसी भी पिछले संकल्पको स्पर्श नही करता और आगे भी किसी सकल्पको धारण नही कर सकता और न अुसमे कोअी स्पन्दन ही अुठता है। किसी भी सकल्प या विचारको धारण न करनेकी चित्तकी अवस्था आ जाने पर साक्षी वृत्तिके लिअे भी कोअी काम नही रह जाता, अिसलिअे चित्तमें साक्षित्वका भाव भी नही रहेगा। यही चित्तकी लयावस्था है। यह स्थिति प्राप्त करनेमें साधकका जो मूल अुद्देश्य या सकल्प होगा, अुसीके अनुसार वह अुसे महत्त्व और नाम देगा। चित्त सकल्प-विकल्प रहित हो जाय, अुसमे कोअी भी सकल्प न अुठे, अितना ही जिनका हेतु होगा, वे अिस स्थितिको निर्विकल्प अवस्था कहेगे। अीश्वरका चिन्तन करते करते जिसके चित्तका लय हो गया होगा, वह अिसी स्थितिको तद्रूपता कहेगा। और चित्तका लय होनेकी स्थितिमें द्वैतका भान नष्ट हो जानेसे कोअी अुसीको अद्वैतानुभव कहेगा। अिस प्रकार किसी भी साधनमे

चित्तको प्राप्त हुअी लयावस्था मूल हेतु, संकल्प और विचारसरणीके अनुसार अलग-अलग अवस्था मानी जाती है और अलग-अलग नामसे पहचानी जाती है। परन्तु अिन सबमें सच्ची बात अितनी ही है कि अुस स्थितिमें चित्त निर्व्यापार हो जाता है; और यह अवस्था प्राप्त करनेमें सबकी अेक ही यानी मोक्षकी अभिलाषा होती है।

अूपर चित्तलयका जो क्रम बताया है, वह चित्तके संकल्प-विकल्प बन्द करनेके अभ्यासका है। अीश्वर-चिन्तन करते करते जिनके चित्तका लय हो जाता है या जो द्वैतके भानका लोप करके अद्वैतानुभवके लिये चित्तका लय साधते हैं, अुनमें से प्रत्येककी विचारसरणी, धारणा, संकल्प और हेतुमें थोडा-बहुत फर्क होता है। अिसलिये अुनके अभ्यासक्रममें भी अुतना ही फर्क होता है। परन्तु अन्तिम बात — लयावस्था — तो सबकी अेक ही होती है। यह लयावस्था किसीने अेक अेक वृत्तिके या संकल्पके चित्त पर होनेवाले स्पन्दनको शान्त करते करते और किसी भी प्रकारके नये संकल्प या विचारको धारण न करके चित्तको निर्विचार बनाकर सिद्ध की होती है; तो किसीने भावपूर्णतासे किसी अेक ही पवित्र संकल्प पर चित्तको आरूढ करके अुसमें अुसे पूरी तरह अुत्तेजित करनेके फलस्वरूप पैदा हुअी प्रतिक्रियाके रूपमें निर्माण की होती है। परन्तु यह बात सही है कि अिन सबका अन्त चित्तकी लयावस्थामें होता है। और अुसे साध लेनेके बाद हरअेक मार्गका साधक मान लेता है कि मेरा हेतु पूरा हुआ।

साक्षित्व और अुस परसे मानी हुअी आत्मस्थितिका शोधन

अिसी अध्यायमें अलिप्त अवस्थाके अंतर्गत केवल साक्षित्वका भाव लेकर अुसी वृत्तिको दृढ करनेके बारेमें अुल्लेख आया है। कुछ साधक अिसी स्थितिको महत्त्व देते हैं और अुसका अनुसंधान रखकर अुसी स्थितिको सारे समय कायम रखना चाहते हैं। अिस प्रकारके साधक 'मैं कौन?' का वेदान्तकी विचारसरणीके अनुसार विचार करते करते 'मैं प्रकृतिसे अलग अजर, अमर, नित्य, शुद्ध-बुद्ध आत्मा हूं; प्रकृति,

पंचतत्त्व, तीन गुण, सबको जाननेवाला, सबका साक्षी मैं हूं', अिस विचार पर आकर अुसी साक्षित्वकी वृत्तिको सतत धारणा और अनुसंधानसे दृढ करते हैं, और अिस तरह दृढ की हुअी चित्तकी अिस वृत्तिको ही आत्मस्थिति मानकर और अपने मोक्षके विषयमें निःशंक विश्वास रखकर समाधान प्राप्त करते हैं। अिस तरहके साधक ज्यादातर कर्ममार्गमें नहीं होते; वे सारे व्यावहारिक कर्मों और कर्त्तव्योंका त्याग करते हैं। वे किसी भी जिम्मेदारीको नहीं अुठाते, निरुपाधिक और अलिप्त रहते हैं। अुन्हें चित्तका क्षोभ या अुद्वेग होनेके अवसर नहीं आते। अैसी अन्तर्बाह्य शान्त और निरुपाधिक स्थितिके कारण और शान्तिमय जीवनके कारण अुन्हें यह अनुभव होता है कि यही 'आत्मस्थिति' या 'ब्रह्मस्थिति' है। और अपनी वेदान्त-विचारसरणीके अनुसार अुन्हें प्रतीत होने लगता है कि मैंने 'मैं कौन हूं?' का ज्ञान प्राप्त कर लिया है। परन्तु यदि अुन्हें अपनी वृत्ति, स्थिति और समझको जांचनेकी बात सूझे तो अुन्हें पता लग जायगा कि यह आत्मस्थिति नहीं है, परन्तु अपनी ही बनाअी हुअी अेक वृत्ति है। वह अपना ही किया हुआ अेक बुद्धिका निश्चय है। श्रद्धा, अनुसंधान, चिन्तन वगैरासे खुदने ही अुसे दृढ बनाया है। हमारी अपनी ही बनाअी हुअी अिस वृत्ति या निश्चयके हम स्वयं कर्त्ता हैं। अुसीको 'आत्मा' माननेमें भ्रांति है। जो साधक अिस तरह सोचते हैं वे अिस भ्रांतिसे छूट जाते हैं। जो पहलेसे ही विवेकसे अिस स्थितिको जानते हैं वे भ्रांतिमें पड़ते ही नहीं। परन्तु अैसे भी कुछ साधक होते हैं जिन्हें यही अपने जीवनभरके तप और परिश्रमका सर्वस्व फल मालूम होता है। अिसके कारण या ग्रंथोंके प्रमाण, ग्रंथोंके वचनोंका गलत ज्ञान, अपना वैराग्य, निरुपाधिकता और शान्ति वगैरा कारणोंसे अपनी मानी हुअी 'आत्मस्थिति' की जांच कर लेनेकी बात अुन्हें नहीं सूझती। कुछ वेदान्ती अिस अवस्थाको अुन्मन स्थितिसे पहलेकी साक्षी या तुर्यावस्था कहते हैं।

निर्विकल्प अवस्था का शोधन और मानवताकी सिद्धि

पीछे बताओी गओी चित्तकी लयावस्था भी मानवताकी परिसीमा नहीं, यह हमे ध्यानमें रखना चाहिये। सविकल्प और निर्विकल्प, सभी अवस्थाओंको जाननेवाले साधकको जिन अवस्थाओंका जीवनमे जरूरी चित्तस्वाधीनताके लिअे और अलिप्तताके लिअे कितना अुपयोग हो सकता है, अिसका विचार करके अुसका महत्त्व जानना और तय करना चाहिये। किसी अेक विशेष स्थिति या अनुभवको, वृत्ति या तर्कको हमे सर्वश्रेष्ठ स्थिति या अवस्था न समझना चाहिये। चचलता, निश्चलता, अेकाग्रता, सर्वार्थिता, स्थिरता, शुद्धता, साक्षी, अुन्मन, व्युत्थान, सविकल्प, निर्विकल्प वगैरा सारी अवस्थायें चित्तकी हैं। चित्तके सस्कार या अभ्यास पर ये सब अवस्थायें निर्भर हैं। निर्विकल्प अवस्था चित्तके अभ्यासके अनुसार टिकती है। परन्तु किसी भी प्रकारका कितना ही अभ्यास क्यों न किया जाय, अुन अवस्थाका ज्ञानपूर्वक सारे समय टिका रहना असम्भव है। जैसे 'देखना' अच्छी निरोगी आंखका जाग्रतिकालका धर्म है, अुसी तरह सकल्प-विकल्प करना, विचार आना, चिन्तन चलना भी चित्तका धर्म है। जैसे कितने ही समय तक आंखें बन्द रखनेसे भी अुनका देखनेका स्वाभाविक धर्म नष्ट नहीं होता, वही बात चित्तके लयके बारेमें भी समझनी चाहिये। चित्तको कुछ समयके लिअे लय किया जा सकता है, परन्तु अुसका स्वाभाविक धर्म नष्ट नहीं किया जा सकता। अिसलिअे चित्तकी किसी भी अवस्थाको शाश्वत न समझा जाय, और चित्तकी अवस्थाको ही 'आत्मस्थिति' माननेके भ्रममें नहीं पड़ना चाहिये। किसी भी अवस्थाका आग्रह रखे बिना हमें चित्तस्वाधीनताको प्राप्त करके चित्तवृत्तियोंके प्रवाहको ही शुद्ध करना चाहिये। हमें कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियों द्वारा नित्य और सतत होनेवाले कर्मोंकी शुद्धि करनेका आग्रह रखना चाहिये। और अिस प्रकारके आग्रहपूर्ण दृढ प्रयत्नमें हम

अपनी सब वृत्तियो और नित्यके व्यवहारकी शुद्धि कर सके और अुसके अनुरूप हमारा सहज स्वभाव बन जाय, तो वही हमारी सहज और स्थायी स्थिति रह सकेगी। सदाकी अिसी तरहकी जीवनपद्धतिसे अुसमें कोअी कठिनाअी नही आयेगी और वैसा लगेगा भी नही। अिस प्रकार हम चित्तकी स्वाधीनतासे अुसकी शुद्धि और पुरुषार्थयुक्त जीवन-व्यवहार साध सकेगे। यही मानवताकी सिद्धि है।

निर्विकल्प या अुन्मन अवस्थाकी शोध अैच्छिक बाते हैं। जिसे चित्तकी सभी अवस्थाओकी शोध करनी हो वह अिस अभ्यासकी ओर मुडे। हरअेकको अुस ओर जानेकी जरूरत नही। परन्तु जीवन-शुद्धि और पुरुषार्थ-सिद्धिके लिअे जिस सयमशक्ति और कर्तृत्वशक्तिकी आवश्यकता है, अुसे प्राप्त करनेके लिअे और चित्तकी स्वाधीनता साधनेके लिअे अवश्य हरअेकको पद्धतिपूर्वक किये जानेवाले किसी भी अेक अभ्यासकी आवश्यकता है। शरीर, बुद्धि और मनको हेतुपूर्वक और प्रयत्नपूर्वक शुद्ध और शक्तिमान किये बिना वे अपने आप वैसे नही बन जाते। सत तुकाराम कहते है, "मिराशीचे म्हूण शेत। नाही देत पीक अुगें॥" अर्थात् अिनामी खेत होनेसे ही अुसे बोये बिना, अुसमे मेहनत-मजदूरी किये बिना फसल नही आती। हमारे जीवनका भी यही हाल है। अिन्द्रियदमन करना पडता है, सयम रखना पडता है। समय न गवाकर, किसी भी शक्तिका दुरुपयोग न करके अनेक शक्तियो और सद्‌गुणोसे सम्पन्न होकर अुनका जीवनभर विवेक और ज्ञानपूर्वक तथा सद्‌हेतुसे जाग्रत रहकर सदुपयोग करना पडता है। अिसीमे जीवनकी शुद्धि और सिद्धि है। अिसीमें मानवता है।

* * *

अितना लिखनेके बाद भी अध्यात्मविचारके अेक अत्यन्त महत्त्व-पूर्ण विषयमे कुछ स्पष्टीकरण आवश्यक मालूम होता है। 'आत्मा' यानी 'मै', और 'मै' यानी शरीरका मुख्य तत्त्व, जो शरीरमें

व्याप्त है और जो शरीर, बुद्धि और मन द्वारा ज्ञात-अज्ञात रूपमें होनेवाली प्रत्येक छोटी-बड़ी क्रियाको प्रेरणा देता है। चित्त पर अुठने-वाला स्फुरण, स्पन्द, तरंग, श्वासोच्छ्वासके रूपमें होनेवाली प्राणकी क्रिया वगैरा सब जिसकी प्रेरणाके कारण होता है वह चैतन्य तत्त्व ही 'मैं' है। अिस तत्त्वके कार्य अनेक तरहसे हमेशा चालू रहते हैं। अुनमें कभी खंड, भंग नहीं होता। बचपन, जवानी, बुढ़ापा, जागृति, स्वप्न, सुषुप्ति — अिन सब अवस्थाओंमें जिस प्रकार अुसके कार्य अनुस्यूतरूपमें जारी रहते हैं, अुसी प्रकार चित्तलयके पूर्व, लय-कालमें और अुनके पश्चात् भी अुसके कार्य अखंड रूपसे चलते ही रहते हैं। अुनके कार्योंके लिअे 'कार्य' शब्दका प्रयोग करें तो भी वह यथार्थ नहीं है। क्योंकि अुसके साथ अक्रियताका सम्बन्ध कभी आ ही नहीं सकता। बाहरसे मालूम होनेवाले कार्य-अकार्य, लय, समाधि, व्युत्थान अथवा अवस्थाभेद या परस्पर विरोधी अवस्थायें — अिन सबको प्रेरणा देनेवाला और सबको जाननेवाला वह तत्त्व है। समस्त अिन्द्रियों द्वारा अखंड रूपमें अुसीका प्रकटीकरण होता है। अुनके द्वारा होनेवाले कर्मोंके जरिये अुस चैतन्यका ही प्रकाश बाहर फैलता है। अिनमें से अेकाध अिन्द्रिय द्वारा होनेवाले कार्य बन्द रखनेसे या बन्द हो जानेसे चैतन्यके धर्ममें कोअी फर्क नहीं पड़ता। 'देखना' यह आंख द्वारा होनेवाला कार्य है। आंख बन्द करनेसे जिस प्रकार अुससे द्वारा होनेवाला चैतन्यका प्रकटीकरण अुतने समयके लिअे बन्द हो जाता है, अुसी प्रकार चित्तका लय साधनेसे अुसके द्वारा होनेवाला चैतन्यका प्रकटीकरण अुतने समय तक बन्द रहता है। किन्तु अिससे यह कहना या समझना कि अुस अवस्थामें चैतन्यका विशेष रूपसे बोध होता है या अुस अवस्थामें ही अुसकी प्रतीति हो जाती है, अुस अवस्थाके शोधन और विवेककी दृष्टिसे अुचित मालूम नहीं होता। जब हम स्वयं ही चैतन्य हैं, तो अुस अवस्थामें भी

हमें अपना ही बोध किस प्रकार हो सकता है? अथवा चैतन्यका भिन्न रूपसे बोध होनेके लिअे हममे ही बोध प्राप्त करनेवाला अुस समय दूसरा कौन पैदा होनेवाला है? हमे अपना ही बोध, दर्शन या साक्षात्कार होना सभव नही, अैसा ज्ञानी पुरुषोने अपना अतिम मत प्रकट किया है।

आपणचि आपणापासी, नेणता देशोदेशी।
आपणपे गिंवसी। हे कीरू होये॥ अनुभवामृत ३-२१

हम स्वयं ही 'हम' है, फिर भी अिसे न समझकर यदि अपनेको खोजनेके लिअे देश-परदेश घूमते रहे, तो हम स्वय अपनेको प्राप्त हो सकेगे? अिस प्रकार सत ज्ञानेश्वर पूछते है। वे खुद योगमार्गके सिद्ध होते हुअे भी अिस विषयमें आखिर यह अभिप्राय देते है:

प्रत्याहारादि आगी। योगे आग टेंकिले योगी।
तो जाला अिये मार्गीं। दिहाचा चादु॥ अनु० ९-२६

प्रत्याहारका मार्ग अर्थात् योगमार्ग चिन्मात्रका ज्ञान प्राप्त करानेके विषयमें दिनके चन्द्रमा जैसा है, यानी अुस दृष्टिसे निरुपयोगी है। जो स्वय ही चिन्मात्र है, जो स्वसवेद्य तत्त्व है, अुसे किस साधनसे बताया जाय और किसे बताया जाय? वह समस्त अिन्द्रियो द्वारा सदा प्रकाशमान होता है।

सर्वांगें देंखणा रवी। परि अैसे घडे केवी।
जे अुदोअस्तुचि चवी। स्वये घेपे॥ अनु० ७-१९५

स्वयसिद्ध, सदैव प्रकाशमान और सबको प्रकाश देनेवाला सूर्य अपने अुदय-अस्तका अनुभव कभी कर सकता है?

साठी तिशा दिवसा। माजी अेकादा होय अैसा।
जे सूर्यासीचि सूर्य जैसा। डोळा दावी॥ अनु० ६-७९

वर्षके तीन सौ साठ दिनमें अेक भी अैसा दिन है, जब सूर्य सूर्यको देखेगा या बतायेगा? अिस तरह अनेक ज्ञानी पुरुषोका अिस

विषयमें अंतिम अभिप्राय है। चिन्मात्रकी प्रेरणासे सारे कार्य चलते हैं और अुसे जाननेवाला कोअी भिन्न तत्त्व नहीं। शरीर और विश्वके रूपमें वह सदा प्रकाशमान है। यह अुनका अंतिम सिद्धान्त है।

अिस सब परसे हमें विश्वास हो जाना चाहिये और दृढ़तापूर्वक समझ लेना चाहिये कि विश्वशक्तिमें से अितनी प्रकट दशामें आये हुअे चैतन्यका — चिन्मात्रका अधिकाधिक शुद्ध और स्पष्ट प्रकटीकरण होते रहनेके लिये मानवधर्मकी आवश्यकता है। केवल चिन्मात्रके बोधके लिये कोअी भी साधन अन्त तक अुपयोगी नहीं हो सकता। साधनोंका अुपयोग चित्तशुद्धि, बुद्धिकी सूक्ष्मता, प्रगल्भता और तीक्ष्णता वगैरा बढ़ानेमें हो सकता है। तत्त्वज्ञानके अभ्याससे हमें यह ज्ञान होता है कि बाहरसे जड दिखाअी देने और मालूम होनेवाले शरीर और विश्वमें सर्वत्र चैतन्य तत्त्व कैसे व्याप्त है; अितना ही नहीं, अेक ही चेतन तत्त्वके आधार पर विश्वका प्रसार किस प्रकार प्रतीत होता है और अुसीमें से साक्षात् चैतन्य क्रमशः किस तरह प्रकट होता आया है। अिसी प्रकार हम यह भी समझ सकते हैं कि मनुष्यको प्राप्त हुअी संकल्प-शक्तिकी मददसे वही प्रकटीकरण क्रमसे किन्तु कुछ विशिष्ट गति और नियमसे किस प्रकार अधिकाधिक स्पष्ट दशा प्राप्त करता है। यह सब भलीभांति समझकर जिस 'अहं'के कारण भिन्न द्वैतका हमें आभास होता है, अुसकी दृढ़ता कम होनेके लिये और विश्वके साथ अुसकी समरसता केवल मानने जितनी ही नहीं, बल्कि हमारे अपने दैनिक प्रत्यक्ष आचरणमें आने जितनी साध सकनेके लिये चित्तशुद्धि और सद्गुणोंकी आवश्यकता है। चित्तशुद्धिके लिये यम-नियम, विवेक और संयमशीलताकी आवश्यकता है। मानव-जीवनमें यह वस्तु सिद्ध करनेकी है। अुसे सिद्ध करनेके लिये जिन साधनोंकी जरूरत है, अुन सबका मानवधर्ममें समावेश होता है। अिस दृष्टिसे देखते हुअे साध्य और साधन दोनोंमें ही हमें मानवताका दर्शन होते रहना चाहिये। भक्तिमार्गके विभिन्न प्रकार, योग और ज्ञानमार्गकी

अलग-अलग प्रक्रियायें और विचार-प्रणालिया, कर्मयोगका सारा रहस्य और कौशल (योग कर्मसु कौशलम्) — अिन सबकी मददसे हमे मानवताकी ओर बढते रहना चाहिये। अुसी प्रयत्नमें चैतन्यका अधिकाधिक शुद्ध प्रकटीकरण होता रहेगा। केवल लयावस्था साधनेसे या अुसे अधिक समय लम्बानेसे चिन्मात्रका विशेष बोध नही होगा या मानवताका ध्येय सिद्ध नही होगा। हमे अैसा अनुभव होता है कि मानवताकी वृद्धिमे ही चिन्मात्रका अधिकाधिक प्रकटीकरण होता रहा है। हमारी अिन्द्रियो द्वारा सकल्पपूर्वक होते रहनेवाले कर्मोंसे अुसीका प्रकाश बाहर पडता है। अिस रास्ते पर हम अिसी तरह आगे बढते रहे, तो हमारे शरीर, बुद्धि और मनमे कही भी जडता, अज्ञान या मलिनता नही रहेगी। बादमें हमे सतत यह अनुभव होगा कि अिस सबमें चिन्मात्र ही परम शुद्ध रूपमें प्रकाशित होता है। मानव-जन्म अिस शुद्ध बोधके लिअे है, अिस प्रत्यक्ष अनुभवके लिअे है।

चित्तके अभ्याससे अुसकी विभिन्न भूमिकाओका, अवस्थाओका, अुसी प्रकार वृत्तिके स्पन्दसे लेकर अुसकी तीव्रता, अुसकी परम्परा, अुसका कर्ममें होनेवाला पर्यवसान अथवा अुसका लय आदि सारे भेदोका, अुसके आन्दोलनो और अुन सबकी शान्ति तकका ज्ञान हमें होगा। अुसीमे से अभ्यास द्वारा हमने चित्तकी स्वाधीनता सिद्ध की हो, तो विश्वशक्तिमें से साक्षात् चैतन्य तक आये हुअे और बादमें क्रमश मानव-रूपमें स्पष्ट दशा पाये हुअे अुसी प्रकटीकरणको अधिकाधिक शुद्ध करनेमें अुस स्वाधीनताका हम अुपयोग करते रहेगे। अिस दृष्टिसे सोचने पर लय या समाधि अवस्थाके बनिस्बत अुस अवस्थाके अनुभवका और अुसे पानेमे मिली हुअी शक्तिका मानवताके मार्गमें अुपयोग करते रहना ज्यादा श्रेष्ठ अवस्था है। अभ्यास द्वारा प्राप्त हुअी स्वाधीनता और ज्ञानसे हम अपने 'अह' की शुद्धि कर सके, तो हमारा और विश्वशक्तिका भेद मिट सकेगा। अितना करनेके बाद भी विश्वके अनत भेद तो बने ही रहेगे। क्योकि ये भेद ही विश्वके

बाह्य रूप और लक्षण हैं। वे बने रहें तो भी अुनमें स्वार्थ, अज्ञान, लालसा, महत्त्वाकांक्षा, मद, मत्सर, अहंकार, प्रतिष्ठा और कीर्तिके निरंकुश लोभ वगैराके कारण अूच-नीचके जो अनेक भाव और भेद मनुष्यने निर्माण किये हैं और जो आजके अनर्थोंके मुख्य कारण हैं, अुनका नाश करनेके लिअे आवश्यक समरसता, समभाव हमें अपनेमें और विश्वमें साधना चाहिये। अिसीमें मानवता है। भक्तिका अंतिम लक्ष्य, ज्ञानकी और परमात्माको समर्पण होनेकी परिसीमा, योगकी सिद्धि और कर्मका साफल्य — सब कुछ अिस समभावमें ही आ जाता है। परमात्मा पर निष्ठा रखकर जो कोअी निश्चयपूर्वक अिस ध्येयके पीछे लगेगा, अुसे अवश्य अिस मार्गमें यश मिलेगा।

४

ध्यानाभ्यास-सम्बन्धी कुछ सूचनायें

कुछ कठिनाअियां और पथप्रदर्शककी आवश्यकता

ध्यानमार्गमें चित्तस्वाधीनताका अभ्यास करनेवालेको कुछ सूचनायें देना जरूरी है। यह अभ्यास न बहुत कठिन है, और न बिलकुल आसान ही है। अिसमें सबसे पहली बात यह है कि साधकको अभ्यासके बारेमें अुचित और स्पष्ट समझ होनी चाहिये। दूसरी बात अभ्यासके लिअे निश्चय चाहिये। फिर, अभ्यासका असली अुद्देश्य सदा ध्यानमें रखना चाहिये। ध्यान सधने लगते ही ज्ञान-तन्तुओंमें आनेवाली सूक्ष्मताके कारण जो कुछ रसानुभव होने लगता है, सम्भव है साधक अुसीमें रमता रहे। कभी-कभी अभ्यासमें कुछ गलती हो जानेके कारण ज्ञानतन्तुओंमें विकृति पैदा होती है। अुससे भी साधकको कुछ विलक्षण आभास होने लगते हैं। अैसे समय यदि साधक सावधान हो तो अच्छा; नहीं तो आभासोंकी विलक्षणतासे चकित होकर

गलत अभ्यासको ज्योका त्यो जारी रखता है। अुसे अपनी भूल जल्दी ध्यानमें नही आती। परन्तु जैसे-जैसे वह अपने गलत अभ्यासमें आगे बढता जाता है, वैसे-वैसे अुसे विपरीत आभास होने लगते है। अिससे अुसे अपने गलत अभ्यासका विश्वास हो जाता है। परन्तु तब तक अुसे रोज होनेवाले आभासोकी आदत पड जाती है, अिसलिअे चित्तका विपरीत स्वभाव बन जानेकी भी सभावना रहती है। अुस स्थितिमें अभ्याससे बना हुआ चित्तका स्वभाव और सस्कार वह जल्दी नही बदल सकता। अैसी स्थितिमे अुसके दिमागमें सदाके लिअे बिगाड हो जानेका भी डर रहता है। पागलपन आ जानेके बावजूद अस्खलित रूपमें वेदान्त बोलनेवाले लोग अैसी ही किसी दशामें अुत्पन्न होते है। अिसलिअे जब ज्ञानेन्द्रियोकी सूक्ष्मता बढने लगे, तब साधकको यह भी देखते रहना चाहिये कि अिस विकासके साथ अुनकी शुद्धि भी हो रही है या नही। अुसे समय-समय पर सावधानीसे जाच करनी चाहिये कि अुसे होनेवाले सूक्ष्म अनुभव अुसके ध्येयकी दृष्टिसे अुपयोगी होने जैसे है या नही। जैसे-जैसे ध्यान सधने लगता है, वैसे-वैसे अुसमें से भी अनेक शाखायें निकलती है। अुनमें से कौनसा मार्ग अुसकी जीवन-सिद्धिके लिअे अुपयोगी है, यह साधक अेकदम तय नही कर सकता। अैसे समय यदि अिस मार्गका ज्ञाता मिल जाय, तो अुसकी अेकाध सूचनासे अुस मार्गका ज्ञान हो जाता है और वह नि सशय होकर अुसमें अुत्साह और पूर्ण गतिसे आगे बढ सकता है। अिसके लिअे शुरूमें कुछ समय साधकको पथप्रदर्शककी आवश्यकता होती है। वह ठीक समय पर मिल जाय तो साधकका समय और परिश्रम बच जाता है। वह गलत रास्ते पर नही जाता; और न किसी बीचके अनुभवमें रमकर वही अुलझा रहता है। साधकके सस्कार, अुसकी सयमकी पात्रता, अुसकी निग्रहशक्ति, अुसकी चचलता या निश्चलता, अुसकी परिस्थिति — अिन सबका विचार करके पथ-प्रदर्शक अुसे शुरूमें ही ठीक सूचनायें दे सकता है। अभ्यास प्रारम्भ

करनेसे पहले भी चित्तकी जो विशेष योग्यता आवश्यक है, अुसे प्राप्त करनेका भी वह अुसे अुपाय बता सकता है। बादमें अभ्यास शुरू कर देने पर चित्तको अेक ही केन्द्रमें लानेके लिअे चंचल होकर सब जगह बट जानेवाली चित्तवृत्तिको कैसे रोका जाय, अुन सब जगहोंसे चित्तको हटाकर सोचे हुअे संकल्पमें अेकाग्रता, दृढ़ता और स्थिरता लानेके लिअे प्रसंगोपात्त क्या क्या अुपाय किये जाय, अिसका अनुभवात्मक ज्ञान पथप्रदर्शककी तरफसे मिलता रहे तो साधकका बहुतसा परिश्रम बच जाता है। वह अेकसी गतिसे निःशंक होकर अभ्यासमें आगे बढ़ सकता है और लगनके साथ अपना अभ्यास पूरा कर सकता है। अिस मार्गमें पथप्रदर्शकका अितना ही महत्त्व है।

पथप्रदर्शक और साधककी पात्रता

हमारे समाजमें लम्बे समयसे अैसे पथप्रदर्शकको 'गुरु' के रूपमें बहुत महत्त्व दिया गया है। अिसमें हमने अपने सदाके स्वभावके अनुसार अुसका "गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वर।" आदि आदि अत्युक्तिपूर्ण वर्णन करके अुसे अति अुच्च पदवी तक पहुंचा दिया है। असलमें अैसा करनेकी कुछ भी जरूरत नहीं है। पथप्रदर्शकमें ज्ञान, साधकके हितकी चिंता, योजकता आदि हों; अैसी कोअी भावना न हो कि वह कोअी विशेष सत्कृत्य या परोपकार कर रहा है या खुद बड़ा श्रेष्ठ है, और साधकमें अभ्यासकी लगन, धैर्य, बौद्धिक तेजस्विता, दृढता, शारीरिक पात्रता, विश्वास, कृतज्ञता, निश्चलता, संयमशीलता आदि गुण हों तथा अुतावलापन, जब अेक बार अभ्यास पूरा करके जिससे छुटकारा पाअू अैसी अधीरता, चंचलता आदि दोष न हों, तो वह अभ्यास स्थिरतासे आगे बढ़ जाता है और साधक अपना ध्येय निर्विघ्नतासे प्राप्त कर सकता है। पथप्रदर्शकके अभावमें अनेक कठिनाअियाँ और असुविधाअें आती हैं जिनमें दिशाभूल होना संभव रहता है। जिस तरह पात्रता न होने पर भी कोअी अभ्यास करने लगे, तो

अुसमें भी अुसे असफलता मिलना निश्चित रहता है। अिसमे असफल हुअे साधकके वादमें दंभी हो जानेकी सभावना रहती है।

अिस प्रकारकी कोअी बुराअी पैदा न हो, अिसके लिअे साधकको पहलेसे अपने मनकी जांच कर लेनी चाहिये। यह अच्छी तरह परख लेना चाहिये कि अुसका जीवनहेतु क्या है। साधकको अिसका विचार करना चाहिये कि कही अिसीलिअे तो वह यह अभ्यास नही करना चाहता कि वर्तमान जीवनमे अुसे कोअी विशेषता नही लगती या अुसे कोअी महत्त्व नही देता, अथवा धार्मिक क्षेत्रमें कोअी मान या प्रतिष्ठा मिल जानेकी आशा या महत्त्वाकाक्षा है, अथवा अुसके पास और कोअी कामधधा नही है, या अिस अभ्यासकी सहायतासे वह किसी और वातमे औरो पर अपनी छाप या प्रभाव डाल सकेगा। अुसे यह भी देख लेना चाहिये कि क्या वह कोअी सिद्धि प्राप्त करनेके लिअे अिस अभ्यासमें पड रहा है? जिसे अपने हेतुके वारेमें यह विश्वास हो कि मुझे अभ्यास करके अपनी शुद्धि, चित्तकी स्वाधीनता और स्थिरता ही प्राप्त करनी है, सद्‌गुणोका विकास ही करना है, अुसीको अिस रास्ते लगना चाहिये। भोगकी अपेक्षा सयमकी ओर जिसका स्वाभाविक झुकाव हो, सादगी जिसे स्वाभाविक रूपमें ही प्रिय लगती हो; परिश्रमका जिसे शौक हो; वाह्य रसोके प्रति जिसे सहज अनिच्छा हो; अन्तर्मुखताकी ओर जिसका आकर्षण हो, आत्मपरीक्षण, विवेक, सावधानी, तारतम्य जिसकी हमेशाकी आदते वन गअी हो, जिसमें कृतज्ञता, आस्तिकता, प्रेम, अुदारता, मैत्री, करुणा आदि सद्‌गुणोकी प्रधानता हो, जो पहलेसे ही स्वावलम्वी, दूसरोके सुखमें सुख और दु.खमें दु.ख माननेवाला और नि.स्वार्थ हो, सेवापरायणता जिसका स्वभाव हो; स्वाधीनतामें जिसे समाधान हो—अैसे साधकको योग्य पथप्रदर्शकका लाभ मिल जाय, तो अुसे अपने मार्गमे सिद्धि मिलनेमें अधिक देर नही लगती। जैसे हरअेक विद्या या कलामें पथप्रदर्शककी आवश्यकता होती है, वैसे ही अिस अभ्यासमें भी होती है। अिससे

अधिक और गलत महत्त्व जिस अभ्यासके पथप्रदर्शकको अपना नहीं मानना चाहिये। और जिसे अभ्यासका तथा जीवनका असली रहस्य समझमें आ गया होगा, वह कभी मानेगा भी नहीं। साधक भी अपनी कृतज्ञताको खुशामदका रूप कभी न दे। सेवावृत्तिका गुलामीमें पर्यवसान न होने दे। स्वाधीनतामें परावलम्बनकी ओर न जाय।

चित्तका अभ्यास अधिकतर सूक्ष्म होनेके कारण अुसमें सहज ही कुछ न कुछ गूढ़ता और गहनता तो है ही। परन्तु अुसमें जान-बूझकर अुसका आभास करानेकी जरूरत नहीं। अवश्य ही अभ्यासके बलसे या परम्पराके कारण किसी साधकमें कुछ विशेष शक्तियां आ जाती हैं। जिनमें अिस प्रकारकी शक्ति आ जाती है, वे अभ्यासमें औरोंकी कुछ न कुछ गति करा सकते हैं। अुनके अनुयायी ज्यादा अभ्यास किये बिना भी आसन, प्राणायाम, मुद्रा वगैरा बातें साध सकते हैं। नादश्रवण, नाड़ीस्फुरण, मेरुदंडमें से वेग जारी होना, शरीरमें अलग-अलग स्थान पर कोअी विशेष संवेदना या भान होना, अष्ट सात्त्विक भावोंमें से कुछके लक्षणोंका दिखाअी देना, कभी-कभी मूर्छा आना वगैरा बातें अुन्हें मालूम होने लगती हैं। अिस प्रकारके पथप्रदर्शक किसी शब्दसे, किसी स्पर्शसे, किसी संकेतसे साधकको अिस स्थितिमें पहुंचा देते हैं। परंतु साधक स्वयं प्रयत्नशील और ध्येयके प्रति दृढ़ हो और अुसकी आगे बढ़नेकी गति कायम रहे, तो ही जीवनकी दृष्टिसे अिन सब वस्तुओंके अिष्ट परिणाम होते हैं। नहीं तो थोड़े दिन तक ये बातें होती हैं और बादमें बन्द हो जाती हैं। जीवनकी दृष्टिसे अुनका कोअी अुपयोग नहीं रह जाता।

अभ्यासमें प्रगतिकी निशानी

साधक खुद ही जान सकता है कि अभ्यासमें अुसकी प्रगति हो रही है या नहीं। अभ्यास शुरू करनेसे पहले साधक जो क्रम और नियम शुरू करे और जो अभ्यासमें भी जारी रहे, अुनमें संयम और स्वाधीनता मुख्य तत्त्व होने चाहियें। ब्रह्मचर्यका महत्त्व साधकको मालूम होगा ही। अिसलिअे अिस बारेमें कुछ विशेष जोर देकर

कहने या सुझानेकी जरूरत नही है। परतु अिन सब बातोमे हमारी अुन्नतिकी सच्ची निशानी यह है कि अभ्यासके साथ-साथ किसी भी व्रत, नियम या संयमपालनकी कठिनता अपने आप कम होती जानी चाहिये। तभी यह समझा जाय कि हमारा अभ्यास अच्छी तरह चल रहा है और हम अुन्नतिकी तरफ जा रहे है। व्रतका व्रतपन, नियमकी कडाअी और सयमका निग्रह अपने आप मिटकर ये सब चीजें हमारा सहज जीवन बन जानी चाहियें। और अभ्यासके बाद वे हमारे सारे जीवनमें समा जानी चाहियें। साधकके जो नियम है वही सिद्धका स्वभाव है या सिद्धका जो व्यवहार है वही साधकका धर्म है। जिसका अेकको प्रयत्नपूर्वक आचरण करना पडता है, वह दूसरेका स्वाभाविक जीवन बन जाता है। परतु अेक बार स्वीकार किये हुअे व्रत, बनाये हुअे नियम और पाले हुअे सयमसे कभी पीछे न हटना चाहिये। अिस बारेमें साधककी गति आगे ही आगे बढनी चाहिये और तमाम सद्‌गुणोका स्वाधीनतामें, सतोपमे, प्रसन्नतामें और कृत-कृत्यतामे पर्यवसान होना चाहिये। ये सब बातें साधकको शुरूसे ध्यानमे रखनी चाहिये। तभी अभ्यासमे और अभ्यासके बाद जीवनमें अुसे कभी भ्रम या गलतफहमी होनेका डर नही रहेगा।

परमात्माके चिन्तनकी आवश्यकता

अभ्यास-सबधी अिन सूचनाओ और अुनके अन्तिम लक्ष्यके बारेमें अिस अुल्लेखसे किसीको निराश होने या अिसके लिअे वह अपात्र है, अैसा माननेकी जरूरत नहीं। जो कोअी भी अपनी शक्तिके अनुसार अिस मामलेमें जितना प्रयत्न करेगा, अुसे अुतना लाभ हुअे बिना नही रहेगा। यह बात निश्चित है कि चित्त जितना स्वाधीन होगा मनुष्य अुतना ही सुखी होगा। अिसलिअे प्रत्येक मनुष्यको शात और अनुकूल समय पर रोज अन्तर्मुख होकर चित्तको स्थिर और शुद्ध करनेका प्रयत्न करना चाहिये। हमारे यहा प्राचीन कालसे सध्या, प्राणायाम, पूजन, नामस्मरण

आदिकी जो प्रथा है अुसका यही हेतु है। किसी भी अुपायसे मनुष्यको अपना चित्त स्थिर और शुद्ध करना जरूरी है। दिनभर काम करके मनुष्यका शरीर और मन थक जाता है। दोनोको आरामकी जरूरत होती है। रोज नीदसे अुन्हे आराम मिलता है, परंतु वह काफी नही होता। आजकल रक्तका दवाव बढ जानेसे अथवा हृदयकी क्रिया बन्द पड़ जानेसे आकस्मिक मौत हो जानेकी कअी घटनाअें होती है। अिसके कारणो पर विचार करनेसे मालूम होता है कि द्रव्यलोभ, स्वार्थ, सुखोपभोग, महत्त्वाकाक्षा और जीवन-सग्राममें मनुष्यकी शक्ति आजकल अितनी अधिक खर्च हो जाती है कि अुसकी पूर्ति रोजकी रोज नही हो पाती। अनेक कारणोंने ज्ञानतंतुओं पर पडनेवाला दवाव कम करनेके लिअे कोअी अुपाय नही किया जाता। अीश्वर पर निष्ठा न होनेसे और सारी चिन्ता तथा कर्तृत्वका भार मनुष्य द्वारा अपने ही अूपर ले लेनेसे वह दिन-दिन अुसके लिअे असह्य होता जाता है। रवरमें स्थितिस्थापकताका गुण है। परंतु अुस रवरको यदि सदा तना हुआ ही रखें, तो अुसका वह गुण नष्ट हो जाता है। परन्तु थोड़े समय तना हुआ और थोड़े समय बिलकुल बिना तना रखा जाय, तो अुसका वह गुण लवे काल तक टिक सकता है। हमारे ज्ञानतंतुओंकी भी किसी हद तक यही स्थिति है। दिनके कुछ समय तक अुन पर तनाव पडता रहे, तो भी यदि मनुष्य रोज नियमित रूपसे अुनका तनाव बिलकुल मिटा देनेकी बात साध ले, तो अूपर बताअी हुअी दुर्घटनाओके अवसर कम हो सकते है। हरअेक धर्ममें परमात्माका चिन्तन करनेके बारेमें, सर्व-भावसे अुसकी शरण जानेके बारेमें, तथा अपने कर्तृत्व और चिन्ताका भार निरहकारतासे छोड़ कर सारा कर्तृत्व अुसीको सौंप देनेके बारेमें आदेश और अुपदेश दिया गया है। प्रार्थना, सन्ध्या, ध्यान, चिन्तन, और नमाजके लिअे दिनका कुछ निश्चित समय तय कर दिया गया है। यदि मनुष्य हर रोज अितने समय भी अपना अहकार और

स्वार्थ छोडकर स्थिर चित्तसे परमेश्वरका चिन्तन करे, सारा भार अुस पर डालकर स्वय अुससे छूट जाय, और लोभ, अुपभोग तथा चिन्ताको अुतने समयके लिअे छोड दे, तो अुसके ज्ञानततुओकी शक्ति थोडी-बहुत जरूर बनी रहेगी। परतु अैसा कोअी भी अुपाय न करके यदि आजकी तरह ही सतत तनाव पडते रहनेकी स्थिति बनी रही, तो मनुष्य अुस ओरसे भी अधिक अभागा बनता जायगा। अिसलिअे प्रत्येक मनुष्यको चिन्तन, ध्यान आदिका नित्य अभ्यास करके अपना चित्त थोडा स्वाधीन रखने, अपने ज्ञानततुओको आराम देने और रोज नअी शक्ति प्राप्त करनेका प्रयत्न अवश्य ही चालू रखना चाहिये। अिसमे अुसका निश्चित कल्याण है।

५

रूपध्यानकी मीमांसा

प्रश्न — जिसके मन पर किसी साकार देवताकी भक्तिका पूर्वसस्कार नही है या पहले था और बादमें श्रद्धा अुठ गअी है, परतु जिसे रूपध्यानकी आवश्यकता मालूम होती है और यह भी लगता है कि वहा भक्तिपूर्वक मन लगे तो अच्छा हो, अुसे कौनसा और किस तरहसे देवता पसन्द करना चाहिये?

सत्योपासनामें साकार पर रही श्रद्धाकी मर्यादा

अुत्तर — जिस पर साकार देवताके प्रति श्रद्धाका पूर्वसस्कार नही है, अुसे बुद्धिपूर्वक साकार ध्यानके प्रयत्नमे पडनेकी जरूरत नही है। अिसी तरह जिसकी श्रद्धा साकार देवता परसे अुठ गअी है, अुसे भी फिरसे वह श्रद्धा पैदा करनेकी कोशिश नही करनी चाहिये। देवताके साकार स्वरूप पर श्रद्धा हो, तो अुसका अुपयोग अेक हद तक ध्यानके अभ्यासमें हो सकता है।

साकार भक्तिमार्गी साधकका ध्येय अपने अिष्टदेवका दर्शन करना होता है। अिसलिअे वह प्रारम्भसे ही स्वाभाविक रूपमें बाह्य ध्यानाभ्याससे मूर्तिका रूप चित्तमे जमाने और अुसमें तन्मय रहनेका प्रयत्न करता है। जैसे-जैसे अभ्यासमे गति होती जाती है, वैसे-वैसे वह अुसी मूर्तिके अन्तर्ध्यान पर आने लगता है। अन्तर्ध्यानमे भी पहले स्थूल रूपको धारण करके रहनेवाला साधक धीरे-धीरे सूक्ष्म स्वरूप पर और अुससे आगे क्रमशः भाव, गुण, धर्म और प्रसन्नता पर आता है, और फिर आगे अन्तमे केवल शाश्वत चैतन्यकी ओर अपने अभ्यास द्वारा जाता है। अभ्यासके साथ ही अुसके मनमे तात्त्विक विचारणा चलती रहे, अनुभवोका परीक्षण जारी रहे, तो साधककी वृत्ति साकारमे से धीरे-धीरे कम होती जाती है। पूर्वकल्पनाअें नष्ट होती जाती है और साथ ही अुसके प्रति श्रद्धा भी मिटती जाती है। कुछ साधक कुशाग्र बुद्धिके और विवेकयुक्त होते हुअे भी केवल परम्पराको न टूटने देने और चली आ रही श्रद्धाको न डिगने देनेके लिअे सत्यज्ञानके सामने न टिकनेवाली अपनी पुरानी गलत श्रद्धाको भी चित्तमें जान-बूझकर दृढ रखनेका प्रयत्न करते है। परन्तु अैसी स्थितिमे भी अुन्हें अपने अनुभवो और प्रतीतियोंकी पहलेसे ज्यादा कसकर परीक्षा करना आ जाय, जिस श्रद्धाको वे प्रयत्नपूर्वक कायम रख रहे है अुनके गर्भमे कितनी ही कल्पनाअें भरी है अिसका बढ़ते जानेवाले विवेकके प्रखर तेजमें अुन्हें दर्शन हो जाय, और केवल सत्यकी ही खोज और अुसीकी अुपासना करने और अुसके लिअे सर्वस्वका त्याग करनेका धैर्य अुन्हें प्राप्त हो जाय, तो साकारके प्रति अुनकी श्रद्धा भी अुठे बिना नहीं रहती। अिसलिअे पहलेसे ही जिनमें साकार देवताके प्रति श्रद्धाका संस्कार नहीं है या जिनकी श्रद्धा अुन परसे अुठ गयी है, अैसे लोगोंको अिस प्रकारकी श्रद्धा निर्माण करनेके प्रयत्नमें पड़नेकी जरूरत नहीं है।

सत्यज्ञानके अभावमें नये साकार और संप्रदायका अुद्भव

साकारके प्रति अेक वार श्रद्धाका नष्ट हो जाना और फिर अुसीकी भक्तिमे लगनेकी अिच्छा होना — ये दोनो चीजें मुझे परस्पर विसगत लगती है। परतु यदि साकारके प्रति रही श्रद्धा विवेकपूर्वक और ज्ञानपूर्वक सहज क्रममे न अुठ गअी हो और केवल तर्कवादके परिणाम-स्वरूप सशयग्रस्त हो जानेके कारण टूट गअी हो या डावाडोल हो गअी हो और मिट गअी जैसी लगती हो, तो अैसी वृत्ति पैदा हो सकती है कि वह फिर जम जाय तो अच्छा। वरना, जो चीज, जो मान्यता या कल्पना अेक वार हमारे चित्तसे ज्ञानपूर्वक विलीन हो जाय, अुसकी अिच्छा फिरसे नही हो सकती। किसी सस्कारका नाश ज्ञानपूर्वक न हुआ हो, तो अुसका किसी कारणसे फिर जाग्रत होना सभव होता है। क्योकि परम्परागत और जन्मसे पैदा हुअी साकारके प्रति श्रद्धा और भक्तिभावके सस्कारोसे चित्तमें अष्ट सात्त्विक भाव पैदा होते है और अुससे साधकको अेक प्रकारका आनन्द होता है। सगति, सतत चिन्तन अित्यादि अनेक साधनोसे सारे जीवन अुसी भक्तिभावका पोषण होते रहनेसे श्रद्धायुक्त चित्तको प्रेम और आनन्दका जो अनुभव होता है, वैसा अनुभव वुद्धिवादसे श्रद्धा अुठ जानेके वाद नही हो सकता। यह जाननेके वाद कि कोअी वस्तु कल्पित या मिथ्या है, अुससे होनेवाला आनन्द स्वाभाविक तौर पर ही चला जाता है। अितने पर भी प्रेम और आनन्दकी अिच्छा और अुनका अुपभोग करते रहनेकी मनको पडी हुअी आदत केवल वुद्धिवाद या ज्ञानसे नष्ट नही हो जाती। अैसी स्थितिके साधकको प्रेम और आनन्दके विना जीवनमें नीरसता मालूम होने लगती है। केवल वुद्धिसे समझे हुअे सत्यके स्वरूपका या ज्ञानका आनन्द साधक नही ले सकता, अिसलिअे अुसके चित्तमें वार-वार पूर्वसस्कारके प्रेम और आनन्दकी

अिच्छा पैदा होती है। अिस स्थितिमें पूर्वश्रद्धा अुठ जानेके बाद भी साधकको अैसी अिच्छा होनेकी संभावना रहती है कि फिर किसी न किसीकी भक्ति की जाय। जिस साधककी साकारके प्रति श्रद्धा अैसे ही किसी कारणसे अुठ गयी हो, वह जिसके अुपदेशसे श्रद्धा अुठी हो अुसे यानी अपने माने हुअे गुरुको ही सर्वस्व समझकर, अुसीको प्रत्यक्ष साकार देवता मानकर अुससे अपनी भावनाओंकी तृप्ति खोजने लगता है और अुसमें से प्रेम और आनन्द लेने लगता है। अिस प्रकारके थोड़ेसे साधक अथवा थोड़ेसे सुधरे हुअे लगनेवाले भावुक अिकट्ठे हुअे कि अुसीमें से सम्प्रदाय बन जाता है। शरीरके सब तरह अच्छा, निर्दोष और स्वाधीन होते हुअे भी मनुष्यको अपने मनुष्यत्वकी रक्षा करके जीवन-व्यवहार चलानेके लिअे जिस प्रकारके अुपचार या पूजन-अर्चन करानेकी जरूरत नहीं होती, अुस प्रकारके पूजन-अर्चन आदि अुपचारों द्वारा गुरुकी सेवा करनेकी प्रथा ये साधक डालते हैं। अुनमें प्रेम, आनन्द, भावतृप्ति आदि प्राप्त करने लगते हैं। और गुरुका देहान्त होने पर अुसी भावतृप्तिके साधन और अधिष्ठानके रूपमें अुसकी मूर्ति, पादुकाअें या समाधि स्थापित करके या बना कर वहां वही अुपचार शुरू कर देते हैं और अुनमें प्रेम और आनन्द लेनेका प्रयत्न करते हैं। लेकिन ये सब चीजें अुनकी प्रगतिमें बाधक बन जाती हैं। पहले छोड़े हुअे आचारोंको वे फिर दूसरे ढंगसे स्वीकार करते हैं। छोड़े हुअे अुपचार और क्रियाकर्म फिर जारी करते हैं। भक्त और अनुयायी जितने व्यवहारकुशल होते हैं, अुतना ही सम्प्रदायका प्रचार होता है। परन्तु अुससे साधकों, अनुयायियों या समाजका कुछ भी कल्याण नहीं होता। पुराने चले आ रहे अनेक देवताओंमें केवल अेकाध और वृद्धि हो जाती है, समाजमें अेक नये सम्प्रदायकी सृष्टि हो जाती है। निराकार भक्तिमार्गका गुरु स्वयं ही साकार देवता बन जाता है और अुसके बाद अुसकी प्रतिमाओं और अुसकी गादी की हुअी

चीजोको देवत्व प्राप्त हो जाता है और वे पूजी जाने लगती है। अिस पर विचार करनेसे मालूम होता है कि जब तक सत्यज्ञान होता या पचता नही, तब तक क्या व्यक्ति और क्या समाज, पहला बाह्य निमित्त वदल दे तो भी दूसरा स्वीकार करके पहलेकी ही मनोदशामें वापस आ जाता है और असी वैयक्तिक तथा काल्पनिक आनन्दके क्षेत्रमें रमा रहता है। अिस सारी रचनामे केवल बाह्य साधन ही वदलता है; परतु असे व्यक्ति या समाज किसीकी प्रगति नही होती।

अेकाग्र वृत्तिके लिअे प्रतीक

परतु अिस प्रकारके साधको तथा अिस प्रकारकी श्रद्धाकी दृष्टिको छोड दे, तो भी जो साधक अेकदम सूक्ष्म अन्तर्ध्यान पर नही जा सकते और किसी अिन्द्रियग्राह्य बाह्य वस्तुकी धारणाके विना चित्तको अेकाग्र नही बना सकते, अुनके लिअे पहले बाह्य त्राटक — जैसे कि नीलवर्ण गोलाकृति, दीपककी ज्योति, अग्नि, तारा, आकाश अथवा नासिकाग्र दृष्टि आदि साधन अुपयोगी हो सकते है। नाम-जप, प्रणव और श्वासोच्छ्वासका भी अेकाग्रताके लिअे अुपयोग हो सकता है। अभ्याससे अेक बार अेकाग्रता सिद्ध होनेके बाद बाह्य साधन बदल दिये जाय, तो भी अेकाग्रता सिद्ध करनेमें मुश्किल नही होती। साधन जितना सूक्ष्म लिया जाता है, अुतना ही साधक सिद्धिकी दिशामें जल्दी जाता है। पहले स्थूल साधन लिया हो तो भी ज्यो-ज्यो वृत्ति अेकाग होती जाती है, त्यो-त्यो अुसमें सूक्ष्मता और स्थिरता आती जाती है। वृत्तिकी सूक्ष्मतामें बाह्य स्थूल विषय नही टिक सकते। वे अपने आप यानी किसी विशेष प्रयत्नके विना नष्ट हो जाते है। सूक्ष्म वृत्तिमे ध्यानका विषय भी सूक्ष्म हो जाता है। अिसलिअे अभ्यासका आरभ किसी भी ढगसे हुआ हो, साधक क्रमश. अधिकाधिक सूक्ष्मतामें चला ही जाता है।

शुद्ध सत्त्वगुणका अुदय

ध्यानाभ्यासमें हमें साकारकी जो आवश्यकता प्रतीत होती है, वह अिसीलिअे कि हम अुस प्रकारके संस्कारोंमें पले हैं। हमें अैसा लगता है कि अेक देवताको छोड दें तो कोअी दूसरा देवता होना ही चाहिये। अिसीलिअे चुनावका प्रश्न अुठता है। परंतु मुझे लगता है कि देवताके प्रति हममें रहनेवाला भक्तिभाव सामान्य तौर पर हममें परम्परासे चला आया है। हमें जो गुण प्रिय लगते हैं, जो थोडे बहुत अंशमें हममें होते हैं, अुन गुणोंका अुत्कर्ष हमारे खयालमें जिन विभूतियोंमें हुआ था, अुनके चिन्तनसे, मननसे और अुनके चरित्रका विचार करनेसे हमारी अुन्नति शीघ्र गतिसे हो सकती है। सद्गुण-संपन्न विभूतियोंके चिन्तनके अभ्यासके साथ ही गुण-ग्रहणका भी हमारा प्रयत्न हो, तो ही यह कहा जा सकता है कि अभ्यास ठीक ढंगसे हो रहा है। अैसे अभ्याससे ही शुद्ध सत्त्वगुणका अुदय तथा अुत्कर्ष हो सकता है। परन्तु अिस तरहसे अभ्यास करनेवाले साधक विरले ही पाये जाते हैं। देवता-संबंधी हमारी श्रद्धा परम्परानुसार ही चली आ रही है। जन्मसे या अुससे भी पूर्व हमें जिस प्रकारके संस्कार मिलते हैं, अैसे विषयोंमें हम ज्यादातर अुन्हींके अनुसार चलते हैं। परम्परासे बाहर निकलकर विवेकसे अपना रास्ता निकालनेवाले विरले ही होते हैं। बहुजन-समाज परंपरागत श्रद्धाके अनुसार ही चलता रहता है।

ध्येयको समझ लेनेकी आवश्यकता

अिस समय हम अभ्यासी साधकका विचार कर रहे हैं, अिसलिअे बहुजन-समाजका विचार अलग रखा है। जो यह चाहते हैं कि भ्रम या झूठी कल्पनाओंमें न पडते हुअे अुनका अभ्यास और साधनाका मार्ग सरल निर्विघ्नतासे पूरा हो, जिनकी यह अिच्छा हो कि अिस मार्गमें अुनका समय और शक्ति बेकार बरबाद न हो और सारी शक्ति अुचित

रूपमे काममे आये, अुन्हे पहले अच्छी तरह सोच-समझ लेना चाहिये कि अुनके जीवनका असली ध्येय क्या है और अुसे पूरा करनेके लिअे किन साधनोकी कितनी और किस प्रकारकी आवश्यकता है। अीश्वर-परमेश्वर, आत्मा-परमात्मा, जीव-शिव, साकार-निराकार, सगुण-निर्गुण, ब्रह्म-परब्रह्म, अवतार, चमत्कार, भक्ति, मुक्ति, ज्ञान, योग, कर्म, धर्म, नीति, कर्तव्य, लोक, परलोक आदि विषयोका यथासभव व्यवस्थित बौद्धिक ज्ञान अुन्हे पहले प्राप्त कर लेना चाहिये। सबसे महत्त्वकी बात यह है कि वे अपनी विवेकशक्ति बढायें और फिर सबमें से विवेकपूर्वक अपना मार्ग निकाले। अुचित विवेकदृष्टि आ जाने पर अुनकी मान्यताओमे, भक्तिमे, सस्कारोमे, ज्ञानमे, परम्परामे, साधनामें जो कुछ भ्रमात्मक होगा, काल्पनिक होगा, जो जीवनके ध्येयसे कुछ भी सबध न रखनेवाला होगा, वह सब नष्ट हो जायगा। अुनका मार्ग स्पष्ट हो जायगा। अपना मार्ग कष्टप्रद हो तो अुसकी चिन्ता नही होनी चाहिये, परतु वह भ्रमयुक्त न होना चाहिये। ध्येय आकर्षक न हो तो भी हर्ज नही, परतु वह काल्पनिक नही होना चाहिये। अिसलिअे ये सारी चीजे समझमे आने और गले अुतरनेके लिअे साधकको पहलेसे ही विवेकी बनना चाहिये। जिससे भ्रम पैदा हो अैसा साधन अुसे नही अपनाना चाहिये। साधकका अिस विषयमें अैसा आग्रह होना चाहिये कि वह जिस साधनका आचरण करे वह तथा अुससे होनेवाले परिणाम अैसे होने चाहिये, जो जीवनमें हमेशा अुपयोगी हो और जीवनका हेतु सिद्ध करनेमे अत्यत आवश्यक और सहायक हो।

६

अेकाग्र वृत्तिका प्रयोजन

प्रश्न — किसी हेतुको सिद्ध करनेके अुद्देश्यसे — जैसे किसी यंत्र या औषधिके आविष्कारके लिअे — कोअी आदमी अुस काममें तल्लीन हो जाय, रात-दिन अुसके पीछे पड़ा रहे, अुसीका विचार करे, अुसीके प्रयोग करे, अुसके सिवाय अुसे और कुछ न सूझे, अैसा करते हुअे कभी-कभी खाना-पीना और सोना तक भूल जाय। तो अैसी अेकाग्रता और आसनबद्ध होकर किसी ध्येयकी धारणा करके अुस पर अेकाग्र होनेका ध्यानाभ्यास, अिन दोनोंमें क्या फर्क है और दोनोंमें से हरअेकका क्या महत्त्व है?

अेकाग्र वृत्तिका हेतु

अुत्तर — चित्तवृत्तिको केवल अेकाग्र करना आ जाय, यही हमारा ध्येय हो तो आपका सवाल जरूर पैदा होता है। परन्तु जहां हरअेक चीजका जीवनकी शुद्धिके खयालसे विचार करना हो, वहां सिर्फ अेकाग्रताको महत्त्व देनेसे काम नहीं चलेगा। मुख्य और महत्त्वकी बात यह है कि शोधक या साधक किस हेतुसे चित्तको अेकाग्र कर रहा है। हेतुकी शुद्धि-अशुद्धि, परार्थ या स्वार्थ, अुस हेतुके सिद्ध होनेसे अपने पर और समाज पर होनेवाले अच्छे-बुरे परिणाम, हेतु-सिद्धिके लिअे अुपयोग या आचरणमें लाये गये साधनोंकी शुद्धि-अशुद्धि आदि बातोंसे ठहराना होगा कि किस प्रकारके प्रयत्न अथवा ध्यानाभ्यासका जीवनकी दृष्टिसे क्या महत्त्व है। भौतिक खोजके पीछे पड़ा हुआ मनुष्य कुछ समयके लिअे भूख, प्यास, नींद वगैरा भूल जाता है, अिसमें अुसकी कोअी विशेषता नहीं है। अुस खोजके पीछे यदि [illegible] हेतु हो, तो अुस हेतुकी

विशेषता है। अिसलिअे यह देखना चाहिये कि खोजके पीछे कोअी दुखनिवारणका हेतु है या स्वार्थका। दूसरोके दुख, अज्ञान, असुविधा आदि कम करनेके ही हेतुसे कोअी आदमी किसी खोजके पीछे पडा हो और अुस प्रयत्नमे अेकाग्र होकर वह भूख-प्यास भी भूल जाय, तो यह कहा जा सकता है कि अुसे जीवनकी दृष्टिसे अुतनी सात्त्विकताका लाभ हुआ और दूसरोके दुख, अज्ञान, असुविधा आदि थोडे कम हुअे। अिसलिअे केवल तदाकारता, तन्मयता या अेकाग्रता महत्त्वकी चीज नही है। मनुष्य जब किसी विषयके पीछे अत्यन्त अुत्कण्ठासे पडता है, तब अुसमे कुछ समयके लिअे अपने आप तन्मयता आ जाती है। चित्त जब किसी भी विषयकी तरफ बहुत ज्यादा खिचता है, तब हमेशा कुदरती तौर पर अिन्द्रियो द्वारा बिखर जानेवाली हमारी सारी शक्ति अेक ही वृत्तिमे केन्द्रित होकर कुछ समयके लिअे अिष्ट विषयके साथ तदाकार हो जाती है। मछली पकडनेके लिअे बगुलेको, चूहा पकडनेके लिअे बिल्लीको या अैसे ही प्रयत्नमें लगे हुअे दूसरे जानवरोको अपने-अपने प्रयत्नमें कितने ही समय तक अेकाग्र होना पडता है। जगलमे शिकारके पीछे पडा हुआ शिकारी भूख, प्यास, नीद, रास्ता, दिशा, समय अित्यादि सब कुछ भूल जाता है। वह अपने विषयके साथ अितना तन्मय हो जाता है कि तमाम अिन्द्रियोके स्वाभाविक धर्मोका — श्वासोच्छ्वास तकका भी — अुसे कभी-कभी थोडा-बहुत निरोध करना पडता है। गाने-बजाने और अैश-आराम आदिमे भी मनुष्यको कितनी ही बातोका विस्मरण हो जाता है और अुसीमे अुसको तन्मयता प्राप्त हो जाती है।

अिसी तरह भौतिक आविष्कारोंके पीछे पडा हुआ आदमी कुछ समय तन्मय हो जाता हो, तो अुसका हेतु यह नही होता कि अुसीमे तन्मय होकर रह जाय। परतु खोज ही अुसका अुतने समयके लिअे हेतु बन जाता है। वह हेतु सिद्ध करनेके प्रयत्नमें बीच बीचमे

होनेवाली तन्मयता अुस शोधके मार्गमें अपने आप आनेवाली अवस्था है। अिसके सिवाय, अूपर अूपरसे खोज ही अुसका मुख्य अुद्देश्य दिखाअी देने पर भी यह समझना अुचित होगा कि अुस खोजकी जड़में अुसका जो निजी हेतु हो वही अुन तमाम प्रयत्नोंका असली हेतु है और वही अुसकी असली सफलता है। अुस खोजके द्वारा दुनियाका कुछ न कुछ दुःख कम करनेका प्रयत्न करना, अथवा ज्ञान, धन, मान, कीर्ति आदि प्राप्त करना — अिनमें से जो भी अुसका मुख्य हेतु होगा, अुसी पर अुस शोधककी नैतिक पात्रताका आधार रहेगा। केवल तन्मयता या अेकाग्रता साध्य वस्तु नहीं है। क्योंकि अेकाग्रता तो नित्यके अनेक कामों या धंधोंमें मनुष्यको साधनी ही पड़ती है। अुस प्रत्येक कर्मके पीछे साधी जानेवाली अेकाग्रता मनुष्यको कल्याणके मार्ग पर ही ले जाती है, अैसा कोअी नियम नहीं है। अिसलिअे यह देखना चाहिये कि अेकाग्रताके पीछे मूल हेतु क्या है। हमारा हेतु हमें और समाजको कल्याणके मार्गमें ले जानेमें सहायक होना चाहिये। अिसी तरह हमारे हेतुके लिअे जो साधन और विचारसरणी हम काममें लें अुनका खुद हम पर और समाज पर शुभ परिणाम होगा, अिसका हमें विश्वास होना चाहिये।

जीवनव्यापी लाभ

ध्यानधारणाके अभ्यासमें अेकाग्रता और तन्मयताका महत्त्व अधिक है। अितने पर भी यह देखना आवश्यक है कि अुसमें भी अभ्यासके पीछे साधकका हेतु क्या है। गीतामें यज्ञ, दान, तप, कर्म आदिके जो सात्त्विक, राजस और तामस भेद बताये हैं वे यहां विचार करने योग्य हैं। भौतिक आविष्कारोंके पीछे पड़नेसे कुछ समयके लिअे अन्तर तृप्ति हो जाय तो भी क्या हुआ, अथवा आसनबद्ध होकर गहन अेकाग्रता सिद्ध कर ले तो भी क्या हुआ। दोनोंके पीछे जीवनका हेतु क्या है, यह देखे बिना अुन प्रयत्नोंकी श्रेष्ठता या कनिष्ठता नहीं ठहराअी जा सकती। ध्यानधारणामें भी सात्त्विक

मनमे अगर कोअी वैषयिक सकामता हो, धन, मान, कीर्ति. प्रतिष्ठा या और कोअी व्यक्तिगत अैहिक हेतु हो, तो वह ध्यान-धारणा जीवनशुद्धिकी दृष्टिसे अूचे दर्जेकी नही मानी जायगी। जीवनशुद्धिके लिअे की जानेवाली ध्यानधारणामे अेकाग्रता, तन्मयता या अेकविधताका जो महत्त्व है, वह चचलतासे सब तरफ फैलकर बहुशाखामय बनी हुअी चित्तवृत्तियोका अेकीकरण करके अुन्हे अेक पवित्र सकल्पमे केन्द्रित करनेके अभ्यासकी दृष्टिसे है। अिस अभ्यासके बीच जो पवित्र सकल्पबल निर्माण होता है, वह साधकके तमाम विचार, आचार और समग्र जीवन पर पवित्रताके सस्कार डालता है और समस्त जीवनको पवित्र तथा अुन्नत बनाता है। अिसमे यदि अूपर अूपरसे किसी पवित्र सकल्प पर चित्तको अेकाग्र और स्थिर करनेकी ही बात दिखाअी देती हो, तो भी चित्तके विकासकी दृष्टिसे अुसके अनेक कल्याणकारी परिणाम साधकको प्राप्त होते है। स्थिरता, दृढता, निश्चलता, तेजस्विता, अशुद्ध वृत्तियोका क्षय, शुद्ध वृत्तियोका अुदय और अुत्कर्ष, शारीरिक निर्मलता, बौद्धिक कुशाग्रता, विवेक, सद्गुणोकी रुचि, मानसिक पवित्रता, सयम, धैर्य, निरहकारिता वगैरा लाभ अिस अभ्यासके द्वारा साधकको प्राप्त होते है। और ये लाभ केवल अभ्यासकालके लिअे ही नही, परतु जीवन भर टिकनेवाले है। जीवनशुद्धिके हेतुसे की जानेवाली ध्यानधारणाकी शुरुआत ही यम-नियम और सदाचारके पालनसे होती है। जीवनशुद्धिके प्रयत्नमें सदाचारको जितना महत्त्व दिया जाता है अुतना ही भौतिक खोजके मार्गमें भी दिया जाता है, सो बात नही। भौतिक खोजकी तीव्र जिज्ञासा और अुत्कण्ठाके कालमे शोधकमें अपने आप जो सयम आ जाता हो सो सही। परतु वह सयम जीवन भर टिका रहना चाहिये, अैसी अिच्छा अुसके मनमे होनेका कारण नही दीखता। जीवनशुद्धिके मार्गमें जो साधन काममें लाये जाते है, अुनके लिअे साधककी यह

अिच्छा होती है कि अुनसे निर्माण होनेवाले सद्गुण अुसका स्वभाव बन जायं। जैसे भौतिक खोजमें लगे हुअे अभ्यासीको अपनी खोजके विषयके साथ-साथ अुस विषयसे संबंध रखनेवाले अन्य विषयों, वस्तुओं, द्रव्यों, अुनके अणु-परमाणुओंके गुणधर्मों और अुनकी शक्तिका ज्ञान होता है, अुसी तरह जीवनशुद्धिके अुद्देश्यसे अेकाग्रताका अभ्यास करनेवाले साधकको भी चित्तके ज्ञानके साथ ही अनेक स्थूल, सूक्ष्म, सूक्ष्मतर वृत्तियों और अिन्द्रियोंके प्रत्येक गुणधर्मका ज्ञान होता है। शोधन, निरीक्षण, परीक्षण, आकलन आदि ज्ञान-प्राप्तिके अनेक अंगोंका अुसमें विकास होता है। अपनी वृत्तियों, अिच्छाओं और वासनाओंको रोकनेकी शक्ति बढ़ती है। मानव-जीवनकी शुद्धि और विकासकी दृष्टिसे ये बातें और ये लाभ अत्यंत महत्त्वके हैं। अिस अभ्यासमें औषधि जैसी कोअी बाह्य खोज नहीं करनी होती, परंतु अपनी ही शुद्धि करनी होती है। साधकको अपना चित्त अैसा बनाना होता है कि किसी भी विकट अवसर पर वह विचलित न हो। साधकको अैसी अलिप्तता प्राप्त करनी होती है कि वह राग, द्वेष, भय, क्रोधसे सदा मुक्त रह सके। यम-नियमके पालनसे पवित्र और सद्गुण-सम्पन्न होनेवाले चित्तको ध्यानधारणाके अभ्याससे तथा आत्मनिरीक्षण और परीक्षणसे अधिकाधिक पवित्र, दृढ़, संयमी और ज्ञान-संपन्न करके अपनी जीवनशुद्धि करनेका अुसका यह प्रयोग या प्रयत्न होता है। खोजी भी बाहरी प्रयोग करते समय अुसमें होनेवाली अेकाग्र वृत्तिकी या अुन प्रयोगकी सफलतासे जो व्यक्तिगत या सामाजिक लाभ होना संभव हो, अुसकी तुलना जीवनशुद्धिके प्रयत्नमें होनेवाली अेकाग्रता और अुससे होनेवाले शुद्ध ज्ञानके साथ नहीं की जा सकती। मूलमें ही दोनोंके हेतुमें बड़ा अन्तर होता है। बाह्य खोजके पीछे केवल दुनियाका दुःखमुक्त करनेका ही हेतु हो, तो अुसका

सात्त्विकताका लाभ अभ्यासीको हुअे बिना नही रहता, और जीवन-शुद्धिकी दृष्टिसे यही वस्तु अधिक महत्त्वकी मानी जानी चाहिये।

यह सब लिखनेका यह अर्थ नही है कि मानव-जीवनके लिअे भौतिक खोजकी कोअी अुपयोगिता या आवश्यकता नही है। मनुष्यके दु:खो, यातनाओ, कष्टो, कठिनाअियो, अज्ञान, असुविधाओ वगैरामे जिन खोजो और अुपायोसे कमी की जा सकती हो, अुनकी मनुष्य-जातिको निश्चित आवश्यकता है। परतु अुनसे भी अधिक आवश्यकता मानवको मानवताकी है। यह मानवता सद्‌गुणोके बिना प्राप्त नही हो सकती। त्याग और सयमके बिना सद्‌गुणोकी वृद्धि नही हो सकती। दृढता, और निग्रह-शक्तिके बिना संयम टिक नही सकता। शुद्ध संकल्पके बिना दृढता और निग्रह आ नही सकते। अभ्यासके सिवा सकल्पबल बढानेका दूसरा कोअी मार्ग नही है। अभ्यासके लिअे अेकाग्रताका महत्त्व है। अभ्याससे चित्त स्थिर हो सकता है, दृढ़ हो सकता है, शुद्ध हो सकता है। अभ्याससे ही प्रज्ञा और शुद्ध विवेक जाग्रत होता है, चित्त अधिकाधिक शान्त होता है। अिस प्रकारके सारे लाभ अभ्याससे ही प्राप्त हो सकते है। अिसलिअे जीवनशुद्धिकी दृष्टिसे अिस प्रकारके अभ्यासका महत्त्व है, केवल अेकाग्रताका नही। जीवनशुद्धिके मार्गमें वह जितनी सहायक बन सके, अुतना ही अुसका महत्त्व है। क्योकि जीवनशुद्धिके प्रयत्नसे ही मानव-जातिको सच्ची मानवताकी प्राप्ति हो सकेगी।

७

चित्त-शोधन और आत्मसत्ताकी प्रभा*

१५ तारीखके पत्रमें आपने 'अुन्मन' शब्दका अुपयोग किया है। निद्रावस्थामें कर्मेन्द्रियों, ज्ञानेन्द्रियों और मनके व्यापार बंद हो जाते हैं। स्वप्नावस्थामें मन कुछ न कुछ करता रहता है। स्वप्नका अर्थ है निद्रामें बाधा। बाधारहित गाढ़ निद्रामें सारे व्यापार बंद हो जाते हैं। अुस समय केवल शरीरके भीतरकी नैसर्गिक क्रियायें ही होती हैं। मनुष्यके विकास किये हुअे शारीरिक, बौद्धिक और मानसिक सब व्यापार अुस समय लय हो जाते हैं। अुस समय मनुष्यका 'अहं' सुप्त हो जाता है। जागृतिमें अभ्याससे थोड़े समयके लिअे अैसी स्थिति सिद्ध की जा सके, तो भी वह स्वाभाविक अवस्था नहीं हो सकती। और प्रवृत्तिमें तो अिस स्थितिका टिका रहना असंभव प्रतीत होता है। किसी गूढ़ विषयके विचारमें मग्न हो, तब भी चित्तका व्यापार बन्द नहीं होता। केवल अितना ही होता है कि अुस समय चित्त अेकलक्षी हो जाता है। प्रवृत्तिमें तो अुचित-अनुचित और योग्य-अयोग्यका विचार हमेशा करना पड़ता है। कर्मके हेतु और अुसके अनेक प्रकारके परिणामोंका निश्चय करके और अन्दाज लगाकर मनमें जो निर्णय हो जाता है, अुसके अनुसार कर्म या फलके क्रममें समय समय पर परिवर्तन भी करना पड़ता है। अपनी तारतम्यबुद्धि सतत जाग्रत और प्रखर रखनी पड़ती है। अिसलिअे प्रवृत्तिमें अुन्मन अवस्था जैसी स्थिति रखना संभव नहीं है।

---

* यह और अिसके बादके चार पत्र चित्तका अभ्यास करनेवाले अेक साधकको लिखे गये हैं।

आपके दूसरे पत्रसे मालूम होता है कि वादमें आपने 'अुन्मन' सबधी कल्पना छोड दी है। गाढ़ निद्रामे जब चित्तका लय हो जाता है, अुस समय संकल्प धारण कर रखनेका धर्म चित्तमे कायम रहता है। जागृतिकी सारी कर्तृत्वशक्ति निद्राकालमें सुप्त हो जाती है। अुस अवस्थामें भी अमुक समय पर अुठ जानेका सकल्प चित्तमे मुख्यत. सबसे आगे होता है। चित्तकी सारी वृत्तियोका लय होकर केवल अुस सकल्पका ही सूक्ष्म रूपमे अस्तित्व होता है। अिसीलिअे निश्चित किये हुअे समय पर जागृति आती है।

मनुष्यको अपनी चित्तवृत्तियोका शोधन करते करते अपने चित्तका विकास करना है। अेक ही शुभ विचार पर स्थिर होनेका अभ्यास करते हुअे चित्तकी अनेक वृत्तियोका दर्शन होता है; और मनुष्य अुनके मूल कारणोकी खोज कर सकता है। अुनमें से शुभ-अशुभका वर्गीकरण करके अशुभका लय और शुभकी वृद्धि करनेका प्रयत्न किया जा सकता है। यह अभ्यास करते करते कभी तो वृत्ति-शोधनमें सब वृत्तियोका निरसन होते-होते चित्तका लय हो जायगा, या सबको जाच कर देखनेवाली और सबको जाननेवाली अेक ही वृत्ति वाकी रह जायगी। वह वृत्ति सबकी साक्षी बनकर रहेगी। वादमे वृत्तिके नये-नये और अलग-अलग प्रकार जानने वाकी नही रहेगे, अिसलिअे चित्तकी ज्ञानशक्तिका कार्य अत्यत सूक्ष्म हो जायगा। अुस समय साक्षीपन भी मिट जायगा और केवल जागृति ही रह जायगी। अुस जागृतिमे अलिप्तता और स्वाधीनताके महान गुण होगे।

साधक चित्तशोधन करते-करते अिस अवस्था तक जानेका वार-वार प्रयत्न करे, तो वह शुरूसे लेकर अन्त तककी चित्तकी सारी वृत्तिया जानने लगेगा। चित्तकी अिस प्रकार वार-वार जाच और शोधन होनेसे अुसके लिअे अिस विषयमें कुछ भी गूढ और अज्ञात नही रहेगा। अच्छे-वुरेके वारेमें, अुन्नति-अवनतिके वारेमे अुस

मन शकामें नही रहेगा। चित्तवृत्तियोका क्रम समझमें आ जाने और आखिरी अलिप्तता सव जानेके वाद वह जीवनके कार्योमें अुसका अुपयोग कर सकेगा। चित्तकी स्थिरता, शुद्धता, अलिप्तता और सद्‌गुणोका अुत्कर्ष — अिन सवके द्वारा ही मानवजीवन सफल होता है। ज्ञानके कारण आनेवाली निशकता और सद्‌गुणोंके कारण आनेवाला आत्मविश्वास मानवजीवनकी सर्वश्रेष्ठ सम्पत्ति है।

अभ्यासमे चित्तके शुभ सकल्पमे तन्मय हो जानेके वाद साधकको कभी-कभी सहज ही आनन्द और प्रसन्नताका लाभ होगा। अिस आनन्द और प्रसन्नतासे अुसके चित्तको प्रवृत्ति मार्गमे सहज ही क्षोभ या अुद्वेग नही हो सकेगा। मनुष्यको कर्मयोगका आचरण करते हुअे यही प्राप्त करना है। साधक अभ्यासमें होनेवाले आनन्द और प्रसन्नताका लाभ ले, परन्तु अुसीमे रमे रहनेकी अिच्छा न करे। यह आनन्द वादके अभ्यासमे और जीवनभर चलनेवाले कर्मयोगमें अुसे अुत्साह देनेवाला होना चाहिये।

अभ्यास करते समय जिस स्थानसे संकल्प अुठता है अुसे जान लिया जाय। अुस स्थानको जानकर सकल्पका साक्षी वना जाय। फिर अुस दशाको भी छोडकर यह ढूढा जाय कि केवल 'अपनेपन' का, 'अहं' का स्फुरण कहासे होता है। जिसे लयावस्थाका अनुभव करना हो, वह अिस 'अह' का भी लय कर दे। अिन सव स्थितियोका वार-वार अनुभव कर लेने पर खुदके और खुदकी चित्तवृत्तियोंके सम्बन्धके वारेमें भ्रम नही रहता। अिस स्थितिको स्थायी रखनेके लिअे चित्तशुद्धिकी अतिशय आवश्यकता है। अुस शुद्धि पर ही हमारी अलिप्त दशा टिकनेवाली है। यह स्थिति प्राप्त करके अुसके दृढ हो जानेके वाद जीवनमें प्राप्त होनेवाले अच्छे-वुरे प्रसगोंके परिणाम चित्त पर तीव्र रूपमें नही हो सकते। जीवनमें कभी विलक्षण हर्ष अथवा क्षोभका अनुभव नही होता।

अिस अभ्यासको आप लगनसे पूरा कीजिये। अभ्यासमे दर्शन देनेवाली और लय होनेवाली तमाम वृत्तियोकी अच्छी तरह जाच कीजिये। साथ ही अुल्लसित और आनन्दित मनसे सद्गुणोकी वृद्धिका प्रयत्न कीजिये। सद्गुण-सम्पादन किसीकी हम पर लादी हुअी चीज या बेगार नही है, परन्तु वही आत्मसत्ताकी सच्ची प्रभा है। सद्गुणो द्वारा हमारा आत्मत्व शुद्ध रूपमे प्रकट होता है।

(पत्र, १–४–'४०)

८

चित्तके अभ्यासका हेतु

पिछले पत्रमें मैंने साक्षी और अुन्मन, अिन दो अवस्थाओके बारेमे लिखा है। अुससे आप जो समझे है सो ठीक है। ये दोनो अवस्थाये भिन्न भिन्न है। अेकमे वृत्तिका व्यापार स्पष्ट और अनुस्यूत रूपमें जारी रहता है; और दूसरीमे वृत्तियोका सम्पूर्ण लय हो जाता है, अिसलिअे कोअी भी वृत्ति बाकी नही रहती। चित्त निस्तरग होता है।

मुझे लगता है कि आप यह बात अच्छी तरह समझ गये है कि अभ्यास करते करते प्राप्त हुअी अुन्मन अथवा लयावस्थाको लम्बाते रहना हमारे अभ्यासका हेतु नही है। साक्षी और अुन्मन अवस्थायें अभ्यास करते समय अेक-दूसरेकी विरोधी नही होती ; परन्तु अेकके वाद दूसरी, यह अुनका क्रम है। अेक स्थितिमें अनेक प्रकारकी वृत्तियोका लय होते होते अन्तमें सबको जाननेवाली अेक वृत्ति बाकी रह जाती है। बादमें अभ्यास करनेसे अुसका भी लय हो सकता है। अिनमें से अगर किसी भी अवस्थाको लम्बे समय तक वनाये रखें, तो अुनके परस्पर विरोधी होनेकी संभावना है।

मुझे लगता है कि अभ्यासका हेतु आपके ध्यानमें आ गया है; फिर भी अिस बारेमें अधिक स्पष्टता करनेका प्रयत्न करता हूं। हमें वृत्तिशोधनकी खास जरूरत है। यह समझनेके लिअे कि हमारी किन वृत्तियोंका निरोध किया जाय, किनको दृढ़ किया जाय और किनको बढ़ाया जाय, हमें सब वृत्तियोंका ज्ञान होनेकी जरूरत है। किन दोषोंके कारण और किन गुणोंके अभावके कारण हमारी गति कुंठित हुआी है, यह समझनेके लिअे हमारी वृत्तियोंका शोधन और पृथक्करण होना जरूरी है। कुछ दोष हम जानते हैं, कुछका हमें ज्ञान नहीं होता। गुणोंके बारेमें भी यही होता है। जिस दोषका हमें भान या ज्ञान होता है वह भी स्वतंत्र रूपमें अकेला नहीं होता, परन्तु अनेक दोषोंका अिकट्ठा परिणाम होता है; अथवा अनेक छोटे-छोटे दोषोंका मिलकर अेक स्पष्ट रूप होता है। अुन मिश्रित दोषोंमें से यदि हम अेक अेक दोषको निकाल डालें, तो बड़े दोषका अस्तित्व ही नहीं रहेगा। अनेक तन्तुओंकी बनी हुआी अेक रस्सीमें से अेक अेक तन्तु निकाल डालें, तो अन्तमें रस्सीका नाश करनेके लिअे अलग प्रयत्न करनेकी जरूरत ही नहीं रह जाती। यही नियम दोषों पर भी लागू होता है, यह समझकर अैसी कोशिशके लिअे पहले हमें अपनी स्थूल, सूक्ष्म, अच्छी-बुरी तमाम वृत्तियोंका ज्ञान होना जरूरी है। वृत्तिको अन्तर्मुख बनाकर चित्तका संशोधन और वृत्तियोंका अभ्यास किये बिना हमें अपनी खुदकी वृत्तियोंका पूरी तरह पता नहीं चलता।

सदोष वृत्तियोंका निरोध करके अुनका कारण बननेवाली दूसरी अनेक वृत्तियोंका क्षय करनेके लिअे और सद्वृत्तियोंका विकास करनेके लिअे चित्तके अभ्यासकी जरूरत है। चित्तका केवल क्षय साधनेसे यह अभ्यास पूरा नहीं होता, क्योंकि केवल क्षय गुणविकासकी विरोधी अवस्था है। अिसलिअे अशुभ वृत्तियोंका निरोध और क्षय करके शुभ वृत्तियोंका विकास साधते जाना चाहिये। विकासके लिअे वृत्तिशोधनकी और शुभ वृत्तियोंके संवर्धनकी जरूरत है। शुभ वृत्ति

या शुभ सकल्पको आचरणमें लानेके लिअे अुचित कर्मक्षेत्रमें प्रवृत्ति करनी चाहिये। अुससे गुणोका सवर्धन सचमुच कितना हो सकता है, वह हमे अनुभवसे मालूम होता है। अैसे अनेक प्रकारके अनुभवोके निरीक्षणसे हमें वृत्तिशोधन और सद्गुण-विकासका अभ्यास और मार्ग आगे वढाना चाहिये। अिस तरह जीवन भर कोशिश करते हुअे हम जिन जिन गुणोकी अपने लिअे परिसीमा साध सकेगे और जो गुण हममे पूर्णत्व प्राप्त करेगे, अुन गुणोका कार्य हमारे हाथो आसानीसे होता रहेगा। अुन गुणोके सम्वन्धमे हममे साक्षीभाव रहेगा। गुणोमे तन्मय न रहकर, गुणोके वेगमे न बहकर, जिस कामके लिअे जितनी मात्रामे जिन गुणोकी जरूरत हो, अुस मात्रामे अुनका अुपयोग करके हम अलिप्त रूपसे कर्म करते रह सकेगे। कर्म करते हुअे भी जो अलिप्तता रहनी चाहिये वह हमें सध जाय, तो ही हमारे द्वारा राग-द्वेषके वेगमे फसे विना निर्दोष ढगसे कर्तव्य कर्म होते रहेगे। गुणोके विकासके विना कर्ममे स्वाभाविकता नही आती, स्वाभाविकताके बिना अलिप्तता प्राप्त नही होती। चित्तके अभ्यासके विना वृत्तियोकी खोज नही होगी और अुन पर कावू नही पाया जा सकेगा। ये सव वाते जीवनमे लानेके लिअे ये सारे प्रयत्न करने है। अिस अभ्यासका हेतु वृत्तियोका लय या अुससे पहलेकी साक्षी अवस्था प्राप्त करना नही है। जिस हद तक हममे गुणोकी कमी रहेगी, अुस हद तक समय आने पर कर्मक्षेत्रमें हमारी स्थिति चचल, अस्थिर और अनिश्चित रहेगी। दोष-निवारण, गुण-सम्पादन, गुणोको स्वाभाविक स्थितिमें ले जाना, अुस सहज स्थितिमे ही अलिप्तता और कर्मका धर्मयुक्त अुदात्त भाव सिद्ध करना आदि सव वाते अभ्यासमे ही हो सकती है। निर्दोप कर्ममे कर्मकौशल आ ही जाता है।

(पत्र, ६–५–'४०)

६

चित्तकी अवस्थाओंका परीक्षण

प्रत्येक मनुष्यके चित्तकी संकल्प धारण करनेकी शक्ति कुछ मर्यादित होती है। चित्त अुस सीमा पर पहुचनेके बाद अधिक समय सकल्प धारण नही कर सकता। अैसी स्थितिमें सकल्प अपने आप मन्द पड जाता है और चित्तमें ही विलीन हो जाता है। सकल्प धारण करना, अुसका छूट जाना और सकल्परहित रहना, ये सब चित्तकी ही अवस्थायें है। चित्त जब सकल्प धारण नही कर सकता, अुस स्थितिमें अुसमें केवल जाग्रति ही रह सकती है। मनुष्य निश्चित हेतुसे और ज्ञानपूर्वक सकल्प धारण करता है। अुसकी यह धारणा छूट जाय तो भी जाग्रत चित्तमें स्वाभाविकतया ज्ञानप्रवाह सूक्ष्म रूपमें जारी रहता है। निद्रामें ये सब बातें नही होतीं। अिसका कारण अेक तो यह है कि निद्रा प्राकृतिक सुप्तावस्था है; और यह अवस्था हमारी बुद्धिपूर्वक बनाअी हुअी न होनेके कारण अुसकी जडमें हमारा ज्ञानपूर्वक कोअी भी सकल्प नही होता और अिस प्रकार वह धारण भी नहीं किया जा सकता। अिसलिअे अुस समय अवस्थाका ज्ञातापन स्फुरित नहीं होता। चित्त अुस समय मूढ दशामें होता है। परन्तु जो अवस्था साधक जान-बूझ कर प्रयत्नपूर्वक पैदा करता है, अुसे प्राप्त करते समय और अुसके प्राप्त हो जानेके बाद धारणाशक्तिकी सीमा आ जाती है और धारणायें मन्द हो जाने तथा सकल्पके विलीन हो जानेके बाद भी कुल मिलाकर सारी अवस्थाओंमें अुसका चित्त जाग्रत रहता है। अेक अवस्थाके छूटने और दूसरी धारण करनेके संधिकालमें भी अुसका चित्त जाग्रत रह सकता है। अिसलिअे पहलेसे आखिर तक अुसकी जागृति कायम रहती है।

अिस परसे आप विचार कर लीजिये। किसी भी सकल्प या सकल्परहित अवस्थाका ज्ञाता कौन है? सकल्पका प्रारभ कहासे होता है? मूल स्फुरण कहासे निकलता है? और फिर वह सकल्प कहा विलीन हो जाता है? चित्तके तरंगाकार होने और अुन तरंगोके स्पष्ट दशामे आनेके बाद अुनका प्रवाह वृत्तियोके रूपमे वहने लगता है और अन्तमें वे सब कहा गायब हो जाती हैं? अिन सब अवस्थाओका अधिष्ठान किस पर है? आप अिसकी खोज कीजिये।

अिस पत्रमे आपकी लिखी हुअी स्थिति अभ्यासकी दृष्टिसे अच्छी है। आपने लिखा है कि "संकल्पका अभ्यास जारी हो, तब आगे जाकर वह स्थिर होकर अपने आप बन्द हो जाता है और चित्तके साथ अुसकी तद्रूपता टूट जाती है, और केवल स्तब्धताका भान होता है। अिसमें जाग्रति और स्मृति होनेसे स्थिरता दिखाअी देती है।"

'अनुभवामृत' के ३, ४ और ५ अध्याय अुनके अर्थ, आशय और अनुभवके साथ यथाशक्ति समरस होकर पढिये। अुससे जो बोध प्राप्त हो अुसका विचार कीजिये। अुसके साथ अपने प्रस्तुत अनुभवकी तुलना करके देख लीजिये।

(पत्र, १–८–'४०)

१०

संकल्प, साक्षीवृत्ति और निस्तरंग अवस्था

शुभ संकल्पमें अेकाग्रताके बारेमें जो लिखा सो ध्यानमें आया। जिसके बाद आप लिखते हैं कि, "अेकाग्रता साधते समय संकल्प जितना स्थिर हो जाता है कि अुसीमें अेक नया संकल्प निर्माण होता है, जो चालू संकल्पको सावधानीसे देखता है और फिर स्वयं शान्त हो जाता है। शान्त होते समय केवल जाग्रति ही होती है। वह जाग्रति थोड़े समय रहती है और बादमें पहलेकी अलग वृत्ति और संकल्पका सम्बन्ध शुरू हो जाता है।"

जिसमें आपने जो लिखा है कि "अेक संकल्प पर अेकाग्रता साधते समय अुसमें दूसरा संकल्प निर्माण होता है और वह पहलेके चालू संकल्पको सावधानीसे देखता है", अुसके बारेमें मेरा खयाल है कि अेकमें से दूसरा संकल्प पैदा हो, तो वह पहलेको देख नहीं सकता। परन्तु देख सकता हो, तो वह पहले संकल्पमें से फूटकर निकली हुअी दूसरी वृत्ति होगी, संकल्प नहीं हो सकता। संकल्प हो तो अेक तो वह अपने प्रवाहमें जारी रहेगा या फिर पहलेकी तरह अुसका दृढ़ीकरण होता रहेगा। देखने या जाननेका काम अलग वृत्ति द्वारा होता है। संकल्प भी तो अेक विशेष लक्ष्य, हेतु या कल्पना पर दृढ़ की हुअी वृत्ति ही होता है। परन्तु वह केवल देखनेवाली या जाननेवाली, अलग या तटस्थ वृत्ति नहीं होती। अुसकी दृढ़ता कम होनेके बाद जब चित्त धारणामें से, संकल्पमें से फूटकर थोड़ा बाहर निकलता है और अलग होकर वह भाग हाल देखता है, जानता है, तब अुस बाहर निकले हुअे चित्तका भाग ही सबको जाननेवाली वृत्ति है। यह भाग जैसे-जैसे अधिक स्पष्ट

दशामे आता जाता है, वैसे-वैसे सकल्पकी दृढता कम होती जाती है, और वादमे केवल अलग वृत्ति ही रह जाती है। सकल्पके पूरी तरह शान्त हो जानेके वाद अुसे जाननेवाली अलग वृत्तिका काम न रहनेसे अुसका भी लय हो जाता है। और वादमे दूसरा सकल्प या वृत्ति न अुठे, तो चित्तमे केवल जाग्रति ही रहती है।

ये सब चित्तवृत्तिके ही प्रकार हैं। वृत्ति निर्माण होती है, वह कुछ समय प्रवाहकी तरह वहती है; दृढ होती है और फिर अुसीमे से अलग वृत्ति निर्माण होती है। अभ्यास ज्योका त्यो ही आगे चलता रहे, तो अुस वृत्तिका भी लय हो जाता है और केवल जाग्रति रह जाती है। अभ्यास न हो तो अेकमें से दूसरी और दूसरीमें से तीसरी अिस तरह वृत्तियोका प्रवाह सतत जारी ही रहता है। अैसी स्थितिमे जव कोअी भी वृत्ति स्पष्ट रूपमे नही होती, तव अन्यमनस्कता यानी अेक प्रकारकी जडता ही होती है। अभ्यासी आदमीके चित्तमे वृत्तिके लय होनेके वाद जाग्रति रहती है।

सकल्प सकल्पको देख नही सकता। अेक ही दृढ वृत्ति या सकल्पमें से निकला हुआ चित्तशक्तिका अश सकल्पको जान सकता है। सकल्प और अुसे जाननेवाली अलग वृत्ति अेक ही चित्तशक्तिसे होनेवाले दो कार्य हैं। अुस समय अेक ही शक्ति दो अलग-अलग कामोमें वटी हुअी होती है।

(पत्र १–५–'४३)

११

ज्ञानमय जाग्रत अवस्था

पिछले पत्रमें जो कुछ लिखा था, अुसीका विशेष स्पष्टीकरण अिस पत्रमें करता हूं।

अभ्यास करनेके लिअे शुरूमें साधक कोअी भी अेक शुभ संकल्प या अेकाध भीतरी या बाहरी लक्ष्य चुन लेता है और चित्त-वृत्तिका प्रवाह अुन पर लाने और वहीं स्थिर करनेका प्रयत्न करता है। चित्तकी संकल्प-विकल्पात्मक चंचलता अिस प्रयत्नमें बाधक होती है, अिसलिअे चित्तवृत्तिको अेक जगह केन्द्रित करनेके लिअे अुसे चित्तकी तमाम ताकत अिकट्ठी करनी पडती है। अुसे अिकट्ठी करके अेक ही जगह अुसका अुपयोग करनेके लिअे साधकको दृढता और निग्रह रखना पडता है। जैसे हाथमें पकडी हुअी किसी चीजको छूटने न देनेके लिअे हाथका सारा बल वस्तुको पकडकर रखनेवाले स्नायुओंमें लाना पडता है, अुसे वहीं स्थिर रखना पड़ता है और अिसके लिअे अुन स्नायुओंमें दृढता लानी पडती है, अुसी तरह चित्तको अेक जगह केन्द्रित रखते समय जिस स्थान पर यह क्रिया होती है वहांके ज्ञानतंतुओंमें साधकको दृढता लानी पडती है। चित्तवृत्तिको वहांसे हटने या बहने न देना और धारण किये हुअे संकल्प या लक्ष्य पर अुसे स्थिर रखना — ये दो बातें कमसे कम अभ्यासके शुरूमें तो साधकको दृढताके बिना नहीं सध सकतीं। आगे चलकर आदत पड जानेके बाद दृढताकी जरूरत नहीं रहती। धारणा सिद्ध हो जानेके बाद अेक तो पहला संकल्प जिस प्रकारका होता है अुसी प्रकारके विचार अुसमें से स्फुरित होने लगते हैं और बादमें अुसी अभ्यासमें से तमाम विचारोंका क्रम व्यवस्थित होने लगता है। परन्तु अैसा न होकर यदि चित्तवृत्ति

सकल्प पर ही स्थिर हो जाय, तो बादमें स्थिरताकी मर्यादा पूरी हो जाने पर धारणा मन्द पडने लगती है। अुसके मन्द पडने लगनेके बाद भी अिन सब प्रकारोको जाननेवाली अेक वृत्ति जाग्रत रखनी पडती है। वह वृत्ति धारणाको, अुसके परिणामको जानती है। वह पहले केवल साक्षीरूपमे हो तो भी अुसीमें से अवलोकन, शोधन, परीक्षण वगैरा वृत्तियां निर्माण करनेके कारण पहले सकल्पकी दृढता धीरे-धीरे कम होती जाती है। फिर साक्षीपन मिटकर शोधन और परीक्षण भी लुप्त हो जाता है। अुस समय पहले सकल्पमे से बाकी बचा हुआ अतिम अश भी विलीन हो जाता है।

अुस समय सकल्प मिट जाय, साक्षीपन नष्ट हो जाय, तो भी शोधन और अनुभवसे ज्ञानके साथ नअी प्राप्त हुअी जाग्रति बाकी रहती है। प्रसन्नता आती है। शुभ सकल्पकी धारणा और दृढतासे चित्तके अेकके बाद अेक अुच्च अवस्थामें जाते जाते अुसमें स्थिरता आ जाती है और वह अब अशुभ या शुभ दोनोमें से किसीको भी न पकड़कर केवल अपनी ही स्थितिमें ज्ञानमय जाग्रतिमें रहता है। आगेके ज्ञानकी स्फूर्ति होनेके लिअे अिस अवस्थाकी दृढता और स्थिरताकी भी जरूरत है। वह अधिक समय तक स्थिर रह सके, तो ही बादके ज्ञानका अुदय हो सकता है। अुस अवस्थाके अधिक समय तक बने रहनेका आधार साधककी चित्तशुद्धि पर, सकल्प-विकल्पात्मक चचलता अुसके चित्तसे जिस मात्रामें नष्ट हुअी हो अुस पर और अभ्यास करते समय अुसके ज्ञानततुओ पर जिस मात्रामें तनाव (श्रम) पडा हो अुस पर होता है। अिसके अलावा, अभ्यास करते करते साधकका चित्त अपने आप या प्रयत्न द्वारा अेकसे दूसरी और दूसरीसे तीसरी अवस्थामें क्रमश जैसे गया हो अुस पर भी यह बात आधार रखती है। शुभ सकल्पकी धारणा साधते समय ज्ञान-ततुओको विशेष श्रम हुआ हो, तो सकल्प परकी धारणा मन्द पडते ही चित्तके साक्षी अवस्था पर जानेके बजाय अुसके तंद्रामें लय हो

जानेकी संभावना रहती है। और धारणा अपने आप सिद्ध हुअी हो तो अुसीमें से आगे चलकर जाग्रतिकी अवस्था साधी जा सकती है।

किसी पत्रमें आपने पूछा है कि, "अिसमें तीन स्थितियां हैं: संकल्प, अुसकी साक्षीवृत्ति और साक्षीवृत्तिका लय। अिनमें से किस स्थिति पर जोर देकर अभ्यास किया जाय?"

शुभ संकल्प पर अेकाग्र होनेमें हमारा जो हेतु हो, अुस पर अिस प्रश्नके अुत्तरका आधार है। केवल अेकाग्रता सिद्ध करनेका हेतु हो, तो चित्तकी चंचलता दूर करके अुसे अेक ही संकल्पकी धारणामें थोड़े समयके लिअे निमग्न करने पर जोर देना चाहिये। शुभ संकल्पका अधिक स्पष्ट दर्शन करनेके लिअे या अुसके सहायक होनेवाले दूसरे शुभप्रद विचारोंकी स्फूर्तिके लिअे हमारी धारणा जारी हो, तो अुस चीजको प्राप्त करने पर जोर देना चाहिये। धारणाकी मर्यादा पूरी होनेके थोड़े समय बाद अुसीमें से दूसरी विचारधारा या संकल्प अुठनेके बीचके समयमें सावधानीसे साक्षीवृत्ति साधी जा सकती है। हमारा ध्येय अुसे साधना हो, तो अुस पर जोर देना ठीक होगा। परन्तु वह लम्बे समय तक टिकनेवाली वृत्ति न होनेके कारण या तो अुसीसे दूसरे संकल्प अुठने लगेंगे, या संकल्प धारण करनेकी चित्तकी शक्ति खतम हो गअी हो तो साक्षीवृत्तिका लयावस्थामें पर्यवसान हो जायगा। परन्तु साक्षीमें से शोधन, परीक्षण आदि और अुनमें से फिर आगे जाग्रति साधने जितना बल और प्रसन्नता हमारे चित्तमें हो और अिसी प्रकारका हमारा हेतु हो, तो साक्षी अवस्थामें से चित्त लयावस्थामें न जाकर जाग्रतिकी तरफ जायगा। केवल साक्षीकी अपेक्षा शोधन और परीक्षण वृत्तिका महत्त्व अधिक है। क्योंकि अुनकी सूक्ष्मता और प्रसन्नता पर जाग्रतिकी शुद्धि, स्थिरता और स्वाभाविकता आधार है। मेरे खयालसे यह जाग्रति साधना हर अभ्यासका मुख्य हेतु माना जाना चाहिये। जीवनके सब अवसरोंमें यही जाग्रति हमेशा अुपयोगी हो सकती है। यह जाग्रति जितनी मात्रामें

सधेगी, अुतनी ही मात्रामे अलिप्त दशा सिद्ध होगी। अिस अभ्यासमें आपने कौनसा अुद्देश्य मुख्य रखा है, और अुससे आप क्या निर्माण करना चाहते है, अिस वात पर अिस प्रश्नका अुत्तर निर्भर है। मै अिस वारेमे यह समझता हू कि चित्तकी अशुद्धता दूर करके अुसकी शुद्धता और स्थिरता साधना, अेकाग्रता साधना, अुस अेकाग्रतासे शुभ सकल्पका अधिकाधिक दर्शन होना, अुसीसे शुद्ध सकल्पकी और अुसके आनुषगिक अन्य अनेक शुद्ध विचारोकी स्फूर्ति होना, अेकाग्रताकी सिद्धिसे चित्तका शुभ सकल्पमें निमग्न होना और अुसमे से साक्षी अवस्थासे आगे जाकर सब स्थितियोका शोधन-परीक्षण सिद्ध होना और अन्तमें अिन सबसे वाहर निकलनेके वाद चित्तकी जाग्रत अवस्था सारे समय कायम रखते आना ही अिस अभ्यासका मुख्य हेतु होना चाहिये। अभ्यासकी हरअेक आवृत्तिमे चित्त अधिकाधिक गाढ, स्थिर, सूक्ष्म और जाग्रत होकर अिन सब अवस्थाओका अनुभव करने लगे, तो साधक यह समझे कि अुसका अभ्यास ठीक चल रहा है। चित्तके द्वारा चैतन्य कितनी शुद्धतासे, सूक्ष्मतासे, स्थिरतासे और विविध ढगसे स्फुरित होता है, कपडेकी तह जैसे खुल सकती है वैसे ही वापस बन्द भी हो सकती है, अुसी तरह अेकमें से दूसरी अैसी अनेक अवस्थाओका अेकके वाद अेक होनेवाला प्रकटीकरण और फिर सारी अवस्थाओका चित्तमें होनेवाला लय — यह सारा क्रम सावधानीसे जानने और अिन सब अनुभवोसे जाग्रति, अलिप्तता और चित्तकी स्वाधीनता साधनेकी दृष्टिसे अिस अभ्यासका महत्त्व है। ये सव चीजे सिद्ध हो जानेके वाद अेक ओर जीवन-व्यवहारके अपने सारे चित्तव्यापारो पर हमारा कावू हो जाना चाहिये और दूसरी ओर सद्‌गुणोका अुत्कर्ष करते करते हमें अपनी अिसी चित्तशक्तिका बुद्धि और शरीरकी मददसे विकास करते रहना चाहिये।

अूपर जो लिखा है अुससे आप अपने पूछे हुअे प्रश्नोके अुत्तर निकाल सकेगे। अभ्यास जारी रखेंगे तो अुससे मिलनेवाले अनुभवसे

ये सारी चीजें अपने आप समझमें आने लगेंगी। जीवनका ध्येय आपके ध्यानमें आ गया हो, तो यह भी आपके ध्यानमें अवश्य आ जायगा कि अिस अभ्यासमें अुनकी सहायक वस्तुअें कौनसी हैं। अुन्हींको आप महत्त्व दीजिये। थोड़ी भूलचूक हो जाय तो अुसके लिअे चिन्ता करनेका कारण नहीं है। अनुभव, शोधकवृत्ति, ज्ञान, जागृति, सद्गुणोंके प्रति रुचि, अुनकी प्राप्तिके लिअे आवश्यक पुरुषार्थ और अिन सबको जीवनको सार्थक करनेके लिअे जरूरी सुमेल आदि बातें जिससे प्राप्त हो सकें वही सच्चा अभ्यास है, यह बात साधकको सतत अपनी दृष्टिके सामने रखनी चाहिये।

(पत्र, ८-५-'४३)

१२

मनःशक्तिकी शोध

मानसिक शक्तिके साथ ही शुद्धिका आग्रह

मानव-मनमें सूक्ष्मरूपमें अत्यधिक सामर्थ्य मौजूद है। मनुष्य जो कर्म करता है, अुनके द्वारा गुण-अवगुणोंका जो प्रकटीकरण होता है, वह अिस सामर्थ्यका द्योतक है। प्रेम, दया, अुदारता हमारी शुद्ध मानसिक शक्तिके और दुष्टता, कठोरता, हिंसा हमारी अशुद्ध शक्तिके लक्षण हैं। शक्ति और शुद्धिमें बड़ा फर्क है। जहां शुद्धि होगी वहां शक्ति होगी ही, परन्तु जहां शक्ति होगी वहां शुद्धि होगी ही, यह नहीं कहा जा सकता। अिसलिअे मनुष्यकी केवल मानसिक शक्तिकी वृद्धि होनेसे अुसकी मानवता नहीं बढ़ती; परन्तु शक्तिके साथ शुद्धिकी वृद्धि हो तो ही मानवताकी वृद्धि होती है। गीतामें यज्ञके सात्त्विक, राजस और तामस तीन प्रकार बताये हैं। मनुष्य किसी-न-किसी अुद्देश्यसे कष्ट सहन करता है, त्याग करता

है। अिस कष्टसहनको तप कहे, तो अितनेसे ही वह तप सात्त्विक नही हो जाता। किसी भी कार्य या अुसके परिणामकी जडमें सात्त्विक अुद्देश्य होना चाहिये। अुसके परिणामस्वरूप हममे और दुनियामें सात्त्विकता बढनी चाहिये। ये सब बाते सिद्ध करनेके साधन भी सात्त्विक ही होने चाहिये। तभी अुस कार्यके लिअे किये गये प्रयत्न, अुठाये गये कष्ट और किया गया तप सात्त्विक माना जा सकता है। सयम, धैर्य, साहस, निर्भयता आदि गुण मानसिक शक्तिके बिना प्राप्त नही होते। परन्तु सयम, धैर्य, आदि गुणोका अुपयोग मनुष्य दुष्ट कार्यमे भी कर सकता है; अिसलिअे अुन गुणोको अुस अवसर पर अवगुण समझकर यह कहना पडता है कि अुस शक्तिमें शुद्धि नही है। मानसिक शक्तिके बिना सयम सिद्ध नही होता। क्षमाशील और कपटी दोनोको क्रोधका सयम करना पडता है। और दोनोको अुतने समयके लिअे वह सिद्ध भी होता है। परन्तु क्षमाशील पुरुष सयम द्वारा निर्वैर और शान्त होता है, जब कि कपटी मनुष्य सयम द्वारा बैर लेनेकी बाट देखता रहता है। अिसलिअे सयमकी मानसिक शक्ति अेकको अुन्नतिकी ओर तो दूसरेको अधोगतिकी ओर ले जानेका कारण बनती है। अिसलिअे मनुष्यमे शक्तिके साथ शुद्धिका भी आग्रह होना चाहिये।

संकल्पका मन शक्ति जाग्रत करनेका सामर्थ्य

मानव-मनकी महाशक्तिको जाग्रत करनेका सामर्थ्य जितना दृढ सकल्पमे है अुतना और किसी चीजमे नही है। गुण या अवगुणकी वृद्धि अिस प्रकारके दृढ सकल्पके बिना नही हो सकती। मनकी सारी शक्तिका रहस्य अिस सकल्पमे है। मनुष्यकी अिच्छा जब अेक संकल्पमें आकर बैठती है और जब वह चित्तकी तमाम शक्तियोको अेकत्र करके अेक स्थान पर केन्द्रित करती है, तब अुसमे विशेष सामर्थ्य पैदा होता है। सारी अिन्द्रियो द्वारा बाहर आनेवाली और हमारी

सुप्त शक्तिको जाग्रत करनेसे पैदा होनेवाली दोनों शक्तियोंको यदि मनुष्य अेक ही जगह अेकाग्र, स्थिर और दृढ़ कर सके, तो अुसमें से अलग-अलग शक्तिके रूप प्रगट हो सकते हैं। अिस बारेमें बुद्धिपूर्वक प्रयत्न किया जाय या मनुष्यके हाथों यही क्रियायें अनजाने अपने आप हो जाय, तो भी अुनका अेक ही परिणाम आता है। जैसे हम अेक लकड़ीको दूसरी लकड़ीके साथ जान-बूझकर रगड़े तो भी अग्नि प्रगट होती है और दो लकड़ियां या पेड़ कुदरती तौर पर हवाके जोरसे अेक-दूसरेके साथ रगड़ खाते रहे तो भी अुसमें आग ही पैदा होती है। दूधको हम जान-बूझकर बिलोये तो भी अुसमें से मक्खन निकलता है, और किसी कारणसे दूधका बर्तन या बोतल लगातार हिलती रहे तो भी अुसमें से मक्खन ही निकलता है। पानीके प्रवाहमें हम जान-बूझकर कोअी निश्चित गति, वेग या दबाव पैदा करें या नैसर्गिक रूपमें ही अुनमें ये चीजें प्रवेश करें, तब भी अुसमें से शक्ति अवश्य निर्माण होगी। यही बात मनःशक्तिके बारेमें है। कभी किसी विशेष प्रकारकी मनकी स्थितिमें मुंहसे निकले हुअे अुद्‌गारोंको मंत्रका स्वरूप प्राप्त हो जाता है। कभी कोअी निश्चित शब्द, विधि या तंत्रमें वह सामर्थ्य अुत्पन्न करना पड़ता है। अर्थात्, अिसमें सन्देह नहीं कि किसी भी स्थितिमें पैदा हुअे परिणामके लिअे मनुष्यके मनकी शक्ति ही कारण होती है।

सृष्टिके स्थूल और सूक्ष्म तत्त्वोंके धर्म

ठेठ प्रारंभिक कालसे मनुष्य अपनेमें निहित हुई किसी शक्ति द्वारा अपनी रक्षा करनेका प्रयत्न करता आया है। आज भी धीरे-धीरे भयंकर रूपमें बढ़ी हुअी अपनी भौतिक, बौद्धिक, आर्थिक और सामूहिक शक्तियों द्वारा वह यही चीज अर्थात् अपनी रक्षा करनेका प्रयत्न करता है। अिन कार्योंके लिअे जिस समय मनुष्यके पास आजके जैसे तरह तरहके साधन नहीं थे, अुस समय वह स्वाभाविक ही मानसिक शक्ति बढ़ानेकी

तरफ मुड़ा होगा। अथवा अेकाअेक ही अुसकी मानसिक शक्ति अुत्तेजित हो गअी होगी। अिनमे से पहले क्या हुआ होगा, अिसकी यथार्थ कल्पना हम अिस समय नही कर सकते। ज्यादातर क्षुब्ध और अुत्तेजित अवस्थामे मनुष्यकी सारी शक्ति शरीर और बुद्धि द्वारा कर्मके रूपमें बाहर निकलनेका प्रयत्न करती है। और जब अुसे अिनके द्वारा बाहर आनेका रास्ता नही मिलता, तब वह शक्ति मनमे सचित होकर वही भिन्न-भिन्न विचारो, भावनाओ और विकारोमे अव्यवस्थित रूपमें सचार करती और घूमती रहती है। यदि यही शक्ति अैसे समय अचानक अेक ही संकल्पमे केन्द्रित हो जाय, तो अुस समय मनुष्यके मुहसे निकलनेवाले शब्दोमें, अुसके हाथोसे होनेवाली साधारण क्रियामें अुसका सामर्थ्य प्रगट हो सकता है। अुस शब्द या क्रियाका बाह्य स्थूल सृष्टि पर, अपने पर या दूसरो पर सकल्पानुसार अच्छा या बुरा परिणाम मर्यादित मात्रामें तत्काल अथवा कालान्तरमे होता है। यह निसर्गका धर्म है। जैसे हमारे शरीर पर सृष्टिके स्थूल तत्त्वोका परिणाम होता है, अुसी तरह सृष्टिके सूक्ष्म तत्त्वोका हमारे स्थूल और सूक्ष्म तत्त्वो पर परिणाम होता है। सृष्टिमे मनतत्त्व, बुद्धितत्त्व, प्राणतत्त्व, वगैरा सारे तत्त्व है। वे तत्त्व मनुष्यके दूसरे तत्त्वो जैसे प्रकट या स्पष्ट नही होते, परन्तु सुप्त होते है। हममें रहनेवाले दूसरे तत्त्वोके साथ सम्बन्ध आनेके बाद ही अुन सुप्त तत्त्वोकी प्रकट दशा शुरू होती है। अनाजमें भी सारे तत्त्व सुप्त दशामे है। मनुष्य या और किसी प्राणीके पेटमें जानेके बाद अुसमें रहनेवाले सुप्त तत्त्व अुन शरीरोके तत्त्वोके रूपमें स्पष्ट दशामे आते है। अनाजकी तरह सृष्टिमें भी सब जगह सारे तत्त्व सुप्त रूपमें भरे हुअे है। अुन्ही तत्त्वोसे हम अपनी आवश्यकता और शक्तिके अनुसार ज्ञात या अज्ञात रूपमें सतत अनेक तत्त्व लेते है और अुन्हे आत्मसात् करते है। हममे से भी यही तत्त्व अन्य रूपमे बाहर आते है और सृष्टिमें मिल जाते है। अिस प्रकार हमारे और सृष्टिके

बीचका आपसी व्यवहार सतत चालू रहता है। हममें और दूसरोंमें प्रगट दशामें आये हुअे तत्त्वोंको — दोनोंको मिलानेवाले सुप्त तत्त्व अव्यक्त रूपसे सृष्टिमें फैले हुअे हैं; और अुनके द्वारा हम और दूसरे जीव सब अेक-दूसरेके साथ जुड़े हुअे हैं। अिस साधन या वाहन द्वारा हमारे और अुनके तत्त्वोंके अेक-दूसरेके चित्त, मन, बुद्धि, प्राण और शरीर पर परिणाम हो अैसा धर्म सृष्टिमें विद्यमान ही है। सृष्टिके छोटे-बड़े कार्य अिस नियमके अनुसार होते रहते हैं। अुनमें से कुछ हमें ज्ञात हैं और कुछ अज्ञात हैं। हमें वे ज्ञात हों या न हों, परन्तु सृष्टिमें वे धर्म कायम हैं। अुनके ज्ञात न होने पर भी हमें अैसा लगता है कि हम अुन्हें जानते हैं। मैं जैसा लिख रहा हूँ वैसे ही सृष्टिके और हमारे परस्पर धर्म या कार्यकारण-सम्बन्ध हों या न भी हों। मनुष्यका काम यह है कि वह अपने ज्ञानका अहंकार और आग्रह न रखकर सत्य धर्मोंकी खोज करके अुन्हें मानव-जातिकी अुन्नतिके लिअे अनुकूल बनानेका प्रयत्न करे।

मन्त्र-तन्त्रकी अुत्पत्ति

कार्यका ज्ञान सच्चा ज्ञान नहीं है, परन्तु अुनके कारणोंको जानना सच्चा ज्ञान है। मनुष्यमात्रकी बुद्धिका झुकाव थोड़ी बहुत मात्रामें कुदरती तौर पर अिसी ओर है। अितने पर भी अुसकी जड़ता, अल्प-संतोष और अहंकारके कारण वह बिलकुल मर्यादित और कुंठित भी हो जाती है। मनकी किसी विशेष स्थितिमें किये गये संकल्पका या मनकी शक्तिका परिणाम दुनिया पर और अपने पर होता है, यह पहले कहा ही जा चुका है। मनुष्यको अिस प्रकारका अनुभव हो जानेके बाद भी वह अपनी संकल्पशक्तिका प्रभाव नहीं मानता है। अिसलिअे अुस परिणामके कर्तृत्वका सम्बन्ध जिसे वह अपना श्रद्धास्पद और सामर्थ्यवान देवता मानता है, अुसके साथ, भूत-पिशाचोंके साथ अथवा पितरोंके साथ, किसी भी तरह अपनेसे किसी अलग शक्तिके साथ जोड़ देता है। क्षुब्ध और अुत्तेजित हुअे मनकी

शक्ति जब कुदरती तौर पर अेक ही सकल्पमें अेकत्रित और केन्द्रित होती है, तब अुसे अपने देवता और अुसकी अगाध शक्तिका स्मरण होना स्वाभाविक है। और अुसके परिणामका कर्तापन वह सहज ही अपने आराध्यमे आरोपित करता है। चमत्कारमय अनुभवसे अुसकी श्रद्धा दुगुनी हो जाती है। और जब सकट या कठिनाअीके समय कोअी रास्ता दिखाअी नही देता, तब वह अुसे याद करता है और अुसकी कृपाकी याचना करता है। यह नही कहा जा सकता कि अेक बारके मन शक्तिके आकस्मिक अेकीकरणसे जो कार्य हो जाता है वह हर बार होता ही है। और न हो तो भी भावुक आदमी अपनी श्रद्धा नही छोडता। देवताके प्रति अिस प्रकारकी श्रद्धा जब अुत्तान बन जाती है, तब किसीकी जाग्रति लुप्त हो जाती है, अुस अवस्थामें देवताके साथ अेकरूप हो जानेके कारण, जगतके मनतत्त्वके साथ स्वभावत. समरस हो जानेके कारण साधारण मन स्थितिमें समझमें न आनेवाली कुछ चीजोंका अुसे ज्ञान हो जाता है और वह अुसके मुहसे बाहर निकलने लगता है। अैसा व्यक्ति समाजमें देवताके ‘भगत’के रूपमें ख्याति प्राप्त करता है। और किसीके भी दुख या सकटमें क्या करनेसे देवता सतुष्ट होकर दुख या सकटका निवारण करेगा, यह समझ लेनेके लिअे अुस ‘भगत’से प्रश्न पूछनेकी प्रथा पडती है। ‘भगत’ अजाग्रत या अर्द्धजाग्रत अवस्थामें अुनके अुत्तर देता है। लोग यह मानते है कि देवता अुसके शरीरमें आ जाता है और अुसके मुहसे जवाब देता है। मनकी अैसी अुत्तान या अुत्तेजित अवस्थामें जगतके मनतत्त्वके साथ तद्रूप होनेके बाद सकट-निवारण या अुद्देश्य-सिद्धिके लिअे जो शब्द या शब्दरचना मुहसे निकलती है, अुसे मत्रका स्वरूप प्राप्त हो जाता है। जो अुपाय सुझाये जाते है, अुनसे तत्र पैदा होता है और अुस समयकी विधिमें पवित्रता आ जाती है। और अैसी लोकश्रद्धा पैदा हो जाती है कि अुसमें कोअी विशेष और अद्भुत सामर्थ्य है।

विश्व-शक्तिके साथ तादात्म्य होनेसे प्राप्त होनेवाली शक्ति

दृढ संकल्पमें अेकत्रित अथवा केन्द्रित हुआी मनकी शक्तिसे अथवा मनका चालू प्रवाह बन्द हो जाने पर सृष्टिके मनतत्त्वके साथ अेकरूप होनेके बादकी स्फूर्तिसे दिव्य मानी जानेवाली सब शक्तियोंकी अुत्पत्ति होती है। अिन शक्तियोंका मूल खुद हममें ही है। यह समझमें न आनेसे मनुष्य अिन्हीं निसर्ग धर्मोंको देवताओंकी आराधना द्वारा अपने काबूमें लानेका प्रयत्न करने लगा। अुनकी आराधनाके लिअे वह अुनका स्तवन करने लगा। अिसके लिअे अुसने विधि-विधान तैयार किये। अुन स्तवन और विधि-विधानको श्रद्धाके कारण स्वभावतः पावित्र्य प्राप्त हुआ। और यही प्रथा आगे जारी रही। सृष्टि-सम्बन्धी बढते हुअे ज्ञानके कारण अुसमें फर्क भी पडता गया। मनुष्यकी श्रद्धा आगे चलकर भूत, पिशाच, पितर और देवताओं परसे आगे बढकर अीश्वर तक आअी। परन्तु अपनी मनःशक्तिका सामर्थ्य अुसके ध्यानमें न आनेसे अुस सामर्थ्यके द्वारा होनेवाले कार्योंके कर्तापनका आरोपण वह हमेशा दूसरी ही किसी दिव्य शक्तिमें करता आया है। मनकी अुत्तेजित अवस्थामें आकस्मिक रूपसे हुअे मनःशक्तिके नैसर्गिक केन्द्रीकरणमें से बिजलीकी तरह अेक अद्भुत शक्ति निर्माण होती है। अिसका ज्ञान न होनेके कारण मनुष्यने अपने द्वारा होनेवाले कार्यका कर्तापन दूसरी किसी दिव्य शक्तिमें आरोपित किया, फिर भी अुसने नैसर्गिक केन्द्रीकरण परसे चित्तको किसी न किसी विवक्षित संकल्प पर दृढ और केन्द्रित करना सीखा। और अिससे अुसने यह बात समझी कि हम जिस हेतुसे देवताकी आराधना करते हैं, वह हेतु अिस प्रकार द्वारा सिद्ध होता है। मनुष्यने सृष्टिके नैसर्गिक धर्मों परसे ही अपना ज्ञान बढाया है। बरसातके कारण चारों ओर फैलनेवाले अनाजसे ही अुसने खेती करना सीखा। कुदरती तौर पर होनेवाले कार्योंसे ही अुसमें वैसे कार्य योजनापूर्वक और किसी खास

अुद्देश्यसे करनेका ज्ञान स्फुरित हुआ। अिसी तरह मन शक्तिके आकस्मिक केन्द्रीकरणसे अुसे अपने सकल्पमे दृढता, तीव्रता, अेकाग्रता वगैरा लाकर अिस प्रकारकी मन स्थिति वनानेकी वात सूझी और वह अुस प्रयत्नमें लगा। अुसने अैसी शक्ति पैदा की जिससे अेक ही सकल्पके सतत अनुसधानसे 'चालू मन'* का अतमें लय करके विश्वके मनतत्वके साथ समरस होनेसे विश्वकी वस्तुओके गुणधर्मोका ज्ञान अपनेमें स्फुरित हो सके, प्रगट हो सके। अुसने यह भी देखा कि चालू चित्त-प्रवाहका लय करनेके वाद मूल सकल्पकी दृढता, तीव्रता और विश्वके अनत ज्ञानमे से अपने सकल्पकी पूर्तिके लिअे आवश्यक ज्ञान अपनेमें स्फुरित होने और अुसे धारण करनेकी अपनी पात्रता पर ही अपने सकल्पकी सिद्धिका आधार है, और तदनुसार किसी किसीने प्रयत्न भी किया। अैसे प्रयत्नोसे मनुष्यको जो स्फूर्ति होती है, वह अुसकी हमेशाकी विचारशक्ति और मन शक्तिके वाहरकी होती है। वह अुसकी कल्पनाके वाहरकी होती है। अपनी अत शक्ति और विश्व-शक्तिकी समरसतामे से वह निर्माण होती है। अैसे ही कुछ प्रकारोको योगी 'अतर्नाद' कहते है और भक्त 'ओश्वरी आदेश' समझते है।

अिसी प्रकारके प्रयत्नोसे मत्र और तत्सम विद्याओका जन्म हुआ है। तत्त्वज्ञानी लोगोने विश्वके सूक्ष्म तत्त्वोकी खोज भी अिसी प्रकारके प्रयत्नो द्वारा की है। अिसी तरह आयुर्वेदसे पहलेके औषधि-विद्याके शोधक भी अिसी प्रकारके प्रयत्नशील लोग होगे। योगमार्गमें वहुत आगे वढे हुअे सिद्ध व्यक्ति ही अिस प्रकारकी शोध कर सकते है। अुनका प्रयत्न केवल चित्तलयका नही, परन्तु अुसके वादकी महाजाग्रतिका होना चाहिये। अिन सवके पीछे चित्तके धर्मोको जाननेके वाद किये गये प्रयत्न हैं। अुनके पीछे शास्त्रीय ज्ञानका आधार है। प्रयत्न, अनुभव और निरीक्षणकी मददसे अिन विद्याओका, शास्त्रोका और ज्ञानका विकास करनेके लिअे अव भी वहुत गुजाअिश

---

* सदा अुपयोगमे आनेवाला, सस्कारोसे वद्ध तथा वौद्धिक विचारानुसार कार्य करनेवाला मन।

हैं। अिस मार्गमें सच्ची और तीव्र आतुरता, हेतु-सबंधी तीव्रता, संकल्पकी दृढ़ता, लगन, लगातार प्रयत्न और सिद्धि मिलनेमें कितना ही विलम्ब हो जाय तो भी कभी विचलित न होनेवाला धीरज, दृढ़ अीश्वरनिष्ठा वगैरा अनेक गुणोंकी जरूरत है। अिसमें जल्दबाजी, अल्पसंतोषकी वृत्ति, अविश्वास और चंचलतासे काम नहीं चलता।

सात्त्विक मंत्रविद्या

अिस विद्याके हेतु और साधनकी शुद्धि या अशुद्धिसे अुसके तीन भेद होते हैं। जिस हेतुका मानव-जातिके दुःख-निवारणके साथ व्यापक और निःस्वार्थ सम्बन्ध हो और जिसका साधन पवित्र और किसीको भी दुःख देनेवाला न हो, वह हेतु और साधन सात्त्विक माना जाता है, जिसमें व्यक्तिगत मान, प्रतिष्ठा, सुख, सामर्थ्य वगैरा प्राप्त करनेका हेतु हो वह राजस है, और जिसमें दूसरोंका नाश करके किसी भी भौतिक प्राप्तिका हेतु हो और जिसके साधन भी हिंसामय, भयानक, साधारण नीति-धर्मको अमान्य, अमंगल और अनेक प्रकारसे अपवित्र हो वह तामस प्रकार कहलाता है। ये तीन प्रकार मानव-जातिमें पुराने जमानेसे चले आ रहे हैं। अिनमें से सात्त्विक प्रकारका विचार यहां प्रस्तुत होनेसे दूसरे दो प्रकारोंकी चर्चा करनेका कोअी कारण नहीं है। मानव-जातिके कल्याणके हेतुसे तपस्वी ब्राह्मणोंने अिस बारेमें पहले कोशिश की थी और अुन्होंने कुछ मंत्रोंकी सिद्धि प्राप्त हुअी थी, और अुनसे वैदिक मंत्रोंके बारेमें लोगोंमें जो श्रद्धा अुत्पन्न हुअी वह अभी तक चली आ रही है। मध्ययुगके जमानेमें मत्स्येन्द्रनाथ और गोरखनाथ जैसे सिद्ध पुरुषोंने अिस विषयमें अनेक खोजें कीं। बौद्ध और जैन धर्ममें भी अिस विद्याके अुपासक हो गये हैं। यहूदी, पारसी, अीसाअी और अिस्लाम धर्ममें भी अिस विद्याका विकास हुआ है। अर्धजंगली जातिके धर्मोंसे लेकर सुधरे हुअे वर्गोंके लोगों तक अिस विद्याका बहुत प्रचार होता गया है। आजकल यह विद्या ज्यादातर

लुप्त हो गअी है और आज अिसका कामकाज अपने पूर्वजोकी
विद्याके पुण्यके जोर पर, अुसके निष्प्रभ और नि सत्त्व वने हुअे अवशेषके
जोर पर चलता है। सभी वैदिक मत्रोमे कभी दिव्य शक्ति नही थी।
'परन्तु लोगोका अैसा विश्वास चला आ रहा है। विशेष सामर्थ्यसे
युक्त मत्र बहुत ही थोडे होते है। अुनके प्रभाव और परिणाम स्पष्ट
होते है। परन्तु अुनका अभिमत्रण वडी आवाजमे नही करना पडता।
जैसे दियासलाअी सुलगाने या बटन दबाकर बिजलीकी रोशनी करनेके
काम अेक निश्चित क्रिया करनेसे निश्चित रूपमें होते है, वैसे ही
मत्रशक्तिसे कोअी भी निश्चित परिणाम निश्चित रूपमे होते ही है।
क्योकि अुनके पीछे निसर्ग और चित्तकी शक्तियोके धर्म जानकर
की गअी शास्त्रीय योजना होती है।

चमत्कार बनाम मंत्र-शक्ति

अीश्वरभक्त या साधु पुरुषोके जीतेजी अुनके बारेमें लोगोमें चमत्कारोकी अफवाहे हमेशा चलती रहती है। अुनके मरनेके बाद भी चमत्कार होते रहनेके वारेमें किवदन्तिया जारी रहती है। जिन अच्छी बातोके कार्यकारण-भाव ध्यानमे नही आते, अुन सबका कर्तृत्व भावुक लोग भक्त या साधुके दिव्य सामर्थ्यमें आरोपित करते है। वे अिन सबको चमत्कार समझते है। लोगोका यह विश्वास परम्परासे चला आ रहा है कि जहा साधु होगा वहा चमत्कार जरूर होगा। परन्तु जाच करने पर अिन सब बातोमें अज्ञान, भोलापन और भ्रम ही दिखाअी देता है। अिस पर भी अगर सचमुच चमत्कार जैसी दिखाअी देनेवाली कोअी वात साधुके जीवनमें हुअी हो, तो अुसे किसी विशेष प्रकारकी मन स्थितिमें हुअी आकस्मिक घटना मानना चाहिये। वह अुसकी सदाकी मन स्थिति या स्वाधीन कर्तृत्वशक्ति कभी नही हो सकती। मनकी पवित्र और स्थिर स्थितिमे अपने या दूसरेके प्रति चित्तमें अुठा हुआ कोअी सकल्प, कोअी विचार किसी समय सहज ही सिद्ध हो जाता है, या अनुकूल संयोगोमें

सृष्टिके धर्मके अनुसार भविष्यमें होनेवाली किसी बातकी स्फुरणा या कल्पना मनकी पवित्र स्थितिमें बिलकुल स्वाभाविक रूपमें चित्तमें पैदा होती है और वाणी द्वारा व्यक्त कर दी जाती है। और बादमें वैसा ही हो जाता है। अिस किस्मकी घटना कोअी साधु माने जानेवाले व्यक्ति द्वारा हो जाय, तो हम अुसे चमत्कार कह देते हैं। परन्तु मामूली दुन्यवी कामकाज करनेवाले आदमीके बारेमें भी असे अनुभव होते हैं, फिर भी साधुकी तरह हम अुसकी ओर कभी अद्‌भुतता, दिव्यता या चमत्कारकी दृष्टिसे नहीं देखते। साधुका अेकाध शब्द या आशीर्वाद सच्चा निकल आये, तो अुसे हम चमत्कार समझकर अुसके कारण जन्मभर अुनके प्रति श्रद्धा और पूज्यभाव रखते हैं। परन्तु कअी बार अुनके शब्द और आशीर्वाद बेकार साबित होते हैं, लेकिन अुनकी गिनती हम कभी नहीं करते। अेक बार मनुष्यकी किसी अीश्वरभक्त पर श्रद्धा जम जाती है, तो जीवनमें जो भी अच्छा हो वह अुनकी कृपासे हुआ और बुरा हो तो वह अपने पापका फल है— अिस तरह मनुष्य बटवारा कर लेता है। या कुछ बुरा हो जाय तो भी अुसमें महापुरुषका हेतु हमारी भलाअीका ही होना चाहिये, असी मान्यता रखकर अुनका यह प्रयत्न होता है कि हमारी मूल श्रद्धामें कमी न आने पाये। अेक व्यक्तिकी अिस प्रकारकी श्रद्धाके कारण अनेक मनुष्य अुस भक्तके पास कामनिक बुद्धिसे जाने लगते हैं। और यह कल्पना करके कि हमें भी अुसकी अद्‌भुत चमत्कार-शक्तिका अनुभव होगा और हमारे दुःखका कुछ निवारण होगा, श्रद्धायुक्त मनसे प्रतीक्षा करते रहते हैं। समय पाकर असे अनेक अंधश्रद्धालु व्यक्तियोंकी मिलकर अेक मण्डली बन जाती है और अुनमें अेक-दूसरेके सहवासके कारण और साधुकी निरन्तर सराहनासे अेक प्रकारका ममत्व पैदा हो जाता है। अिस प्रकार अपने-अपने जीवन-व्यवसायमें मिलनेवाली सफलताके समय अेक-दूसरेके सहवासमें आनेवाला, बादमें अेक-दूसरेके साथ अपने गुरुके सामर्थ्य

और चमत्कारके वारेमें तरह तरहकी कथाये जोडनेवाला, रचनेवाला और कहता रहनेवाला तथा अुसका प्रचार करनेवाला अेक समूह पैदा हो जाता है। मूलमें कुछ न होने पर भी अज्ञान और भ्रमके कारण चमत्कार और दिव्य शक्तिकी कअी कहानिया हरअेक साधु पुरुषके नाम पर चलती रहती हैं। साधुको भी वे अच्छी लगती है। परन्तु अुनमे से अेक भी घटना साधुकी स्वाधीन मन शक्तिसे हुअी नही होती। वहुत हुआ तो अुनमें अेकाध अकस्मात् वनी हुअी घटना होती है। कोअी काकतालीय न्यायसे होनेवाली वात होती है। अुसकी तहमें निश्चयपूर्वक शास्त्रीय ज्ञान या स्वाधीन साधन न होनेसे वही चीज वह वार-वार नही कर सकता। अिन घटनाओमें और सिद्ध मत्रविद्यामे वडा फर्क है। जहा मत्रविद्याका परिणाम स्वाधीन नही परन्तु अनिश्चित हो, वहा भी यही समझना चाहिये कि भ्रम है।

चमत्कार सम्बन्धी शास्त्रीय विचार

मानवजीवनके हितकी दृष्टिसे विचार करे तो चमत्कार भ्रम और भोलापन वढानेवाला है। अुससे किसी भी प्रकारका कल्याण नही होता। परन्तु सात्त्विक मत्रविद्या मनुष्यके लिअे अुपयोगी होनेके कारण वह शास्त्रीय ज्ञानका विकास करनेवाली है। जैसे वर्तमान भौतिक ज्ञान और विज्ञान द्वारा सृष्टिके सूक्ष्म और व्यापक गुणधर्मो और शक्तियोकी खोज हो रही है, अुसी तरह मानवचित्त और मानव-मनके सामर्थ्यकी शास्त्रीय ढग पर खोज होती रहे और मानवजीवनको अनेक प्रकारसे दु खमुक्त और सुखमय वनानेके लिअे अुसका अुपयोग किया जाय, तो मनुष्यका वर्तमान जीवन और जीवन-पद्धति जरूर वदल जायगी। जैसे भौतिक शास्त्रोके ज्ञानका वेहद दुरुपयोग हो रहा है, वैसा ही दुरुपयोग मानसिक शक्तिका भी होना सभव है। यह खतरा ध्यानमें रखकर हमे अिस मार्गके सात्त्विक प्रयत्नोको प्रोत्साहन देना चाहिये। अिसके लिअे भोलेपन और नास्तिकता दोनोसे वचकर हमें शोधक और समीक्षक पद्धतिसे सृष्टिमें रहनेवाले

विविध धर्मों और मानव चित्त-शक्तिका अध्ययन करना चाहिये। किसी भी साधुके चमत्कारसे अेकदम आश्चर्यचकित होकर भावुक न बनना चाहिये, बल्कि अुसमें कुछ सत्य भी है या केवल भ्रम ही है, काकतालीय न्याय है या कोअी धोखाधडी है, हाथकी चालाकी है या आसपासके लोगोंकी कोअी कारस्तानी है, अिन सब बातोंकी हमें जांच करनी चाहिये। साधुकी किसी विलक्षण और अतर्क्य शक्ति द्वारा चमत्कारके रूपमें किसीका दुःख दूर हुआ हो, किसीका रोग मिट गया हो, किसीके लिअे अुसने पानीका दूध कर दिया हो और अैसी शक्तियां साधुमें सचमुच ही हों, तो साधुत्वका मुख्य गुण दया अुसमें अवश्य होनी चाहिये। अतः अैसी स्थितिमें हमें अुसके द्वारा समाजके दुःखों और रोगोंका निवारण करानेका प्रयत्न करना चाहिये। हमें अुससे अैसी व्यवस्था करानी चाहिये, जिससे गरीबों और अुनके बच्चोंको रोज दूध मिले। अैसा करनेको वह साधु तैयार न हो तो हमें समझ लेना चाहिये कि अुसमें अिस प्रकारकी मानसिक शक्ति नहीं है और अुसके हाथसे अिस शास्त्रका विकास नहीं होगा। चमत्कारोंके मामलेमें हम शास्त्रीय ढंगसे विचार और जांच नहीं करते, अिससे अुनके बारेमें अंधश्रद्धा और भोलापन बढा है और अुसीमें से आगे बढकर यह बात दंभ और धोखेबाजी तक जा पहुंची है। अुसमें रहनेवाली अंधश्रद्धाकी जड़में भय और लालच होता है और दोनोंमें से खुशामद और गुलामीकी वृत्ति पैदा होती है। अिनमें मानव-जातिका कल्याण नहीं है।

शास्त्रीय संशोधन की जरूरत

हमें विद्या, शास्त्र और सद्गुणोंकी वृद्धिकी और अिनके द्वारा कल्याणप्रद मार्गोंकी जरूरत है। विद्या, शास्त्र और ज्ञानकी सहायतासे हम सृष्टिमें रहनेवाले गुण, धर्म और शक्तियोंको जान सकते हैं; जानेमें रहनेवाली शक्तियोंको पहचानने लगते हैं। और सद्गुणोंकी मददसे हम सबके कल्याणके लिअे अुन सबका अुपयोग

कर सकते है। यह विद्या जाननेवालोके भी दो-तीन महत्त्वके भेद हैं। जो मनुष्य निसर्गके गुण, धर्म, अुसकी शक्तिया, अिसी प्रकार चित्त, मन, प्राण और चेतनकी शक्तियोके स्थूल और सूक्ष्म स्वरूप, तथा अिन शक्तियोकी जाग्रति और विकास आदि जानकर अुनके द्वारा अतर्बाह्य वाछित परिणाम पैदा कर सकता है और अतर्बाह्य ज्ञानकी मददसे योजना तैयार करके सकल्पित हेतु या कार्य सिद्ध कर सकता है, वह अिस विद्याका सिद्ध माना जाता है। वही अिस विद्याका अुपासक है। वह सच्चा शोधक और शास्त्रज्ञ है। दूसरा अैसे शोधकसे अिस विद्याके थोडेसे विधिनिषेध, थोडीसी क्रिया-प्रक्रियायें और थोडेसे कार्यकारणभाव समझकर अुस विद्याका अुपयोग करनेवाला है। वह अिस विद्याको अशत जानता है। और तीसरा किसी निश्चित विधिसे केवल अुसका अुपयोग करनेवाला है। ये तीन अेक-दूसरेसे बहुत भिन्न है। मूल शोधकसे दूसरे दोकी बराबरी कभी नही हो सकती। जैसे रेडियो अथवा किसी यत्रका मूल शोधक या आविष्कारक अेक होता है, दूसरा अुससे थोडासा ज्ञान लेकर अुसके अनुसार यत्र बनानेवाला होता है, और तीसरा अुसकी किसी खास कल या स्विचको घुमाकर अुसे चलाने या बन्द करनेवाला — अर्थात् अिस प्रकार अुसका केवल अुपयोग करनेवाला होता है। यही हाल मत्र या मन शक्तिके बारेमें है।

आज भी कही-कही कुछ रोगो पर या जहरीले जानवरके जहर पर मत्रोपचार करनेवाले मिल जाते है। परन्तु वे अिस विद्याके सिद्ध नही है। वे केवल कल या स्विच घुमाकर यत्रको चलाने या बन्द कर देनेवालेकी तरह है। अुनमे शोधकवृत्ति भी नही पाओ जाती। दियासलाओ कैसे बनाओ जाती है, अिसके ज्ञानके बिना भी मनुष्य अुसे जला सकता है। मशीनकी रचनाके ज्ञानके बिना भी अुसे चलाया जा सकता है। यही हाल आजकलके मत्रोपचारके बारेमे पाया जाता है। अिसलिअे जो केवल मत्र जानता है, वह

मत्रज्ञ या शास्त्रज्ञ नहीं है। वह प्रयोग कर सकता है, परन्तु अुसे अुसके कार्यकारणभावका ज्ञान नहीं होता। जो अंतर्बाह्य शक्तिके मूलतत्त्व जानता है, और अुनकी वृद्धि करके अुनके अुचित मेलसे अिष्ट सिद्धि प्राप्त कर सकता है, वही सिद्ध या मत्रज्ञ है। वह मत्र निर्माण कर सकता है। सिद्ध बननेके लिअे मनःशक्ति और संकल्प-शक्ति बढ़ानी पड़ती है। अुनके गुणधर्म अनुभवसिद्ध करने पड़ते हैं। सृष्टिमें रहनेवाली स्थूल और सूक्ष्म शक्तियों और तत्त्वोंको जानकर, अुनके गुणधर्म पहचानकर, अुनका अेक-दूसरेके साथ मेल बैठाकर और अुन्हें अनुकूल बनाकर मन और सृष्टि दोनों शक्तियोंकी मददसे वांछित संकल्प और कार्य पूरा करनेके लिअे अुसे अपनेमें संयोजक शक्ति पैदा करनी पड़ती है। अुसके लिअे तपश्चर्याकी जरूरत होती है। जीवनका सबसे महत्त्वपूर्ण और अुत्साहका समय अुनके पीछे लगाना पड़ता है। अिन सब चीजोंके अतिरिक्त संकल्प-सिद्धिके लिअे आवश्यक तीव्रता, प्रखरता आदि अनेक गुण मनुष्यमें होने चाहियें। ये सब चीजें जाननेके बाद हमें चमत्कार, सिद्धि और अिस तरहकी दूसरी विद्याओंका विचार करना चाहिये। अिनमें कौनसी शक्ति काम करती है और अुनका मानव-जातिके कल्याणके लिअे कितना अुपयोग हो सकता है, यह देखना चाहिये। केवल अपनी कोअी व्यक्तिगत और अुतने समयकी जरूरत अकस्मात् पूरी हो जाय और अितनेसे चमत्कारकी कल्पनासे आश्चर्यचकित होकर हम जीवन भर किसीके प्रति श्रद्धा रखने लगें तो काम नहीं चलेगा। अिससे मानव-जातिका कल्याण नहीं होगा। मानव-जातिके कल्याणके लिअे अनेक शक्तियों और शास्त्रोंकी आवश्यकता है। अिसलिअे मानव-समर्थ किसी विशेष शक्तिसे मानव-जातिका कोअी भला हो सकता है या नहीं और हो सके तो वह शक्ति प्राप्त करनेका रास्ता और मार्ग क्या है, यह ढूंढ निकालना हमारा काम है। हिप्नॉटिज्म, मेस्मेरिज्म वगैरा अिन्द्रजालमें प्रयोग आजकल हुआ करते हैं। अुसमें सत्य-असत्य कितना है और

अुस विद्याका मानव-मन पर अच्छा-बुरा क्या असर होता है, यह हमे जान लेना चाहिये। कुछ यौगिक पथोमे शक्तिपात और शक्ति-सचरण विद्यासे गुरु-शिष्यका मार्ग और अभ्यास आसान बनता है। अिसमें भी हमें अिस बातका ज्ञान प्राप्त करना चाहिये कि अिससे मन शक्तिका कितना सम्बन्ध है और शिष्यकी प्रगतिके लिअे अुसका कितना अुपयोग हो सकता है, और अुस शक्तिका अुपयोग केवल अिसी क्षेत्रमे हो सकता है या जीवनके दूसरे क्षेत्रोमे भी अुस विद्याके सामर्थ्यका अुपयोग करके मानव-जातिके दुःख कम किये जा सकते है। योगकी अष्ट महासिद्धियो और अुपसिद्धियोका मानव-प्रगतिमे कुछ अुपयोग हो सकता है या नही, यह भी जाच करके देखना चाहिये। छायासाधन, अग्निसाधन वगैरा साधनो द्वारा मनकी शक्ति बढाकर, आध्यात्मिक मार्गमे अुसका अुपयोग करके अपनी अुन्नति कर लेनेके पथ हमारे देशमें है। अुनमें भी सचमुच कितना तथ्य है, अिसकी भी जाच करनी चाहिये। साप, बिच्छू और दूसरे जहरीले जानवरोका जहर मत्रसे अुतारनेके और शीत, पित्त और वात पर मत्रका अुपचार करनेके तरीके हमारे देशमे कही-कही प्रचलित है; अुनमे भी कितना सत्य है और कितना भ्रम है, यह खोज निकालना चाहिये। साराश, कुल मिलाकर अिन सब बातोसे मनकी शक्तिका क्या सम्बन्ध है और अुनमें कार्यकारण-सम्बन्ध क्या है, अिसका शास्त्रीय दृष्टिसे सशोधन होनेकी जरूरत है।

संशोधनका फल

अिन सबका सच्चा ज्ञान हुअे बिना और अुसे शास्त्रीय स्वरूप मिले बिना अिस विषयमें अेक ओर अन्धविश्वास और दूसरी ओर नास्तिकता जैसी जो परस्पर विरोधी चीजें पैदा हो गअी है, वे दूर नही होती। ये दोनो चीजे जीवनके अुत्कर्ष और अुन्नतिकी दृष्टिसे बाधक है। किसी भी विषयके सत्य और यथार्थ ज्ञानसे, अुस ज्ञानके सामर्थ्यसे और

ठीक अवसर पर अुनका ठीक तरहसे अुपयोग करनेसे मानवजीवन अुत्कर्ष और अुन्नतिकी तरफ प्रगति करता है। अिसमें सोचने योग्य प्रश्न यही है कि मानव-मनका सामर्थ्य किस तरह जाग्रत और वृद्धिगत किया जाय, और जैसे हम शरीर और बुद्धिकी शक्तिका अुपयोग करके अपना जीवन सुखी करनेका प्रयत्न करते हैं, वैसे ही अिस सामर्थ्यका भी जीवनके अनेक क्षेत्रोंमें अुपयोग करके अपना जीवन कैसे निर्दोष, दुःखरहित और सुखमय बनायें? अिसमें शक नहीं कि सद्गुणोंके रूपमें हममें विकास पाओी हुओी मानसिक शक्ति जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें हमें अुपयोगी हो सकती है। परन्तु अिसके सिवाय और किसी तरहसे मनकी शक्तिका विकास करके यदि अुस सारी शक्तिको शुद्ध संकल्पमें केन्द्रित किया जाय और अुस संकल्पकी दृढ़ता, तीव्रता और अेकाग्रता बढ़ाकर मनुष्य यदि विश्वशक्तिके साथ — परमात्माके साथ — समरस होनेमें सफल हो जाय, तो अुसमें कुछ न कुछ विशेष शक्ति संचरित होने लगती है; और अुस शक्तिकी सहायतासे कुछ कठिन बातें भी आसानीसे सिद्ध हो सकती हैं। अिसमें कोओी अद्भुतता नहीं, चमत्कार नहीं। सृष्टिके अनेक धर्मोंके अनुसार मानव-मनका भी यह अेक धर्म है। जैसे विद्युत् वगैरा सृष्टिके धर्म कुछ खास संयोगोंमें प्रगट होते हैं, अुसी तरह मानव-मनका यह धर्म भी अुचित प्रयत्नसे प्रगट होता है। अगर हम सत्यार्थी, प्रयत्नशील और निष्ठावान बन जाय, तो चमत्कारके भ्रमसे या सचमुच होनेवाले चमत्कारसे आश्चर्यचकित न होकर, भोली श्रद्धासे भावनावश न होकर, अुसके कार्यकारणभावकी खोज करेंगे और सृष्टि और मन-शक्तिके गुणधर्म पहचानकर अुनका यथार्थ ज्ञान प्राप्त करेंगे तथा अुसका मानव-जीवनमें अुपयोग करते रहेंगे। अैसा हो जाय तो दुनियाकी खिन्नता और अुसके साथ ही लोगोंकी भोली श्रद्धा मिट जायगी और हमारा जीवन अपने आप समृद्ध बन जायगा।

अीश्वरनिष्ठाकी आवश्यकता और अुसका सामर्थ्य

मानव-जातिकी सर्वांगीण अुन्नतिके लिअे आतुरता, ज्ञानकी अभिरुचि, प्राणीमात्रके प्रति प्रेम, दु खियोके लिअे करुणा, पवित्रता, सयम और सद्गुणोकी ओर स्वाभाविक झुकाव, स्वय कष्ट अुठाकर दूसरोको सुखी देखनेकी अिच्छा, जीवन-सिद्धिकी महत्त्वाकांक्षा, सतत प्रयत्नके लिअे आवश्यक लगन, शोधकता, धैर्य और गाम्भीर्य आदि अनेक प्रकारकी पात्रता जिसमे हो, अुसके लिअे अूपर वताअी हुअी सिद्धि कठिन नही है। और सबसे महत्त्वका गुण है अीश्वरनिष्ठा। यह जिसमे होगा अुसके लिअे कुछ भी कठिन नही है। हम संकल्पशक्तिसे कोअी सिद्धि प्राप्त कर सकते हो, तो भी यह नही भूलना चाहिये कि सर्वशक्ति और सर्व-सामर्थ्यका अनन्त भंडार परमात्मा है और अुसीके पाससे कोअी भी शक्ति हममें सचरित और आविर्भूत होती है। अिस निष्ठाके विना हम अुस अनन्त शक्तिमे से कोअी भी विशेष शक्ति अपनेमे नही ला सकते और न अुसे धारण ही कर सकते है। अिसीलिअे अपना क्षुद्र अहकार मिटाकर, अपनापन भुलाकर हम नम्रता, अनन्यता और अेकनिष्ठासे विश्वशक्तिके साथ समरस हो सके, तो अुसीमे से आगे चलकर प्राप्त होनेवाली महाजाग्रतिमें से हममे सकल्पित ज्ञान और शक्तिकी स्फूर्ति तथा सचार हुअे विना नही रहेगा। जीवनकी समस्त सिद्धिका सूत्र अिसीमें है।

विवेक और साधना

दूसरा भाग

विभाग १ : धर्म्य व्यवहार

१

विद्यार्थीदशाका महत्त्व

मेरे वालमित्रो,

संस्कार ग्रहण करनेका समय

तुम्हे अुपदेशके दो शब्द कहनेके अवसर पर मुझे वडा आनन्द हो रहा है। तुम विद्यार्थी हो। सारे जीवनमे यह समय वडे आनन्द और सुखका माना जाता है। मनुष्य वडा होनेके वाद जव दुनियादारीकी अनेक आपत्तियो और कठिनाअियोसे तग आ जाता है, तव अुसे अपनी विद्यार्थी-अवस्थाकी याद आती है और यह खयाल भी होता है कि अुस समय हम कितने अविक सुखी और आनन्दी थे। अिसका कारण यही है कि अुस समय मनुष्य पर कोअी भी सासारिक जिम्मेदारी नही होती। परन्तु समस्त जीवनहितकी दृष्टिसे विचार करे, तो यह अवस्था अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। अिसी समय जो संस्कार और आदते पड जाती है, वे मनुष्यमें जीवनभर कायम रहती है। अिसलिअे यह काल मुझे केवल आनन्द और वेफिक्रीका मालूम न होकर जीवनके लिअे जरूरी अुच्च शिक्षा प्राप्त करने तथा अुच्च सस्कार और अच्छी आदते डालनेके खयालसे वडे महत्त्वका लगता है। अिसी कालमें यदि तुम जीवनका महत्त्व समझ लो, तो अपने भावी जीवनकी वुनियाद अपनी अिस विद्यार्थी-दशामे ही डाल सकोगे। यदि आज तुममे अच्छे सस्कार दृढ हो जायं, तुम्हे अच्छी शिक्षा मिले और अुसके अनुरूप तुम्हारे संकल्प आगे भी वने रहें, तो तुम्हारा सारा जीवन अुज्ज्वल हुअे विना नही रहेगा। लेकिन अिस प्रकारकी दीक्षा मिलनेकी आज समाजमें कही भी व्यवस्था नही है। आज

तुम ऐसी स्थितिमें हो कि यदि प्रयत्न किया जाय, तुम्हारे मनमें अच्छे संस्कार जमा दिये जायं, तो तुममें से ही अलौकिक पुरुष निर्माण किये जा सकते हैं। जिस दृष्टिसे विचार करने पर आजका तुम्हारा समय बेशक बड़े ही महत्त्वका माना जाना चाहिये।

श्रेष्ठ पुरुषोंके चरित्रोंसे बोध

दुनियामें सदाचारी और दुराचारी, सत्कर्मरत और सदा दुष्कार्यमें मग्न, परोपकारी और दूसरोंका सर्वस्व हरण करनेवाले, दयालु और निर्दयी, पवित्र और व्यसनी, संयमी और स्वेच्छाचारी, अुदार और कृपण, धर्मनिष्ठ और स्वच्छंदी, सेवापरायण और स्वार्थी, जिस प्रकार परस्परविरुद्ध स्वभावके मनुष्य पाये जाते हैं। जिन सबके जीवनकी जांचसे पता चलता है कि अुन्हें अच्छे-बुरे संस्कार बचपनसे ही मिले थे। कृतज्ञता, दया, सत्य-वचन, प्रामाणिकता, अुद्योगप्रियता, नियमितता, मेहनत करनेकी आदत, निरालस्य, आज्ञापालन, मातृपितृभाव, बन्धु-भगिनीभाव, अपने पड़ोसीके प्रति सख्यभाव, मित्रता, सहयोग-वृत्ति, दूसरोंके लिअे अुपयोगी होनेका शौक और व्यसन-दुराचरण-स्वार्थ-अन्याय-अस्वच्छता-कठोरता-कपट-कृपणता अित्यादि दुर्गुणोंके लिअे अरुचि या निषेधवृत्ति वगैरा तमाम सुसंस्कार बचपनमें मिले हों, तो ही वे हृदयमें दृढ़ होते हैं और अुचित समय पर वृद्धि पाते हैं। धर्मनिष्ठा और अीश्वरनिष्ठा, देशप्रेम और सज्जनोंके प्रति सद्भाव, सद्ग्रंथोंके प्रति रुचि और परोपकारका शौक, अपनेसे छोटोंके लिअे स्नेह और ममता तथा बड़ोंके प्रति आदर और पूज्य भाव, दुर्बल, पंगु और रोगीके प्रति सहानुभूति और करुणा, निर्भयता और साहसमें आनन्द आदि अनेक सद्गुणोंके संस्कार जिस अुमरमें ही दृढ़ हो जाय, तो वे जितने गहरे पैठेंगे अुतने बादकी अुमरमें नहीं। संसारके महापुरुषोंके चरित्रोंसे यही बात हमें मालूम होती है। श्री रामचन्द्र और श्रीकृष्ण, सिद्धार्थ गौतम और वर्धमान महावीर, मुहम्मद और अीसामसीह,

ज्ञानेश्वर और अेकनाथ, शकराचार्य और विद्यारण्य, वाशिंग्टन और गैरीवाल्डी, राणा प्रताप और शिवाजी महाराज, सन्त तुकाराम और समर्थ रामदास, माधवराव पेशवा और रामशास्त्री — अिन सबके और अर्वाचीन कालके श्रेष्ठ पुरुषोके चरित्र पढनेसे यही वात सिद्ध होती है कि अिन सव पुरुषोको वचपनमे ही अुन्नत और अुदात्त सस्कार मिले थे। अनुकूल या क्वचित् प्रतिकूल परिस्थितिमें भी अुन सस्कारोका पोषण होते-होते वे दृढ हो गये और ठीक समय पर अुनके सद्गुण प्रगट होते रहे और अिसलिअे अन्तमें वे धन्य हुअे। अिन सबसे यही स्पष्ट होता है कि विद्यार्थी-दशा जीवनकी वहुत ही महत्त्वपूर्ण अवस्था है। अिसका महत्त्व प्राचीन कालमें हम जानते थे। अुस जमानेमे हमे अिस अुम्रमें अुत्तमोत्तम संस्कार मिलनेकी सुविधा थी। अिस प्रकारकी दीक्षा हरअेक विद्यार्थीको दी जाती थी। ब्रह्मचर्यकी दीक्षाको विद्यार्थी-दशाका प्रारम्भ माना जाता था। विद्यार्थियोके हृदय पर छुटपनसे ही यह महान् सस्कार जमाया जाता था कि जीवन केवल अपने शारीरिक सुखके लिअे नही, वल्कि सबके लिअे और धर्मके लिअे है। दुर्भाग्यसे अिस शिक्षाप्रणाली, अिस दीक्षा-परम्पराके मिट जानेके वाद समयानुसार आवश्यक परिवर्तन करके अुसे जारी रखनेकी योजना वडे पैमाने पर कोअी कर न सका, और वचपन तथा विद्यार्थी-दशा धर्म, शील, चारित्र्य, नीति वगैरासे सम्पन्न होनेकी दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण है और जीवनसम्वन्धी महाव्रतकी दीक्षा लेकर जीवनका महान् अुद्देश्य पूरा करनेके लिअे आवश्यक सद्गुणोका सस्कार प्राप्त करनेका पुण्यकाल है, यह भावना हममें फिर कभी निर्माण नही हुअी।

परन्तु विद्यार्थियो, तुमने अगर अितिहास पढा होगा, तो तुम्हे अवश्य मालूम हुआ होगा कि अिन सव वातोके कैसे वुरे परिणाम हम सवको अनेक वर्षोसे भुगतने पड रहे है। अिससे तुम्हे दु ख और लज्जा मालूम होती हो, अिस स्थितिसे छुटकारा पानेकी तुम्हारी अिच्छा हो, तो तुम्हे जाग्रत होकर यह हालत वदल देनेकी कोशिश करनी

चाहिये और अपनी विद्यार्थी-अवस्थाको सफल बनानेमें लग जाना चाहिये। अच्छे संस्कार प्राप्त करनेकी सुविधा यदि आज तुम्हें कहीं भी दिखाओ न देती हो, तो भी तुम महान् पुरुषोंके चरित्र और अच्छे ग्रंथ पढ़ो, अुन सबका मनन करो और अुनसे अुचित शिक्षा ग्रहण करो। जिस खयालसे निराश होकर न बैठो कि हमें अच्छी शिक्षा और संस्कार देनेवाला कोओ नहीं है। तुम्हें अच्छा बननेकी अिच्छा हो, तो तुम खुद ही अुत्साहपूर्वक अच्छे संस्कार प्राप्त करनेमें जुट जाओ। अगर तुम्हारे अन्तरमें सदिच्छा प्रगट हो जायगी, तो तुम्हें आजकी हालतमें भी रास्ता मिल जायगा। तुम्हारी अिच्छा दृढ होगी, तुम्हारा संकल्प प्रबल होगा, तो परमात्मा तुम्हें रास्ता बतायेगा। वह तुम्हारे रास्तेमें आनेवाली रुकावटें दूर करनेका सामर्थ्य तुम्हें देगा। परन्तु जिसके लिये तुम्हें अपने प्रयत्नकी पराकाष्ठा करनी चाहिये। तुम्हें जिस मामलेमें कभी आलस्य करना या अूबना न चाहिये, बल्कि हमेशा अुत्साही और प्रयत्नशील रहना चाहिये।

अच्छे-बुरे संस्कारोंके परिणाम

तुम्हारे लिअे अच्छेसे अच्छे संस्कार प्राप्त करनेका यही समय है, और खराब आदतें डालकर जीवनको बुरे रास्ते लगानेका भी यही समय है। आज तुममें यह समझनेकी शक्ति नहीं कि किस बातका क्या परिणाम होगा; अिसी तरह भी तुम्हारी बुद्धिमें किसी बातके परिणामका दीर्घदृष्टिसे विचार करने जैसी कुशलता और प्रगल्भता भी नहीं [illegible] है। आज तुम खुद भले-बुरेका विचार नहीं कर सकते, जिसलिअे जो बातें महापुरुषोंने कही हैं, [illegible] जिन चीजोंको पसन्द किया है, अुन्हींको तुम अपनाओ। [illegible] तुम अपने जीवनको [illegible] बनाओ। [illegible] सरल और [illegible] [illegible]। समय पाकर तुम्हारी [illegible] और [illegible] तुममें विवेककी भी वृद्धि होगी। यह विवेक ही आगे [illegible] तुम्हें भले-बुरेका निर्णय करनेमें सहायक

होगा। तुम्हारा आत्मविश्वास वढेगा। फिर तुम्हे अपने मार्गमें किसीसे पूछनेकी जरूरत नही रहेगी। परन्तु तब तक तुम किसी विवेकी और सयाने पुरुषके विचारसे चलो तो तुम्हारा कल्याण होगा। अच्छे वननेकी तुम्हारी अुत्कट अिच्छा हो, तो आज भी तुम्हे जो ज्ञान है अुसे आचरणमे लानेका प्रयत्न करो। बुरा क्या है, अिसका भी तुम्हे खयाल है, अिस मान्यताका दृढतासे त्याग करो। अपना जीवन अुन्नत और अुदात्त वनानेकी तुममें महत्त्वाकाक्षा हो, तो आजसे ही अिस मार्ग पर चलो।

निश्चय, निर्दोषता और सौन्दर्य

काया, वाचा और मनसे निर्दोष रहनेका तुम्हे आजसे ही निर्णय कर लेना चाहिये, क्योकि तुम अपनी वर्तमान निर्दोष अवस्थामे ही पवित्र निश्चय कर सकते हो। तुम अेक बार निश्चय कर लोगे, तो फिर किसी भी हालतमें अुसे पूरा करनेकी शक्ति तुममे जाग्रत हुअे विना नही रहेगी। परन्तु निश्चयके सम्वन्धमें तीन महत्त्वकी बाते तुम्हे ध्यानमे रखनी चाहियें, अिसमें तुम्हे सदा प्रामाणिक, प्रयत्नशील और सावधान रहना चाहिये। अिन तीनोमें से अेक भी वातकी तरफ तुम लापरवाह रहोगे, तो तुम्हारा निश्चय पूरा नही होगा। निश्चयको दृढ और मजवूत वनाना या अुसे कमजोर वनाना तुम्हारे हाथमें है। दृढ निश्चय द्वारा निर्दोषता सिद्ध करना तुम्हारा पहला काम है। अिसकी सिद्धिके वाद भी काया, वाचा और मन द्वारा प्रगट होनेवाले अनेक सद्‌गुण सम्पादन करनेका तुम्हारा प्रयत्न होना चाहिये। अपना शरीर मजवूत और चपल वनानेके लिअे तुम्हे परिश्रम या व्यायाम अवश्य करना चाहिये। तुम्हे यह समझना चाहिये कि रोज परिश्रम या व्यायाम किये विना हमें खानेका अधिकार नही है। तुम्हे किसी भी व्यसनकी जरासी भी छूत नही लगने देना चाहिये। जीवन भर व्यसनसे मुक्त रहना हो, तो अुसके प्रति अपने चित्तमें तीव्र निषेधकी भावना सदा जाग्रत रहने दो। यह भावना तुम्हे अिस

मामलेमें शुद्ध रखेगी। तुम यदि चाहते हो कि तुम्हारा जीवन सब प्रकारसे अुदात्त हो, तो तुम्हें अनेक सद्‌गुणोंकी प्राप्ति करनी होगी; और अपने जीवनको सर्वांग सुन्दर और निर्दोष बनानेकी तुम्हारी अिच्छा हो, तो तुम्हें अपनी कायिक, वाचिक और मानसिक, हर प्रकारकी क्रिया पर ध्यान देना पड़ेगा। तुम्हें हर तरहका दोष दूर करना पड़ेगा। जिस मामलेमें आलस्य या लापरवाही करनेसे काम नहीं चलेगा। तुम्हारी कलाअी और बाहुमें अेक अेक मन वजन आसानीसे अुठानेकी शक्ति लाना सम्भव है। लेकिन अुसे प्राप्त करनेके बारेमें तुम प्रयत्नशील न हो, तो दोमें से अेक ही बात साबित होगी: या तो तुम्हें शक्तिसे अशक्ति ज्यादा प्रिय है या शक्ति प्रिय होने पर भी अुसे प्राप्त करनेमें तुम आलसी हो। तुम्हारी यह अिच्छा हो कि तुम्हारे हाथ-पैरोंमें, अंग-प्रत्यंगोंमें शक्तिका सतत संचार होता रहे, तो तुम्हें अपने सारे अवयवोंको अुचित तालीम देनी चाहिये। तुम्हारे छोटे-बड़े प्रत्येक अवयवमें मौका पड़ने पर आवश्यक कार्यक्षमता दिखाअी देनी चाहिये। तुम्हें अपने किसी भी अवयवको बुरी आदत नहीं डालनी चाहिये। अिसके बिना निर्दोषता सिद्ध नहीं होगी। शरीर निरोगी, मजबूत, गठीला, चपल और फुर्तीला रखो, तो अिसीमें सारा शारीरिक सौंदर्य भरा रहेगा। अपने शरीरमें शुद्ध रक्त दौड़ने दोगे, तो तुम्हारे शरीर पर कांति दिखाअी देगी। अिसीमें सच्चा सौंदर्य और पौरुष है।

वाचाशुद्धि और क्रियाशुद्धिके प्रति सावधानी

तुम्हें अपनी वाणी सदा पवित्र रखनी चाहिये। तुम्हारे मुहसे कभी असभ्य, हल्के या गन्दे शब्द न निकलने चाहियें। निन्दा, कपट, द्वेष, असत्य, अप्रामाणिकता, बोलेबाजी आदि दोष तुम्हारी वाणीमें कभी न आने चाहियें। अुसमें स्वाभाविक ही मृदुता, मधुरता और सत्यता होनी चाहिये। तुम्हारे शब्दोंमें दुःखियोंके दुःख हरने करनेकी और संकटमें पड़े हुअे तथा भयग्रस्त

लोगोको हिम्मत वधानेकी शक्ति होनी चाहिये। तुम्हारे शब्दोसे निराधारको आधार, विचारहीनको विचार और अज्ञानीको ज्ञान मिलना चाहिये। और तुम्हारे शब्दोमें यह सामर्थ्य भी होना चाहिये कि अुद्दड, निर्दयी और दुराचारी लोगोको डर लगे और अुन्हे पश्चात्तापकी प्रेरणा मिले। जीवन केवल मृदुतासे नही चलता। अिसलिअे मौके पर मनुष्यमें सख्ती, दृढ आग्रह और न्यायकी कठोरता भी होनी चाहिये। तुम्हे जीवनके लिअे आवश्यक गुणोका अभीसे अभ्यास रखना चाहिये और अभीसे तुममें गुण-दोषके मामलेमे ग्राह्य-अग्राह्य-वृत्ति दृढ होनी चाहिये। किसी भी दोषको क्षुद्र न समझो। क्षुद्र समझकर आज अुसकी तरफ लापरवाही करोगे, तो तुममे गुणोकी वृद्धि होनेके वजाय सिर्फ दोषोकी ही वृद्धि होगी, क्योकि गुणोका प्रयत्नपूर्वक अभ्यास करना पडता है, जबकि दोष केवल दुर्लक्ष करनेसे बढ जाते है। अैसी कअी खराव आदते, जो मनुष्यकी वडी अुमरमें अुसका स्वभाव बनी हुअी दिखाअी देती है, व्यवस्थित और सभ्य व्यवहारकी दृष्टिसे दूसरोको अजीव लगती है। परन्तु वडे होने पर अुसके वारेमे कोअी सूचना या सकेत तक नही कर सकता। मनुष्यको अपनी सारी अिन्द्रियो पर, अपनी क्रियाओ पर हमेशा सावधानीसे नजर रखनेका अभ्यास हो, तो अुसे कोअी भी विचित्र आदत नही पड सकेगी। कुछ वडी अुम्रके आदमियोमे भी व्यर्थ और अव्यवस्थित रूपमें हाथ-पैरोसे कुछ न कुछ क्रिया करते रहनेकी आदते नजर आती है। अुनका प्रारम्भ भी तुम्हारी अिस अुम्रमें ही होता है। कुछ लडकोको दातोसे नाखून काटनेकी आदत पड जाती है। वह वादमें वड़े होने पर भी ज्योकी त्यो वनी रहती है। अिसलिअे तुम्हे अैसी वातोमे सावधान रहना चाहिये। अपने हाथ, पैर, मुह, आख आदि अिन्द्रियो द्वारा जो भी क्रियायें होती [illegible], वे सव व्यवस्थित, अुचित और जरूरतके मुताविक ही होती रहे, अैसी सावधानी रखो। तुम्हारे वोलनेमें, चलनेमे, हसनेमे किसी भी तरह अतिरेक या दूसरा कोअी

दोष न आना चाहिये। तुम्हारे विनोदमें हृदयके माधुर्य, प्रेम और ज्ञानका सुन्दर मेल होना चाहिये। तुम जिसकी हंसी करो अुसे भी अुसमें आनन्द होना चाहिये, और दुःख तो कभी होना ही नहीं चाहिये। अिसीको निर्दोष विनोद कहा जा सकता है। किसीका मजाक अुड़ाकर, अुसे चिढ़ाकर या दुःख देकर तुम जो विनोद करते हो, आनन्द मनाते हो, वह विनोद नहीं परन्तु दुष्टता है। जिसके कारण किसीको दुःख होता हो या शर्म आती हो, अैसे किसीके दोष, दुर्बलता या गरीबीको ध्यानमें रखते हुअे विनोद करके आनन्द लेनेकी तुम कोशिश करो, तो अुसका अर्थ यही होगा कि तुममें करुणा नहीं, बल्कि दुखियोंके दुःखसे भी मनोरंजन करने जितने तुम निष्ठुर हो। तुम्हारे विनोदमें कभी किसी प्रकारकी असभ्यता न होनी चाहिये। अिस प्रकार काया, वाचा और मन द्वारा होनेवाली तुम्हारी किसी भी क्रियामें दोष न रहे, अिसके लिअे तुम अपनी हरअेक वृत्तिको, कृतिको, आदतको और स्वभावको जांचते रहो और अुसे निर्दोष बनाते रहो। तुम्हारी तरफसे औरोंको सुख मिले, तुम्हारे स्वार्थ, अन्याय, दुष्टता, अविवेक, आलस्य, और अुपेक्षाके कारण किसीको भी दुःख न हो, अिसके लिअे तुम्हें अैसी सूक्ष्म सावधानीसे चलना चाहिये। तुम्हारे साधारण बोलनेमें भी सद्गुणोंका दर्शन होना चाहिये। तुम्हें संगीत न आता हो तो भी काम चल सकता है, क्योंकि संगीत अुतने समयके लिये ही मधुर लगता है। परन्तु अगर तुम अपने हमेशाके बोलनेमें ही माधुर्य अुंडेल सको, तो अुसमें तुम्हारी वाचाशुद्धि और मनशुद्धि हमेशा प्रकट होती रहेगी। शरीरमें अपनी हरअेक अिन्द्रियमें स्वच्छता, निर्मलता, औचित्य और व्यवस्था लाकर अुनके द्वारा समाजमें प्रेम और आनन्द फैलाते रहना, अैसा तुम्हारा [illegible] और प्रयत्न होना चाहिये। [illegible] विचार और [illegible] सामने [illegible] और [illegible] [illegible] होना चाहिये। [illegible] दुर्बलता या [illegible], [illegible] या [illegible] तुममें न होनी चाहिये। तुममें [illegible]

न होना चाहिये। स्पष्ट बोलनेकी हिम्मत होनी चाहिये। परन्तु अुद्धतता या अविवेक न होना चाहिये। तुम्हे अैसी बात न बोलनी चाहिये, जिससे कोअी अूब जाय या किसीके मनमे तिरस्कार पैदा हो। असलिअे तुम्हे परिमित, व्यवस्थित, सुसगत और प्रसंगोचित बोलनेकी आदत डालनी चाहिये। औरोके अूबनेके पहले ही तुम्हे अपनी वाणीको रोक देना चाहिये। तुम बकवास करनेवाले, गप्पे मारनेवाले या 'बोलना बहुत करना न कुछ' मनुष्य हो, अैसा तुम्हारे बारेमें किसीको कहनेका मौका न आना चाहिये। अेक सतका वचन है कि

'अतिका भला न बोलना। अतिकी भली न चूप॥
अतिका भला न बरसना। अतिकी भली न धूप॥'

असका रहस्य तुम ध्यानमें रखो। असके अनुसार चलनेके लिअे तुममे विवेक, तारतम्य, समयज्ञता वगैरा गुण होने चाहिये। तुममे अपने कार्यकी आप ही प्रशसा करनेकी आदत न होनी चाहिये। तुम्हे कभी गर्व न होना चाहिये। खुद सद्‌गुणी होने पर भी तुम दूसरोको कभी हीन न समझो। प्रेमसे सबको अपना बना लेनेकी वृत्ति तुममें होनी चाहिये।

रसनेन्द्रियकी शुद्धि

जैसे बोलनेके बारेमे तुम्हे अपनी वाचा पर सयम रखकर औचित्य सिद्ध करना पडेगा, अुसी तरह खाने-पीनेके मामलेमे भी अपनी जीभ पर सयम रखना होगा। बेस्वाद भोजन किसीको अच्छा नही लगता, और वह सतोषपूर्वक किसीसे खाया भी नही जाता। फिर आरोग्यकी दृष्टिसे वह हितकर भी नही। आरोग्यकी दृष्टिसे भोजनमें सर्वोत्तम स्वादका अनुभव होना बहुत ही जरूरी है। और वह अनुभव करनेके लिअे हमारी रसनेद्रिय भी बहुत निरोगी और तीक्ष्ण होनी चाहिये। परन्तु अैसा न करके हम खानेके पदार्थोमे कअी तेज चीजे डालकर अुन्हे स्वादिष्ट बनानेका प्रयत्न करते है।

यह प्रयत्न कभी दृष्टियोंसे हानिकारक होने पर भी हम अुसे जारी रखते हैं और अपनी रसनेंद्रियकी शक्तिको क्षीण करते हैं। तुम अैसी खराब आदतोंमें न पड़कर अुचित परिश्रम और व्यायाम द्वारा अपना पेट ठीक रखो। अुसकी पाचनशक्ति सतेज रखो। अुनके सतेज रहने पर ही तुम्हारी स्वादेन्द्रियकी तीक्ष्णता और निरोगिताका आधार है। सादे खान-पानमें ही सर्वोत्तम रुचि महसूस होनेका आरोग्यप्रद और शक्तिवर्धक अुपाय यही है। व्यायाम करने पर भी तुम्हारी भूख तेज न हो और सादी खुराकमें तुम्हें रुचि पैदा न हो, तो अुस वक्त तुम अपने पेटको साफ करनेका अुपाय करो या अेक दो दिन निराहार रहो। परन्तु अैसे समय कोअी स्वादिष्ट वानगी खाकर जीभका सुख भोगनेके गलत रास्तेमें पड़कर बुरी आदतसे अपना आरोग्य और जीवन न बिगाड़ो।

पोशाकके बारेमें विवेक

खान-पानकी तरह तुम्हारा रहन-सहन, तुम्हारा पहनावा सादा होना चाहिये। कपड़ेके मामलेमें तुम आडंबर या फैशनकी अपेक्षा सुव्यवस्था और सुविधाकी तरफ ज्यादा ध्यान दो। तड़क-भड़कके बजाय साफ-सुथरेपनको तुम्हें अधिक महत्त्व देना चाहिये। कपड़ेकी सुन्दरता या कीमतीपनकी अपेक्षा तुम्हें सादगी और स्वच्छताको ज्यादा महत्त्व देना चाहिये। कपड़ोंका विचार करते समय तुम अपने रोजमर्राके धन्धेकी सुविधा तथा तन्दुरुस्ती, सादगी और आर्थिक शक्ति आदि बातोंका खयाल रखो। कपड़ोंसे अपने आपको सजाकर शोभा लाने और बड़प्पन प्राप्त करनेका प्रयत्न बुद्धिहीन और मूर्ख मनुष्य ही करते हैं। वह अुनके लिअे ही योग्य है, अैसा समझना चाहिये। तुम जैसोंको तो अपने निरोगी, मजबूत और सुडौल शरीरसे तथा बौद्धिक व मानसिक सद्गुणोंसे सुशोभित होनेकी महत्त्वाकांक्षा रखनी चाहिये। कपड़ोंकी तरह ही तुम्हारा घरका और बाहरका रहन-सहन भी सादा और व्यवस्थित होना चाहिये। तुम्हारा सारा

जीवन व्यवस्थित होना चाहिये। अपनी तमाम चीजें व्यवस्थित रखने और अुन्हे ठीक ढगसे अिस्तेमाल करनेकी तुम्हारी आदत होनी चाहिये। हरअेक मामलेमे शिष्टतापूर्ण व्यवहार करनेका तुम्हारा स्वभाव बनना चाहिये। काम करनेमें नियमितता रखो। दिया हुआ वचन और हाथमे लिया हुआ काम समय पर पूरा करनेके बारेमे हमेशा दक्ष रहो। कोअी भी कार्य तत्परता और सफाअीसे करना तुम्हे आना चाहिये। तुममे अुद्योगप्रियता होनी चाहिये। अिससे तुम्हारा समय कभी बेकार नही जायगा। अिस अुम्रमें अधिकसे अधिक विद्याओ और कलाओका ज्ञान प्राप्त करनेका तुम्हे शौक होना चाहिये। अिस प्रकार अनेक विद्याओ, कलाओ और सद्‌गुणोसे तुम्हारा जीवन समृद्ध होना चाहिये। अपनी सादगी, पवित्रता, दूसरोके लिअे अुपयोगी होनेकी तत्परता, स्वार्थका अभाव और मधुरताके कारण तुम घरमे और मित्रोमें प्रिय बने विना नही रहोगे।

अन्यायके अवसर पर कर्तव्य-जागृति

अितना कह देनेके बाद भी जीवनकी दृष्टिसे अेक-दो और महत्त्वकी बाते बताना जरूरी है। तुम्हे कभी किसीके साथ अन्याय न करना चाहिये। अिसी तरह किसीका अन्याय सहन भी न करना चाहिये। और कोअी दूसरेके साथ अन्याय करता हो, तो वह भी तुमसे सहन न होना चाहिये और यथा-शक्ति तुम्हे अुस अन्यायका प्रतिकार करना चाहिये। अैसा करना तुम्हारा कर्तव्य है। हम छोटे हैं, हमारी कौन सुनेगा? हमारी क्या चलेगी? अिस तरहका विचार करके तुम्हे अैसे समय चुप न बैठ जाना चाहिये। तुम छोटे हो तो भी तुममें अपार धैर्य और श्रद्धा होनी चाहिये। अिस विश्वाससे कि तुम्हारी तरफ न्याय है, तुम्हे अन्यायका सामना करना ही चाहिये। अगर अिसी अुम्रसे तुममें यह सस्कार दृढ हो जाय और मौका पडने पर तुम अिसी प्रकार आचरण करो, तो बडे होने पर यह तुम्हारा स्वभाव बन जायगा। अिसी

तरह कोओी सकटमे है अैसा मालूम होते ही अुसकी मदद करके अुसे सकटमुक्त करनेकी वृत्ति तुममें पैदा होनी चाहिये और अुसका सकट दूर करनेका तुम्हे भरसक प्रयत्न करना चाहिये। जीवनकी दृष्टिसे जिन सद्‌गुणोकी वडी जरूरत है।

परिश्रमका महत्त्व

शारीरिक परिश्रमसे तुम्हे कभी घवराना न चाहिये। अिसमें तुम्हे छोटापन नही लगना चाहिये। तुम यह समझो कि परिश्रम न करना दुर्वलता और झूठे घमडकी निशानी है। मुफ्त खानेवाले और दूसरोंके परिश्रम पर सुख और स्वास्थ्यकी अिच्छा करनेवाले लोग दीखनेमें वलवान लगें, तो भी यह निश्चित मानो कि वे मनसे दुर्वल है। कुछ रोग अैसे होते है, जिनसे पीडित लोग वाहरसे हृष्टपुष्ट दिखाअी देते है, परन्तु अुनमें काम करनेकी शक्ति नहीं होती। यही वात परिश्रमसे घवरानेवालो पर लागू होती है। यदि तुम अपना शरीर, वुद्धि, मन और वाणी पवित्र रखो, अुन्हें सही आदतें डालो और अुन्हे हर तरहके दोषसे मुक्त रखो, तो तुम्हारे जैसा भाग्यशाली और कोअी नही। वह भाग्य तुम्हारे हाथमे है। आज तुम विद्यार्थी हो। थोडे वरस वाद तुम्ही यहाके नागरिक कहलाओगे, तुम गृहस्थ वनोगे। अगर तुम्हारी यह अिच्छा हो कि तुम्हारा जीवन सव तरहसे आदर्श वने, तो अुसके लिअे तुम्हे अभीसे प्रयत्न करना चाहिये। आजकलकी केवल कितावी शिक्षासे तुममें सज्जनता नहीं आयेगी; पौरुष या कर्तृत्व नहीं आयगा। अिसके लिअे तुम्हे खुद ही दीर्घ प्रयत्न करना चाहिये। तुम्हें सावधानी और लगनसे अेक अेक गुण वढ़ाना चाहिये और दोष निकाल डालने चाहियें। तुम्हारे सद्‌गुण और कर्तृत्वसे ही अिस शहरकी शोभा वढेगी। तुम्हीं अिस नगरके रत्न वनकर आगे आनेवाले हो। तुम्ही अपने कुटुम्ब, समाज और गावके भूषण वननेवाले हो। यह सव तुम्हारे हाथमें है। तुम आजसे ही जीवनका अुदात्त हेतु अपना लो, तो वही हेतु

तुम्हे जीवनमे अुत्तरोत्तर अुन्नतिकी तरफ ले जायगा। अपना कर्तृत्व अनेक सद्गुणोसे और अनेक प्रकारसे बढाकर अुसके द्वारा केवल अपने ही सुखकी अिच्छा न करके अपने आसपासके, अपने साथ सम्बन्ध रखनेवाले ससारको सुखी करना ही हमारा सच्चा कर्तव्य है, अिसीमे मानवता है, यह विश्वास रखकर चलने लगोगे, तो निश्चित मानो कि जीवनकी सारी सिद्धिया तुम्हारे अनुकूल होगी और तुम्हारा जीवन सफल होगा। परमात्मा तुम्हारे शुभ हेतुमे सदा तुम्हारी सहायता करे।

(अनेक व्याख्यानोसे सकलित)

२

सुख-सम्बन्धी धर्म्य विचार

वालाओ,

स्वतंत्रताके लक्षण

तुमने अिस समय कअी सवाल पूछे है। अुनसे यह कल्पना की जा सकती है कि जीवन सम्बन्धी तुम्हारे विचारोका प्रवाह किस दिशामें वह रहा है। तुम सव विद्यार्थिनिया हो। कौटुम्बिक और सामाजिक दृष्टिसे तुम्हारा जीवन लडको जैसा स्वतत्र नही है। फिर भी तुम्हारे प्रश्नोसे अैसा दिखाअी देता है कि तुम्हारे खयालसे तुम्हे सव तरहसे स्वतत्र होना चाहिये। अिसमें सदेह नही कि स्वतत्रता सवको प्यारी है। छोटा वच्चा या मूर्ख आदमी भी स्वतत्रता चाहता है। अुसे भी नियत्रण अच्छा नही लगता। तुम तो शिक्षा पाकर ज्ञानसम्पन्न हो रही हो। अिसी तरह शिक्षा पूरी करनेके वाद अर्थ-सम्पादन करनेकी भी आशा रखती हो। अैसी हालतमे तुम्हे स्वातत्र्यकी अिच्छा हो तो आश्चर्य नही, अथवा यह

भी नहीं कहा जा सकता कि जिसमें तुम्हारी महत्त्वाकांक्षाओंका अतिरेक है या कोओी अनुचित बात है। परन्तु तुम्हारे सारे विचारों और तुम्हारी आकांक्षाओंमें अेक बड़ा दोष यह मालूम होता है कि वे सब तुम्हारे अपने ही सुखको ध्यानमें रखकर अुसके आस-पास घूम रही है। तुम्हारे सारे विचारों और कल्पनाओंमें मुख्यतः यह हेतु जान पड़ता है कि किसी भी तरह खूब रुपया कमाकर मनमाने शरीर-सुख प्राप्त किये जायं। तुम्हारी यह समझ, लगभग प्रतीति ही कहो, हो गओी दीखती है कि स्त्रिया रुपया नहीं कमा सकतीं, जिसलिअे अुन्हें स्वतंत्रता नहीं है और स्वतंत्रता न होनेके कारण ही वे आज तक सब तरहसे दुःख भोगती रही है। तुम्हारी यह समझ न पूरी तरह सही है और न पूरी तरह गलत ही। तुम्हें सम्पूर्ण जीवन-सम्बन्धी अधिक अुचित और विशाल दृष्टिसे विचार करना सूझे और तुम वैसा कर सको, तो संभव है कि जीवनके विषयमें जो दृष्टि रखकर आज तुमने अपने सुखका विचार किया है और अुसके बारेमें जो व्याख्याये और कल्पनायें की है, वे बिलकुल बदल जायं। आज तुम जो शिक्षा पा रही हो, अुसमें मानवजीवनके लिअे जरूरी कितनी विद्याओं और कलाओंका समावेश होता है और अुनमें मनुष्यको संस्कारी और ज्ञानी बनानेकी कितनी ताकत है, यह सवाल अभी अेक ओर रख दें, तो भी निश्चित रूपमें तुम्हारी यह कल्पना जान पड़ती है कि वर्तमान शिक्षाके कारण पिछली अनेक पीढ़ियोंकी स्त्रियोंसे तुम अधिक बुद्धिशाली, चतुर और ज्ञान-सम्पन्न हो और पुराने जमानेकी शिक्षा न पाओी हुओी सभी स्त्रियोंका तथा तुम्हारी माताओंका जीवन बड़े दुःखमें बीता होगा। यदि सचमुच तुम अैसा ही मानती हो, तो कहना चाहिये कि यह तुम्हारी भूल है। पढ़ाओीमें तुम्हारी बुद्धिमत्ता देखकर तुम्हारी माताको आनन्द होता हो, तो जिसका तुम यह अर्थ न करो कि अुन्हें अपने अपढ़ होनेका दुःख होता है। अुनके जमानेसे आजका जमाना भिन्न है,

और आजके जमानेमे शिक्षाके बिना तुम्हारी शादी होना मुश्किल है, अिस बातका अुन्हे हर वक्त खयाल रहता है। अिसलिअे सभव है ज्यो-ज्यो तुम परीक्षाये पास करती हो, त्यो-त्यो तुम्हारे विवाहकी कठिनाअी कम होनेका अुन्हे आनन्द होता हो। तुम्हारी मातायें या घरकी बडी-बूढी स्त्रिया तुम्हारे जितनी पढी हुअी नही है, तो भी क्या वे तुम्हे कभी कहती है कि अिस कारणसे वे दु खी है? और कहती न हो, तो भी क्या वे सचमुच दु खी है? तुम अुन्हे अेक बार पूछ तो देखो। जिस गृहक्षेत्रमे अुन्हे काम करना पडता है, क्या अुसमें अुनके अशिक्षित होनेके कारण अुन्हे कोअी कठिनाअी आती है? अुसमें जितना वे समझती है अुससे तुम पढी-लिखी होनेके कारण क्या ज्यादा समझती हो? पुरुष मेहनत करके रुपया लाता है। कितनी स्वतंत्र स्थितिमें वह कमाकर लाता है, सो तो वही जाने। परन्तु जो लाता है सो सब अपनी पत्नीको सौप देता है। अुस कमाअीमे से वह सारी गृहव्यवस्था किफायतसे करती है। बालबच्चोको और अन्य किसीको किसी तरहकी कमी नही होने देती। पुरुषको रुपया कमानेके सिवाय और बातोकी न कोअी चिन्ता करनी पडती है और न कुछ देखना पडता है। यह हालत सौमें से निन्यानवे घरोमे मिलेगी। अिन घरोमें अधिकारकी दृष्टिसे किसकी सत्ता दिखाअी देती है? हम कहते है कि स्त्रिया परतन्त्र है, परन्तु घर घर अुन्हीका जोर दिखाअी पडता है। अुनका अैसा जोर न होता तो अिकट्ठे रहनेवाले कुटुम्ब स्त्रियोके ही कारण विभक्त हुअे हमें क्यो दिखाअी देते? दो भाअियोकी अलग होनेकी स्वाभाविक अिच्छा शायद ही कही पाअी जायेगी। परन्तु स्त्रियोके कारण भाअी-भाअी अलग हुअे सब जगह देखनेमें आते है। घरमे स्त्रियोका बोलबाला न होता और स्त्रिया केवल परतत्र ही होती, तो क्या अैसा हो सकता था? माना कि तुम्हारी मातायें या दूसरी स्त्रिया अशिक्षित थी, अिसलिअे अुनके कारण घरके अिस तरह हिस्से हुअे। परन्तु तुम तो सुशिक्षित हो

गओी हो। क्या अब अिन सब चीजोंसे बचनेकी तुममें बुद्धि या शक्ति है? शादी करनेके बाद पति और पतिके भाओी, देवरानी, जिठानी वगैरा सबके साथ सयुक्त कुटुम्ब चलानेकी तुम्हारी तैयारी है? मतलब कि चाहे स्त्रियां अशिक्षित हो या सुशिक्षित, सबका यही खयाल है कि घरमें अुन्हींका प्राबल्य होना चाहिये। घरमें विवाह या किसी और महत्त्वके अवसर पर खर्चके मामलेमें जब तुम्हारी मा और बापके बीच मतभेद होता है, तब अन्तमें किसके मतानुसार बूतेसे अधिक खर्च होता है और वह कार्य पूरा किया जाता है? अिसका विचार करो और कुल मिलाकर मत-प्राबल्यका अन्दाज लगाओ, तो अुनमें भी तुम्हें स्त्रियोंका ही प्राबल्य दिखे बिना नहीं रहेगा। और अितना होने पर भी हम कहते है कि स्त्रियोको स्वतत्रता नही, अुन्हे कोओी पूछता नही!

संतोषपूर्वक सहन किये बिना प्रेम व सुख नहीं मिलता

तुममें से हरअेक अपने घरकी स्थितिका विचार करके कहो कि तुम्हारे घरमें तुम्हारी माकी चलती है या बापकी। अधिकांश जगहों पर माका ही जोर और अुसीकी सत्ता दिखाओी देगी। अिस जोर और सत्ताका अुपयोग वह कैसा करती है, यह दूसरी बात है। क्या तुम्हे यह विश्वास है कि जन्मभर गृह-संसार चलाकर तुमसे पहलेकी पीढीकी स्त्रियोने अपने-अपने पति और घरके दूसरे लोगोका जो विश्वास, आत्मीयभाव और प्रेम सम्पादन किया था, अुससे ज्यादा विश्वास, आत्मीयभाव और प्रेम तुम सुशिक्षित स्त्रियां अपने पति और घरके दूसरे लोगोका सम्पादन कर सकोगी? तुम्हारी दृष्टिसे अशिक्षित परन्तु वास्तवमें सस्कारी और सुस्वभावकी स्त्री अपने पति, पतिके माता-पिता और घरके दूसरे लोगोंके लिअे मौका पडने पर जितना कष्ट और परेशानियां सहन करती है, अुतना सहन करनेको क्या सचमुच तुम्हारी तैयारी है? तुम्हारा विवाह नही हुआ, अिसलिअे शायद

अिस प्रश्नका जवाब देना तुम्हारे लिअे कठिन होगा। परन्तु आज जिस घरमे तुम छोटीसे बडी हुअी हो, जहा तुम्हारे माता-पिता अपनी शक्तिके अनुसार तुम्हे सुख देनेका प्रयत्न करते है, जिस घरमें तुम सब सुविधाये भोगकर सुखसे रहती हो, अुस घरमें अवसर पडने पर अपने माता-पिताके लिअे, अपने भाअी-बहनोके लिअे तुम सतोष-पूर्वक कितना सहन कर सकती हो, अिस परसे अपने भावी जीवनके बारेमें अदाज लगाना तुम्हारे लिअे मुश्किल नही होगा। आज जो लोग तुम्हारी शिक्षाके लिअे स्वय असुविधायें भोग रहे है, अुनके लिअे जरूरत पडने पर कष्ट सहन करनेकी अगर तुम्हारी तैयारी न हो, तो शादी होनेके बाद पतिके घरके अपरिचित मनुष्योके लिअे तुम कष्ट सहनेको कैसे तैयार होगी? तुम्हारे प्रश्नो पर विचार करके मैने शुरूमें यह कहा है कि तुम्हे खूब रुपया कमाने और अुसकी मददसे सुखी होनेकी जो अिच्छा है, अुसका आशय यही है कि तुम्हारे तमाम विचार किसी भी तरह अपने आपको सुखी करनेके है। परन्तु तुमने अिसका विचार नही किया कि अिस शिक्षासे नौकरी पाकर तुम कितना रुपया कमा सकोगी और अुस रुपयेसे कितना सुख पा सकोगी। तुम चाहती हो कि लोग तुम्हे सुख दें, परन्तु तुमने अिसका विचार नही किया कि लोग तुम्हे किसलिअे सुख दे। तुम्हारी मातायें स्वय रुपया नही कमाती, परन्तु अुनके पतिका अुन पर पूरा विश्वास होता है। अैसी स्थितिमें तुम्हारे खयालसे अुनके सुखमें कौनसी न्यूनता है? परस्पर विश्वास, प्रेम, सहृदयता और हृदयकी कोमलतासे जो सुख मिलता है, वह क्या कभी रुपयेसे मिल सकता है? तुममें औरोको सुख देने और प्रेम तथा कर्तव्यकी खातिर कष्ट सहनेकी वृत्ति नही होगी, तो तुम्हारे लिअे प्रेमसे तकलीफ अुठानेको कौन तैयार होगा? तुम यह समझती हो कि शिक्षाके जोरसे हम पिछली पीढीकी अपेक्षा ज्यादा स्वाधीन हो जायगी। परन्तु तुम स्वाधीन होगी किस तरह? नौकरी और स्वाधीनता, दोनो अेक-दूसरेके विरुद्ध

है, फिर, स्वाधीन रहनेके लिअे जिस प्रकारकी मानसिक पात्रता और संस्कारिता होनी चाहिये, वह अिस शिक्षामें तुममें आ गयी है अैसी अगर तुम्हारी समझ हो, तो बहुत संभव है कि तुम अिसमें धोखा खा रही हो। आजकलकी किताबी शिक्षा और संस्कारिता दोनों बिलकुल भिन्न चीजें हैं। सत्य, प्रामाणिकता, अुदारता, संयम, दया, सौजन्य, विवेक वगैरा मानव सद्‌गुण ही संस्कारिताके सच्चे दर्शक हैं। और ये अपढ मनुष्यमें भी पाये जाते हैं, जबकि पढे-लिखोंमें अिससे अुलटे दुर्गुण देखे जाते हैं। अिस प्रकार शिक्षा और सुसंस्कार अिन दोनोंका कोअी नित्य सम्बन्ध नहीं है। तुम्हारी मातायें पढी हुअी न हों, तो भी संस्कार-संपन्न हो सकती हैं। और तुम शिक्षा पाकर भी संस्कारहीन रह सकती हो। अैसी हालतमें तुम स्वाधीन किस तरह रह सकोगी? जिनके मनमें अनेक सुखोंकी लालसा भरी हो, अुनमें स्वाधीनता किस तरह कायम रह सकती है? तुम्हें शादी करनी है और शादी करके भी तुम्हें स्वाधीनता रखनी है, अर्थात् तुम्हारे पतिको सदा तुम्हारा गुलाम बनकर रहना चाहिये यही न? लेकिन अुसे तुम्हारे अधीन क्यों रहना चाहिये? क्या अिसीलिअे कि तुम शिक्षित हो और नौकरी करके रुपया कमाती हो? तुम कहोगी कि हम अेक-दूसरेसे प्रेम करके सुख प्राप्त करेंगे। परन्तु तुम्हें तो स्वतंत्रता चाहिये, सुख चाहिये; फिर तुम प्रेम किस तरह करोगी? प्रेम करनेवालेको दूसरेके लिअे त्याग करना पडता है; अपनी सुख-भोगकी अिच्छायें छोडनी पडती हैं, स्वतंत्र कर देनी पडती है, भूल जानी पडती है; अपनी स्वतंत्रता मिटा देनी पडती है, अहंकार छोड देना पडता है। लेकिन ये परस्पर विरुद्ध बातें तुम कैसे कर सकोगी? और जिसे तुम प्रेम कहती हो, अुसकी तहमें कोअी अुदात्त भावना है, कुछ निष्ठा है, या अेक-दूसरेके प्रति केवल आकर्षणको ही तुम प्रेम समझकर धोखा खाती रहोगी? अुस आकर्षणको ही प्रेम समझनेके भ्रममें रहोगी, तो याद रखो कि वह केवल मोह है।

यह मोह लम्बे समय तक नही टिकेगा, सकट आते ही अुड जायगा। अेक ही व्यक्तिके लिअे हमेशा मोह नही रह सकता, क्योंकि वह आकर्षणके पीछे चलता है। तुममे प्रेम, निष्ठा, अुदारता, कर्तव्यबुद्धि, दूसरेके लिअे सतोषपूर्वक कष्ट सहन करनेकी भावना, अुदात्तता वगैरा गुण न हो, तो तुम्हारे चार दिनके नकली सौंदर्य पर तुम्हारा पति कितने समय तक आकर्पित बना रहेगा? और तुम्हारी समझमें आ जाय कि वह भी तुम्हारी ही तरह केवल मोह-लुब्ध है, तो अुसके बाद तुम स्वय भी कितने दिनो तक अुसके मोहमें रहोगी? अिस प्रकार आपसमे अेक-दूसरेकी सच्ची पहचान और प्रतीति हो जानेके बाद भी ससारमे प्रेम, सुख और सतोष कहासे मिलेगे? केवल सुखकी अभिलाषासे अिकट्ठे हुअे दो प्राणी अुस अभिलाषाके लिअे आवश्यक आकर्षण और अुसके प्रति रहा भ्रम मिट जाने पर सुखके साथ कैसे रह सकेगे? और फिर अिसी स्थितिमें अुन्हे अेक साथ रहना पडे, तो वे अेक-दूसरेके बारेमे हमेशा सशक रहकर और अेक-दूसरेकी सदा चौकीदारी करके रात-दिन सतानेका ही काम करेगे।

मानवोचित प्रेमके सामने केवल सुखकी अभिलाषाकी कीमत बहुत कम है

अिन सब अनर्थोंके मूलमें चित्तमें सचित तुम्हारी सुखाभिलाषा ही है। तुमने अुसीको अपने जीवनका ध्येय बनाया है। तुम्हारा यह समझना भ्रम है कि हमारे पास धन होगा, तो सभी हमें सुख देनेका प्रयत्न करेगे। जिसे मजदूरी चाहिये वह ज्यादासे ज्यादा तुम्हारा काम कर देगा, परन्तु तुम्हे सुख क्यो देगा? वह तुम पर प्रेम और विश्वास किस लिअे रखेगा? वह तुम्हारे लिअे प्रेमपूर्वक त्याग क्यो करेगा? अिस मार्गसे तुम कभी सुखी न हो सकोगी। तुम्हे सुखी बनना हो तो जीवनका ध्येय अुच्च और अुदात्त रखो। केवल अभिलाषाके पीछे न दौडो। प्रेम चाहिये तो पहले प्रेम करना सीखो। प्रेम सीखना हो तो पहले अपना क्षुद्र अहकार छोडकर दूसरेके लिअे

कष्ट सहना सीखो। प्रेम करोगी तो प्रेम मिलेगा। विश्वास रखोगी तो दूसरेका विश्वास प्राप्त कर सकोगी। कष्ट सहन करोगी तो कोअी तुम्हारे लिये कष्ट सहन करेगा। सुखका सम्बन्ध केवल शरीरके साथ ही नहीं है। मनकी अुच्च स्थितिके बिना सच्चा सुख प्राप्त होना संभव नहीं। रुपयेकी मददसे अेकाध कठिनाअी दूर हो सकती है, परन्तु सुख नहीं मिलेगा। औरोंको सुखी करके सुख पानेकी आकांक्षा रखोगी, तो किसी न किसी दिन तुम सुख पा सकोगी। परन्तु केवल अपने ही सुखकी अिच्छा करती रहोगी, तो वह तुम्हारे हाथ आने जितना सस्ता नहीं। तुम्हारी माताने अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया, तब वह आज तुम्हारे पिताकी सारी कमाअीकी मालकिन बनकर बैठी है। तुम्हारे पिता पर अुसने संपूर्ण विश्वास रखा, अिसीलिअे आज वह तुम्हारे पिताके सम्पूर्ण विश्वासकी पात्र बनी हुअी है। अुसने तुम्हारे पिताके लिअे सब कुछ सहन किया, अिसीलिये तुम्हारे पिता अुसके लिअे चाहे जो करनेको तैयार है। अुसने अपना अलग कुछ रखा ही नहीं, माना ही नहीं, अिसीलिअे आज घरमें जो कुछ है, वह सब अुसीका हो गया है। अच्छे संस्कारी और धर्मनिष्ठ कुटुम्बमें सभी जगह यह स्थिति पाअी जायगी। तुम्हारी अिस शिक्षामें नौकरी करके पेट भरनेके अलावा और क्या ताकत है? अुस पर भरोसा रखकर सद्गुणोंकी ओर दुर्लक्ष न करो, धर्मको न भूलो, मानवताको न छोड़ो। रुपयेसे मानव-हृदयका मूल्य निश्चय ही अधिक है। अिस-लिअे रुपया कमानेके मोहमें पड़कर मानव-हृदय और प्रेमको न खो देना।

और ये सारी बातें तुम्हें शादी होनेके बाद नहीं सीखनी हैं,

केवल स्वसुखलक्षी विचारके दोष

परन्तु आज जिस घरमें तुम्हें पहलेसे ही प्रेम करनेवाले मनुष्य हैं, अुसीमें सीखनी है। यहां न सीखोगी तो यह न मानना कि शादी होनेके बाद वे तुममें अेकदम आ जायेंगी। आज जहां तुम्हें सब ओरसे प्रेमका आश्रय है, वहीं तुम पहले अपने कर्तव्यके प्रति जाग्रत हो जाओ। तुम्हारी माताओं या

घरकी बडी-बूढी स्त्रियोको रात-दिन घरके कामोमें मेहनत करनी पडती है, अिस परसे तुम अैसा समझती हो कि अुनका जीवन दुःखी है, और अिससे तुम्हे अुन पर दया आती है यह भी तुमने बताया। परन्तु तुम्ही अपने मनमे सोचकर देखो कि वह दया कहा तक सच्ची है। मै तुम सबके घरकी स्थिति तो नही जानता। परन्तु मुझे अितना पता है कि आजकल पढनेवाली कितनी ही लडकिया अैसा मानती है कि वे पढकर मा-बाप पर बडाभारी अुपकार कर रही है। घरमें कितनी ही दिक्कते है। अपने कामका बड़ा बोझ माको सहन करना पडता है, यह जानते हुअे भी अुसके काममे मदद करनेकी अुनकी वृत्ति नही होती। तुम्हे सचमुच ही अपनी मा पर दया आती हो और अुसके प्रति सहानुभूति हो, तो तुम कभी अुसके साथ अैसा बर्ताव नही करोगी। कमसे कम तुम अुसे अपने लिअे तो श्रम करनेकी नौबत न आने दोगी। अपने लिअे तुम अुसे परेशान न करोगी। परन्तु जिन लडकियोमें विद्यार्थी-अवस्थामे ही माको मदद न देनेका अज्ञान, अहकार और जडता हो, वे नौकरी करके दो पैसे कमाने लग जानेके बाद अुसके साथ या भाअी-बहनोके साथ नौकरो जैसा बर्ताव करें, तो अिसमें आश्चर्य कैसा? और जिन लडकियोकी जीवन सम्बन्धी कल्पना, भावना और मनोवृत्ति केवल स्वसुखलक्षी हो, वे घरमे अिससे भिन्न व्यवहार कैसे करेगी? विवाह हो जानेके बाद पति और अुसके घरके अपरिचित लोगोके साथ अुनका व्यवहार स्वार्थके सिवाय और किस दृष्टिसे होगा? अिसलिअे यदि तुम्हे कर्तव्यनिष्ठ और धर्मनिष्ठ बनना हो और सबके साथ स्नेह और अुदारतासे रहना हो, तो आज जिस घरमे तुम हो, जिस परिवारमे तुम रहती हो, वहीसे ये बाते शुरू करो। तुम सब स्वार्थी हो या अपने माता-पिताके लिअे तुममें दया-माया नही है या अपने भाअी-बहनोंके प्रति तुम्हे ममता नही, यह कहनेके लिअे मेरे पास कोअी आधार नही है। परन्तु तुम्हारे निरे स्वसुखलक्षी विचार, रुपयेसे सुखी होनेकी

तुम्हारी कल्पनायें, थोड़े पढ़े हुअे या बिलकुल अपढ़ लोगोंके प्रति तुम्हारे गलत खयाल और शिक्षित होनेके कारण अपने विषयमें तुम्हारे विलक्षण खयाल देखकर मेरे मनमें जो विचार आते हैं, अुन्हें मैं तुम्हारे सामने रख रहा हूं। साधारण लिखना-पढ़ना जाननेवाली स्त्रियां भी पतिके परदेश चले जाने पर घरका, घरकी खेतीबाड़ीका या और कोअी धंधा कितनी दक्षता और होशियारीसे चलाती हैं, अिसके अुदाहरणोंका तुम्हें पता चले, तो मुझे विश्वास है कि मौजूदा शिक्षा सम्बन्धी तुम्हारा अभिमान और थोड़ी या बिलकुल न पढ़ी हुअी स्त्रियोंके बारेमें तुम्हारी गलत धारणायें दूर हो जायेंगी।

गृहस्थाश्रममें स्त्री-पुरुषका समान महत्त्व

तुम सुखी होना चाहती हो, अिसमें तुम्हारा कुछ दोष नहीं है। परन्तु तुम सुखका मार्ग नहीं जानती। तुम औरोंको सुख देनेमें कृपण रहकर और अपने लिअे दूसरोंको कष्ट देकर स्वातंत्र्य और सुखकी अिच्छा करती हो, यही तुम्हारी भूल है। सुखकी अिच्छा तो प्राणीमात्रको होती है। परन्तु वह किस मार्गसे सुख प्राप्त करनेका प्रयत्न करता है, अिससे अुसकी परीक्षा हो जाती है। मनुष्यकी पात्रता अिस बातसे तय होती है कि अुस सुखमें केवल शारीरिक सुखका अंश कितना है और मानवीय श्रेष्ठ गुणोंका और धर्मका अंश कितना है। तुम्हारा यह कहना अेक हद तक सही है कि पुरुषोंके पास सारी सत्ता होनेसे स्त्रियोंको परतंत्रता सहन करनी पड़ती है और अिसलिअे अुनकी प्रगति कअी तरहसे रुकती है। चूंकि नौकरीपेशा वर्गोंमें रुपया कमानेका काम बहुत समयसे पुरुष ही करते आये हैं और अिन वर्गोंमें स्त्रियोंके लिअे रुपया कमानेका साधन नहीं था, अिसलिअे पुरुषोंको अैसा महसूस होने लगा कि हम स्त्रियोंसे बढ़कर हैं। किसानों या दूसरे श्रमजीवी वर्गोंमें पुरुषोंके साथ स्त्रियां भी काम करती हैं, अिसलिअे अुन वर्गोंमें कमाअीके मामलेमें अितना भेद नहीं माना जाता। परन्तु नौकरी करनेवाले वर्गोंमें यह

भेद अिस हद तक बढ गया कि पुरुष अपनेको कुटुम्बका सत्ताधीश मानने लगा। पुरुषोकी मूर्खताके कारण कुछ वातोमें अुनकी ओरसे स्त्रियों पर अन्याय भी होते रहे। परिणामस्वरूप स्त्रियोको अैसा लगने लगा कि हम पराधीन है। यह अुनके लिअे असह्य हो गया। और जव शिक्षाका मार्ग लडकोकी तरह लडकियोके लिअे भी खुल गया और अुन्हे भी नौकरिया मिलने लगी, तो अुनमे आत्मविश्वास आने लगा और अुन्हे लगा कि हमे भी पुरुषोकी तरह स्वतत्र और सुखी होना चाहिये। परन्तु स्त्रियोने अिन वातोका शायद विचार नही किया कि पुरुष स्वतत्र है यानी अुन्हे कौनसी स्वतत्रता है? नौकरी करके अपना और अपने स्त्री-वच्चोका गुजर करनेकी शक्ति होनेसे अुन्हे कौनसी स्वतत्रता मिल गअी? नौकरको कितनी स्वतत्रता हो सकती है? परन्तु तुम अवश्य अिसका विचार करो। स्त्रियोमे अिस प्रकारकी भावना पुरुषोकी मूर्खता और अुनके अहकारके कारण पैदा हुअी है। परन्तु जिनमें कुलीनता है, जो विचारशील है, वे कभी अपनी स्त्रियोको जरा भी हलकी नही समझते। वे अुनके साथ अिज्जतसे पेश आते है, घर सम्वन्धी हरअेक वातमें अुनसे सलाह लेते है और यह समझते है कि सारा घर अुन्हीका है। खुद वेगार करते है और सारी कमाअी स्त्रियोको सौप देते है। ससारमे पुरुषो और स्त्रियोका महत्त्व अेकसा ही है। कोअी किसीसे वढिया या घटिया नही। दोनोको मिलकर ससार सुखी वनाना है। दोनोको अेक-दूसरेकी मददसे अपनी अुन्नति करनी है। गृहस्थाश्रमके लिअे दोनोकी ही अेकसी जरूरत है। गृहस्थाश्रम मानव-अुन्नतिका वडे महत्त्वका क्षेत्र है। अिस क्षेत्रको अधिकाधिक पवित्र वनाना दोनोका काम है। दोनोको अेक-दूसरेके सम्मानकी रक्षा करना और अुसे वढाना है। ससारके सुख-दु ख, आनन्द-शोक, लाभ-हानि, मान-अपमान तथा प्रतिष्ठा, गौरव, भाग्य, यश, धर्म — अिन सवमें दोनोका अेकसा हिस्सा है। घरकी सन्तानो पर दोनोका समान अधिकार है। अपनी सन्ततिको ज्ञान, वल, विद्या और सव

सद्गुणोंसे सम्पन्न करके दोनोको अन्तमें अेक ही रास्ते, अेक ही गतिसे जाना है। गृहस्थ और गृहिणी — जिनमें कौन श्रेष्ठ और कौन कनिष्ठ? कौन स्वतंत्र और कौन परतंत्र? यह विवाद ही गलत है। परन्तु अेक यदि मूर्खतासे पेश आने लगा, तो अुसके साथीको जन्मभर दुःख भोगना ही पड़ेगा; और दुःखसे छूटनेके लिअे अुसे स्वातन्त्र्य-प्राप्तिकी अिच्छा भी जरूर होगी। परन्तु गहरा विचार करके देखें, तो दोनोंके समझदारीसे काम लेनेमें ही दोनोका और सारी मानव-जातिका कल्याण है। कुछ भी हो, दोनो यदि अलग-अलग रास्ते जायेंगे तो काम नहीं चलेगा। प्रकृतिकी बनाअी हुअी अिस जोड़ीका — परमात्मा द्वारा खुद अपनेमें से निर्माण की हुअी अिन मूर्तियोका — सौभाग्य, कल्याण और सार्थकता अिसीमें है कि दोनो अपना अपना अहंकार छोडकर परस्पर अेकरूप हो जाय। भविष्यकी पीढियो और सारे समाजका कल्याण भी अिसीमें है। अितने पर भी तुम घरकी गृहिणिया, घरकी स्वामिनिया बनना छोड़कर आजादी और सुखके लिअे अेक दफ्तरसे दूसरे दफ्तरमें नौकरिया ढूंढने और करने लगो, तो अिससे तुम्हारा अपना, पुरुषवर्गका, तुम्हारी भावी संतानोका और सारे समाजका क्या कल्याण होगा?

जीवनके दो चित्र

तुममें से कुछ लडकियोका प्रश्न है कि लड़किया और स्त्रिया नृत्य सीखें या नही? सिनेमामें काम करें या नहीं? नृत्य सीखने और सिनेमामें काम करनेमें भी अुनका हेतु रुपया कमाना ही है। अिसलिअे रुपया कमानेके बारेमें मैंने अपनी जो राय अूपर बताअी है, वही अिन बारेमें भी तुम्हें समझनी चाहिये। तुम्हारे अिस प्रश्नसे अिस बातका स्पष्ट ज्ञान होता है कि रुपया कमाने, स्वतंत्र होने और सुख भोगनेके लिअे आजकलकी लडकियो और स्त्रियोंके विचार कहा तक जा पहुंचे है। लडकियो! तुम्हारे अिन प्रश्नोंसे मालूम होता है कि सुख और स्वातंत्र्यकी अिच्छासे तुम भरमा गअी

हो। अिससे मुझे आश्चर्य और दुःख होता है। सुख और स्वातन्त्र्यके लिअे रुपया चाहिये और अुसे कमानेके लिअे सिनेमामे जाकर या पुरुषोके सामने नाचकर अुनका मनोरंजन करनेकी ओर तुम्हारे मनका रुख देखकर मुझे तुम पर दया आती है। तुम्हे अितना ही मालूम है कि नृत्य करनेवाली और सिनेमामे काम करनेवाली लडकियो और स्त्रियोको रुपया मिलता है। परन्तु अुन्हे सुख मिलता है या नही, अुनका जीवन किस प्रकारका है और जीवनके अंत तक अुन्हे किन-किन विपरीत परिस्थितियो और मुसीबतोमे से गुजरना पडता है, अिसकी भी तुम्हे कल्पना है? तुमने क्या कभी अिसकी जाच की है कि अुनका सारा जीवन कैसा है? केवल अुन्हे मिलनेवाले रुपयेकी बाते सुनकर, अुनकी थोडे दिनकी तड़क-भडक, ठाठ और स्वतंत्र तथा स्वच्छंद जीवन देखकर तुम्हे अुनकी जीवन-पद्धतिका लोभ और मोह हो, यह मुझे बहुत ही शोचनीय और तुम्हारे हितमे दुर्भाग्यपूर्ण लगता है। नाचने और सिनेमामे काम करनेवाली लडकियो और स्त्रियोकी कीमत केवल रुपयेसे नापी जाय, तो भी वह कब तक टिकती है? जवानी बीत जाने पर कोअी अुनका भाव भी पूछता है? ज्यो-ज्यो जीवनका अुत्तरकाल और बुढापा आता जायगा, त्यो-त्यो हमारी कीमत घटती जायगी और जीवनके अंतमें हमारे साथ कोअी प्रेम और सद्भावसे बात तक न करेगा और न हमारे लिअे किसीके मनमे आदर रहेगा। अिस तरहका जीवन अच्छा? या ज्यो-ज्यो अधेड अुम्र होती जाय और बुढापा आता जाय, त्यो-त्यो हमारे लिअे आदर, मान, प्रेम और सद्भाव बढता जाय, अैसा जीवन अच्छा? अिसका तुम्ही विचार करो। अिनमें से तुम कौनसा जीवन पसन्द करोगी? वृद्ध स्त्रीका नृत्य देखनेकी अिच्छा कोअी नही करता। जवानीकी अुसकी कलाके लिअे बुढापेमें अुसका कौन आदर करेगा? परन्तु अपने सांसारिक कर्तव्य अच्छी तरह पूरे करके और पति-पुत्रके लिअे सब तरहके कष्ट सहन करके

वृद्धावस्थामें पहुंची हुआी गरीब स्त्रीके लिअे भी सबके मनमें आदर, मान और पवित्रताकी भावना होती है। बेशक जिस जीवनके अन्तमें खुदको और दूसरोंको भी सन्तोष और सहज ही धन्यताका अनुभव हो वही जीवन अच्छा। बडे-बडे ज्ञानी, सदाचारी और पुण्यवान पुरुष अथवा महान प्रतापी धनजय भी अपनी वृद्ध माताके चरणोंमें मस्तक रखने और अुसकी चरण-रज सिर पर धारण करनेमें अपने आपको धन्य और कृतकृत्य मानते आये हैं। यह प्रभाव पवित्रताका, शीलका, कर्तव्यनिष्ठाका और मातृत्वका है। अिस प्रकारका भाग्य किस तरहके जीवनके अन्तमें प्राप्त हो सकता है, अिसका विचार करना तुम्हारे लिअे कठिन नहीं। लड़कियो! तुम्हारे सामने दो चित्र हैं। अिनमें से कौनसा जीवन अनुकरणीय और आदरणीय है, अिसका निर्णय तुम खुद ही कर सकोगी।

सामाजिक सेवाका आदर्श

अितना सुननेके बाद भी तुम्हें अैसा लगे कि आजके बदले हुअे समयके साथ अिस आदर्शका मेल नहीं बैठता, तुम्हारे गले यह न अुतरे और तुममें पुरुषार्थ, ज्ञान, सेवापरायणता और अपने सुखके प्रति अुदासीनता हो, तो घरके बाहर भी तुम्हारे लिअे जितना चाहिये अुतना विशाल कार्यक्षेत्र पडा है। जिस समाजमें तुम चलती-फिरती हो, अुसीमें आसपास जरा नजर डालकर देखो। स्त्रीवर्गमें कितना अज्ञान है, बच्चोंके पालन और शिक्षणकी ओर कितनी अुपेक्षावृत्ति है, अिसके बारेमें कितनी अडचनें हैं, समाजमें स्वच्छता, सुघडता, व्यवस्थितता आदि अच्छे संस्कारोंका कितना अभाव है, परस्पर मेल, अैक्य, प्रेम, विश्वास, भावना, प्रामाणिकता, सहयोग और सेवाभावकी कितनी कमी है, आरोग्य और दूसरे शारीरिक गुणों और अनेक मानसिक सद्‌गुणोंका समाजमें कितना अभाव है, अिन सब बातों पर ध्यान दो। अिस स्थितिके लिअे अगर तुम्हें सचमुच दुःख हो, यह देखकर तुम्हारी अन्तरात्मा व्याकुल हो,

तो तुम अपनी शक्तिके अनुसार अिसमें से किसी अेक बातमे सुधार करनेका आजीवन व्रत ले लो, और अुसके लिअे अपनी सारी शक्ति लगाती रहो। अिसमे केवल अपने सुखकी कल्पनाकी अपेक्षा तुम्हे कही अधिक धन्यता अनुभव होगी और हमारे समाजकी स्थिति भी सुधरेगी।

(प्रवचन, १९४०)

३

गृहस्थाश्रमकी दीक्षा*

आज तुम दोनोने अपने माता-पिता, गुरुजनो और बड़ोकी सम्मति और आशीर्वादसे गृहस्थाश्रम स्वीकार किया है। अब तकका जीवन यदि तुमने गृहस्थाश्रमकी पूर्व तैयारीके रूपमे बिताया होगा, तो तुम जानते ही होगे कि जीवनकी दृष्टिसे आजके दिनका कितना बडा महत्त्व है। मै मानता हू कि आज तुमने गृहस्थाश्रमके कर्तव्योकी जो जिम्मेदारी ली है, वह समझकर ही ली होगी। असलमें आजके अवसर पर तुमसे अुपदेशके दो शब्द कहनेके लिअे मेरे जैसा मनुष्य, जिसने यह जिम्मेदारी कभी स्वीकार नही की, योग्य नही माना जा सकता, जिसने गृहस्थाश्रमको जीवनका बडे महत्त्वका और अपनी आध्यात्मिक अुन्नतिके लिअे अुचित काल समझकर अुसका अीमानदारी और धर्मबुद्धिसे पालन किया हो और जो अिस आश्रमके सारे कर्तव्य यथायोग्य पूरे करता रहा हो, वही मनुष्य अिस बारेमें अनुभवपूर्ण और भावी जीवनमें तुम्हे रास्ता दिखानेवाला अुपदेश देने योग्य है। परन्तु तुम्हारे और तुम्हारे बुजुर्गोंके मेरे प्रति रहे सद्भाव, विश्वास और प्रेमके कारण

* अेक नवदम्पतीको दिया हुआ अुपदेश।

और तुम सबके आग्रहके कारण यह कर्तव्य मुझ पर आ पड़ा है, और तुम्हारे तथा समाजके प्रति सद्भावना रखनेके कारण अिसे स्वीकार करके तुमसे दो शब्द कहनेको मैं तैयार हुआ हूं।

संसारमें अुपयोगी सिद्ध होनेवाला ज्ञान प्राप्त करनेकी दृष्टिसे ब्रह्मचर्य आश्रमका बड़ा महत्त्व है। अिसी कालमें अनेक विद्यायें, कलायें और तरह-तरहका ज्ञान प्राप्त कर लेना होता है। अच्छे संस्कार ज्यादातर अिसी कालमें ग्रहण करने होते हैं। अुसके बादका आश्रम गृहस्थाश्रम है। कौटुम्बिक और सामाजिक महत्त्वके कर्तव्योंका प्रारम्भ अिस आश्रमसे होता है। आज तक तुम दोनों अलग-अलग थे, अब तुमने पति-पत्नी बनकर खुदको परस्पर बांध लिया है। पहले तुम्हारा अेक-दूसरेके साथ कोअी सम्बन्ध नहीं था। आजसे तुमने अपने जीवनको अेक कर लिया है। अब तुम्हारे सुख-दुःख, लाभ-हानि, धर्म-अधर्म, सब अेक हो गये हैं। आगे तुम दोनोंको मिलकर जीवन-पथ काटना है।

विवाह केवल अपने सुखके लिअे है, यह समझकर या सिर्फ आपसके आकर्षणसे लुभाकर या मोहमें फंसकर तुमने विवाह किया हो, या तुम्हारे बड़ोंके द्रव्यलोभ या किसी और क्षुद्र लोभके कारण तुम्हारा विवाह कराया गया हो, तो जिस विवाहकी जड़में केवल मोह है या किसीका द्रव्यलोभ है, अुसके बारेमें यह नहीं कहा जा सकता कि वह धर्मयुक्त विवाह है या गृहस्थाश्रमकी दीक्षा है। यदि तुम्हारे विवाहके पीछे किसी भी धर्मसंगत कर्तव्य या अुदात्त ध्येयकी कल्पना न हो और वह केवल अेक-दूसरेके आकर्षणसे ही हुआ हो, तो कहना पड़ेगा कि अुस आकर्षण और अुसके मोहके आधार पर ही तुमने अपना संसार चलानेकी आशा की है। तब आकर्षणका यह समय बीत जाने पर, मोह दूर हो जाने पर, अुसके बादका जीवन, अुसके बादका संसार तुम किस बलके आधार पर चलाओगे, यह अेक सवाल ही है। और विवाहके निमित्तसे अेक पक्षने दूसरे पक्षसे रुपया वसूल किया

हो, तो वह रुपया अुसे कितने दिन काम आयेगा ? तुम दोनो वर-वधूके निमित्तसे मै जो शब्द बोल रहा हू, वे केवल तुम्हीको ध्यानमें रखकर नही बोल रहा हू। जिन्हे दाम्पत्य-धर्म स्वीकार किये अनेक वर्ष हो गये हो, वे भी अिन शब्दो पर विचार करे और अपने जीवनकी जाच करे। अिसी तरह भविष्यमे दाम्पत्य-धर्म स्वीकार करनेकी अिच्छा रखने-वाले तरुण भी मेरे कहने पर अच्छी तरह ध्यान दें। जिस समाजमें विवाह सिर्फ मोहके कारण अथवा किसीके द्रव्यलोभकी तृप्तिके खयालसे होते है, वह समाज कभी अुन्नत नही हो सकता। जीवनकी दृष्टिसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अिस लग्न-विधिके निमित्तसे जिस समाजमे धर्म, कर्तव्य, अुदारता, प्रेम, अुदात्तता, अैक्य, विश्वास, परस्पर सहयोगकी भावना अित्यादि सस्कारो और सद्गुणोकी जाग्रति और वृद्धि नही होती, अुस समाजका अिस जीवन-सग्राममें लम्बे समय तक टिके रहना सम्भव नही। विवाहके निमित्तसे जहा आर्थिक अत्याचार, अन्याय, अपमान और स्वार्थ-साधन आदि बाते ही होती हो, वहा समाज भीतर ही भीतर अेक-दूसरेको खाकर जैसे-तैसे जीता होगा। मै मानता हू कि जिन वर-वधूको आशीर्वाद देने और जिनके शुभचिन्तनके लिअे मै यहा आया हू, वे और अुनके बुजुर्ग अिस समाज-घातक और मनुष्यताको दूषित करनेवाले पातकसे अलिप्त होगे।

विवाह केवल वर-कन्याके लिअे नही है। केवल अुनकी तात्का-लिक आवश्यकता पूरी करने या केवल अुनके सुखके लिअे ही नही है। मनुष्यमें रहनेवाली दुर्दम्य अिच्छाओ और नैसर्गिक प्रेरणाको केवल रास्ता देनेके लिअे भी वह नही है। ये बाते अुसमें आ जाती हो, तो भी अिनसे कही श्रेष्ठ और पवित्र ध्येय सफल करनेमें मनुष्यको विवाहका अुपयोग करना चाहिये और अुसे ही अिसका प्रधान हेतु समझना चाहिये। हमें अुसका अुपयोग मानवताकी प्राप्तिमें करना चाहिये। विवाह-सम्बन्ध द्वारा गृहस्थाश्रम स्वीकार करके

दोनोंको अेक-दूसरेकी अुन्नतिमें सहायक बनकर और समाजके कर्तव्य पूरे करके अपना श्रेय साधना है। परम्परासे चली आअी और बढ़ते-बढ़ते हम तक आ पहुंची मानवताकी विरासतको अधिक पवित्र, व्यापक, अुदात्त और अुन्नत बनाने तथा अुसे अपनी सन्तानमें अुतार कर हमारी भावी पीढ़ीको मानवताके मार्गमें जन्मसे ही अधिक योग्य बनानेके लिअे विवाह-सम्बन्ध है। विवाह द्वारा मनुष्यको पीढ़ी दर पीढ़ीके रूपमें निर्माण होनेवाले मानव-जातिके अिन संस्करणोंको मानवी सद्गुणोंमें अधिकसे अधिक शुद्ध और प्रगतिशील बनाते-बनाते सारी मानव-जातिको परम शुद्ध और परम मंगल स्थिति तक पहुंचानेका अीश्वरी हेतु पूरा करना है। विवाह-सम्बन्धसे वर-वधूका जीवन अेक होता है। अुसके कारण दो जीवोंमें मानो अेक ही चैतन्य बहने लगता है। दो जीवोंके अिस सम्बन्धसे दो कुटुम्ब अेकत्र होते हैं। अुनमें अेक-दूसरेके प्रति मित्रता, प्रेम, विश्वास आदि सद्भाव बढ़ने लगते हैं। अेक-दूसरेके सुख-दुःख थोड़ी-बहुत मात्रामें अुनमें से हरअेकको महसूस होने लगते हैं। अिन दो कुटुम्बोंके अन्य बहुतसे सम्बन्धी कुटुम्ब तथा अुन बहुतसे कुटुम्बोंके अनेक सगे-सम्बन्धी, मित्र और परिवार सबमें विवाहके निमित्तसे ही विशाल आत्मीयता और अेकता प्रतीत होने लगती है। सबको अेक-दूसरेका सहारा मालूम होने लगता है। सब अेक-दूसरेकी मदद करने लगते हैं और अेक-दूसरेका दुःख आपसमें बांटकर पारस्परिक सुखकी वृद्धि करते हैं। अिस प्रकार सबका मिलकर अेक-जीव समाज बनता है। अुस समाजकी, अुसके आबाल-वृद्ध स्त्री-पुरुषोंकी, सेवा गृहस्थ और गृहिणी अनेक प्रकारसे कर सकते हैं। प्राचीन कालके हमारे दैनिक पञ्च महायज्ञ गृहस्थाश्रमके आधार पर ही चलते थे। अुनमें देवता, पितर, ज्ञानी, मनुष्य और जीवमात्र — सबकी सेवाका समावेश किया गया था। अिन सबकी नित्य नियमित रूपमें सेवा करनेवाले दम्पतीके बराबर श्रेष्ठता अुस समय किसी की भी नहीं मानी जाती थी। अिस प्रकारका यह दाम्पत्य धर्म —

गृहस्थाश्रम — जीवनका पवित्र ध्येय सफल करनेके लिअे है। वह केवल तात्कालिक और क्षुद्र व्यक्तिगत सुखके लिअे है, अैसा मानना अुसकी विडम्बना करना है। अुसकी सहायतासे मनुष्यको अेक ओर अपनी अुन्नति और दूसरी ओर ससार सम्बन्धी अपने कर्तव्य पूरे करने है। स्त्री और पुरुष दोनोको क्रमश. पतिव्रत और पत्नीव्रत धारण करके अेकनिष्ठासे अुसका पालन करना चाहिये और अुसीमें से सयमकी अुपासनाको बढाते हुअे अपनी चचलता और असयमका सपूर्ण त्याग करके गृहस्थाश्रमकी परम शुद्धि करनी चाहिये। जीवनके लिअे आवश्यक अनेक सद्‌गुण प्राप्त करके मानवता सिद्ध करनी चाहिये।

गृहस्थाश्रममे मनको छोटा — सकुचित — रखनेसे काम नही चलता। जब तक वर-वधू सबके प्रति कर्तव्य-बुद्धि धारण करना न सीखे, मनकी अितनी विशालता प्राप्त न करे, तब तक वे 'गृहस्थ' और 'गृहिणी' के अत्यन्त आदरणीय पदके योग्य नही माने जा सकते। भले आज गृहस्थाश्रमका महत्त्व कही दिखाअी न देता हो, अुसका सच्चा और पवित्र हेतु भले कोअी न पहचानता हो, फिर भी यदि मनुष्यको अपने जीवनमे मानवता प्राप्त करनी हो और सारे समाजकी शुद्धि करके अुसके सद्‌गुणोमें वृद्धि करनी हो, तो गृहस्थाश्रमका महत्त्व पहचानना ही होगा। आज हमारे जीवनका कोअी खास महत्त्व ही नही रहा। गुजारा करनेके लिअे कोअी धन्धा कर लेना, अुसके द्वारा रुपया कमाकर बाल-बच्चोका जैसे-तैसे निर्वाह करना और अैसा करते-करते ही सही-गलत तरीकेसे भरसक रुपया जमा करना और थोडीसी अिज्जत बना लेना — जीवनके लिअे अिससे अधिक अुदात्त कोअी ध्येय ही आज नही रहा। हमारे पास कोअी अुच्च विचारसरणी नही है। समाजमे कही भी बचपनसे अुत्तम सस्कार मिलनेकी सुविधा नही है। अपनी अिच्छा, वासना या कामनाके अनुसार ज्यो-त्यो आदर्शरहित जीवन बितानेकी ही हमारी साधारण जीवन-पद्धति बन गअी है। अिसलिअे मानवताकी दृष्टिसे हमारे

जीवनका कोअी मूल्य नही रहा। हम कितनी ही पीढियोसे लगभग अिसी स्थितिमें है। अेकके वाद दूसरी पीढी अिस स्थितिमें से गुजरती रहती है, परन्तु हमारा कोअी विकास नही होता। अिसका कारण यह है कि हममें यह आकाक्षा ही नही है कि हमें सुधरना चाहिये, अुन्नत होना चाहिये। हर साल लाखो शादिया होती है। लाखो नये दम्पती नये ससारका प्रारम्भ करते है। अपने वुजुर्गों, माता-पिताओ द्वारा ससारमें, दाम्पत्य-जीवनमें, की गअी भूले वे भी करते है और अपने माता-पिताकी तरह ही अुनके कडवे फल भोगते है। हरअेक पीढी अिन्ही विपरीत परिणामोका अनुभव करके चली जाती है, फिर भी भावी सतानोको अपने अनुभवका ज्ञान देकर सावधान नही करती। अज्ञान, असयम और काम, क्रोध, लोभके आवर्तोंके कारण अपने हाथो हुअी भूलोंसे तथा अुनके कारण स्वय और दूसरोके भोगे हुअे परिणामोंसे भावी पीढीको वचानेके लिअे गृहस्थ-जीवन शुरू करनेसे पहले ही अुसे सचेत नही किया जाता। हम अपनी सतानोको अज्ञानमें रखते है। ससार और अुसमें होनेवाली अच्छी-बुरी वाते, अुसके सुख-दुःख, आनन्द-शोक, लाभ-हानि, अुन्नति-अवनति, यश-अपयश, भला-बुरा अित्यादि सव वातोका ज्ञान पहलेसे ही देकर हम अुन्हें नही वताते कि किस क्षेत्रमें किस मार्गसे और किस ढगसे अुन्हे जाना चाहिये और अुसके अनिष्ट, दुःख, शोक, अवनति और अपयश वगैरासे कैसे वचना चाहिये। यह हमारी जडता है। लम्बे समय तक हमारे समाजकी स्थिति देखकर मैंने यह अनुभव किया है। अितने पर भी मै यह कहनेको तैयार नही कि हम पीढियोंसे दुष्ट या मूर्ख रहे है और अपनी सतानोका जान-बूझकर अकल्याण करते रहे है। माता-पिताके हृदयमें अपनी सन्तानके लिअे कितनी प्रीति, वात्सल्य और चिन्ता होती है, यह मै अच्छी तरह जानता हू। मेरे अपने तथा आप्त, अिष्ट व मित्र-जनोंके माता-पिताके प्रेम और वात्सल्यका जो लाभ मुझे सौभाग्यसे

मिला है, अुसे मैं कभी भूल नही सकता। अुनके प्रेम और वात्सल्यकी महत्ता मैं जानता हू। अुन सबके लिअे मेरे मनमे जो पूज्यभाव और कृतज्ञता बसी हुअी है, वह कभी नही मिटेगी। परन्तु ये सब भाव कायम रहने पर भी मुझे अैसा लगता है कि ससारकी कितनी ही जरूरी बातोके बारेमे हममे जडता आ गअी है। यह शायद हमारे रूढिग्रस्त होनेका या हमारे परम्परागत सामाजिक-धार्मिक रीति-रिवाजोका परिणाम होगा। परन्तु अब हमें लम्बे समयसे चला आ रहा अपना यह दोष निकाल देना चाहिये। छुटपनसे अुचित ज्ञान देते देते बच्चोको संसारकी यथार्थ जानकारी हो जानेके बाद, जिम्मेदारी और कर्तव्यकी भावना अुनमें दृढ हो जानेके बाद और हमारी की हुअी भूले वे न दोहराये अितनी जाग्रति, ज्ञान और दृढता अुनमे आ जानेके बाद ही मातापिताको अुन्हे ससारमे प्रविष्ट कराना चाहिये। अस्तु।

नवदम्पती, तुमने अपने सिर पर बहुत बडी और पवित्र जिम्मेदारी ली है। गृहस्थ-जीवनमें अनेक कठिनाअिया और संकटोका सामना करना पडता है। तुम्हे अपना शील कायम रखकर अिन सबमें से पार होना है। तुम्हे सुखकी अिच्छा होना स्वाभाविक है। यदि तुम धर्मके मार्ग पर चलोगे, कर्तव्यबुद्धि जाग्रत रखकर अुसके अनुसार रहोगे, तो जरूर सुखी होगे। ससार दुखके लिअे नही बनाया गया है। परमात्माकी अैसी अिच्छा नही है। हम सब सद्भावसे रहे, विवेकपूर्वक चले, तो अिसमे शक नही कि सब सुखी होगे। तुम दूसरोको सुखी करने, अपने सद्गुणोसे औरोको आनन्दित बनानेका प्रयत्न करो। अिससे तुम्हे सुख और आनन्द मिले बिना नही रहेगा। सुखके बारेमें तुम सकुचित वृत्ति रखोगे, केवल अपने ही सुखकी तरफ देखोगे तो वह तुम्हारे हाथमे नही आयेगा। मैं देखता हू कि केवल स्वार्थके पीछे पडनेसे ससारमे कलह और क्लेष पैदा होते हैं। कुटुम्बका हरअेक व्यक्ति अुदारता धारण करे, सेवावृत्ति बढावे, औरोके सुखमें अपना सुख माने और

कृपणता छोड दें, तो कुटुम्बके सारे लोगोंको निश्चित ही आनन्द और सुख मिलेगा। अैसा सौभाग्य प्राप्त करनेके लिअे प्रत्येकको थोड़ा-बहुत कष्ट अुठाना ही पड़ेगा। परन्तु अिससे कभी अूब न जाना; घबड़ा न जाना। हमारा जीवन सबके लिअे है, अैसी अुदात्त भावना अपनाओगे, तो तुम्हें कोअी भी बात कठिन नहीं लगेगी। जब कि कृपणता रखनेसे हरअेक बात तुम्हें असंभव जान पड़ेगी। गृहस्थ-जीवनमें कभी-कभी तुम दोनोंके बीच भी मतभेद और असंतोषके मौके आयेंगे, परन्तु अुस समय तुम अुदारता रखना। अेक-दूसरेको निभा लेना सीखना। दूसरेके दोषोंके प्रति क्षमावृत्ति रखना। अहंकार और दुराग्रह न रखना। अन्तर्मुख होकर अपने दोष ढूंढना, जाचना और सुधारना। तुम्हारी दुष्टता और स्वार्थसे किसीका मन न दुखे, अिस बातका ध्यान रखना। दुर्बुद्धिको चित्तमें आसरा न देना। आपसमें संशय न रखना। तुम दोनोंमें परस्पर प्रेम और विश्वास दिनों-दिन बढ़ना चाहिये। तुम दोनोंके कारण सारे कुटुम्बमें सुख, आनन्द, प्रेम, विश्वास और अेकताकी लगातार वृद्धि होनी चाहिये। अब तुम्हें अपने मन पहलेकी अपेक्षा विशाल बनाने चाहियें। तुम्हारे सद्भाव और सद्गुण अब अधिक व्यापक होने चाहियें। बधूको अपना नया घर अपने प्रेम, सद्भाव, अुद्योग, सेवावृत्ति, आनंदी स्वभाव, प्रामाणिकता और सत्यपरायणता वगैरा गुणोंसे अपना बना लेना चाहिये। वरके बड़ोंको अुसके साथ अपनी लड़कीकी तरह प्रेमका बर्ताव करना चाहिये। वरको भी अपनी पत्नीके बड़े-बूढ़ोंके साथ नम्रता और प्रेमसे व्यवहार करके अुन्हें पुत्रकी तरह आनन्द देना चाहिये। तुम्हारा अब तकका जीवन सद्गुणोंसे भरा होगा, तो आगे भी तुम्हें कोअी कठिनाअी मालूम नहीं होगी और तुम्हारे सद्गुणोंका सदा विकास ही होता रहेगा।

परमात्मा तुम्हें अपने प्रत्येक धर्म्य कार्यमें सहायता दे और अुसीकी कृपासे तुम दोनोंका जीवन तुम्हारे आपसके, तुम दोनोंके

कुटुम्बके, तुम्हारे समाजके, देशके और सारी मानव-जातिके अुत्कर्ष और अुन्नतिके लिअे पोषक बने, यही मेरी शुभेच्छा है और अिस मंगलमय प्रसग पर यही मेरा तुम दोनोको प्रेमपूर्वक आशीर्वाद है।

४

स्त्री-पुरुषके साधारण और विशेष गुण

[अेक दम्पतीके साथ — अधिकतर पत्नीके साथ — हुआ सम्भाषण।]

प्रश्न — आप हमेशा आग्रहपूर्वक कहते है कि मनुष्यकी अुन्नतिका आधार गुणोके विकास पर ही है। यह बात मेरे गले अुतर गअी है। परन्तु गुणोके विकासके लिअे किसी खास अनुकूल परिस्थितिकी जरूरत होती है; अैसी परिस्थिति किसीकी न हो तो वह अपनी अुन्नति कैसे करे?

अुत्तर — यह सही है कि कुछ गुणोके विकासके लिअे अनुकूल परिस्थितिकी जरूरत होती है; परन्तु कुछ अन्य गुणोका विकास प्रतिकूल और विकट परिस्थितिके विना नही हो सकता। मनुष्य यदि प्राप्त परिस्थितिका विचार करे और यह खोजकर कि अुस स्थितिमें किस तरहका वर्ताव विवेकयुक्त और सदाचारपूर्ण होगा, अुसी प्रकार वर्ताव करनेकी कोशिश करे, तो अिसमे शका नही कि वह कैसी भी परिस्थितिमे अपनी अुन्नति कर सकता है। परिस्थितिकी अनुकूलता या प्रतिकूलता सद्‌गुण-वृद्धिके परिणामसे तय करनी हो, तो जिस परिस्थितिमे सद्‌गुणोकी जरूरत महसूस हो, जिसमें वे जाग्रत और वृद्धिगत हो, अुसी स्थितिको दरअसल अनुकूल स्थिति कहना चाहिये; फिर वह परिस्थिति हमें प्रिय लगे या अप्रिय, वाछनीय हो या अवाछनीय। परन्तु अुसी परिस्थितिमे विवेक और सदाचारसे व्यवहार करनेका निश्चय करके अुसके अनुसार हम चलते रहे और

यदि अुसमें सद्‌गुण सम्बन्धी हमारी पात्रता बढे, तो अप्रिय परिस्थिति भी हमारी अुन्नतिकी दृष्टिसे हमारे लिअे अनुकूल और हितकारक ही साबित होगी। अिसलिअे अप्रिय लगनेवाली और अूपर-अूपरसे देखने पर दुःखद लगनेवाली परिस्थितिको अपनी अुन्नतिकी दृष्टिसे अनुकूल बना लेना हमारी विवेक-बुद्धि और सदाचार-सम्बन्धी निष्ठा पर निर्भर है। हमारे जीवनका हेतु पवित्र और शुभ हो, सद्‌गुणसम्पन्न होकर मानव-जीवनको कृतार्थ करनेका ही अेकमात्र ध्येय हमने अपनाया हो, तो मेरे खयालसे हम कैसी भी परिस्थितिका सदुपयोग कर सकेंगे। विचारपूर्वक आचरण करें, तो बाहरसे खराब दीखनेवाली परिस्थितिमें भी कुछ न कुछ अच्छा सिद्ध हो सकता है। 'अीश्वर जो कुछ करता है, हमारे भलेके लिअे ही करता है' अैसा जो हम कभी-कभी श्रद्धावान मनुष्योंको अपने सिर दुःख आ पडने पर कहते सुनते हैं, अुसका यही अर्थ होगा।

मानव-जीवनमें अनेक प्रकारके सद्‌गुणोंकी आवश्यकता होती है। अुनमें से हरअेक सद्‌गुणकी आवश्यकता प्रगट करने तथा अुसे जाग्रत करनेके लिअे अलग-अलग प्रिय-अप्रिय अन्तर्बाह्य प्रसंगों और परिस्थितियोंकी जरूरत होती है। क्योंकि किसी भी सद्‌गुणकी आवश्यकताका भान (विचारशील) मनुष्यको किसी खास अवसर पर ही होता है, यह भान होनेके बाद अुस गुणकी जाग्रति होती है, और जाग्रतिके बाद अवसरकी कम-ज्यादा तीव्रताके अनुरूप अुस गुणके अनुसार आचरण होता है, और बादमें अुसकी वृद्धि — यह प्रत्येक गुणकी वृद्धिका क्रम है। अिसलिअे सभी गुणोंका अेक ही परिस्थितिमें जाग्रत होना और विकास पाना संभव नहीं। प्रेम, मैत्री, अुदारता, वात्सल्य, दया अित्यादि गुण जैसे अेक खास परिस्थिति और मनःस्थितिमें जाग्रत होते हैं, वैसे ही सत्यनिष्ठा, प्रामाणिकता और न्यायपरायणता आदि गुणोंके जाग्रत होने और अुनका विकास होनेके लिअे भिन्न परिस्थितिकी जरूरत होती है। और शौर्य, धैर्य, निर्भयता, सहनशीलता

आदि सद्गुण दूसरी ही परिस्थितिमे निर्माण होते है। कुछ गुण दूसरो पर आये हुअे कठिन प्रसगको देखकर मनुष्यमें जाग्रत होते है, तो कुछ अन्य गुणोकी अुत्पत्ति अपने पर आये हुअे कठिन प्रसगोंसे होती है। कोमल भावनाये दूसरो पर आअी हुअी मुसीबते देखकर पैदा होती है, जब कि वे गुण, जिनके लिअे मनको दृढ और कठोर बनाना पडता है, अपने पर आ पडनेवाले सकटके समय पैदा होते है। "मअू मेणाहूनि आम्ही विष्णुदास। कठिण वज्रास भेदू अैसे॥" (हम विष्णुके भक्त मोमसे नरम और वज्रको भी छेद दे अैसे कठोर है।) अैसा अेक सत-वचन है। अिसी तरह "सज्जनोके मन वज्रसे भी कठिन और फूलसे भी कोमल होते है", अिस अर्थका भी अेक सुभाषित प्रचलित है। अिससे यही बात साबित होती है कि सज्जनोके चित्तमें अवसरके अनुसार गुणोका आविर्भाव होता है। कोअी परिस्थिति मनकी कोमल भावनायें विकसित होनेके लिअे अनुकूल न हो, तो अुन गुणोके पोषणके लिअे अुपयोगी हो सकती है, जिनके लिअे मनकी दृढताकी जरूरत होती है। मनुष्य जब निर्धन हो जाता है, तब आम तौर पर अुसकी अुदारताका विकास नही होता, परन्तु अुसी अरसेमें वह अपनेमें सादगी, सहनशीलता, धीरज, निरालस्य, परिश्रमशीलता और किफायतशारी वगैरा गुण विवेकपूर्वक पैदा कर सकता है, और निर्धनतामें मनुष्य कितना असहाय और लाचार बन जाता है, अिसका स्वानुभवपूर्वक बोध वह अिस परसे निकाल सकता है। अिससे मालूम होता है कि विचारवान मनुष्य किसी भी परिस्थितिमें सद्गुणोकी और ज्ञानकी वृद्धि करके अपना हित साध लेता है। सद्गुणो और ज्ञानके विकासके लिअे कोअी भी समय प्रतिकूल नही होता। परन्तु मुख्य बात अितनी ही है कि अपनी अुन्नतिकी मनुष्यको तीव्र अिच्छा होनी चाहिये और प्राप्त अवसर पर किस सद्गुणकी जरूरत है, यह पहचाननेका अुसमें विवेक होना चाहिये। अगर अुसमें यह तीव्र अिच्छा और विवेक न हो, तो सारा जीवन बीत जाने पर

भी और अपने तथा दूसरों पर आनेवाले अच्छे-बुरे प्रसंगोंका प्रतिदिन अनुभव होने तथा अुन्हें देखते रहने पर भी वह अुन्नतिके लिअे योग्य और अनुकूल परिस्थितिको नहीं पहचान सकेगा, और न वह अुसे कभी मिलेगी।

प्रश्न — अिन सब बातोंसे आपका कहना मैं अच्छी तरह समझ गया। विवेकशील मनुष्यको गुणविकासके लिअे कोअी भी परिस्थिति अनुकूल प्रतीत होगी, अिसमें मुझे अब शंका नहीं रही। परन्तु मुझे यह समझाअिये कि स्त्रियों और पुरुषोंको अपनी-अपनी अुन्नतिके लिअे अेक ही तरहके गुणोंकी जरूरत है या भिन्न गुणोंकी?

अुत्तर — दोनोंको सभी मानव सद्गुणोंकी जरूरत है। दोनों ही मनुष्य हैं। और दोनोंका अपनी-अपनी दृष्टिसे पूरा विकास होना जरूरी है। फिर भी दोनोंके कार्यक्षेत्र अलग-अलग होनेसे अुनके कार्योंके अनुसार दोनोंके गुणोंमें थोड़ा बहुत फर्क भी दिखाअी देगा। परन्तु यह कभी नहीं होता कि किसी गुणकी पुरुषको तो अपनी अुन्नतिके लिअे अत्यन्त जरूरत हो, लेकिन स्त्रीको अुसकी जरा भी जरूरत न हो; या अिससे अुल्टा, किसी गुणकी स्त्रीको जरूरत हो, लेकिन पुरुषको बिलकुल न हो। मानव-जीवन अनेक गुणोंके आधार पर चल रहा है। जिस समय जिस गुणकी जरूरत हो, वह स्त्री या पुरुष किसीमें भी प्रगट होना चाहिये। तभी जीवनके कठिन प्रसंगों और कठिनाअियोंका निवारण होगा और मनुष्यकी अुन्नति हो सकेगी। सत्य, प्रामाणिकता वगैरा नैतिक गुण और करुणा, अुदारता वगैरा भावपोषक गुण स्त्री-पुरुष दोनोंमें अेकसे ही होने चाहियें; अितना ही नहीं, परन्तु शौर्य, धैर्य, साहस आदि आम तौर पर पुरुषोंमें पाये जानेवाले गुण भी स्त्रियोंमें होने चाहियें; और वात्सल्य, बाल-संगोपन, शुश्रूषा-वृत्ति आदि ज्यादातर स्त्रियोंमें दिखाअी देनेवाले गुण भी पुरुषोंमें होने चाहियें। स्त्रियों पर घरकी व्यवस्थाकी जिम्मेदारी होनेसे बाल-संगोपन और संवर्धन, गृह-व्यवस्था, खानपान और आरोग्य

वगैराकी देखभाल अुन्हे ही करनी पडती है, अत अिसके लिअे आवश्यक गुण अुनमें विशेष मात्रामें होने चाहियें। अर्थ-सम्पादन और सबकी रक्षाकी जिम्मेदारी पुरुषोके सिर होनेसे अिन गुणोकी वृद्धि पुरुषोमें होनी चाहिये। किसी खास अवसर पर अेक ही में दोनोके गुण जरूरी हो सकते हैं। बच्चोकी छोटी आयुमें ही अुनकी माताकी मृत्यु हो जाय, तो पिताको बाहर कमाअी करके बच्चोके पालन-पोषणका काम भी करना पडता है। अथवा पिताके मर जाने पर माको ही कुछ न कुछ कमाअी करके बालकोका भरण-पोषण और सगोपन करना पडता है। अैसे समय प्रत्येकमें दोनोके विशेष गुण किसी हद तक प्रगट हुअे विना बच्चोका लालन-पालन, सगोपन और शिक्षण वगैरा होना सभव नही। यह तो किसी विशेष अवसरकी बात हुअी। परन्तु हमेशाके लिअे यह नियम ध्यानमें रखना चाहिये कि नैतिक और भाववर्धक गुणोकी दोनोको अेकसी जरूरत है। कार्य विशेषके लिअे आवश्यक गुणोके बारेमें दोनोमें थोडी बहुत भिन्नता हो, तो भी अिससे अुनकी अुन्नतिमें बाधा नही आयेगी। अितना ही होगा कि अेकका क्षेत्र सकुचित होनेसे कुछ गुणोसे अुसका सम्बन्ध अुतनी मात्रामे कम रहेगा और दूसरेका क्षेत्र व्यापक होनेसे अुन गुणोसे अुसका अुतनी मात्रामें अधिक सम्बन्ध रहेगा। परन्तु अिससे दोनोकी अुन्नतिमें फर्क पडनेका कोअी कारण नही।

प्रश्न — अितना होने पर भी अिनमें से विशेषतया किन गुणों और भावनाओका पोषण करनेसे स्त्रियोकी और किन गुणो और भावनाओका पोषण करनेसे पुरुषोकी अुन्नति हो सकेगी — अिसका कुछ स्पष्टीकरण किया सकता है? गुणोमे भी स्त्री-सुलभ और पुरुष-सुलभ गुणोका कोअी भेद तो होगा ही न?

अुत्तर — कुदरतने खुद ही दोनोमें कुछ न कुछ भिन्नता रखी है, अिसलिअे अुनके कार्यों और तदनुसार गुणो और भावनाओमें कुछ न कुछ भिन्नता और विशेषता होना स्वाभाविक है। माता बालकको

जन्म देती है। गर्भसे लेकर अुसका पोषण वही करती है। जन्मके बाद भी बालक अुसी पर पूरा-पूरा अवलम्बित होता है। अुसका संगोपन, संवर्धन सब अुसीको करना पड़ता है। अुसकी शारीरिक, बौद्धिक और मानसिक क्रियायें और व्यापार वह जानती है। बच्चा भी शरीर, बुद्धि, मन तीनोंके लिअे अुसीसे आवश्यक पोषण प्राप्त करता है। अिस प्रकार वे दोनों अेक-दूसरेके साथ सदा समरस रहते हैं। बालक यानी अेक ही चैतन्यमें से प्राण, मन और बुद्धिसे युक्त दूसरे आकारवाला चैतन्य। यह खोज करना कठिन है कि वे अेकमें से दो हुअे हैं या दोनों समरस होकर अेक बनते हैं। अेक ओर मातृप्रेमके और दूसरी ओर वात्सल्यके सम्बन्धसे वे अेक-दूसरेके साथ तादात्म्य प्राप्त किये होते हैं। स्त्रीके जीवनमें अुसके भाववर्धक गुणोंको अिस वात्सल्यसे ही विशेष गति मिलती है। वात्सल्यसे ही अुसकी प्रतिपालक शक्ति विशेष जाग्रत और प्रगट होती है। दूसरे प्राणीके लिअे स्वयं कष्ट सहनेका गुण और शक्ति वात्सल्यसे ही पैदा होती है। स्त्री पतिके लिअे कष्ट सहती है और पुत्रके लिअे भी सहती है। परन्तु अिन दोनों सम्बन्धोंमें कष्ट सहनेकी भावनामें बहुत अन्तर है। मातृत्वमें जो कोमलता, जो माधुर्य, जो पवित्रता और जो सरलता है, अुनका केवल पत्नीत्वमें पाया जाना कभी संभव नहीं मालूम होता। पत्नीधर्म और मातृधर्ममें बड़ा फर्क है। अेकमें सती होने तकके विलक्षण त्यागमें भी भयानकता, विवशता, असहायता और दासत्वकी भावना स्पष्ट दिखाअी देती है; जब कि दूसरेमें कोमलता, सरलता और स्वाभाविकता भरी हुअी दिखाअी देती है। वात्सल्यके द्वारा ही स्त्रियोंमें अपने आप गाम्भीर्य और स्थिरता आती है। वात्सल्यकी पूर्तिके लिअे अुन्हें अपनेमें दूसरे गुण लाने पड़ते हैं। अिस प्रकार अुनमें अिस अेक भावनाके कारण कअी अन्य गुणोंकी जाग्रति और विकास हो सकता है। वात्सल्यके कारण वे खुद प्रेमसे कष्ट सहना सीखती हैं, संयम रख सकती हैं। स्वयं कष्ट अुठाकर दूसरोंको सुख

पहुचानेकी वृत्ति अुनमे अिसीसे पैदा होती है। खुद खराब अन्न खाकर, समय पर भूखी रहकर भी बच्चेका पोषण करनेका भाव और गुण स्त्री अिसी वात्सल्यसे सीखती है। और यह सब सहकर भी वह कभी अिसका गर्व नही करती। निरहकारी सेवा माता ही करना जानती है और कर सकती है। जिसके हृदयमे जीवनभर अिस तरहका वात्सल्य रह सकता है, अुसीको माता कहना अुचित होगा। बाकी स्त्रिया जन्म देनेवाली अर्थात् जननी भले ही कहलाये। जो अपने ही बच्चोमें या लडके-लडकियोमे वात्सल्यके बारेमें भेद करती है या मानती है, कहना चाहिये कि अुनमें मातृत्वका विकास नही हुआ। अिसका अर्थ यही हो सकता है कि अिस प्रकार भेद करनेवाली स्त्रियोने लडके-लडकियोको जन्म देकर भी सेवा और निष्कामताका पाठ नही पढा। जिनके प्रेममे आर्थिक या अन्य कोअी दृष्टि हो, अुनमे वात्सल्यका विकास होना सभव नही। जो अपने पेटसे जन्मी हुअी सन्तानोमे भेद रखती है, अुनमें दूसरोके बच्चोके लिअे वात्सल्य कहासे पैदा होगा? अपने पेटसे पैदा हुआ लडका हो या लडकी, जिसे वात्सल्यकी अधिक आवश्यकता हो, असलमें माताका आकर्षण अुसीकी तरफ अधिक होना चाहिये। गडरिया भी पंगु मेमनेकी ज्यादा सभाल रखता है। जिस किसानके घर गाय-भैस होती है, वह भी कमजोर बछडेकी सबसे ज्यादा सभाल रखता है। अपने आश्रित पशुओके लिअे भी अच्छे आदमीके दिलमे कोमल भावना होती है। तो फिर अपनेको श्रेष्ठ कहनेवाले मानवमें अितनी भी सद्भावना, अितना भी वात्सल्य अपने बालकोके प्रति दिखाअी न दे तो अुसे क्या कहा जाय? अपने बच्चोके प्रति रहनेवाले वात्सल्यसे ही दूसरोंके बच्चोके प्रति वात्सल्य पैदा होता है। अिस वात्सल्यके द्वारा और अुसके लिअे जिन अन्य गुणोका अवलबन और अनुशीलन करना पडता है अुनके द्वारा ही स्त्रियोकी स्वाभाविक अुन्नति होती है।

पुरुषोंके बारेमे विचार करनेसे अैसा लगता है कि घर चलानेके लिअे आवश्यक कमाअी करनेकी और अुस कमाअीकी तथा अुस पर आधार रखनेवालोकी रक्षा करनेकी जिम्मेदारी अुन पर होती है। अत. अिसके लिअे जिन गुणोंकी जरूरत पडती है, अुन्ही गुणोंके द्वारा अुनकी अुन्नति होती है। ये गुण अुनमें जिस मात्रामे विकसित हुअे होंगे, अुनी मात्रामें अुनकी कौटुम्बिक स्थिति अच्छी होगी। पुरुषोमें भले सारे नैतिक गुण और भावनाये हो, लेकिन अगर अपना विशेष कर्तव्य पूरा करनेके लिअे आवश्यक गुण और शक्ति न हो तो काम न चलेगा। अिन गुणो और शक्तिमें ही अुनकी विशेषता है। प्रेम, वात्सल्य, सेवावृत्ति, निरालस्य, सादगी, सयम, किफायतशारी, अुचित अवसर पर अुदारता, परिश्रमशीलता, योजकता, आतिथ्य, कर्तव्यनिष्ठा वगैरा अनेक गुण, भाव और वृत्तिया स्त्री-पुरुष दोनोमें होनी चाहियें। लेकिन अगर अिसमें भी विशेपता ढूंढनी हो, तो स्त्रीमें वात्सल्य और पुरुषमें वाहरी कमाअीकी योग्यता और संरक्षक-शक्तिके गुण विशेप मात्रामे होने चाहियें।

प्रश्न—तात्पर्य यह कि आपके मतानुसार वात्सल्यके विना स्त्रियोका विकास होना सभव नही।

अुत्तर—स्त्रियोके मामलेमें कुदरतकी ही अैसी योजना है। अिसलिअे अुस योजनाको मुख्य समझकर अुसीके द्वारा अुन्नतिका विचार और प्रयत्न करना श्रेयस्कर होगा।

प्रश्न—लेकिन जिन स्त्रियोकी अपनी सतान नही है, अुनकी भी अुन्नति हुअी देखी जाती है और अुनमें भी अनेक सद्गुण विकसित हुअे पाये जाते हैं। अैसा क्यों?

अुत्तर—अपनी सतानके द्वारा ही स्त्रीमे वात्सल्यकी जाग्रति होती है अैसी वात नही। हा, यह सही है कि कुटुम्बमें रहनेके बावजूद जिनमें यह भाव जरा भी जाग्रत न हुआ हो, अुनमें अपनी सन्तानके विना यह भाव पैदा नही होगा। अेक प्रकारसे अिसे अुनकी

जड अवस्था ही समझना चाहिये। समाजमें अैसी स्त्रिया बहुत थोडी मिलेगी। जिस स्त्रीमे वात्सल्यके साथ दूसरे सद्‌गुणोका पहलेसे ही विकास हो गया है, अुसे वात्सल्यके लिअे अपनी ही सतानकी जरूरत नही होती। परन्तु अैसी स्त्रीमे भी वात्सल्य ही अधिक व्यापक रूपमे और अन्य सारे सद्‌गुणोसे प्रमुख रूपमे दिखाअी देगा।

प्रश्न — यानी किसी भी तरह अुसमे वात्सल्य विशेष रूपसे होना चाहिये, यही आपका कहना है न?

अुत्तर — हा। यही बात अधिक स्पष्टतासे कहू तो तुम्हारे ध्यानमे आ जायगी। अैसा नही है कि प्रत्येक स्त्रीको अपने बालक द्वारा ही वात्सल्यका पाठ मिलता है। परिवारमे लडकीको बचपनसे ही प्रेम और वात्सल्यका पाठ मिलता है। लडकी अपने छोटे भाअी-बहनोको सभालने लगती है, तभी से अुसमे अिस भावनाकी जाग्रति होती है। बड़ी बहनका छोटे भाअी या बहन पर जो प्रेम होता है, अुसमे भी वात्सल्यका ही अश होता है। जिसे बचपनसे अिस तरहका प्रेमसस्कार नही मिला होता, अुसमे अपने बालकके सिवा वात्सल्य जाग्रत होना सभव नही। प्रेमका ही अेक खास स्वरूप वात्सल्य है। जो बाह्य निमित्त प्रेम जाग्रत होनेका कारण बनता है, अुस निमित्तसे ही हम अुसे अलग-अलग भावनाके रूपमे जानते है। मातृप्रेम, पितृ-प्रेम, बन्धु-भगिनी प्रेम यद्यपि बाह्य निमित्त या सम्बन्धके कारण ही प्रेमके अलग-अलग प्रकार कहलाते है, तो भी अिन सबमे अेक ही प्रकारकी प्रेमवृत्ति है। मा, मौसी, फूफी, बडी बहन, चाची, मामी, दादी आदि सबका हम पर जो प्रेम होता है, अुसीका नाम वात्सल्य है। पिता, बडे भाअी, काका, मामा, दादा आदिका भी हम पर वात्सल्य होता है। परन्तु वात्सल्यके मामलेमे स्त्रियोकी विशेषता है। प्रेमके साथ जहा पूज्यताका भाव होता है, अुसे हम भक्ति कहते है। अीश्वर, माता-पिता, गुरु, सन्तजन अित्यादिके प्रति रहनेवाले प्रेमको हम पूज्यता या भक्तिभाव कहते है। असलमे अिन सबमे प्रेम ही

मुख्य चीज है। अिस किस्मका प्रेम छोटी लडकीमें भी होता है। यही प्रेम छोटे भाअी-बहनोंके निमित्तसे जाग्रत होकर बढने लगता है। यही अुसके वात्सल्यका अुद्‌भव है और यहींसे अुसकी वृद्धि होती है। अपने बालकके निमित्तसे अिसी वात्सल्यका सम्पूर्ण विकास करनेका अुसे अवसर मिलता है। अपनी संतानके अभावमें किसी स्त्रीको अैसा अवसर न मिला हो, तो भी वह अपने वात्सल्यका विकास अपने भाअी-बहन, देवरानी-जेठानी वगैराके बच्चोंके निमित्तसे अथवा सगे-सम्बन्धियों या अडोसी-पडोसीके बालकों पर रहे प्रेमके निमित्तसे कर सकती है। परन्तु अिसके लिअे अुस मार्गसे अपनी अुन्नति करनेकी अुसकी अुत्कट अिच्छा होनी चाहिये। यह अिच्छा अुसमें न हो और अपनी संतान न होनेके कारण वह अपनेको अभागिन मानती हो, तो वात्सल्यकी दृष्टिसे अुसकी अुन्नति होनेकी कोअी गुंजाअिश और आशा नहीं।

प्रश्न — परन्तु कअी स्त्रियोंका अिस बारेमें यह अनुभव है कि दूसरेके बच्चों पर किये गये प्रेमसे अन्तमें खुद अुन्हें कोअी लाभ नहीं होता। बच्चे अन्तमें अपने मां-बापकी तरफ ही खिंचते हैं और अुन्हींके हो जाते हैं। अत. अुनके लिअे की गअी सारी मेहनत बेकार जाती है।

अुत्तर — जिन्होंने अपने स्वार्थके लिये दूसरोंके बच्चोंका पालन-पोषण किया होगा, अुन्हें जरूर अैसा लगेगा। परन्तु जिन्होंने अपने वात्सल्यके लिअे और बच्चोंके कल्याणके लिअे परिश्रम किया होगा, अुन्हें यह देखकर आनन्द हुअे बिना नहीं रहेगा कि ये बालक हमारी दी हुअी शिक्षा और संस्कारोंके कारण अपने मां-बापको सुखी कर रहे हैं। हमने कुछ समय बच्चोंका पालन-पोषण किया, अुन्हें शिक्षा दी, संस्कार दिये, अिसीलिअे वे अपने मां-बापको सदाके लिअे छोडकर अुनकी मरजीके खिलाफ सदा हमारे पास रहें, अैसी अिच्छा कोअी सुशील स्त्री कभी नहीं करेगी। क्योंकि यह अिच्छा न्यायसंगत नहीं

है। हमारे पास रहकर हमसे मिले हुअे सस्कारो द्वारा वच्चे मातृ-पितृ-भक्त हो, स्वधर्मनिष्ठ हो, यही अिच्छा वच्चोका कल्याण चाहनेवाली किसी भी स्त्रीको रखनी चाहिये। अिसी प्रकार वच्चोके कल्याणकी दृष्टिसे देखें, तो जिन्होने अुनका थोडे समय भी ममता या वात्सल्यसे प्रतिपालन करके अुन्हे अच्छी शिक्षा दी, अुनके प्रति अुन्हे (वच्चोको) जीवनभर मातृभाव और कृतज्ञताका भाव रखना चाहिये। मौका पडने पर अुनके लिअे जरूरी परिश्रम करके अपने पर वरसाये हुअे वात्सल्य और अपने लिअे अुठाये गये परिश्रमके ऋणसे मुक्त होनेका प्रयत्न करना अिन वच्चोको अपने जीवनका अेक अत्यन्त आवश्यक और पवित्र कर्तव्य मानना चाहिये। अपना पालन-पोषण करनेवालोंके प्रति भी अुनके मनमे अपने मा-वापके जितना ही कर्तव्य-भाव जाग्रत रहना चाहिये। अेक ओर वात्सल्य और दूसरी ओर मातृभाव, अिस प्रकारके पवित्र भाव अेक-दूसरेमे हमेशा वने रहे, तो दोनोकी सद्भावनाका अुत्कर्ष होगा और दोनोकी अुन्नति होगी। अिसीलिअे दोनोमे सद्भाव, कर्त्तव्यनिष्ठा और अुन्नतिकी दृष्टि होनी चाहिये। तभी यह सभव हो सकता है और दोनो पक्ष जीवनभर सन्तुष्ट रह सकते है।

जीवनकी दृष्टिसे वात्सल्यका कितना महत्त्व है, यह ध्यानमें रखकर स्त्रिया हमेशा देखती रहे कि अुसके द्वारा अुनका जीवन अधिकाधिक अुन्नत हो रहा है या नही। परमात्माका यह हेतु हो कि मनुष्य-जाति दुनियामें सदा वनी रहे या हम सवकी यह अिच्छा हो कि कुदरतके किसी अज्ञात या अतर्क्य धर्मसे निर्माण हुअे मनुष्य-प्राणीकी परम्परा कायम रहे, तो परमात्माका वह हेतु या हम सवकी वह अिच्छा पूरी होनेके लिअे मानव-जातिमें जनन-धर्मकी अपेक्षा प्रति-पालन धर्मका होना ज्यादा जरूरी है। और अिस प्रतिपालन धर्मकी अुत्पत्ति और विकास वात्सल्यसे ही है, यह वात हम सवको, खास तौर पर स्त्रियोको, ध्यानमे रखनी चाहिये। सिर्फ मानव-जातिका ही

-नहीं, परन्तु पशु-पक्षी वगैरा प्राणियोंका अस्तित्व भी मुख्यत: अिस वात्सल्यके कारण ही टिका हुआ है। अिन बातोंको देखते हुअे, मानव-जातिकी शाश्वतताके लिअे अत्यन्त आवश्यक अिस महान् सद्भाव और गुणकी कीमत कभी कम न मानकर भरसक अुसका विकास करना चाहिये। केवल अपने पेटसे पैदा हुअे बालकका प्रतिपालन करनेसे अिस धर्मकी समाप्ति नहीं हो जाती। यह तो अुसका प्रारम्भ है। अितना-सा धर्म तो पशु-पक्षियोंमें भी अेक खास समय तक दिखाअी देता है। मनुष्य यदि अितनेसे ही अपनेको कृतकृत्य मान ले, तो अिसमें अुसकी क्या श्रेष्ठता है? अपने भाअी-बन्धुओं और बच्चोंके निमित्तसे पैदा हुअे अिस धर्मको जीवनभर अधिकाधिक व्यापक, अुदात्त और पवित्र बनाते रहनेमें ही मानव-जातिकी विशेषता है। स्त्रियों और पुरुषोंको अैसी हरअेक विशेषता सिद्ध करते करते अपना जीवन सद्‌गुण-समृद्ध बनाना चाहिये। जिनके वात्सल्यकी मर्यादा अपने बच्चोंसे आगे नहीं जा सकती, अुनमें जीवन-विकासकी दृष्टिसे वात्सल्यकी अपेक्षा मोहका ही अंश अधिक होना चाहिये। परन्तु जो स्त्री दूसरेके पेटसे पैदा हुअी सन्तानोंका ममतासे पालन-पोषण करके, अुन्हें अच्छी शिक्षा और संस्कार देकर, बिना किसी स्वार्थकी अभिलाषा रखे अुनके माता-पिताको वापस सौंप देती है, अथवा जिनकी सम्हाल रखनेवाला कोअी नहीं है या जिनके माता-पिताका पता नहीं है, अैसे निराश्रित बालकोंका पेटके बच्चेकी तरह निरपेक्ष भावसे पालन करके जो स्त्री अुन्हें बड़ा करती है, अुनके लिअे हर तरहका कष्ट और अवसर आने पर निन्दा और अपमान वगैरा भी सहन करती है, वह निःसन्देह केवल अपने बच्चोंके लिअे कष्ट सहनेवाली अन्य किसी भी स्त्रीसे अिस मामलेमें अधिक अुदार और श्रेष्ठ है। जिसके वात्सल्यमें व्यापकता है पर मोह नहीं, जिसमें कर्तृत्व है परन्तु लोभ नहीं, जिसमें सद्‌गुण होने पर भी अहंकार नहीं, वह स्त्री दूसरी साधारण स्त्रियोंसे जरूर अधिक सौभाग्यशाली है। अुसके अिस

वात्सल्यका, कर्तृत्वका और सद्‌गुणोका अुत्तरोत्तर विकास होता रहे, तो किसीको जन्म देकर किसीकी जननी न वनने पर भी वह जग-माता वननेके लायक होगी — अितने वडे भाग्य और योग्यताको वह पहुचेगी। क्योकि वह मानवधर्मके अेक महान गुणकी अुपासक है।

अगर अिस महान सद्‌गुणका महत्त्व हम जानते होते और अिसकी अुपासना हमारे समाजमे प्रचलित होती, तो पुरुषोके, खास तौर पर स्त्रियोके जीवनमे अिससे कितनी शोभा आ गअी होती? कितने वडे-वडे कुटुम्व आज आनन्द और सुखका जीवन विताते? फिर क्या किसीने अपने या अपने भाअी-वहनो या देवरानी-जेठानीके वच्चोमें भेद माना होता? वात्सल्य और प्रेमके वारेमे स्त्रियोमे आज लगभग सर्वत्र दिखाअी देनेवाली दीनता, कृपणता और अनुदारता फिर कहा नजर आती? भाअी-भाअीमे कलह, कुटुम्वमे फूट और आपसमे अनवन कहासे होती? और फिर हमारी मानवताको कलक कहासे लगता? हमारा कुटुम्व हम और हमारे पेटसे जन्मी हुअी सन्तान तक ही सीमित है — अितनी सकुचित कल्पनासे हमने कैसे सन्तोष माना होता? हममे व्यापक रूपसे वात्सल्य निवास करता होता, तो जगह-जगह विना मा-वापके अनाथ वच्चे हमें क्यो नजर आते? यह सारी दुरवस्था हमारे वात्सल्यके अभावके कारण है। पुरुषोकी अपेक्षा स्त्रियोको अिस स्थितिके लिअे ज्यादा दु ख होना चाहिये, क्योकि यह सद्‌गुण अुनकी अुन्नतिका मुख्य आधार है। स्त्रियोमे से मातृत्व निकाल दे, तो वाकी क्या रह जाता है? और वात्सल्यके विना मातृत्वका क्या कोअी अर्थ रह जाता है? यह वात्सल्य हममें है या नही, हमारे और दूसरोके वालकोका प्रतिपालन करनेसे अुनका और हमारा विकास होता है या नही, अिस तरफ अुन्हे ध्यान देना चाहिये। अुन्हे देखना चाहिये कि अपने सहवाससे, अच्छे सस्कारोसे वालक धर्मनिष्ठ वनते है या नही।

प्रश्न — अपने बालकोंके लिअे खूब कष्ट सहनेवाले माता-पिताकी भी बालक बड़े होने पर परवाह नहीं करते। अिसका क्या कारण होगा ?

अुत्तर — लड़का हो या लड़की, अुसे सच्चे धर्मकी शिक्षा देकर हम धर्मनिष्ठ बनानेकी कोशिश नहीं करते, यही अिसका कारण होना चाहिये। मा-बाप बच्चों पर प्रेम करते हैं, वात्सल्यके कारण अुनके लिअे बहुत कष्ट सहते हैं और अुन्हें सुखी बनानेकी कोशिश करते हैं। सुख और सहवासके कारण जन्मसे ही बालकोंके मनमें माता-पिताके लिअे प्रेमभाव अुत्पन्न होता है। अुस समय कोअी किसीका वियोग सहन नहीं कर सकता। परन्तु बच्चे ज्यों-ज्यों स्वाधीन होते हैं, अुनके मनमें अलग-अलग सुखेच्छायें जाग्रत होती हैं। और जब वे अिच्छायें मा-बाप पूरी नहीं कर पाते, तब अुनकी मनोवृत्ति अुस तरफ झुकती है जहां अुनके खयालसे वे पूरी हो सकती हैं। अुसके परिणामस्वरूप मा-बापके प्रति अुनका पहला भाव कम होने लगता है। मा-बाप भी बच्चोंको केवल सुख पहुंचानेका प्रयत्न करते हैं, अिसलिअे वे केवल सुखभोगी बन जाते हैं। मा-बापके प्रति अुन्हें जो प्रेम होता है, वह भी केवल अपने सुखके लिअे ही होता है। जहां सुख मिले वहां ममता पैदा होनेकी सहज प्रवृत्ति बच्चोंमें बढ़ी हुअी होती है। अुसमें कर्तव्य या धर्मका अंश अकसर नहीं होता। कर्तव्यके लिअे कष्ट भी सहने चाहियें, दुःख हो तो भी कर्तव्य न छोड़ना चाहिये, धर्मके सामने सुखकी परवाह न करनी चाहिये, अधर्म या अन्याय न सहकर अुसके प्रतिकारके लिअे सब कुछ सहनेको तैयार रहना चाहिये। गरज यह कि हमें धर्मके लिअे ही जीना चाहिये और मौका पड़ने पर धर्मके लिअे मृत्युका भी आनन्दसे स्वीकार करना चाहिये। अिस प्रकारकी शिक्षा माता-पिता बच्चोंको कभी नहीं देते। वे बराबर सुख देते रहनेके कारण बच्चोंको केवल सुखोपभोगी बना देते हैं। अिस प्रकार सुखभोगी बनी हुअी सन्तानको मा-बापकी तरफसे वांछित सुख

मिलना बन्द हो जाने पर अगर वह अुस तरफ मुडे, जहां अुसे सुख मिलनेकी आशा हो और मा-बापको छोड दे, तो अिसमे आश्चर्य क्या ? बचपनमें पूरी तरह मा-बापके अधीन रहे हुअे लडके जवानीमे पत्नीके अधीन बनकर मा-बापका भाव तक नही पूछते, अिसका कारण अुनकी सुख-लोलुपता और धर्मशिक्षाका अभाव ही मालूम होता है। बच्चोको सुखकी अपेक्षा धर्म पर, कर्त्तव्य पर प्रेम करना सिखाया जाय, तो मेरे खयालसे अैसे दुखदायी परिणामोकी सम्भावना न रहेगी। अिसलिअे जिन्होने अपने वात्सल्यके निमित्तसे अपने और बच्चोके मोहकी वृद्धि न करके अुन्हे बचपनसे ही धर्मकी सीख दी होगी, अुनके बच्चे बडे होने पर भी मोहमें न पडकर जीवनभर धर्ममार्ग पर ही चलेगे। क्योकि वे बचपनसे ही सीख लेते है कि जीवन धर्मके लिअे है, स्वय दुख, कष्ट और कठिनाअिया अुठाकर दूसरोके दुख, कष्ट और कठिनाअिया कम करनेके लिअे है; अिसीमें जीवनकी सार्थकता है। यदि माता-पिता वात्सल्य द्वारा बच्चोको अिस तरहके संस्कार देते रहे, तो अुनके वात्सल्यका परिणाम बच्चोमे धर्मके रूपमे प्रगट हुअे बिना नहीं रहेगा।

५

सन्तानवृद्धिकी मर्यादा

संतानवृद्धि पर अंकुश

मानव-जातिके दुःखों और अवनतिको टालनेके लिये अेक महत्त्वकी बातकी तरफ हम सबको ध्यान देना चाहिये। दुनियामें सुखके साधन बढ़ते दिखाअी देते हों, तो अुनके साथ मानव-जातिमें दुःखकी वृद्धि भी होती दिखाअी देती है। अिसके अनेक कारण हो सकते हैं। फिर भी विचारहीनतासे हो रही सन्तानवृद्धि भी अुनमें से अेक महत्त्व-पूर्ण कारण मालूम होता है। दिनोंदिन प्रजा बढ़ रही है। परन्तु अुसके साथ मनुष्यकी परिपालन-शक्ति बढ़ती दिखाअी नहीं देती। अिस कारण जीवनका संघर्ष कठोर होता जा रहा है और अुसके साथ अनेक दुर्गुणोंकी वृद्धि हो रही है। अिस अनर्थसे मानव-जाति बचना चाहती हो, तो अुसे सन्तानवृद्धिको मर्यादित करके अपनी परिपालन-शक्ति बढ़ानी चाहिये। सन्तान पैदा करनेके लिअे सद्गुणोंकी आवश्यकता नहीं होती, परन्तु अुनके पालन-पोषण, शिक्षण और संवर्धनके लिअे तथा अुन्हें संस्कारी, कर्तव्यनिष्ठ और ज्ञानी बनानेके लिअे सद्गुणोंकी जरूरत होती है। प्रकृतिके नियमानुसार जैसे पशु-पक्षियोंके बच्चे होते हैं, वैसे ही मनुष्यके भी होते हैं। अिसमें अुनकी कोअी विशेषता नहीं है। मनुष्य सिर्फ कुदरत पर आधार रखकर रहने-वाला प्राणी नहीं है, और रहे तो अिससे अुसका काम नहीं चलेगा। आज जो थोड़ी-बहुत मानवता हममें दिखाअी देती है, वह मानव-पुरुषार्थ, परिश्रम, विवेक, संयम, त्याग, सेवा, सहयोगवृत्ति, ज्ञान, संगठन, प्रेम, वगैरा अनेक सद्गुणोंके कारण है। मानवताकी वृद्धिका आधार अिन सद्गुणोंकी वृद्धि पर है। अिसलिअे मनुष्यको सन्तानवृद्धिकी अपेक्षा सद्गुणों और मानवताको अधिक महत्त्व देना चाहिये।

पशु-पक्षियोकी अुत्पत्ति, स्थिति और लय केवल निसर्गके अनुसार होता है। अुनके सन्तान होती है, वह थोडे समय अपने जन्मदाताओ पर अवलम्बित रहती है और फिर जल्दी ही स्वावलम्बी बनकर कुदरत पर जीने लगती है। गर्भपोषण, अपत्य-पोषण और अपत्य-सगोपनके अरसेमे अुनमे स्वाभाविक तौर पर सयम रहता है। बच्चोका परावलम्बन, अुनके प्रति जन्मदाताओका वात्सल्य और सयम —ये बाते अुनमे प्राकृतिक धर्मके अनुसार होती दीखती है। अैसा अन्योन्यसम्बन्ध अुनमे होता है। मनुष्यको अिससे जो बडा सबक लेना चाहिये था, वह अुसने नही लिया दीखता। बच्चोके परावलम्बन और जन्मदाताओके वात्सल्य और सयममे से मानवसन्तानमे अकेले परावलम्बनकी ही वृद्धि हुअी दीखती है। कुछ हद तक वात्सल्यका भी विकास पाया जाता है। परन्तु परावलम्बनके अनुपातमे अुसकी वृद्धि नही हुअी है। पशु-पक्षियोमे बच्चोके परावलम्बनका काल थोडा होता है, अिसलिअे अुसके प्रमाणमें अुनका वात्सल्य काफी है। मानव-शिशुके पोषण, सगोपन, सवर्धन और शिक्षण वगैराकी जिम्मेदारी मनुष्यको लम्बे समय तक अुठानी पडती है, अिसलिअे अुसमे अितना वात्सल्य और परिपालन-शक्ति होनी चाहिये, जो अिन सब बातोके लिअे काफी हो। और अिसी प्रमाणमे अुसे सतानवृद्धिको सीमित करनेकी भी जरूरत है। जैसे पशु-पक्षियोमे कुदरती जिम्मेदारीके अनुपातमें सयम स्वाभाविक होता है, वैसे मानवप्राणीमे न होनेके कारण मानव-जातिकी अुन्नति अुस ओर नही होती और वह दिनोदिन निकृष्ट स्थितिमें जा रही है। जिस हिसाबसे मानव-जातिमे सन्तान-वृद्धि हो रही है, अुस हिसाबसे जीवनके लिअे जरूरी खानपान वगैरा साधन पैदा नही होते। अुत्पादन नही बढता। आजकल मनुष्य यन्त्रोकी सहायतासे अुस दिशामे प्रयत्न कर रहा है। परन्तु ज्यो-ज्यो वह अिस मार्गमे प्रयत्न करता जा रहा है, त्यो-त्यो बच्चोके परावलम्बनका काल भी बढता जा रहा है। शिक्षित वर्गमे जब तक लडका पच्चीस

वर्षका नहीं हो जाता, तब तक अुसके पोषण वगैराकी जिम्मेदारी अुसके मा-बाप पर ही होती है। कहीं-कहीं तो यह हद तीस वर्ष तक जा पहुंची है। जिस वर्गमें परावलम्बनका काल अिस ढंगसे बढता जा रहा है, कमसे कम अुन वर्गोंको तो संयम रखकर अपनी संतान-वृद्धि मर्यादित करना चाहिये।

असमर्यादित संतान-वृद्धिके परिणाम

आज असंख्य घरोंमें यह हालत दिखाअी देती है कि संतानका पालन, पोषण, संवर्धन या शिक्षण अुचित ढंगसे नहीं किया जा सकता, फिर भी सन्तानकी वृद्धि लगातार होती रहती है। अेक बच्चा ठीक चलने-बोलने लगा नहीं कि दूसरे बच्चेका जन्म हो जाता है। अैसी हालतमें मा-बाप कितने बच्चोंका ठीक ढंगसे पालन-पोषण कर सकते हैं? वे हरअेक बच्चेके लिये काफी दूध और पोषक भोजन कहांसे लायें? सबका संगोपन और शिक्षण कैसे करें? सन्तानवृद्धिके अनुपातमें मा-बापकी परिपालन-शक्ति, पुरुषार्थ और कमाअी बढती नहीं, अिसलिअे वे सारे बच्चे जैसे तैसे पाले-पोसे जाते हैं। बालकमें ही संस्कारी मनुष्य बनता है, परन्तु वह केवल कुदरती तौर पर नहीं बन जाता। अुसे अुचित परिस्थिति और साधनोंकी जरूरत होती है। परन्तु बिलकुल कनिष्ठ स्थितिके ही नहीं, बल्कि मध्यम स्थितिवाले कुटुम्बमें भी अिन सबकी कमी है। वहां मा-बापमें अपनी संतानके लिअे ममत्व या वात्सल्य नहीं होता, सो बात नहीं है। यह बात भी नहीं कि वे बच्चोंके लिअे मेहनत नहीं करते या अुनके सुखकी अुपेक्षा करके केवल अपना ही सुख देखते हैं। परन्तु अुनमें बच्चोंके ठीक पालन-पोषण और शिक्षणके लिअे आवश्यक कर्तृत्वशक्ति नहीं होती। अिस अनुपातमें अुनका वात्सल्य कम पडता है। पोषक खान-पान, संभाल, सफाअी, अुचित संस्कार, बच्चोंके रोजके काम-काज और खेल-कूदके लिअे काफी जगह और अुचित साधन, व्यवस्थितता और अनुशासन पैदा करनेवाली शिक्षा,

सद्‌गुणोकी जाग्रति, मातृ-पितृभाव और बधु-भगिनीभावकी वृद्धि होती रहे अैसा प्रेममय वातावरण, वगैरा बचपनके लिअे जरूरी सुविधायें आजकल ज्यादातर कही भी दिखाअी नही देती। जहा दौलत है वहा बच्चे लाड-प्यार और स्वच्छन्दताके कारण बिगडते है। बाकी असख्य घरोमे तो बच्चोके मामलेमे सब तरहसे अुपेक्षा ही हो रही है। सब जगह मा-बाप चाहे जैसे भोजनसे अुनके पेट भरने और किसी भी तरहके कपडोसे अुनके शरीर ढकनेकी चिन्तासे परेशान दीखते है। अैसी हालतमे बच्चोकी सफाअीकी तरफ, तदुरुस्तीकी तरफ और शिक्षाकी तरफ कौन ध्यान दे? अुनका शारीरिक, बौद्धिक और मानसिक विकास किस तरह हो? बालकोका प्रश्न सभी मा-बापोको चिन्तामें डाल देता है। अिस पर यदि बीमारी आ जाय, तो घरकी मुश्किलो और सकटोका पार नही रहता। यह हालत सौमे से निन्यानवे घरोमे है और अिसी स्थितिमें सतानवृद्धि होती है। अिससे भी बुरी हालत — जिसे देखते ही मनुष्यका मन दु ख और करुणासे भर जाता है — यह है कि गरीबी, रोग, और पगुतासे पीडित लोगोमें भी सन्तानकी बेहद वृद्धि हो रही है और अिसके कारण अुनकी मूल विपत्तिमे वृद्धि हो रही है। अिस प्रकार देश और समाजकी दु खी अवस्था दिनोदिन बढती जा रही है।

वर्तमान स्थितिमें हमारा कर्तव्य

अिस सारी स्थिति पर ध्यान देनेसे अैसा लगता है कि अिस मामलेमें अुपेक्षा करनेसे काम नही चलेगा। सयम-शक्ति और पुरुषार्थकी वृद्धि हुअे बिना हमारी भावी पीढीके कल्याणकी आशा नही की जा सकती। सन्तानवृद्धिके वर्तमान क्रमसे हमारा या सन्तानका, किसीका भी कल्याण नही होगा। हममे अपनी सतानो और देशकी बेशुमार निराधार और दु.ख भोगनेवाली सन्तानोका परिपालन कर सकने लायक विशाल वत्सलता और शक्ति हो, तो ही आजकी स्थितिसे हमारा अुद्धार हो सकता है। हिन्दू

पौराणिक देवताओंमें ब्रह्मा, विष्णु, महेश ये तीन बड़े देवता माने गये हैं। जिनमें से ब्रह्मा सृष्टि और सन्तति-निर्माण करनेवाला, विष्णु परिपालन करनेवाला और महेश संहार करनेवाला है — जिस प्रकार अुनके बीच सृष्टिकी अुत्पत्ति, स्थिति और लयके बटवारेकी कल्पना की गअी है। जिन तीनोंमें विष्णु श्रेष्ठ माना गया है। जिसका कारण यह कल्पना है कि अुसमें अगाध परिपालन-शक्ति है। मनुष्य अपनी परिपालन-शक्तिका विकास करे, तो ही अुसकी मानवताकी वृद्धि हो सकती है। और जिस शक्तिका विकास करना हो, तो सन्तानवृद्धिकी वृत्तिको सीमित करके अुसका वात्सल्यमें रूपान्तर करना चाहिये। हम अपने बच्चोंके कल्याणके लिअे भी जरूरी वात्सल्य धारण करें, तो अुससे हमारी सन्ततिनिर्माणकी वृत्ति थोड़ी बहुत मात्रामें मन्द पड़ जायगी। आजकी स्थितिमें मनुष्य ही मनुष्यका वैरी बना हुआ है। भाअी ही भाअीका दुश्मन हो रहा है। हम जिस मामलेमें सावधान न हुअे, विवेकी और संयमी न बने, तो "यह सारा जगत् अीश्वर द्वारा व्याप्त है" अथवा "हम सब अेक ही अीश्वरके बालक हैं", जिस तरहके अुपदेश जन्मभर सुनते रहें, तो भी अुनका हमारी या बादकी पीढ़ीकी भलाअीके ख़यालसे कोअी अुपयोग नहीं होगा। बच्चोंके परावलम्बनके हिसाबसे हमारी संयमशक्ति और वात्सल्यका विकास नहीं होगा, तो मानव-जाति पर आनेवाली आफतें दूर न होंगी।

ब्रह्मचर्य-सिद्धि और अुसके लिअे अुपाय ढूंढनेकी जरूरत

जिन गाय, बैल, घोड़े आदि प्राणियोंका हम अच्छी तरह पोषण नहीं कर सकते या जिन्हें रखनेको हमारे घरमें जगह नहीं होती, अुन्हें हम ख़रीदते नहीं। परन्तु जिन सन्तानोंका हम भलीभांति पालन नहीं कर सकते, जिन्हें घरमें रखनेके लिअे हमारे पास काफी जगह नहीं होती, अुन्हें अेकके बाद अेक जन्म देते चले जाते हैं। जिन पर हमारा विशेष प्रेम नहीं होता, अैसे प्राणियोंके बारेमें हम जितना विचार करते हैं, अुतना भी

अपने पेटसे पैदा होनेवाले बालकोके लिअे कभी नही करते। यह स्थिति आज लगभग सर्वत्र विद्यमान है। अितने पर भी यह कहनेमे अन्याय होगा कि लोग अपनी सन्तानके प्रति निष्ठुर है। हममे प्रेम है, वात्सल्य है, स्वार्थत्याग भी है, परन्तु यह कहना पडेगा कि हमने अभी तक जीवनके बारेमे अिस दृष्टिसे विचार ही नही किया। अब यह अत्यन्त आवश्यक हो गया है कि हम मानव-जातिके विकास और कल्याणकी दृष्टिसे अिस बातका विचार करे। मानवताके खयालसे सिर्फ सन्तानवृद्धिका महत्त्व नही है। परन्तु सन्तानवृद्धिकी वृत्तिका वात्सल्यमे रूपान्तर करनेमे और अुस वात्सल्यमे विशालता और शुद्धता लानेमे हमारा सच्चा विकास है। असयमसे सयम श्रेष्ठ है। सयमसे वात्सल्य श्रेष्ठ है। वात्सल्यमे भी परिपालन-शक्तिका महत्त्व है। अिस शक्तिकी विशालतामे ही अुसकी शुद्धि है। अिस शुद्धिमे ब्रह्मचर्यकी सिद्धि है और ब्रह्मचर्य पर मानवताकी सम्पूर्ण सिद्धिका आधार है। अैसा नही दीखता कि मानव-जातिने अिस विषय पर अिस ढगसे कभी विचार किया हो। विचार, आचार, खानपान, योग, चिंतन, सगति, सकल्पबल और औषधि वगैराकी मददसे मनुष्यको अिस बारेमे प्रयत्न करना चाहिये। अैसा प्रयत्न होता रहे तो अिसमे शक नही कि मनुष्य अपने हेतुके अनुकूल ज्ञान प्राप्त कर सकेगा। अपनी जिन क्षुद्र वृत्तियोको क्षीण करते-करते अन्तमे अुन पर विजय प्राप्त करना मनुष्यका कर्तव्य है, अुन वृत्तियोको अुत्तेजित करनेके लिअे भिन्न-भिन्न औषधि-प्रयोग सिद्ध करनेकी कोशिशमें बडे-बडे रसायन-शास्त्री और वैद्य आज तक अपनी बुद्धि लगाते रहे है, क्योकि भोग-लोलुप और भोगाधीन राजा-महाराजा और धनिक लोग अुनकी कोशिशोमे कभी तरहसे मदद देते रहे है। परन्तु ब्रह्मचर्य, सयम वगैराकी अुपासना करनेवाले वैराग्यशील लेकिन गरीब लोगोसे अुन लोगोको किसी आमदनीकी आशा न होनेसे अुन्होने कभी अिसकी खोज नही की कि मनुष्यकी अिन वृत्तियोको सौम्य और मन्द करके

अुन्हें वशमें रखनेके लिअे किन औषधिका किस तरह अुपयोग किया जाय। सृष्टिमें बहुतसे परस्पर विरोधी गुण हैं। सृष्टिमें आग भी है और पानी भी। अत्यन्त मृदु पदार्थ भी है और अत्यन्त कठोर भी। अिसी तरह अुत्तेजक और शामक गुण-धर्मोंवाली वनस्पतियां और पदार्थ भी हैं। जिन शोधकोंने वनस्पतियों या दूसरे कुदरती पदार्थोंसे अुत्तेजक गुणधर्म प्राप्त कर लिये, वे चाहते तो शामक गुणधर्मवाली वनस्पतियों या अन्य पदार्थोंकी खोज नहीं कर सकते थे, अैसी बात नहीं है। परन्तु अैसी सिद्धि शोधकोंको मानवजीवनके खयालसे महत्त्वकी नहीं लगी और अब भी नहीं लगती।

सार यह है कि जिन विषयमें सहायक होनेवाले साधन हमारे पास न हों या मानवजीवनकी सिद्धिके लायक महत्त्वाकांक्षा हरअेकमें न हो, तो भी अिस समय विचारहीन ढंगसे हो रही सन्तानवृद्धि और अुसके कारण होनेवाला हमारा और हमारी भावी पीढ़ीका अकल्याण रोकनेके लिअे प्रत्येकको अपनी शक्तिके अनुसार प्रयत्न करना चाहिये। यह प्रयत्न मानसिक अुन्नतिके लिअे सहायक हो, अिसीमें मानवताका अुचित विकास है। जहां तक हो सके, मनुष्यको अिसी दिशामें प्रयत्न करना चाहिये। कमसे कम अितनी सावधानी तो मनुष्यको अिस विषयमें रखनी ही चाहिये कि मानसिक अवनति न हो। किसीको यह डर रखनेका कोअी कारण नहीं कि अिस प्रकारके प्रयत्नसे मानव-जाति दुनियासे मिट जायगी। अितने पर भी जिन्हें अैसा भय लगता हो, अुन्हें और नहीं तो अितनी सावधानी जरूर रखनी चाहिये कि दोसे ज्यादा बच्चोंको जन्म न दें। अिससे असमर्यादित संख्याके कारन हमारी और हमारी सन्तानोंकी हो रही अधोगति किसी हद तक तो टल जायगी; और मानव-जातिके दुनियासे मिट जानेके डरका भी कोअी कारण नहीं रहेगा।

६

प्राकृतिक प्रेरणा और संयम

जिस तरहका वीज होता है, अुसी तरहका पेड भी होता है। अुद्भिज्जोसे अुन्हीकी जातिकी सृष्टि पैदा होती है। जीवसृष्टिमें भी कुदरती धर्मके अनुसार अैसा ही होता है। जीवमे जैसे जीते रहनेकी स्वाभाविक प्रवल अिच्छा रहती है, वैसे ही अुसमे अपने जैसी सृष्टि निर्माण करनेका धर्म भी है। यह धर्म मनुष्यमे भी है और अिस धर्मके अनुसार ही मनुष्यसे मनुष्य-सृष्टि वढती रही है। अुसमे यह धर्म निसर्गने ही रख दिया है। जीव और मनुष्यमें यह धर्म वचपनमें सुप्त दशामें होता है। किसी अेक खास अवस्था तक शरीरका विकास हो जानेके वाद शरीरके रसमें अपने जैसे दूसरे प्राणी निर्माण करनेकी शक्ति पूर्णताको प्राप्त होती है और अुसके वाद वैसी सृष्टि निर्माण करनेकी वृत्ति जीवो और मनुष्योमे स्वाभाविक तौर पर पाअी जाती है। शरीरके रसका ही वीज वनकर अुसके द्वारा जीवकी वृद्धि होती रहनेका धर्म हरअेकको प्राप्त होनेके कारण अुस प्रकारका ज्ञान हर आदमीमे अपने आप पैदा होता है। मनुष्यके वौद्धिक विकासके साथ ही अिस प्रकारकी अुसकी स्वयभू प्रेरणाओकी वृद्धि हुअी है और अुन्हे अलग-अलग वासनाओका रूप प्राप्त हुआ है। वौद्धिक विकासके गुणोंके कारण मनुष्यने सिर्फ कुदरती प्रेरणा पर आधार नही रखा। दूसरे प्राणियोमे जो चीजें कुदरती और मर्यादित है, वे ही चीजे मनुष्यमें सिर्फ कुदरती न रही, वह अपने विकास पाये हुअे वुद्धि-सामर्थ्यसे अिनमे से भिन्न-भिन्न रसानुभव करने लगा है। अिससे रसके अनेक विषय पैदा हो गये है। खानपान, आश्रयस्थान आदि वाते पहले सिर्फ कुदरती थी। अुनमें से

जिस तरह भिन्न-भिन्न रस-विषय मानवबुद्धिके कारण निर्माण हुअे, अुसी तरह अपने ही जैसी सन्तान पैदा करनेकी कुदरती प्रेरणासे भी अनेक वासनायें और रसके विषय निर्माण हुअे। सभवत अिन सबका कारण मनुष्यकी बढती जानेवाली बुद्धिमत्ता होगी। अिस बुद्धिमत्ता और बढते जानेवाले मनोभावोंके कारण मनुष्यमें आत्मीय भाव और ममताकी भी वृद्धि होने लगी और समुदाय बढने लगा। अिसीके साथ अपनी और समुदायकी रक्षाकी जिम्मेदारी और चिन्ता भी बढने लगी। ज्यो-ज्यो मनुष्य समूहमे रहनेको मजबूर होने लगा, त्यो-त्यो अुसमे समाज पैदा होने लगा, ज्यो-ज्यो अेकता बढने लगी, त्यो-त्यो वृद्धि पाये हुअे हरअेक विषयमे अुसे नियम बनाने पडे। अिसके लिअे अुसे नियमन और सयमका आसरा लेना पडा। क्योंकि सयमके बिना नियमन नही, नियमनके बिना समाज नही और समाजके बिना व्यक्तिका अस्तित्व कायम रहना सभव नही। अिन सब कारणोंसे मनुष्यको सयम सीखना पडा। अिस प्रकार मानव-जातिमें रस-वृत्ति और संयम दोनोंकी वृद्धि अेक ही साथ होती रही। मूलभूत और नैसर्गिक प्रेरणाको बढाकर अुसमें से अनेक वासनायें और अिच्छायें निर्माण करके जो आनन्दके पीछे पड गये, वे विलासी और भोगी कहलाये, और अुसी मूलभूत प्रेरणाको क्षीण करके अुसे नष्ट करनेका प्रयत्न करनेवाले सयमी और विरक्त कहलाये। असलमें अेक ही प्रेरणासे पैदा हुअे ये परस्पर विरोधी दो परिणाम हैं। अिसमे शक नही कि भोगकी अपेक्षा सयमकी स्थिति किसी भी हालतमें ज्यादा अुन्नत है। मनुष्यको यदि दुखसे छूटकर स्वाधीनता और प्रसन्नता प्राप्त करनी हो, तो अुसके लिअे सयमके सिवाय और कोअी अुपाय नही। यह बात मानव-जातिको आज तकके अनुभवसे स्पष्ट मालूम हुअी है।

अूपर कही हुअी मूलभूत वृत्ति पर काबू पाना या अुसका नाश करना सयमी मनुष्यका हेतु होता है। अिस बारेमे मुझे शका है कि मनुष्य अिस वृत्तिको सर्वथा मिटा सकेगा या नही। हा, अिस वृत्ति पर

काबू पाना सभव मालूम होता है। परन्तु काबू पाना और नाश करना, अिन दोनोमे बडा अतर है। मानव रक्तके प्राकृतिक धर्मको वह किस अुपायसे मिटा सकेगा? अुस धर्मका नाश करनेका प्रयत्न करते हुअे शायद मनुष्यको अुस पर काबू रखनेकी शक्ति प्राप्त हो सकेगी। अिससे हमे अपनी मानी हुअी सिद्धिकी दृष्टिसे निराश होनेका कारण नही है। हमे अपने मार्गमे अब तक प्राप्त की हुअी सिद्धिकी ओर ध्यान देकर धैर्य, अुत्साह और सावधानीके साथ आगेके लिअे अपनी कोशिश जारी रखनी चाहिये।

जाग्रतिमें हमारे सकल्प, हमारी अिच्छाशक्ति, बुद्धि, विवेक आदि सब शक्तिया जाग्रत रहती है। स्वप्नावस्थामें सब शक्तिया सुप्त होती है। अिसलिअे चित्त पर अुनका दबाव कुदरती तौर पर ही कम हो जाता है। हमारा शुद्ध सकल्प जिस हद तक हमारे खूनमे पैठकर हमारा स्वभाव बन जाता है, अुसी हद तक स्वप्नदशामे हमारी मूल प्राकृतिक प्रेरणा पर दबाव रहता है। बाकीके व्यापार अुस मूल प्राकृतिक नियमके अनुसार होते रहते है। जाग्रतिमे हम अपने चित्त पर जो पवित्र सस्कार डालना चाहते है, जो सयम सिद्ध करना चाहते है, अुसमे जितनी मात्रामे स्वाभाविकता आअी होती है अुतनी मात्रामें हमारी स्वप्नावस्था पवित्र होती है। अिस प्रयत्नकी सिद्धिका आधार हमारे खानपान, व्यवहार, स्वास्थ्य, चित्तशुद्धिके अभ्यासके बारेमे हमारी तत्परता और लगन वगैरा कअी बातो पर होता है। हमे कभी हतोत्साह और निराश न होकर हमेशा सावधान, शोधक, अुत्साही, प्रयत्नशील और आशावान रहना चाहिये। मनुष्य अनादि कालसे अिस प्राकृतिक और अति बलवान प्रेरणाके अनुसार चलता आया है। अितना ही नही, परन्तु अिस प्रेरणामें से अुसने अनेक विषय, रस और आनन्द निर्माण कर लिये है। सदियोसे परम्परागत और स्वभावगत बने हुअे अिस अेक विषयके लिअे हम सपूर्ण सयमका प्रयत्न करते है। यह प्राकृतिक प्रेरणा परम्परासे हमे भी विरासतमे मिली है।

अेक तरफ यह मूल प्राकृतिक प्रेरणा है और दूसरी तरफ हमारा संकल्पबल, हमारी संयमशक्ति, पवित्रताके लिअे हमारी आतुरता, सिद्धिके लिअे हमारी अुत्कंठा, हमारे योजनापूर्वक प्रयत्न और हमारी सावधानी है। अिसीमें से सिद्धिके लिअे विश्वास रखना है। यह विश्वास हममें बढ़ता रहना चाहिये। हमें यह दृढ़ श्रद्धा रखनी चाहिये कि परमेश्वर हमें अिस प्रयत्नमें सफलता देगा।

अिस विषय पर विचार करना सुगम हो, अिसलिअे मैंने यह लिखा है। अिस परसे आप अिस विषयमें विचार कर सकेंगे।

(पत्र, २१–२–'४२)

७

ब्रह्मचर्य-विचार

आपने ब्रह्मचर्यके सम्बन्धमें लिखा है। पिछली मुलाकातके समय भी आपने अिस बारेमें बात की थी। आप अिस विषयमें बहुत प्रयत्नशील है। मुझे विश्वास है कि ध्यानके अभ्याससे मनुष्य अिस चीजको काबूमें ला सकता है। ध्यानके लिअे चित्तकी सारी शक्ति अेक जगह अिकट्ठी करके अुसे वहीं स्थिर करनेके लिअे दृढ़ताकी जरूरत है। चित्तकी सारी तरंगोंको शान्त करके वृत्तिको अेक ही पवित्र संकल्प पर स्थिर रखना आ जाय, तो हमारे संकल्पमें बल आता है। अुस बलके कारण दूसरी अशुद्ध वृत्तियां क्षीण हो जाती है। सृजन सम्बन्धी प्रेरणा और अुस प्रकारका रज हरअेक जीवकी तरह मनुष्यमें भी है। विवेकी मनुष्य अुस रजको काबूमें रखनेका प्रयत्न करता है। अिस बारेमें मुझे शंका है कि जन्मसे मिली हुअी रजकी विरासतको मनुष्य समूल नष्ट कर सकेगा या नहीं। परन्तु अिसका मुझे विश्वास है

कि अुसे वह प्रयत्नपूर्वक काबूमे रख सकता है। व्रती, विवेकी और प्रयत्नशील मनुष्यकी सृजनविषयक वृत्ति मन्द और क्षीण हो जाती है। अुदात्त ध्येयको धारण करके चित्तमें हमेशा पवित्र भावना रखनेसे तथा आदर्श जीवन व्यतीत करनेकी तीव्र अिच्छा, पारमार्थिक महत्त्वाकाक्षा, सतत विवेकयुक्त सयमशील रहन-सहन, कर्मपरायणता वगैरा साधनो या अुपायोसे मनुष्यकी अुस वृत्तिका समूल नाश न हो, तो भी वह काबूमे रहने जितनी क्षीण अवश्य हो जाती है। जवानीमें कुदरती अवस्थाके अनुसार वह वृत्ति अधिक मात्रामे दिखाअी दे, तो भी अुच्च आदर्शके पीछे पडे हुअे जवान आदमीमे वैराग्य और सयमशक्ति भी भरपूर होती है, और अुसीके बल पर वह विकारोका सामना कर सकता है और अुसमें विजयी होनेका विश्वास भी अुसे रहता है। परन्तु वह अवस्था वीत जानेके वाद पिछली अुम्रमे यानी अधेडपनमे किसी किसीकी दृढता कम हो जाती है। व्रत या आदर्शके वारेमे चित्तमे थोडीसी शिथिलता आने लगती है। वैराग्य और सयमशक्ति कम हो जाती है। अैसे समय चित्तमे चचलता दिखाअी देने लगती है और मनको जीतना, अुसे कावूमे रखना कठिन प्रतीत होता है। परन्तु विवेकी और निश्चयी मनुष्य अिन सब चीजोको पहचानकर सावधानीसे अुन्हे पार करनेकी कोशिश करता है और अुचित अुपायो द्वारा अुसमे सफल होता है।

मनुष्यके चित्तमें अच्छे-बुरे सब सस्कार प्रकट या सुप्त रूपमे होते ही है। अुनमें से जो सस्कार, जो वृत्तिया अुसे नही चाहिये अुन्हे क्षीण करनेका अुसे सतत प्रयत्न करना चाहिये। सत्सग, भजन, मनन, चिंतन, ध्यान अिसके अुपाय है। अिसमे शक नही कि अगर कुछ भी सफलता मिल सकती है, तो अिसीसे मिल सकती है। शुभकी ओर आपका स्वाभाविक झुकाव है। जीवनकी दृष्टिसे व्रतका महत्त्व आप जानते है। लेकिन वह दृढता और निष्ठाके विना पूरा नही हो सकता।

व्रतका विचार छोड दे तो भी दूसरी अेक महत्त्वपूर्ण दृष्टिसे मेरे मनमे अिस विषयका विचार आया करता है। मानव-जातिके सुधारका कोअी विचार नही किया जाता और अुसकी पीढियो पर पीढिया जगत्में निर्माण होती रहती है। प्रत्येक पीढी अपने दोष, दुर्गुण और रोग अगली पीढीके लिअे विरासतमे छोडकर विलीन हो जाती है। अैसे क्रमसे, अैसी परम्परासे मनुष्य अपना या अपनी भावी सन्तानका क्या कल्याण कर सकता है? मनुष्य किन सदुद्देश्योंसे अेकके बाद अेक सन्तान दुनियामे लाता है? मानव-जातिकी विकृतिसे ही बहुतसे रोग पैदा होते है और हो रहे है। हमारे रोगोकी, विकृतियोकी और दुर्बलताकी विरासत हमारे बादकी पीढीको मिलेगी और वह जिन्दगी भर दुःख, यातना, और क्लेशसे पीडित होकर अपना जीवन जैसे-तैसे बितायेगी, यह जानते हुअे, अिसका विश्वास होते हुअे भी मानव-प्रकृतिसे अेक पिडके बाद दूसरा पिड निर्माण होता है और दुःख-आपत्ति भोगता है। किसीकी अिच्छा, किसीकी असावधानी, तो किसीका अविवेक, असयम और जडता अिन सब दुःखोका, यातनाओंका कारण है। मनुष्यके दुःखोको देख देखकर मैं अूब गया हू। दुःखी और यातनाग्रस्त मनुष्योकी शुश्रूषामे रहता हू, तब अिसी प्रकारके विचार मनमे आते है, मनको पीडित करते है। अिच्छा तो यह है कि जगत् सुखी रहे, कोअी दुःखी न रहे। परन्तु सवाल यह अुठता है कि क्या अिस मार्गसे, अिस प्रकारकी जीवन-परम्परामे कोअी मनुष्य कभी सुखी होगा? हो सकेगा? असस्य लोग अिसी रास्ते जा रहे है। वे सचमुच जा रहे है या विश्वप्रकृतिके महान् प्रवाहमें बहे जा रहे है, और हमें केवल आभास होता है कि वे जा रहे है? दुःख, पीडा और रोगकी विरासत वे अपनी अगली पीढीको देते है या अुसे पहुचानेमे केवल बीचके निमित्त बनते है? वे जो कुछ कर रहे है, शायद अुनके परिणामका अुन्हे भान भी नही होगा, कल्पना तक नही होगी। परन्तु भान या कल्पना न हो तो भी अुनके कर्मोके

अनिष्ट परिणाम जिन्हे भोगने पड़ते हैं, अुनकी यातनाओंमें अिससे कोअी कमी थोड़े ही आ जायगी? हम सब अिस प्रवाहमें फंसे है, अिसलिअे अपनी अिच्छाओ और वासनाओ द्वारा अिस प्रवाहको गति भी देते हैं।

आपके निमित्तसे मनमें अुठनेवाले विचार लिख रहा हू। मानव-जीवनकी दृष्टिसे शायद अुनमें आपको अेकागीपन और रूखापन भी लगे। परन्तु यह रूखापन नही है। मानव-जातिके प्रति मुझमें प्रेम, चिन्ता और करुणा न होती, तो ये विचार मेरे मनमें भी न आये होते। यह लिखते समय मन करुणासे विह्वल हो गया है। विचारोंके अेकागीपन और अतिरेकका भी मुझे अिस समय भान है। और अिन सबके पीछे विवेक भी जाग्रत है।

व्रतके विचार पर फिर आता हूं। समस्त जीवनको विवेकयुक्त बनानेका आपका दृढ प्रयत्न है। मनमें अुठनेवाली अनिष्ट तरगोंसे घबरा न जाअिये, निराश न होअिये। मनुष्यके मनमें अिस प्रकारकी तरंगें किसी न किसी नियमके अनुसार अुठती है। निसर्ग, अपने संस्कार, आदतें, सकल्प और सत्त्व-रज-तमात्मक अवस्था — अिन सब परसे अकसर अिस बारेमे हरअेक मनुष्यका नियम निश्चित होता है। अिस प्रकार नियमसे अुठनेवाली तरगो या वेगोको म आवर्त समझता हूं। प्यास, भूख, नीद भी अेक प्रकारसे देखें तो आवर्त ही है। सृजनेच्छा भी मानव प्रकृतिका आवर्त ही होगी। कुछ आवर्त अैसे होते है कि जब वे अुठते है तब अुनकी जरूरतकी चीज देकर अुन्हें शान्त करना पडता है। और कअी अैसे होते है जिन्हें अुठने पर सावधानी, दीर्घ विचार और संयमसे शान्त करना पडता है। अिस प्रकारके आवेगोको शान्त करनेमें ध्यानका अभ्यास बड़ा अुपयोगी हो सकता है। अुसके कारण ये वेग सौम्य और मन्द हो जाते है, विवेक और सयमके काबूमें आ जाते है। अभ्यास और अिसी प्रकारके रोजके प्रयत्न द्वारा मूल प्राकृतिक प्रेरणामें ही क्षीणता आने लगती

और शुद्ध रहती है। कोअी भी शस्त्र या हथियार काममें लेते रहनेसे ही तीक्ष्ण और तेजस्वी रहता है, नही तो जंग लगकर खराव हो जाता है। अिसी तरह हमारी शक्तियोको अुचित गति देते रहनेसे और अुनका सत्कार्यमें अुपयोग करते रहनेसे हमारे अंग-प्रत्यंग और अुनकी शक्तिया, हमारी वुद्धि और हमारा मन शुद्ध रहता है। नही तो ये सव निकम्मे हो जाते है और जडता, आलस्य आदि दुर्गुणोसे हमारा नाश हो जाता है। केवल अपनी सुख-सुविधा या अर्थोत्पादनके लिअे अुनका अुपयोग करना जीवनकी अुदात्तता और व्यापकताकी दृष्टिसे अत्यन्त हीन वस्तु है। सवके हितकी दृष्टि रखकर अपने व्यवसायमें से अपने जीवन-निर्वाहके लिअे आवश्यक मजदूरी या मेहनताना लिया जाय, अुससे ज्यादा अर्थलाभ या लोभका अुद्देश्य कभी न रखा जाय। हम सव अिस प्रकारके पवित्र और धर्म्य जीवनकी महत्त्वाकांक्षा रखें, तो ही हमारे जीवन सार्थक होगे और तभी किसी समय मानव-जातिके सम्पूर्ण सुखी होनेकी आशा रखी जा सकती है।

न्याय्य और अन्याय्य विभाजन के परिणाम

यह महत्त्वाकांक्षा पूरी हो, अिसके लिअे हममें श्रम-विभाजनकी अैसी व्यवस्था होनी चाहिये, जिससे किसी भी व्यक्ति या वर्ग पर दूसरेसे ज्यादा भार न पडे और किसी भी व्यक्ति या वर्गको दूसरे व्यक्ति या समाजके परिश्रमका फल दूसरोसे ज्यादा न मिले। अिस प्रकार जिन समाजमें समताके सिद्धान्त पर मेहनत और फलका वंटवारा होता है, वह समाज अनेक प्रकारसे समर्थ, सम्पन्न और स्थायी वनता है। अुस समाजमें सवका परस्पर पोष्य-पोषक सम्वन्ध होता है। परन्तु जिस समाजमें अिस प्रकार श्रम-विभाजनकी न्याय्य व्यवस्था नही होती, अुसमें अेक ओर गुलामी और खुशामद तथा दूसरी ओर विकास और सुख-सुविधाके नाम पर स्वार्थ, अत्याचार, जुल्म, दुष्टता, अैश-आराम, विकारवशता, मुफ्तखोरी,

जडता और आलस्य वगैरा दुर्गुण बढते रहते है। अिस कारण समाजमें शोषित और शोषकवर्ग निर्माण होते है। व्यक्ति व्यक्ति और वर्ग वर्गमें परस्पर भक्ष्य-भक्षकका सम्बन्ध बढता जाता है। सारा समाज दिनोदिन अवनत होता जाता है और फिर थोडे ही समयमे वह किसी वलवान समाजका गुलाम वन जाता है। जिस समाजमें परिश्रम करने-वालोसे परिश्रम द्वारा पैदा होनेवाली साधन-सम्पत्तिका मुफ्त लाभ अुठानेवाले वर्गकी सख्या अधिक होती है या अुसे समाजमे ज्यादा महत्त्व और प्रतिष्ठा मिलती है, वह समाज छिन्न-भिन्न हुअे विना नही रहता। धर्म और अध्यात्मकी भ्रामक कल्पनाओ, कलाके नाम पर विलासको मिले हुअे महत्त्व, धनको दी गअी अनुचित प्रतिष्ठा वगैराके कारण श्रम-विभाजनका और अुसके फलोके न्याय्य वितरणकी पद्धतिका समाजमे लोप हो जाता है। अिसके कारण पुरुषार्थहीनता, दभ, स्वच्छदता वगैरा वढते जाते है। और कुल मिलाकर सारा समाज पतनकी ओर जाता है।

धर्मनिष्ठ समाज

अिस दृष्टिसे विचार करे तो समाजकी सुस्थितिके लिअे परिश्रम, श्रमका अुचित विभाजन और समताके सिद्धान्त पर अुसके फलका अुचित बटवारा — ये तत्त्व हर व्यक्तिको जचने चाहिये और तदनुसार अुसे आचरण करना चाहिये। सदा काममें व्यस्त रहकर अुससे तैयार होनेवाली साधन-सम्पत्तिमें से अपने गुजारेसे जरा भी ज्यादाकी अुम्मीद न रखनेका सिद्धान्त सवको मजूर होना चाहिये। अिस तरहके तत्त्वनिष्ठ समाजको ही धर्मनिष्ठ समाज कहा जा सकता है। समाजमें अिस प्रकारकी तत्त्वनिष्ठा और सद्गुणोकी वृद्धिके लिअे हमे खुद तत्त्वनिष्ठ और सद्गुणी वनना चाहिये। अिसी निष्ठा पर मानव-जातिका अुत्कर्ष और अुन्नति अवलम्बित है।

अेक जमानेमें भारतवर्षके लोगोमें अिस प्रकारकी तत्त्वनिष्ठा थी। अुस समय यह माना जाता था कि जीवन केवल धर्मके लिअे है।

अुस समय समाजमे यह भावना थी कि हम परमेश्वरी शक्तिके, पूर्वजोंके, ज्ञानी पुरुषोंके, मनुष्यमात्रके और मनुष्यके साथ रहनेवाले तमाम प्राणियोंके ऋणी है। अुस जमानेके लोगोंकी दिनचर्या अैसी थी, जिससे सदा अिस वातका तीव्र भान रह सके कि अन्नाहुतिके निमित्तसे अिन सबके प्रति कृतज्ञता-बुद्धि प्रगट किये बिना हमें भोजन करनेका हक नही है। अुस वक्त प्रजामें अिस प्रकारकी सामूहिक धर्मनिष्ठा थी कि जीवनमे जो भी चीज हमे प्राप्त होती है, वह हमारे अकेलेके परिश्रम या ज्ञानका फल नही है, बल्कि सबके परिश्रम और ज्ञानका फल है, और अुनके प्रति कृतज्ञ रहकर हमें केवल अपनी अुचित आवश्यकताओंकी पूर्ति जितना ही लेनेका अधिकार है। अुस समय आजकल जैसे भौतिक आविष्कार नही हुअे थे, सुखके साधन भी आज जितने नही थे। न अितनी वैभव-सम्पन्नता ही थी। परन्तु अुस वक्त लोगोंमें मानवता थी, मानवधर्म जाग्रत था। अुनके जीवनसे हमे बहुत कुछ सीखना है। हम अपना वर्तमान धर्म निश्चित करने और अुसके अनुसार चलनेके लिअे अुनके जीवनसे कुछ भी ग्रहण कर सके, तो निश्चय ही हमारा कल्याण होगा।

विवेक और साधना

दूसरा भाग

विभाग २ : गुणदर्शन

१

विवेक और संयम

मानव-जीवन अुन्नति करनेके लिअे है, अिसलिअे अुसे हमेशा सब तरहसे अुन्नत बनानेकी हमारी कोशिश होनी चाहिये। अिसके लिअे हममें पहले विवेककी जरूरत है। जब जीवन सरलतासे बीतता है, अुसमें कोअी खास मुश्किल नही आती, तब हमे विवेककी जरूरत नही जान पडती। परन्तु कठिन प्रसग आने पर किस प्रकार चलना ठीक और कल्याण-कारक होगा, यह हम अेकदम तय नही कर पाते। अुस समय अपने पूर्व अनुभवसे और साथ ही दूसरोके अैसे अवसरोंके अनुभवसे अिस बातका दीर्घदृष्टिसे विचार करके कि भविष्यमें क्या परिणाम होगा, हमें अपने व्यवहारका ढग तय करना पडता है। अैसे समय हमें विवेकशक्तिकी जरूरत पडती है। ठीक निर्णय करनेकी शक्ति ही शुद्ध विवेक है। जिसे अैसे विवेकके प्रसग बार-बार आते है, जो पूर्व अनुभवका सूक्ष्मतासे निरीक्षण कर सकता है और अिस सब परसे अुचित निर्णय कर सकता है, अुसकी निर्णयशक्ति दूसरोंसे ज्यादा विकसित और प्रखर होती है। जिसमें अितनी विवेकशक्ति न आअी हो, अुसे कठिन अवसर आ पडने पर अपनेसे श्रेष्ठ, विवेकशील और अनुभवी मनुष्य पर श्रद्धा रखकर सकटमें से रास्ता निकाल लेना चाहिये। लेकिन अुसे भी अिस प्रकारकी श्रद्धा पर हमेशा पराधीन जीवन बितानेकी अिच्छा न रखनी चाहिये। विवेकशील मनुष्यसे हमें स्वय विवेकी बनना सीखना चाहिये। हम अुचित विवेक करने लग जाय, तो जीवनकी अनेक अडचने सहज ही दूर कर सकेगे और अिस प्रकार हमारी अुन्नतिके मार्गमे बाधक होनेवाली कितनी ही कठिनाअियां दूर हो सकेगी।

विवेककी जरूरत

संयम और सात्विक सुख

सद्गुणी बननेके लिअे हमें विवेककी जितनी जरूरत है, अुतनी ही संयमकी भी है। यह बात ध्यानमें रखकर कि हमारे जीवनकी बनी हुअी सदाकी दिशाके अनुसार हमारी अिच्छायें और वृत्तियां अिन्द्रियों द्वारा सुख अनुभव करनेकी ओर दौडती ही रहती हैं, हमें अिस विषयमें सदा सावधान रहना चाहिये। हमें अनुचित दिशामें जानेवाली अपनी मनोवृत्तियोंको काबूमें रखनेकी कोशिश करनी चाहिये। मनुष्य सुखके बिना नहीं रह सकता, अिसलिअे हमें सात्विक सुखकी आदत डालनी चाहिये। सुखके भी अनेक भेद हैं। जो सुख हमें ज्यादा लालची और लम्पट बनाता हो, हमारी स्वाधीनता और आरोग्यका नाश करता हो, और साथ ही हमारी मनोवृत्तियोंको और भी चचल बनाकर अिन्द्रियों और मनके हमारे काबूको मिटाता हो, अुस सुखको त्याज्य समझ कर हमें अुसके बारेमें सयमशील होना चाहिये। परन्तु जिस सुखसे हमारा आरोग्य बढ़ता हो, हममें शान्ति और प्रसन्नता आती हो और जिसमे अुन्हें हमेशा कायम रखनेकी ताकत हो, जिस सुखसे शरीरका अुत्साह, मनकी पवित्रता और बुद्धिकी तेजस्विता बढ़ती रहे, जिस सुखके कारण हममें जड़ता, ग्लानि या शिथिलता आनेका डर न हो, जिस सुखमें पश्चात्तापका भय नहीं, परिश्रमसे अरुचि नहीं और जिस सुखमे हमारे और दूसरोंके सुख और ज्ञानकी वृद्धि होती है, वह सुख सात्विक है। अैसे सुखमे किसीका अकल्याण नहीं हो सकता; अितना ही नहीं, अिस प्रकारके सुखकी मानव-अुन्नतिके लिअे जरूरत है। अिसीलिअे मनुष्यको सात्विक सुखकी अिच्छा और प्रयत्न करना चाहिये और सुख-सम्बन्धी दूसरे खयाल छोड़ देने चाहियें। अिसके लिअे मनुष्यको सयमी बनना चाहिये। अनुचित और हानिकारक सुखके पीछे लगनेसे हमारी शक्ति व्यर्थ खर्च होती है। अिस शक्तिको व्यर्थ खर्च न होने देकर अुन्नतिकारक कार्यमें लगाना हमारा

कर्तव्य है। सयमसे सुरक्षित और सचित शक्तिका अुपयोग हमे सद्‌गुणोकी वृद्धिमें करना चाहिये। अैसा न किया जाय तो हमारे विवेकमे त्रुटि आवेगी। अुन्नत होनेके लिअे हमे सद्‌गुणी बनना चाहिये। सद्‌गुण बढानेके लिअे सयमी बनना चाहिये। सयमके बिना शक्ति-सचय नही होता। सचयके बिना शक्ति नही बढती। शक्ति बढे बिना सद्‌गुणोमे पूर्णता नही आती। हमे समझना चाहिये कि जब तक हमारी शक्ति किसी भी अनुचित कार्यमें, क्षुद्र सुखमे खर्च होती है, तब तक हम अपनी सपूर्ण शक्तिके साथ अुन्नतिके मार्ग पर नही बढ सकते। यह हमारे जीवनका अेक लाछन है। यह हमारी कमी है। अपनेमे यह कमी न रहने देनेके लिअे हमे विवेकी, सयमी और पुरुषार्थी बनना चाहिये।

सयमी मनुष्य ही चरित्रवान और शीलवान रह सकता है। दुनियामे वही सबके आदर और विश्वासका पात्र बनता है। मनुष्य व्यसनी भाअी या मित्र पर भरोसा नही रखता, परन्तु सयमी, निर्दोष और निर्व्यसनी नौकर पर नि शक होकर भरोसा रखता है। अिस प्रकार दुनियामें सद्‌गुणोंके लिअे आदर और दुर्गुणोके लिअे अनादर पाया जाता है। दुराचारी या दभी मनुष्य भी दूसरे दुराचारी या दभी मनुष्य पर विश्वास न रखकर सदाचारी और सयमी मनुष्य पर ही विश्वास रखता है। आदमी खुद शराब पीनेवाला हो तो भी वह शराब पीनेवालेको नौकर रखनेके लिअे तैयार नही होता। जो अपनी दुर्बलताके कारण सदाचारी या निर्व्यसनी नही रह सकता, अुसके मनमें भी सदाचार और निर्व्यसनताके लिअे आदर तथा दुराचार और व्यसनके लिअे अनादर और अविश्वास होता है।

सत्संगति

आम तौर पर यह माना जाता है कि सयमशील होना बडा कठिन है। परन्तु हमें अिसका थोडा विचार करना चाहिये कि दुनियामे कौनसी अच्छी चीज पाना कठिन नही है। कोअी भी अच्छी विद्या या कला परिश्रम किये बिना प्राप्त होती है? अिसलिअे कठिनाअी

या मेहनतसे डरनेसे हमारा काम नहीं चलेगा। संयम, सदाचार अित्यादि गुण जितने कठिन लगते हैं अुतने वास्तवमें वे हैं नहीं। शुरूमें अुनमें जितनी कठिनाअी लगती है, अुतनी बादमें नहीं लगती। परन्तु मुख्य बात यह है कि मनुष्यको संयम और सदाचारमें मजा नहीं आता, अुसे ये अच्छे नहीं लगते। अुसमें अिस मार्गसे अपनी अुन्नति करनेकी अिच्छा नहीं होती। अैसी अिच्छा हो तो अिस मार्गमें जितनी कठिनाअी पहले मालूम होती है, अुतनी आगे जाने पर नहीं होती। आज हमारा जीवन जिस वातावरणमें गुजरता है, बचपनसे हमें जो शिक्षा और संस्कार मिलते हैं, वे अिन दोनोंके विरुद्ध हैं। अैसी हालतमें यह अिच्छा होना ही लगभग असंभव है कि हम विवेकी, संयमी और सदाचारी बनें; सद्गुण-सम्पन्न होकर जीवनको कृतार्थ करें। अैसी कठिन स्थितिमें जिन्हें कुछ पढ़नेसे या कहींसे मिले हुअे किसी संस्कारके कारण थोड़ी बहुत सदिच्छा हो जाय, वे अच्छी संगति करके अपनी सदिच्छाको दृढ़ करें और बढ़ायें। अच्छी संगतिके बिना अच्छे संस्कार नहीं मिलते, अुन्हें पोषण नहीं मिलता और अुनमें बल भी नहीं आता। प्रतिकूल वातावरणमें सुसंस्कारोंका टिकना मुश्किल होता है। अुसमें वे देखते देखते लुप्त हो जाते हैं। अिसलिअे बाहरके खराब वातावरणके कारण चित्त पर होनेवाले अनिष्ट संस्कारोंसे बचना हो और अपने सुसंस्कारोंकी रक्षा करके अुन्हें बढ़ाना हो, तो मनुष्यको हमेशा अच्छी संगति करना चाहिये। जैसे सफाअीके खयालसे रोज स्नान करना जरूरी है, वैसे ही हमारे चित्त पर नित्य पड़नेवाले कुसंस्कारोंको निकालकर अुसे शुद्ध करनेके लिअे अच्छी संगतिकी जरूरत है। अैसी संगति प्राप्त करके हम अपने सुसंस्कारोंका पोषण करें, तो हममें अुन्नतिकी अिच्छा जाग्रत होगी, प्रबल बनेगी और अुसके परिणामस्वरूप हममें संयमशील, विवेकी और सदाचारी बननेकी महत्त्वाकांक्षा बढ़ती जायगी।

२
विवेक और सावधानी

अपना श्रेय प्राप्त करनेकी अिच्छा रखनेवालेको अतिशय जाग्रत रहना चाहिये। अुसे अपनी मनोवृत्तियोका परीक्षण करना आना चाहिये। अुन्नतिका मुख्य आधार हमारा चित्त है। अुसकी वृत्तिया शुद्ध करनेकी हमारी कोशिश होनी चाहिये। अिसके लिअे जैसे विवेक और संयमकी जरूरत है, वैसे ही सावधानीकी भी जरूरत है। सस्कारोके अनुरूप हमारी अिच्छायें दौडती है और अिन अिच्छाओंके अनुसार हमारे चित्तकी तरगे चलती है। श्रेयार्थीको पुराने अनिष्ट सस्कार नष्ट करके नये अिष्ट सस्कार ग्रहण करने चाहियें। अिस प्रयत्नमें अुसे कभी अरुचि पैदा न होनी चाहिये। अिसके लिअे अुसके मनमे वडा धीरज, दृढता और लगन होनी चाहिये। अुसे काम, क्रोध, लोभ, और अहकारका शुद्ध-अशुद्ध स्वरूप पहचानना आना चाहिये। भावना और विकार, अपनी स्वाभाविक आवश्यकताये और आशा-तृष्णा तथा लोभ आदि सबके बीचका फर्क समझना चाहिये। अहकार, सदहकार और निरहकारके बीचका भेद भी समझना चाहिये। मद क्या है, गर्व क्या है, आत्म-सम्मान क्या है और अिसी तरह आत्म-विश्वास क्या है, यह अुसे पहचानना आना चाहिये। क्रोध और तेजस्विता, दीनता और नम्रता, दुर्बलता और क्षमा, विचारहीनता और साहसके बीचका भेद अुसके ध्यानमें आना चाहिये। कल्पना, भावना और योजना, अनुमान और अनुभव, तर्क और सिद्धान्त, विलास और विकास, त्याग और वैराग्य, जडता और शान्ति, भोलापन और श्रद्धा, सदाग्रह और दुराग्रह — अिन सबके बीच अुसे भेद करते आना चाहिये। विचार, तरग, और संकल्प तथा आभास और ज्ञानके वीचका फर्क भी अुसकी समझमें आना चाहिये। आराधना, अुपासना, भक्ति, निष्ठा — अिन सबकी अुसे पहचान होनी चाहिये।

वृत्ति-परीक्षण

सुख, आनंद, समाधान, संतोष, शान्ति, प्रसन्नता, अिन सबके बीचके भेदका अुसे ज्ञान होना चाहिये। मानव चित्तकी सुप्त-प्रगट, अच्छी-बुरी सभी वृत्तियोंका अुसे ज्ञान होना चाहिये और अिनमें से हितकर वृत्तियोंको अपनाना चाहिये।

अुचित आवश्यकताअें और निर्दोष परिग्रह

साधकको अुचित-अनुचित, हितकर-अहितकरकी परख करना न आता हो, तो अुसका परिश्रम व्यर्थ जा सकता है। अपनी अुचित आवश्यकताओं और लोभ तथा सदोष और निर्दोष परिग्रहके बीचका भेद साधकको जानना चाहिये। अपने निर्वाहके लिअे आवश्यक वस्तु प्राप्त करनेमें न लोभ है, न दोष। अिसी तरह अिन चीजोंका मर्यादित संग्रह करनेमें भी कोअी दोष नहीं। मनुष्यके नाते अुचित शील और सदाचारसे जीनेके लिअे, कुटुम्बके गुजारेके लिअे और कठिनाअीके समयके लिअे हमें पहलेसे जो बन्दोबस्त करना पड़ता है, जो संग्रह करना पड़ता है, अुसे लोभ या सदोष परिग्रह नहीं कहा जा सकता। आवश्यकतासे ज्यादा वस्तुअें प्राप्त करनेमें लोभ और अुनका अुपयोग करनेमें फिजूल-खर्ची है। जिन चीजोंकी दूसरोंको अत्यन्त आवश्यकता हो, अुनका हम भी अुचित अुपयोग न करें और केवल लोभके कारण अुनका संग्रह करके रखें, तो यह हमारी कृपणता है, दुष्टता है। परिग्रहके मामलेमें साधकको हमेशा विवेक और तारतम्यसे काम लेना चाहिये।

अिन्द्रिय सम्बन्धी संयम और सावधानी

खानपान, वस्त्र और रहनेकी जगहके बारेमें भी साधकको खूब विवेकसे चलना चाहिये। अिन मामलेमें अुसे आरोग्य, मितव्यय, निरलसता और आवश्यक सुविधाओंका महत्त्व समझकर बरताव करना चाहिये। अिसका अुसे सदा ध्यान रखना चाहिये कि अपनी जरूरतें पूरी करते समय दूसरों पर अन्याय न हो। खाने-पीनेके समय अुसे सावधानीपूर्वक जीभका

सयम रखना चाहिये। अुसे अिस प्रकारका खान-पान चुनना चाहिये, जिससे आरोग्य, बल, चपलता, बुद्धिकी तेजस्विता और मनकी पवित्रता तथा प्रसन्नता रखी जा सके और बढती रहे। अैसा करते समय अुसे अपनी आर्थिक स्थितिका भी विचार करना चाहिये। अुसे यह बात ध्यानमें रखकर चलना चाहिये कि कपडे सर्दी, गर्मी और लज्जा निवारणके लिअे है। केवल शौक या पसन्दके लिअे ही कपडोकी अलग-अलग फैशन और पद्धतियोका मोह रखनेमें अुनका दुरुपयोग समझना चाहिये। अुसकी वाणीमें अव्यवस्थितता, विसगति, असत्य, कर्कशता, असभ्यता वगैरा दोष न होने चाहियें, न किसीकी निंदा होनी चाहिये और न आत्मस्तुति या अपने कार्यकी प्रशसा होनी चाहिये। अुसका बोलना अैसा न होना चाहिये जिससे कोअी अूबने लगे। अुल्टे अुसके बोलनेमे मधुरता, सचाअी, प्रेम, सुसगति और प्रासगिकता होनी चाहिये। अुसे मितभाषी होना चाहिये। बोलते समय व्यर्थ हाथ-पैर हिलाने या बीच-बीचमे सुननेवालेको हाथसे छूने आदिकी बुरी आदत न होनी चाहिये। दूसरेका बोलना पूरा होने तक मौन रखनेका अुसमें धीरज होना चाहिये। अिस प्रकार वाणीके बारेमें भी अुसे सयमी और सावधान रहना चाहिये।

अन्तःशुद्धिका परिणाम

हमारा जीवन हमारे द्वारा होनेवाली सभी क्रियाओंसे मिलकर बनता है। यदि हम यह चाहे कि वह सर्वांग-सुन्दर हो, तो हमे अपनी प्रत्येक वृत्ति और क्रियाके विषयमे विवेकी, सयमी और सावधान रहना चाहिये। अगर मिट्टी या पत्थरकी भी सुन्दर मूर्ति बनाअी जा सकती है, जड पदार्थसे भी चित्ताकर्षक, भावप्रदर्शक और बोधप्रद चित्र तैयार किया जा सकता है, तो जिस शरीरके अणु-अणुमे चैतन्य भरा हुआ है और जो प्राण, मन, बुद्धि, चित्त और अनेक कर्मेन्द्रियो और ज्ञानेंद्रियोंसे युक्त है, अुसे हम सब तरह निर्दोष और गुणसम्पन्न क्यो नही बना सकते? क्या अुसे हम अनेक

विद्याओ, कलाओ और सद्भावोंसे सर्वथा सुशोभित और सुयोग्य नही बना सकते? महान सत ज्ञानेश्वरने सत्त्व गुणोंसे युक्त मनुष्यका अेक जगह वर्णन किया है, जो अत्यन्त बोधप्रद है। वे कहते हैं: "वसत ऋतुमें कमलोंके विकसित होनेके बाद जैसे अुनकी सुगंध अपने आप चारो ओर फैल जाती है, वैसे ही जिसके हृदयमें प्रज्ञा ओतप्रोत भर जानेके बाद अन्दर नही रह सकती और अिन्द्रियो द्वारा अपने आप बाहर फैलने लगती है, अुसकी अिन्द्रियोंके आगनमे विवेक काम करता है। और अैसा लगता है मानो अुसके हाथ-पैरोंसे भी ज्ञान-दृष्टि फूट कर निकल रही है। सत्कर्म और दुष्कर्मका भेद अुसकी अिन्द्रिया ही समझ लेती है। अुसे विचार करके निर्णय करनेकी जरूरत नही पड़ती। अुसकी अिन्द्रियां ही अच्छे-बुरेकी परख कर लेती है। न देखने लायक चीजकी तरफ अुसकी आखें जाती ही नहीं। न सुनने योग्य शब्द अुसके कानोमें पड़ते ही नही। न बोलने जैसे शब्द अुसकी जबानसे निकल ही नहीं सकते। जैसे दियेके सामने अधेरा नही रह सकता, अुसी तरह अुसकी अिन्द्रियोंके सामने निषिद्ध वस्तुयें नहीं आ सकतीं।"

अिस सबका सार अितना ही है कि अखड विवेक और सावधानीसे व्यवहार करनेके कारण मनुष्यकी अिन्द्रियोंके धर्म ही परम शुद्ध बन जाते हैं। निरन्तर सावधानी और आन्तरिक शुद्ध बुद्धिसे, सदैव प्रयत्नशील रहनेसे, मनुष्य अैसी स्थितिमें जा पहुचता है। और पहुचनेके बाद भी विवेकी मनुष्य सावधानी छोड़कर कभी गाफिल नहीं रहता।

अखण्ड जाग्रति अिस तरहकी चित्त-शुद्धि और अिन्द्रिय-शुद्धि प्राप्त करनी हो, तो हमें सदा सावधानीसे रहना चाहिये। विवेकसे अुचित अनुचितकी परख, जाग्रत रहकर सब वृत्तियोका निरीक्षण और परीक्षण तथा निश्चय-पूर्वक अनुचित वृत्तियोंका निरोध — ये सब बातें हमें प्राप्त करनी ही

चाहियें। श्रेय साधनके प्रयत्नमें जाग्रतिका बडा महत्त्व है। यह जाग्रति हमे सतत कायम रखते आना चाहिये। यह मानकर कि अिन्द्रियोके धर्म और चित्तके पूर्वसस्कार पूरी तरह नष्ट हो गये है, हमें कभी गाफिल या असावधान न रहना चाहिये। क्योकि जीवमे रहनेवाले मूल स्वभाव-धर्म बीजरूपमे हममे रहते है। वे कब, किस समय और किस तरह फिर जाग्रत हो जायंगे, अिसका भरोसा नही। अिसलिअे सतत सावधानी हमारा स्वभाव बन जाना चाहिये।

सत कबीरने कहा है:

"सूर सग्राम है पलक दो चारका, सती घमसान पल अेक लागे।
साध सग्राम है रैन-दिन जूझना, देह परजतका काम भाअी॥"

(शूरोका सग्राम दो चार पलका होता है और सतीका युद्ध अेकाध पलमे समाप्त हो जाता है, जबकि साधुओका सग्राम अैसा है, जिसमे शरीर है तब तक रात-दिन जूझना पडता है।)

(दैनिक प्रवचनसे)

२

निश्चयका बल

निश्चयका महत्त्व

अपनी अुन्नतिकी अिच्छा रखनेवालेको निग्रहशक्ति अर्थात् मानसिक दृढ़ताकी बड़ी जरूरत है। हमारे मनको अिन्द्रियोंके वेगके अनुसार बहनेकी आदत पड़ी होती है। मान लें कि हममें यह समझने लायक विवेक है कि अुस वेगके अनुसार अपने मनको बहने देनेमें हमारा कल्याण नहीं, और अितनी सावधानी भी है कि मनके अुस वेगमें फंसते ही हमारे ध्यानमें यह बात आ जाती है, तो भी यदि अुसे रोकनेकी शक्ति हममें न हो तो वह विवेक और सावधानी जीवनकी अुन्नतिके खयालसे हमारे कुछ काम नहीं आती। मनको रोकनेकी शक्ति ही संयमशक्ति है। यह शक्ति बढ़ानेके लिअे हमें निश्चयी बनना चाहिये। पूर्वसंस्कारोंके अनुसार दौड़नेवाले मनको अुचित विषयकी तरफ और ठीक दिशामें मोड़नेका काम निश्चयके बिना नहीं हो सकता। अपनी निश्चयवृत्तिको स्थिर करके अुसके द्वारा अनुचित वृत्तियोंको हमें रोकना चाहिये। प्रतिबंध करनेवाली वृत्तिको हमें अपनी संकल्पशक्ति द्वारा दृढ़ और बलवान बनाना चाहिये। वह वृत्ति और वह संकल्प निश्चयके बिना दृढ़ नहीं हो सकते। अिसलिअे अिस मार्गमें निश्चयका बहुत ज्यादा महत्त्व है।

संयम और पुरुषार्थकी आवश्यकता

निग्रहशक्ति बढ़ानेके लिअे निश्चयकी जरूरत है। लेकिन यह भी अेक सवाल है कि निश्चयको जाग्रत और स्थायी बनानेके लिअे क्या किया जाय। निश्चयके साथ अपनी संयमशक्तिको जाग्रत रखनेके लिअे हमें कुछ नियम स्वीकार करने चाहियें। अिस प्रकारके नियमोंको ही व्रत कहते हैं। अुन व्रतों द्वारा हमारी संयमशक्ति जाग्रत होती है। अिन नियमोंका आचरण

हमे समझकर और अुनके ध्येयका सतत स्मरण रखकर करना चाहिये। तो ही वे हमारा हेतु सफल करनेमे समर्थ होगे। हेतु और ज्ञानके अभावमे पाले गये व्रतो और नियमोकी अुन्नतिकी दृष्टिसे कोअी कीमत नही। अिसीलिअे अुन्हे केवल निरर्थक कर्मकाण्ड कहते है। नियम दो तरहके होते है। अेकमे त्यागका महत्त्व होता है और दूसरेमे कर्तृत्व और पुरुषार्थ पर जोर दिया जाता है। मनुष्यको दोनो प्रकारके नियमोसे अपना मानसिक बल बढाना चाहिये। अनुचित मनोवृत्तियोको रोककर अुचित मनोवृत्तियोका विकास करना हमे आना चाहिये। ये चीजे जिन नियमोसे पूरी हो सके, अुन नियमोकी हमे अपने लिअे योजना करनी चाहिये। सयम साधनेके लिअे अुपवास, अर्धअुपवास जैसे व्रत हरअेक प्रचलित धार्मिक सम्प्रदायमे बताये गये है। परन्तु अुनकी जडमे जो हेतु था अुसे हम भूल गये है। अिसलिअे बरसोसे अिस प्रकारके व्रत पालते रहने पर भी अपनी जबान पर हम स्थायी सयम नही रख सके। अिसका अर्थ यह है कि वे व्रत अुन्नतिकी दृष्टिसे बेकार साबित हुअे है। सात, पद्रह या तीस दिनमे अेक दिन मौन रखकर बाकी सब दिन जीभकी लगाम खुली रख दी जाय, तो अुस मौनका कोअी अर्थ नही। हमे पाचो अिन्द्रियोको नियत्रणमे रखकर अपनी मनोवृत्तियो पर काबू पाना है। हमे अुनकी पहलेकी अनुचित आदतो और अनुचित सस्कारोको बदलना है। अिसके लिअे बाह्य अिन्द्रियो और ज्ञानेद्रियो पर किस प्रकारका, कितना और किस तरह नियत्रण रखा जाय, यह हरअेकको विचारपूर्वक निश्चय करना चाहिये।

विवेकयुक्त नियमन

नियमन रखते और निश्चय करते समय जल्दबाजीमें केवल भावनावश हो जानेसे काम नही चलेगा। अुस समय हमें अपने पूर्व सस्कार, अपनी परिस्थिति, नियम और निश्चयके बारेमे अपने पूर्व अितिहास आदि परसे अपनी दृढता या शिथिलता वगैरा तमाम बातोका विचार करके हमारी तत्सम्बन्धी पात्रता पर ध्यान देना

चाहिये। नियम तय करते समय भूतकालमें हुअे अपने अनुभवको ध्यानमें रखकर, वर्तमानकालकी परिस्थितिका अवलोकन करके, अिस बातका दीर्घदृष्टिसे विचार करना चाहिये कि भविष्यमे अिसके क्या परिणाम होंगे। और अेक बार कोअी भी नियम तय कर लेने और निश्चय कर लेनेके बाद अुसका पालन करनेमे जरा भी लापरवाही या ढिलाअी नही करनी चाहिये। मौका पड़ने पर अपनी तमाम शक्तियोका दृढतापूर्वक अुपयोग करके भी हमे अपना निश्चय कायम रखनेकी पराकाष्ठा करनी चाहिये। नियम और निश्चयके मामलेमें हमारे व्यवहारका ढग अिस प्रकारका होगा, तो हम अपूर्ण दृष्टिसे, अविवेकसे और केवल भावनाके आवेगमे बिना सोचे-विचारे कोअी निश्चय नही करेंगे; और जिससे नियम और निश्चय बार-बार तोडने, बदलने या दभी बनकर यह दिखाते रहनेके प्रसंग नही आयेंगे कि वे ज्योंके त्यों चल रहे है। अच्छे निश्चयोंके पालनसे हमारी जितनी अुन्नति होती है, अुनकी अपेक्षा अुन निश्चयोको कमजोरीसे तोडकर कोअी पश्चात्ताप न होनेमे हमारी ज्यादा अवनति है। और दभी बनकर अुन निश्चयोंके ज्योंके त्यों चालू रहनेका आभास करानेमे तो हमारी भारी अधोगति है। अैसी स्थितिको पहुचे हुअे मनकी अुन्नति होना बडा मुश्किल है।

व्रतपालनसे सहज सतोष

अिसलिअे श्रेयार्थी साधकको अपनी शक्ति और परिस्थिति देखकर निश्चय करना चाहिये। किसी भी व्रत या नियमका पालन जारी हो, तब अुसमें प्रतीत होनेवाली कठिनाअी आदतके कारण या अुस नियमसे होनेवाले सात्त्विक लाभके कारण धीरे-धीरे अपने-आप नष्ट होनी चाहिये। व्रतके कारण हममें सन्तोष और शक्ति सदा बढने चाहिये। व्रतके कारण हमारे निश्चयमे बल आना चाहिये। बलमे निग्रहशक्ति बढनी चाहिये। निग्रहमे सयममें स्वाभाविकता आनी चाहिये और सयममे सतोष पैदा होना चाहिये। और अुनके बढते बढते नियम स्वय ही सन्तोषरूप बनकर हमारा

स्वभाव हो जाना चाहिये। यह हमारी सहज स्थिति हो जानी चाहिये। अैसी सहज स्थिति हो जानेके बाद व्रतका व्रतपन नही रहेगा। और फिर, अिस सहज स्थिति और सन्तोषकी अवस्थामे अधिक कठिन व्रत लेनेकी और अुसे भी पहलेके व्रतकी तरह अपना स्वभाव और स्वाभाविक जीवन बनानेकी हिम्मत अपने-आप हममे पैदा हो जायगी। अिस प्रकार अेक व्रतसे दूसरे व्रतकी निर्मिति जारी रहे, तो ही समझना चाहिये कि वह व्रत हमे सध गया। किसी भी व्रतमे हमे अुत्तरोत्तर स्वस्थता, प्रसन्नता और निरुपाधिकताका अनुभव होना चाहिये। वैसा अनुभव न हो तो अुस व्रतसे हमारी अुन्नति नही होगी। अैसी स्थितिमे व्रत हमे दड या सजाकी तरह लगता रहेगा। त्यागके साथ हममे शान्ति और प्रसन्नता दीखनी चाहिये। अुसके कारण हममे सन्तोष बढता रहना चाहिये। व्रतमे पाप-पुण्यकी कल्पना न होनी चाहिये; परन्तु हमे यह देखना चाहिये कि अुसके कारण हमारी कर्मेन्द्रियो और ज्ञानेद्रियोकी यानी कुल मिलाकर हमारे चित्तकी शुद्धि हो रही है या नही, अिन्द्रियोकी रसलुब्धता कम होती है या नही, हम स्वाधीन, निरुपाधिक, निरोगी, आवश्यक जरूरतोके मामलेमे भी परिमित और मितभोगी हो रहे है या नही। हमें यह जाच करनी चाहिये कि लालसाकी तृप्तिसे जो क्षणिक आनन्द होता है, अुसकी अपेक्षा हमें सयमसे अधिक सन्तोष और सहज ही स्थायी प्रसन्नता होती है या नही। व्रत और नियमके कारण सयमशक्तिके बढनेसे तरह तरहकी गलत आदतो, लालसा, रुचि-अरुचि और शौकोके कारण हममे पैदा हुअी परवशता और चित्तकी दुर्बलतासे हमे छुटकारा मिलता हो, तो हमारा जीवन अपने-आप पहलेसे अुत्तरोत्तर अधिक सुखमय, सन्तोषमय, प्रसन्न और मुक्त होगा। सयम, निग्रह और पवित्रता वगैराके कारण हममे जो शक्तिया और सद्‌गुण पैदा होगे, अुनके परिणाम हमारे समस्त जीवन-व्यवसाय पर सहज ही होगे और अिसमें भी हम दूसरोसे सहज ही

अधिक सफल होंगे। जिस प्रकार केवल संयमके उद्देश्यसे किये गये निश्चय और उसके लिये लिये गये व्रत या नियमका सुपरिणाम हमारे चित्त पर होता रहना चाहिये, और वह पवित्र, दृढ़ और बलवान बनना चाहिये।

उन्नतिके लिये संयम और सत्कर्मकी जरूरत

जैसा कि मैं ऊपर कह चुका हूं, व्रत और नियमोंके दो प्रकार हैं संयमात्मक और क्रियात्मक। निषिद्ध या अनुचित बात न करना, उससे मनको रोकना संयम है, जबकि कोई अच्छी चीज करनेका निश्चय करके उचित अवसर पर उसके अनुसार चलनेमें कर्तृत्व है। खान-पान, निद्रा, बोलना वगैराके मामलेमें अनियमितता, अतिशयता आदि दोषों और इसी प्रकार पांच ज्ञानेंद्रियों द्वारा सेवन किये जानेवाले अनुचित रसों और रसवृत्तिका त्याग करनेके लिये संयमकी जरूरत है। और निश्चित समय पर परिश्रम करना, अध्ययन करना, सेवा करना, अपने काम नियमित रूपमें खुद करना, दान करना, सामाजिक ऋण अदा करना वगैराके सिलसिलेमें बनाये गये नियम निश्चयपूर्वक पालनेके लिये कर्तृत्वकी आवश्यकता है। हमेशा सुबह जल्दी उठनेमें संयम है, परन्तु केवल इस संयमके सफल हो जानेसे हमारी उन्नति ही होगी, यह निश्चय-पूर्वक नहीं कहा जा सकता। क्योंकि सुबह जल्दी उठकर मनुष्य कुकर्म भी कर सकता है। इसलिये मनुष्यको अपनी उन्नतिके लिये संयमके साथ सत्कर्मका नियम भी स्वीकार करना चाहिये। जीवनकी सर्वांगीण उन्नतिके लिये दोनों प्रकारके नियमोंकी एकसी जरूरत है।

सत्कर्मके लिये निश्चयकी जरूरत

हमारा जीवन इन दोनों तरहके नियमोंसे युक्त हो, तो उसमें दीनता, दुर्बलता, लघुता, भीरुता, कृपणता, आलस्य, स्वेच्छाचार, दुराचार, अनियमितता, फिजूल-खर्ची, जड़ता, आदि दोष कहीं भी दिखाई नहीं देंगे। उलटे, सामर्थ्य और नम्रता, उद्यमशीलता और मितव्ययिता, पवित्रता और पुरुषार्थ, उदारता और जन-सेवा,

सदाचार और भूतदया आदिसे हमारा जीवन भरा हुआ दिखाओी देगा। सयमके साथ ही यदि हममें पुरुषार्थकी वृद्धि न हो, तो जीवनमें जडता या मौका पडने पर दीनता आ जाना सभव है, और अैसा जीवन समय पाकर दयापात्र भी बन सकता है। जबकि सयमहीन, केवल पुरुषार्थयुक्त जीवन सन्मार्गवर्ती न रहकर कुमार्गी बन सकता है और हमारे तथा दूसरोके अध पातका अचूक कारण हो सकता है। अिसलिअे हमारे जीवनमे सयम और पुरुषार्थ दोनोका अुचित मेल होना चाहिये। तभी हमारा जीवन सब ओरसे अुन्नत होता रहेगा। चाहे जैसा जीवन वितानेसे वह अुन्नत नही होता। अिसके लिअे हमें विचारपूर्वक अुन्नतिके मार्गका नकशा बनाना पडता है। और अिस प्रकार अकित मार्ग पर जीवनको चलानेके लिअे अपनेमे प्रयत्नपूर्वक जरूरी सद्गुण पैदा करने पडते है। अुस प्रयत्नमे निश्चयकी जरूरत होती है। निश्चयके बिना किसी भी गुण पर मनुष्य दृढ नही रह सकता। हमारे चित्तमें केवल भावोके जाग्रत होनेसे सद्गुणोका अुद्भव या विकास नही होता। अिसके लिअे सदाचारकी जरूरत होती है। चित्तमे भाव जाग्रत होनेके बाद भी सदाचार या सत्कर्माचरणके मौके पर जब-जब हमारा मन पिछड जाय या हिम्मत हार जाय, तव-तब अुसे प्रोत्साहित करके अुचित आचरण पर लाने और आगे धकेलनेके लिअे निश्चयके सिवाय और कोअी अुपाय नही। अिसी तरह अनुचित मार्ग पर दौडनेवाली वृत्तियोको रोककर कावूमे लानेके लिअे निश्चयके अलावा दूसरा कोअी साधन नही। अिसलिअे पुरुषार्थ और सयम दोनोमे निश्चयका महत्त्व पहचानकर मनुष्यको जहा जहा जरूरत पडे वहा वहा अुसका अुपयोग करके अपनी निग्रहशक्ति वढानी चाहिये। प्रयत्नसे मनुष्य अुसे वढा सकता है। हमारी अुन्नतिके लिअे आवश्यक सकल्पबलका आधार हमारी निग्रहशक्ति पर है, यह जानकर मनुष्यको अुसके लिअे सतत प्रयत्नशील रहना चाहिये।

४

सद्‌गुणोपासना

हमें अपना जीवन अत्यन्त विचारपूर्वक चलाना चाहिये। अपनी शक्तियोंका प्रयत्नपूर्वक विकास करके निरन्तर सदुपयोग करना चाहिये। जिन शक्तियोंका हम केवल विकास ही करें, परन्तु अुनका सदुपयोग करना न जानें, तो वे हमारे और दूसरोंके लिअे अनर्थकारी बन जायगी। अिसलिअे शक्तिकी वृद्धिके साथ ही अुसकी शुद्धिका विचार, आग्रह और प्रयत्न जारी रखना अत्यन्त आवश्यक है। जिस प्रकार आचरण करते हुअे हमारे सद्‌गुणोंके कारण दूसरोंको थोडा भी अैहिक लाभ होता हो या अुनका कुछ कल्याण होता हो, तो हममें अैसा भाव या अहंकार अुत्पन्न न होना चाहिये कि हम अुन पर बडा अुपकार कर रहे हैं। कारण, सद्‌गुणी होनेमें हम वास्तवमें अपना ही सबसे ज्यादा कल्याण करते हैं। सद्‌गुणोंके अुपासकको सद्‌गुणोंमें ही तृप्ति रहती है। अिसके लिअे वह औरोंकी तरफसे मान-प्रतिष्ठा प्राप्त करनेकी कभी अिच्छा नहीं रखता। कोअी सद्‌गुण हमारा स्वभाव बना है या नहीं, अिसे पहचाननेकी यह महत्त्व-पूर्ण निशानी है। सद्‌गुणके बारेमें कुछ विशेषता महसूस होना, अुससे अहंकार होना और अुसके कारण औरोंको तुच्छ समझना — ये सारी क्षुद्र मनोवृत्तियां हैं और किसी भी समय हमारे पतनका कारण बन जाती हैं। वे हमारी अुन्नतिके रास्तेमें बाधक हैं। हमें समझना चाहिये कि जब तक हममें ये मनोवृत्तियां हैं, तब तक हम सद्‌गुणोंके सच्चे अुपासक नहीं बन सकते। सद्‌गुणी होनेके बजाय यह दिखानेमें सन्तोष मालूम होता हो कि हम सद्‌गुणी हैं, तो यह समझना चाहिये कि हममें दंभ है, और सद्‌गुणोंके लिअे हममें अहंकारका होना यह साबित करता है कि केवल सद्‌गुणोंसे हमारी तृप्ति नहीं होती। परन्तु

शक्तिके साथ ही सद्‌गुणोंकी शुद्धि

अुसके लिअे अभी तक अहकारकी जरूरत है। अत यह समझना चाहिये कि जिस मात्रामे हममे अहकार है, अुसी मात्रामे सद्गुणकी कमी है। सद्गुणका वास्तविक परिणाम आत्मसन्तोष है। जिसे अिस आत्मसन्तोषकी अपेक्षा अहकारसे मिलनेवाला सुख या आनन्द श्रेष्ठ मालूम होता है, अुसके विषयमे यह कैसे कहा जा सकता है कि अुसमें सद्गुण आ गये है, वे अुसका स्वभाव बन गये है? और यह अहंकार अुसमें और क्या क्या दुर्गुण पैदा करेगा, अिसका क्या ठिकाना? जब तक हमारे ज्ञानमे, सद्गुणोमे और नीतिमत्तामे स्वाभाविकता और पूर्णता नही आ जाती, तब तक अुससे हमारा पतन होनेका डर बना रहता है। मान, प्रतिष्ठा, दभ, अहकार — ये सब पतनके रास्ते है। श्रेयकी अिच्छा करनेवालेको अिस मार्ग पर कभी न जाना चाहिये। सद्गुण हमारा स्वभाव बन जाय, तो निरहकारिता हममे अपने-आप आ जायगी। सदाचारी और सद्गुणी होनेमे ही हमारा सच्चा कल्याण है और अिसीसे हमे सच्ची शान्ति मिलेगी, यह हमे कभी न भूलना चाहिये। हमे क्षुद्र मोहमे न फसना चाहिये। सद्गुणोके कारण हममे मद पैदा हो, अहकार निर्माण हो, तो हमें समझना चाहिये कि वे सद्गुण हमे हजम नही हुअे।

औरोको परखनेकी सच्ची पात्रता

ज्यो ज्यो हमारी विवेकशक्ति बढेगी, हमारा चित्त शुद्ध होगा, त्यो त्यो ये सब बाते अपने-आप हमारे ध्यानमे आने लगेगी। और हम अपने चित्तको, अुसकी वृत्तियोको, सद्गुण-दुर्गुणोको आसानीसे पहचान सकेगे। हम अपने आपको जान सकेगे तो ही जगतको जान सकेगे। हमें अपनी ही परीक्षा करना न आये, तो हम दुनियाकी परीक्षा कैसे कर सकेगे? अेक घडी या यन्त्रकी रचना अच्छी तरह हमारी समझमे आनेके बाद वैसी दूसरी घडियो या यन्त्रोकी रचना ध्यानमे आते देर नही लगती। अिसी प्रकार हमारा चित्त, अुसकी वृत्तिया, अुसकी सुप्त-प्रकट अवस्थायें, अुनकी अुत्पत्ति, वृद्धि

और क्षय, अुनकी सुसंगति-विसंगति, अुनका परीक्षण, पृथक्करण और वर्गीकरण, अुन वृत्तियोंके अन्तर्बाह्य स्थूल-सूक्ष्म परिणाम वगैरा सब हम जान सकें और अुनकी शुभ वृत्तियों और सद्गुणोंका अपनेमें निरहंकारिता आ जाने तक विकास करें और अिस सबमें से गुजरकर अंतिम अलिप्त अवस्था प्राप्त कर सकें, तो हम दुनियाको पहचानने योग्य हो सकते हैं। अपने आपको शुद्ध किये बिना हम जगतकी परीक्षा करें, तो अुसका गलत ही साबित होना संभव है। हमारी दृष्टि शुद्ध और निर्दोष न हो और हम दुनियाके गुण-दोषोंका फैसला करने बैठ जाय, तो अुसमें भूल होनेकी ज्यादा संभावना है। हम जिस रंगका चश्मा पहनते हैं, अुसी रंगकी दुनिया हमें दीखने लगती है। यही हाल अिस विषयमें होगा। हम विकारवश होंगे तो दुनियाकी तरफ अुसी दृष्टिसे देखेंगे और अुसी दृष्टिसे अुसकी परीक्षा करेंगे। हम भावनावश होंगे तो हमारी दृष्टि और परीक्षा वैसी ही होगी। लोभी, लालची और दंभी होंगे तो वैसी होगी। यानी जैसी हमारी मानसिक अवस्था होगी, वैसी ही दुनिया हमें दिखाओी देगी। और हमारी वृत्तियों और भावनाओंके शमनके लिअे हम वैसा ही अुसका अुपयोग करेंगे। अिसमें न तो हमारी और जगतकी सच्ची परीक्षा है और न किसीकी सलामती है। यदि यह बात हम निश्चित समझ लें कि हमारी अपनी अुन्नतिमें ही हमारी और जगतकी परीक्षा और सबकी सलामती है, तो दूसरोंके और दुनियाके बारेमें गलत तर्कमें पड़ कर धोखा खाने या दूसरोंको धोखा देनेका कारण बननेका हमें अन्देशा न रहे।

चित्तशुद्धि और सद्गुणोंका सम्बन्ध

अिससे आप यह न समझें कि जब तक हम पूर्ण शुद्ध, निर्विकार और प्रज्ञावान नहीं हो जाते, तब तक हम औरोंकी कुछ भी सेवा नहीं कर सकते। मैं आपसे आग्रहपूर्वक कहता हूं कि जब आप अपना चित्त शुद्ध करनेका प्रयत्न करते हैं, अुसी समय सद्गुणी बननेकी भी कोशिश कीजिये। आपमें सेवापरायणता

नही होगी और अुस दिशामे आप पुरुषार्थ नही करेगे, तो आप सद्गुणी नही बन सकेगे। दूसरोके साथ हमारे अच्छे-बुरे व्यवहारसे ही सद्गुण या दुर्गुणका निश्चय होता है। हमारा जो व्यवहार न्यायपूर्ण, परदु ख निवारण करनेवाला, हमारी और दूसरोकी अुन्नति करनेवाला और नैतिक दृष्टिसे दोनोको लाभ पहुचानेवाला हो वह सद्व्यवहार है और असिसे अुलटा हो तो दुर्व्यवहार। सद्-असद् व्यवहारकी यह सीधी-सादी व्याख्या है। असिसे सद्गुण-दुर्गुणका निर्णय किया जा सकेगा। सद्गुणोके बिना आपमे सेवापरायणता टिक नही सकेगी। दूसरोके साथ हमारे सम्बन्ध जिस मात्रामे अुन्नतिकारक होगे, अुसी मात्रामे हमारे सद्गुणोका विकास होगा। किसी भी सद्गुणका चित्तकी शुद्धिके बिना कभी सपूर्ण विकास नही हो सकता। मेरे कहनेका अर्थ यह है कि शुद्धि और सद्गुण-सम्पन्नताका अन्योन्यपोषक और सहायक सम्बन्ध जानकर आपको असि मामलेमें प्रयत्नशील रहना चाहिये। सद्व्यवहारके प्रयत्नसे ही अुसके दोष या पूर्णता हमारे ध्यानमें आती है। असिलिअे हमेशा सदाचारी रहनेका प्रयत्न कीजिये। वृत्तियो और कर्मोका सतत परीक्षण करके दोष ढूढ निकालने चाहिये और अुन्हे सुधारनेकी कोशिश करनी चाहिये, तभी हमारे चित्तकी और साथ-साथ कर्मोकी शुद्धि होती रहेगी, कर्मोमे कुशलता, व्यवस्थितता और औचित्य आते जायगे और वे निश्चित रूपसे सफल होते जायगे। असि तरह हम शुद्धि और पुरुषार्थ दोनोकी दृष्टिसे पूर्णताकी ओर प्रगति करेगे। दोनोके मेलमे मानव-प्रकृतिकी पूर्णता है और सार्थकताकी सीमा है।

सद्गुणो द्वारा मानवताकी सिद्धि

शुद्धिके साथ सद्गुणो पर मै असिीलिअे जोर देता हू कि पुरुषार्थके बिना सद्गुणोकी प्राप्ति नही होती और पुरुषार्थ और सद्गुणोके बिना केवल शुद्धिका जीवन-विकासकी दृष्टिसे कोअी महत्त्व नही। सद्गुणो और पुरुषार्थके बिना चित्तशुद्धि अेक प्रकारकी जडता भी सिद्ध हो सकती है। केवल शुद्धिकी स्थितिमे निषिद्ध क्रियाओ

और अुनके अनुरूप वृत्तियोंका अभाव माना गया है। परन्तु मनुष्यमें चेतन है, चित्त है, बुद्धि है, प्राण है, कर्मेन्द्रियां और ज्ञानेन्द्रियां हैं और अिन सबमें अगाध शक्ति भरी हुअी है। अनादि कालसे मानव-जातिमें सतत विकास करनेवाले ज्ञान और संस्कारोंका, सद्भावनाओं और सद्गुणोंका और शील तथा पुरुषार्थका अुत्तराधिकार मनुष्यको मिला हुआ है। मानव-बुद्धि, चित्त और मनमें कितनी शक्ति सुप्त रूपमें मौजूद है, जिसका अभी पूरा पता नहीं लगा है। अुनकी प्रकट शक्तिसे शास्त्र, विद्यायें और कलायें निर्माण हुअी है और हो रही हैं। अिन सब शक्तियोंका, सब तरहकी विद्या, कला, सम्पत्ति यानी कुल मिलाकर प्राप्त अुत्तराधिकारका अुपयोग केवल निष्क्रिय या निवृत्त होनेमें करना और सारी भावनाओं और पुरुषार्थोंका संकोच करते करते अंतमें अुनका सम्पूर्ण अभाव कर डालना या केवल जडता प्राप्त कर लेना मानवताका ध्येय नहीं है। चैतन्यकी पूर्णता अिसमें नहीं है। परन्तु प्राण, मन, बुद्धि, चित्त, कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियों द्वारा प्रकट होनेवाली विविध शक्तियोंकी शुद्धि-वृद्धि करके चैतन्यके अधिकाधिक शुद्ध और व्यापक रूपमें प्रगट होते रहनेमें मानवताकी चरम सीमा और चैतन्यकी पूर्णता है। यह महान् अुद्देश्य पूरा करनेके लिअे शुद्धि और पुरुषार्थ तथा पावित्र्य और कर्तृत्वकी जरूरत है। अिसीमें जीवनसिद्धि है।

(दैनिक प्रवचनसे)

५

गुणविकास और निरहंकारिता

प्रत्येक मनुष्यको जन्मसे ही गुणोकी थोडी बहुत विरासत मिली होती है। अुसके बाद सस्कार, शिक्षा, परिस्थिति, सगति, अनुकूल-प्रतिकूल सयोग, अनुभव-ज्ञान-विवेक, अिच्छा-सकल्पकी कम या अधिक मात्रा, अित्यादि अनेक कारणोसे अुसके गुणोकी कम-ज्यादा मात्रामे वृद्धि होती है। मनुष्यमे किसी अेक ही गुणकी कभी स्वतत्र रूपसे वृद्धि नही होती, परन्तु गुणोके परस्पर आधारसे होती है। यह वृद्धि किस प्रकार होती है, अिसका पता हमे मामूली लोगोके जीवनसे नही लगता। परन्तु श्रेयार्थी और प्रयत्नशील मनुष्यके जीवनका परीक्षण करनेसे हम सद्‌गुणोकी वृद्धिका क्रम जान सकते है। सद्‌गुणोकी परीक्षा अिससे होती है कि अुनके लिअे व्यक्तिको ज्ञानपूर्वक और सद्‌हेतुपूर्वक कितना कष्ट सहना पडता है। लेकिन यह परीक्षा भी सर्वांशमें ठीक नही है। अिसके लिअे व्यक्ति व्यक्तिके बीचके पूर्व सम्बन्धोका भी विचार करना पडता है। कारण, प्रिय सम्बन्धवाले व्यक्तिके लिअे चाहे जितना त्याग करानेवाली मनोवृत्ति और बिलकुल अपरिचित व्यक्तिके लिअे अुससे कम त्याग करानेवाली मनोवृत्ति, अिन दोनोमे मानसिक दृष्टिसे बहुत ही फर्क हो सकता है। अुदाहरणके लिअे, अपने माता-पिताके लिअे अथवा अपने साथ निकटका प्रेमसम्बन्ध रखनेवाले व्यक्तिके लिअे कोअी मनुष्य बहुत कष्ट सह सकता है, अिसी परसे विश्वासके साथ यह नही कहा जा सकता कि वह बिलकुल अपरिचित व्यक्तिके लिअे सहानुभूतिपूर्वक कष्ट सहनेको तैयार हो जायगा। कारण, जहा शुरूसे ही प्रेमसम्बन्ध होता है, वहा अेक-दूसरेको अेक-दूसरेसे सुखकी प्राप्ति भी हुअी होती है, और प्रेम, कृतज्ञता, वात्सल्य वगैरा भावनाओकी वृद्धि भी हुअी होती है। अैसी स्थितिमे अेक-दूसरेके

सद्‌गुणोंकी श्रेष्ठता-कनिष्ठता

खातिर कष्ट अुठानेके लिअे जैसी मनःस्थिति जरूरी होती है, अुसकी अपेक्षा पहलेका कोअी सम्बन्ध न हो अैसे अपरिचित मनुष्यके लिअे कष्ट सहनेको तैयार होनेमें मनकी अधिक अूची अवस्था जरूरी होती है। अिसलिअे कृतज्ञता, वात्सल्य वगैरासे दया, अुदारता, परोपकार आदि गुण श्रेष्ठ हैं। अिस दृष्टिसे विचार करे तो पहलेके प्रिय सम्बन्ध-वाले व्यक्तिके बारेमे अनुभव होनेवाली सहानुभूतिके बजाय अपरिचित व्यक्तिके प्रति सहानुभूतिका भाव पैदा होना ज्यादा अूचा गुण है। और अप्रिय व दुःख देनेवाले व्यक्तिके प्रति मौका पड़ने पर सहानुभूति अनुभव होनेका भाव अुससे भी ज्यादा अूचा गुण है। अिसलिअे जिस अवसर पर मनुष्यके गुण दिखाअी देते है अुस अवसर परसे, व्यक्तियोंके अेक-दूसरेके साथ रहे पूर्वसम्बन्ध परसे, अुसके लिअे व्यक्तिको जो त्याग, नयम, विवेक, पुरुषार्थ करना पड़ा हो और अन्तमें अुसमे किसको क्या लाभ हुआ आदि बातो परसे गुणोकी श्रेष्ठता-कनिष्ठताका निर्णय करना अुचित होगा। सद्गुणोंके विकासका साधारण क्रम अिस प्रकार है। कनिष्ठ गुणोकी अेक हद तक वृद्धि होनेके बाद अुनमे श्रेष्ठ गुणोकी चित्तमें जाग्रति होती है और अुसके बाद दोनो प्रकारके सद्गुणोका अधिकसे अधिक अुत्कर्ष अेक ही समयमे हो सकता है अितना ही नही, वे अेक-दूसरेका पोषण करते हुअे बढते रहते है।

सद्गुणोकी परीक्षा

सद्गुणोकी परीक्षा केवल बाहरी परिणामसे करनेमें भूल भी हो सकती है। बाह्य परिणाम अकसर केवल परिस्थिति और सयोगो पर ही आधार रखता है, और वह परिस्थिति और सयोग व्यक्तिके अधीन नही होते। अिसलिअे सद्गुणोकी परीक्षा अिस परसे करना ठीक होगा कि किसी व्यक्तिकी अुन गुणोंके प्रति कितनी निष्ठा है, अुनके लिअे अुसे कितना त्याग, विवेक और पुरुषार्थ करना पड़ा है, और कितना अन्तर्बाह्य परिश्रम वगैरा अुठाना पड़ा है। ये बातें

विवेकशील और आत्मपरीक्षक व्यक्ति दूसरोकी अपेक्षा स्वय ही यथार्थ रूपमे जान सकता है। सद्भावनाओका चित्तमे अुठनेवाला वेग, अुसके कारण हुअी चित्तकी अवस्था, अुस समय अुठाये गये शारीरिक कष्ट और अुसके वाद भावनाओका शमन अित्यादि वातोका क्रम अथवा अितिहास वाह्य जगत न जाने तो भी व्यक्ति स्वय अपने अनुभवसे ये सव चीजे जानता है। मनुष्यमे सद्गुणोके साथ ही दुर्गुणोकी वृद्धि भी अेक ही समय होती जान पडे, तो अुन सद्गुणोके वारेमे भरोसा नही रखा जा सकता, अितना ही नही, अिस वारेमे यह भारी शका पैदा होती है कि क्या वे सद्गुण सचमुच सद्गुण ही है? परस्पर विरोधी गुण-अवगुणोकी वृद्धि अेक ही समय नही हो सकती। अुदाहरणके लिअे, दया, परोपकार, अुदारता, सरलता — ये सव परस्पर पोषक गुण है। अिसलिअे अिन सवकी वृद्धि अेक ही समय हो सकती है। अिसी तरह दुष्टता, कपट, अन्याय, विश्वासघात वगैरा दोष भी अेक-दूसरेके पोषक है। परन्तु कपट और परोपकारकी अेक ही समय वृद्धि या विकास नही हो सकता। अैसा होता दिखाअी दे तो वह परोपकार वृत्ति सच्ची नही, परन्तु काम वनानेकी युक्ति ही हो सकती है। आम तौर पर गुण गुणोके और अवगुण अवगुणोके पोपक वनते है। मनुष्यके चित्तमें गुण-अवगुणका विचार समय समय पर अुठता ही रहता है। अिस प्रकारके कर्म भी अुसके हाथो होते ही रहते है। यद्यपि मनुष्य गुण-दोपके सम्मिश्रणसे बना हुआ है, तथापि यह सभव नही कि अेक समयके गुण-दोप या अेक समयकी चित्तस्थिति दूसरे समय वैसीकी वैसी पाअी जाय। अुसमे सतत परिवर्तन होता रहता है। यह वात जल्दी नही दिखाअी देती, परन्तु लम्वे समय तक अवलोकन करनेसे ध्यानमे आ जाती है। कारण, परिवर्तनकी क्रिया वहुत ही सूक्ष्म गतिसे होती है। स्थूल और स्पष्ट रूपमे अुसका परिणाम नजर आनेमें कुछ समय लगता है। परन्तु सद्गुणोका प्रयत्नपूर्वक अनुशीलन करनेवाले साधकको अिस विषयमें लम्वे समय तक राह नही देखनी पडती।

वह अभ्यासकी सहायतासे अवगुणोंका नाश करके सद्गुणोंकी वृद्धि करनेमें अपनी मानसिक शक्तिका अुपयोग करता रहता है, जिससे अुसकी चित्तकी स्थितिमें तेजीसे परिवर्तन होता जाता है; और परीक्षण द्वारा यह बात वह जानता भी रहता है। जब अिस प्रकार प्रयत्न जारी रहता है, तब अुसका जो गुण पूर्णताको प्राप्त हो जाता है, अुसके लिअे अुसका अहंकार नष्ट हो जाता है। अुसकी प्रकृतिकी, चित्तकी, आगे बढ़नेकी गति मंद होते होते बन्द हो जाती है। गुणोंके लिअे निरहंकारिताका अर्थ है अपने गुणोंके लिअे अभिमान, गर्व, घमंड न होना, अपने गुणके कारण — विशेषताके कारण — दूसरोंको हीन या तिरस्कारपात्र न समझना। और यह स्थिति किसी भी गुणके बारेमें प्राप्त की जा सकती है, बशर्ते अुस गुणके साथ मनुष्यमें नम्रताका विकास हुआ हो।

६

अन्यायका प्रतिकार

न्याय-संवेदनाका अभाव

मानवताकी दृष्टिसे विचार करने पर अैसा लगता है कि हममें दिखाअी देनेवाले अेक दोषके बारेमें आपके सामने कुछ कहना चाहिये। यह कहनेमें कोअी हर्ज नहीं कि दुर्जन, लोभी या अुन्मत्त मनुष्य किसी व्यक्ति या समाजको सताता हो, तो अुसका प्रतिकार करके पीड़ित व्यक्ति या समाजको दुःखमुक्त करनेकी वृत्ति हममें नहीं जैसी है। अिसका कारण हमारी कअी प्रकारकी दुर्बलता तो है ही; परन्तु यह भी है कि दूसरेके दुःखके प्रति जितनी सहानुभूति हममें होनी चाहिये, अुतनी नहीं होती। हमारी 'अपनेपन' की व्याख्या और मर्यादा बहुत संकुचित है। अिसलिअे दूसरेकी ओरसे किसीको दुःख होता हो, तो अुसे देखकर हमारे चित्तमें कोअी भावना पैदा नहीं होती।

कदाचित् हो भी जाय, तो दु ख-निवारण करनेके लिअे आवश्यक धैर्य, पुरुषार्थ और सामर्थ्य भी हममे नही होता। दूसरी बात यह है कि हममे सामूहिक भावना नही है। फिर भी किसी अवसर पर न्यायका पक्ष लेकर दूसरे पर होनेवाले अन्यायका प्रतिकार करने कोअी खडा हो जाय, तो अुसको मदद देना ही चाहिये अितनी न्याय-सवेदना भी समाजमे नही है। और अिसलिअे अैसे झगडोमे हम अकेले पड जायगे, अन्याय करनेवालेको अुसके साथियोकी मदद होनेसे सबके सामने हमारे अकेलेकी कुछ नही चलेगी, अिस प्रकार सब तरफसे असहाय महसूस करनेके कारण अुसकी भी न्याय और प्रतिकारकी वृत्ति दब जाती है; और अैसी घटनाअे वार-बार होनेसे और अुनके अनुभवसे अुसकी यह वृत्ति आगे चलकर जड हो जाती है और लगभग नष्ट हो जाती है। परन्तु अिसमे शक नही कि यह हमारी और हमारे समाजकी अधोगतिकी निशानी है।

हम सुनते है कि रास्तेमे, सफरमें या गावमें कही न कही अन्याय होता है, कभी-कभी हम प्रत्यक्ष होते भी देखते है। लेकिन हमे अिस बारेमें कुछ करने जैसा नही लगता। अन्यायी अन्याय करता है, जालिम जुल्म और दुष्टता करता है, परन्तु समाजकी तरफसे अुसे कोअी दड नही मिलता या अुसका प्रतिकार नही होता। हमारे गावमें, पडोसमें, वल्कि हमारे घरमें भी अन्याय होता हो — कही सास या ननद बहू या भाभीको सताती हो, कही पति पत्नीको पीटता हो, विधवा पर सब ओरसे जुल्म होता हो और अुसकी दुर्दशा होती हो, विना मा-बापके वच्चे पर घरमें अन्याय होता हो या साहूकार कर्जदार पर अन्याय करता हो — और हम यह सव अपनी आखो देखते हो, तो भी अिन सबको चुपचाप सहन करते रहनेकी हमे जमानेसे आदत हो गअी है। अिसमे अेक प्रकारकी सामाजिक अुपेक्षा-वृत्ति और दूसरोके दु.खके प्रति लापरवाहीकी भावना है।

अवनतिका कारण सामूहिक भावनाका अभाव

मानवताकी दृष्टिसे यह हमारी वहुत वडी कमी है। दूसरो पर होनेवाले अन्यायका प्रतिकार करनेकी वृत्तिका अभाव ही यह सिद्ध करता है कि हममें सामूहिक भावना नही है। और अिस मामलेमे अव तककी हमारी जडताके कारण वह भावना पैदा करना भी कठिन हो रहा है। समाजमे ही वह भावना कम होनेके कारण खुद हम पर भी अन्यायका मौका आ पडने पर हमे दूसरोकी सहायता नही मिलती। सहायताकी हमे आशा नही होती, अिसलिअे अैसे अवसर पर अन्यायका सामना करने या अुसके खिलाफ लडनेकी हमारी हिम्मत नही होती। किसीका किसीको सहारा नही —अैसी स्थिति हम सवकी होनेसे अपने पर होनेवाला अन्याय चुपचाप सह लेनेकी निष्प्राण वृत्ति ही हमारे खूनमें समा गअी है। अिससे हममें पगुता, भीरुता, दूसरोके दु खके वारेमें वेपरवाही, जडता, किसी भी हालतमे दूसरोके लिअे खुद सकटमे न पडनेके वारेमें सावधानी और धूर्तता वगैरा जो दोप आ गये हैं और आज हमारा स्वभाव वन गये है, वे अत्यन्त निंद्य और मानवताके लिअे कलकस्वरूप है और कअी प्रकारसे हमारी अवनतिका कारण वन गये है। अिन दोपोके साथ-साथ दूसरे भी कअी दोष हममें पैदा होकर सतत वढते रहे है। शुरूसे ही हममे सामूहिक भावना वहुत थोड़ी है और हम यह सिद्ध करनेके अुल्टे प्रयत्नमे रहते है कि यही स्थिति ठीक है। दूसरोंके दु खके प्रति लापरवाही, अुदासीनता और अिससे हममे आनेवाली पगुता और भीरुताको छिपानेका प्रयत्न हम "अिस दुनियामें कोअी किसीका नही, हरअेकको अपने कर्मका फल भोगना पडता है, अुसमें दूसरेका कोअी अुपाय नही चलता", जैसे कर्मसिद्धान्तके निष्प्राण सूत्रोसे करते हैं।

अन्याय-प्रतिकारके तत्त्वका परिचय

हमारी पुरानी कल्पनाके अनुसार धर्मशालाओं, मन्दिर, अन्नक्षेत्र, सदाव्रत और तालाब वगैरा तथा नअी कल्पनाके अनुसार अस्पताल, दवाखाने, कॉलेज, सेनिटोरियम वगैरा स्थापित करने या खोलनेकी प्रवृत्ति लोगोंमें है। परन्तु अिनकी तहमें भी ज्यादातर पुण्य और कीर्ति कमानेकी ही आकांक्षा होती है। मनुष्यके लिअे प्रेम, मित्रता, सहानुभूति या निःस्वार्थता, अुदारता वगैरा भावनाओंसे ये काम शायद ही होते दीखते हैं। पारस्परिक प्रेमके कारण अेक-दूसरेके लिअे कष्ट सहनेकी वृत्ति हममें है; परन्तु जिसके साथ हमारी कोअी जान-पहचान या पूर्व-सम्बन्ध न हो अैसे व्यक्ति पर अन्याय होता हो, तो अुसका विरोध या प्रतिकार करनेके लिये खुद साहस करने, संकटमें फंसकर अपना सुखी और सुरक्षित जीवन कठिनाअीमें डालनेकी वृत्ति आज हममें नहींके बराबर है। अिस वृत्तिकी कल्पना हममें कभी थी ही नहीं, सो बात नहीं; परन्तु हमारी दुर्बलता, धर्म और स्वामीनिष्ठा अित्यादि सम्बन्धी गलत कल्पनाओं जैसे अनेक कारणोंसे अुस वृत्तिका पोषण नहीं हुआ। अिसलिअे वह नष्टप्राय हो गअी है। विचारवान लोगोंको यह ज्ञान था कि वह वृत्ति अिष्ट है, वह मनुष्यकी अुन्नतिकी परिचायक है और समाजको अुसकी जरूरत है। कहीं-कहीं पुराणकारोंने अिस वृत्तिका परिचय कराया है। दधीचि, शिवि वगैराकी कथाअें यही सिद्ध करती हैं। बौद्ध ग्रंथोंकी पारमिताकी बातें भी अिसी सद्वृत्तिका महत्त्व बताती हैं। परन्तु अुनमें अन्यायके प्रतिकारकी अपेक्षा सहानुभूति, दया और अहिंसाकी वृत्तियां ही खास तौर पर बताअी गअी हैं। अिसी तरह शरणमें आये हुअेकी रक्षाके लिअे कष्ट सहनेके अुदाहरण भी कहीं-कहीं मिलते हैं। महाभारतके भीम-बकासुर युद्धकी तहमें कृतज्ञता और अन्याय-प्रतिकारका तत्त्व है। अपनेको आश्रय देनेवाले ब्राह्मण-कुटुम्ब पर आ पड़नेवाली

आपत्ति भीमने आगे आकर अपने सिर ले ली और कुन्तीने आनन्दसे अुसे सम्मति दी। जहा दया, सामर्थ्य और आत्म-विश्वास भरपूर होते है, वही दूसरे पर होनेवाले अन्यायका प्रतिकार करनेकी वृत्ति पैदा होती है; और वही वह वृद्धि पाती है तथा मौका आने पर विजयी होती है। महाभारतकी अुस कथा और भीमकी अुस समयकी स्थिति और मनोवृत्ति पर ध्यान देनेसे हमें यह बात स्पष्ट समझमें आ जाती है। अपने शरीरका बलिदान देकर बकासुरकी क्षुधा शान्त करनेकी कल हमारी बारी है, यह खबर जब अेकचक्रा नगरीमें पाडवोको आश्रय देनेवाले ब्राह्मण-कुटुम्बको लगी, तो तुरन्त घरमें रोना-पीटना शुरू हो गया। अुसे सुनकर भीमने अपनी माता कुन्तीसे जो कुछ कहा, अुसका वर्णन कवि मोरोपतने अेक आर्यामें किया है:

'भीम म्हणे कुंतीला ब्राह्मणसमुदाय रडति का पूस।
त्याचे दुःख हराया अग्नीला भार काय कापूस॥'

भीम कुन्तीसे कहता है: 'ब्राह्मण-कुटुम्ब क्यो रो रहा है, यह अुनसे पूछ। अुनका दुःख दूर करना मेरे लिअे क्या कठिन है? अग्निके लिअे कपास जलाना क्या कठिन है?' जिसमें किसीका दुःख दूर करनेकी प्रचड शक्ति होती है, अुसके मन पर यह बात जमाना जरूरी नही होता कि अुसे दूसरेके दुःखमें भाग लेना चाहिये।

बहुत साल हो गये, बम्बअीके हैंगिंग गार्डनमें अेक अमीर आदमीकी हत्या करके सशस्त्र हत्यारे मोटरमें भागे जा रहे थे। अुस वक्त फौजके दो-तीन अग्रेज अफसरोंके स्वयं निःशस्त्र होते हुअे भी अुन पर धावा करके अुन्हें पकडनेकी साहसपूर्ण घटना अिस अवसर पर याद आती है। अुस समय दूसरे सैकडो लोग भी अुस जगह मौजूद थे। परन्तु अुन अफसरोंके सिवाय अन्य किसीकी अुन हत्यारो पर टूट पड़नेकी हिम्मत नही हुअी।

मानवताकी व्याख्या

आज हममें अिस प्रकारकी न तो शक्ति है और न वृत्ति ही। परन्तु आप अितनी वात ध्यानमे रखिये कि यदि आपको मनुष्यकी तरह जीना हो, तो स्वय अपने पर होनेवाला अन्याय तो कभी आपको सहन करना ही न चाहिये, परन्तु आपकी मौजूदगीमे दूसरो पर होनेवाला अन्याय भी आपको सहन नही होना चाहिये। हमारी यह मान्यता हैं कि जो दूसरेका अन्याय सहता है परन्तु दूसरे पर अन्याय नही करता, जो दूसरेका दिया हुआ दु ख सह लेता है परन्तु किसीको दु ख नही देता, जो दूसरेके कपट, धोखे और धूर्तताका शिकार बनता है, परन्तु खुद किसीके साथ कपट नही करता, किसीको ठगता नही और किसीके साथ धूर्तता नही करता वह सज्जन है। परन्तु मै यह कहता हू कि जो न स्वय किसी पर अन्याय करता है और न अपने पर या दूसरे पर किसीका अन्याय सहता है, जो न स्वय किसीको दु ख देता है और न कोअी निष्कारण अुसे या दूसरेको दु ख दे तो अुसे सहन करता है, जो न स्वय कपट करता है और न किसीका कपट चलने देता है, जो न स्वय किसीको धोखा देता है और न किसीसे धोखा खाता है, जो न किसीके साथ धूर्तता करता है और न किसीकी धूर्तता चलने देता है, वह सज्जन है और वही मनुष्य है। मै मानता हू कि अुसीमे सच्ची मानवताका विकास हुआ है।

अिस सव परसे यह वात आपके ध्यानमे आअी होगी कि मनुष्य स्वय केवल सहनशील रहे, अिसीसे अुसका मानव-कर्तव्य पूरा नही हो जाता, अिसीमे मानवधर्मकी समाप्ति नही हो जाती। जडता, पगुता, दुर्वलता, भीरुता, अकर्तृत्व वगैरा दोष अपनेमे कायम रखकर हम मानवता प्राप्त नही कर सकते। हममें रहनेवाली अधार्मिक वृत्तियोका नाश करके अपना जीवन सात्त्विक और धार्मिक वनानेकी जितनी जरूरत है, अुतनी ही जरूरत व्यक्ति और समाज दोनोकी अुन्नतिकी दृष्टिसे

दूसरोंकी स्वैरता और दुष्टताको मन-कर्म-वचनसे रोकनेका प्रयत्न करनेकी भी है। अिस मामलेमें निराग्रही और निराकांक्षी रहनेसे काम नहीं चलेगा। पुरुषार्थके विना यह वात नही हो सकेगी। अधार्मिक या अन्यायी प्रवृत्तिको हम सब रोकते रहेंगे, तो ही दुष्ट मनुष्यमें रहनेवाला सुप्त सत्त्व जाग्रत हो सकेगा और वह धर्ममार्गकी ओर मुड सकेगा। अिस मार्गमें हमे समय-समय पर सतप्त और क्षुब्ध होनेके मौके आयेंगे और अनेक प्रकारके कष्ट भी सहने पड़ेंगे। परन्तु अैसे वक्त हमें अपनी न्याय-वृत्तिको जाग्रत करके दूसरोकी अधार्मिकताको रोकना होगा। मौका पडने पर अपनी सारी भीतरी व वाहरी शक्ति अिकट्ठी और अुत्तेजित करके हमें प्रयत्नकी पराकाष्ठा करनी पड़ेगी। परन्तु अिस मामलेमें अुदासीन रहनेसे या सिर्फ क्रोधसे भर जानेसे या सिर्फ परेशान होनेसे कभी काम नही चलेगा। हमे निश्चयी और सतत प्रयत्नशील रहना चाहिये। तभी हम अपना कर्तव्य पूरा करनेका सन्तोष प्राप्त कर सकेंगे।

(दैनिक प्रवचनसे)

७

निन्दा-त्याग

निन्दाका चित्त पर होनेवाला परिणाम

चित्तशुद्धिकी दृष्टिसे अेक महत्त्वकी बात मैं आपके ध्यानमें लाना चाहता हूं। श्रेयार्थी मनुष्यको अिस बात पर बहुत ध्यान देना चाहिये। चित्तको शुद्ध रखनेकी अिच्छा करनेवालेको हरअेक अशुद्ध विषयसे दूर रहना चाहिये। चित्तका अेक अैसा धर्म है कि शुद्ध या अशुद्ध किसी भी विषयका चिन्तन ग्राह्य या त्याज्य किसी भी निमित्तसे जारी रहे, तो अुसका चित्त पर थोडा बहुत स्थायी संस्कार रहता ही है। शुद्ध विषयका संस्कार हमारे चित्त पर जितना दृढ होगा, अुतना ही वह हमारे लिअे कल्याणप्रद होगा। अिसलिअे हम चाहते हैं कि वह दृढ ही रहे। परन्तु अशुद्ध विषयका चिन्तन, भले वह त्यागकी भावनासे हो, हमारे चित्त पर किसी न किसी प्रकारका संस्कार डाले बिना नहीं रहता। यह बात ध्यानमें रखकर हमें अिस बारेमें सावधान रहना चाहिये। अिसके लिअे हमें सबसे पहले परनिन्दाके बारेमें सचेत रहना चाहिये। निन्दाका हमारा हेतु कितना ही शुद्ध क्यों न हो, वह हमेशा किसी खराब बातके बारेमें ही होती है। अैसे वक्त हम अनजाने अुसका जो चिन्तन करते हैं, वह कोअी न कोअी बुरा संस्कार हमारे चित्त पर छोड जाता है। वह संस्कार आगे जाकर कब, किस कारणसे और कैसी स्थितिमें जाग्रत होकर हमें सतायेगा, अिसका भरोसा नहीं। अिसलिअे साधकको अिस बारेमें जाग्रत रहकर निन्दाका अवसर सदा टालना चाहिये। मैंने अैसे साधक और श्रेयार्थी देखे हैं, जिनकी बुद्धि पहले शुद्ध थी, परन्तु दुराचारी मनुष्योंके साथ दुराचरणके विरुद्ध

अुन्हें समय-समय पर जो वाद-विवाद करना पड़ा, अुसके परिणाम-स्वरूप अन्तमें अुनकी बुद्धि भी भ्रष्ट हो गयी और वे कुमार्गमें लग गये। अिसका कारण यही है कि त्याज्य विषयका खंडन करनेके निमित्त अुन्हें समय-समय पर अुसका जो चिन्तन करना पड़ा, अुसके संस्कार अुनके चित्त पर अधिकाधिक जमा होते रहे। और अुनकी मति यद्यपि पहले शुद्ध थी, फिर भी अुनकी मूल अिच्छाके विरुद्ध अुन संस्कारोंका अनिष्ट परिणाम अुनके जीवन पर हुआ। त्यागके निमित्तसे, निषेधके हेतुसे की गयी निन्दा अंतमें हमारा अकल्याण ही करती है। अिसलिअे हमें निन्दासे दूर रहना चाहिये। किसीके भी दुराचरणकी चर्चा या चिन्तनमें न पड़नेमें ही हमारी सुरक्षा है।

निन्दामें अनजाने होनेवाली दिलचस्पी

समाजमें कोअी नैतिक पतनकी घटना घटती है, तो धीरे-धीरे अुसकी चर्चा शुरू हो जाती है। लोगोंके लिअे वह अेक जिज्ञासाका, चर्चाका और अेक प्रकारसे अपनी नीतिसम्बन्धी निष्ठा और श्रेष्ठता दिखानेका अच्छा मौका बन जाता है। बार-बार अुसी विषय पर आपसमें चर्चा होती है और बादमें अुससे सबका मनोरंजन भी होने लगता है। परनिन्दामें अपनी पवित्रताके आभासका आनन्द होता है और दूसरेके प्रति हमारे मनमें अीर्ष्या हो, तो अुसके कुछ न कुछ शान्त होनेका सन्तोष हमें मिलता है। अिसके सिवा मनुष्य जिस विषयके प्रति अरुचि दिखाकर अुसका निषेध करता है, अुसके प्रति वह कितना ही तिरस्कार दिखानेका ढोंग करे, या आभास पैदा करे, तो भी अुस विषयकी चर्चामें ही अुसे थोड़ा बहुत रस आने लगता है। विषयोंका रस मनुष्य कअी तरहसे ले सकता है। त्यागबुद्धिसे किये गये वर्णन-चिन्तनमें अूपर अूपरसे देखने पर रसानुभव न लगता हो, तो भी बारीकीसे जाच करने पर पता चलेगा कि मनुष्य अिस निमित्तसे भी रसानुभव करता है। और बिल्कुल पहले ही मौके पर न हो, तो भी ज्यों-ज्यों विषयकी

चर्चा बढती जाती है, त्यो त्यो अुसमे रस पैदा हुअे विना नही रहता। चित्तका यह धर्म है। अिसमें विद्वान-अविद्वान, सज्जन-दुर्जन, साधक और साधारण आदमीका भेद नही है।

निषेध और प्रीतिका मिश्रण

हरअेक व्यक्तिमें अच्छे और वुरे दोनो प्रकारके सस्कार — कोअी सुप्त और कोअी प्रकट रूपमे — होते है। वे हममें वीज रूपमे रहते ही है। जव हम किसी नैतिक पतनकी घटनाके वारेमे सुनते और चर्चा करते है, तव हममे कैसी वृत्तिया जाग्रत होती है, अिसकी हमे जाच करनी चाहिये। घटनाके विषयके प्रति जव हम तिरस्कार दिखाते है, तव हमारे चित्तमे सचमुच अुस घटनाके प्रति तिरस्कार होता है या रस, अिसकी हमे खोज करनी चाहिये। अपने मनकी अच्छी तरह जाच किये बिना यह भेद हमारी समझमे नही आता, क्योकि हमारे मनमे अनेक विषयोके लिअे प्रीति भरी रहती है। अेक ओर हम अुनके प्रति वैराग्य, अरुचि और निषेध दिखाते है, तो दूसरी ओर अुन्ही विषयोकी चर्चामे हमारी अुन विषयो सम्बन्धी मूल प्रीति जाग्रत होती है और वह हमे चर्चाकी तरफ अधिकाधिक खीच ले जाती है। परन्तु यह वात सूक्ष्म निरीक्षणके विना हमारे ध्यानमें नही आती। अिस प्रकार निषेध और रस, दोनोके मिश्रणमे चर्चा जारी रहती है और हरअेक चर्चा करनेवालेको अैसा महसूस होता रहता है कि हम सब नीतिशुद्ध और नीतिनिष्ठ है। परन्तु अिन वातोके परिणामका विचार करने पर लगता है कि ये चीजे श्रेयार्थीकी अुन्नतिमे अुपयोगी होनेके बजाय अुसकी अवनतिका ही कारण वनती है। विवेककी दृष्टिसे देखने पर अैसा लगता है कि अनुचित घटना सम्वन्धी चर्चामे विषयका रस, दूसरोके प्रति अीर्ष्या-मत्सर, अपनी नीतिमत्ताके वारेमे भूलभरी श्रेष्ठ भावना और दभ आदि वाते ही मुख्यत होती है।

ऐसी किसी अनुचित घटनाके मौके पर सचमुच दूसरोंका कर्तव्य कब पैदा होता है, अिसका भी विचार करनेकी जरूरत है। अयोग्य घटनाका विषय बननेवाले व्यक्तिके साथ हमारा निकट सम्बन्ध हो, अुसकी विशेष नैतिक या अन्य जिम्मेदारी हम पर हो, अुसके आचरणसे हमारा या हमारे नजदीकके दूसरे लोगोंकी प्रत्यक्ष हानि होनेकी संभावना हो, अुसके कारण समाजकी नीतिमत्ताको खतरा हो, तो अैसे प्रसंग पर हमारा कर्तव्य अुपस्थित हो जाता है। केवल जिज्ञासा, निन्दा या चर्चाके लिअे अुसमें भाग लेनेकी जरूरत नहीं।

अनुचित घटनाके अवसर पर हमारा कर्तव्य

अनुचित घटनामें फंसे हुअे व्यक्तिकी अवनतिके लिअे हमें सचमुच दुःख हो, तो क्या हम बाहर अुसकी चर्चा या निन्दा करेंगे? अैसे अवसर पर निन्दा या चर्चा करनेवालेको विचार करना चाहिये कि हमारी लड़की या लड़का, मां, बाप, बहन, भाभी या और कोअी हमारे घरका निकटका व्यक्ति अैसी अवनतिमें पड़ा होता, तो अुस समय हम क्या करते? सारे गांवमें अुसकी निन्दा और चर्चा करते फिरते या अिस बातकी किसीको भी खबर न लगने देकर अत्यन्त सहानुभूतिपूर्वक अुस व्यक्तिको अवनति या संकटसे बचाने और सुधारनेका प्रयत्न करते? जहां गहरी सहानुभूति होती है, जहां सच्चा दुःख होता है, वहां मनुष्य अपनी करुणासे, प्रेमसे, दूसरोंको अवनति या संकटसे निकालनेकी कोशिश करता है। जो अपने-आपको नीतिमान मानते हैं और दूसरोंकी अवनति देखकर अुनकी निन्दा करते हैं, अुन्होंने क्या कभी अिसका विचार किया है कि निन्दासे वे आज तक कितनोंका सुधार कर सके हैं? जिनकी अवनतिके लिअे अुन्हें दुःख होता है, अुनमें से अेकसे भी कभी हृदयपूर्वक, भावनापूर्वक प्रेमकी दो बातें कहनेका मौका अुन्हें याद आता है? अुनका हृदय

निन्दा पतितके अुद्धारका अुपाय नहीं

करुणा, अनुताप और पवित्रतासे भरनेका अुन्होने कभी प्रयत्न किया है? मानवप्रकृति, व्यक्तिके विकास, भावना और संस्कार, अुसकी परिस्थिति, अुसके अनुकूल-प्रतिकूल सयोग; अुसके पतन और अभ्युदयके कारण; कभी-कभी होनेवाली अुसकी अगतिक या असहाय अवस्था; वयोमानसे मनुष्यमें पैदा होनेवाली वृत्तिया, अिच्छाअें और वासनाअें, अुनके बाहर आने और अपनी अुचित जरूरते पूरी करनेके आवश्यक सरल और प्रामाणिक साधनो और मार्गका अभाव, मनुष्यकी सामाजिक, कौटुम्बिक और व्यक्तिगत अवस्था, जीवनमे अनेक प्रकारसे होनेवाली अुसकी परेशानी — अिन सबका विचार किसी भी अनुचित घटनाके मौके पर निन्दा करनेसे पहले कोअी करता है?

पतितके प्रति अनुकम्पा और अपने विषयमें निरहंकारिता

दुनियामे नीतिमान समझे जानेवाले मनुष्योको हमेशा प्रतिकूल परिस्थितियोमे से गुजरनेका मौका आया होता, तो वे नीतिमान रह सकते या नही, अिस बारेमे शका ही है। मनुष्यकी स्थितिका आधार ज्यादातर अनुकूल-प्रतिकूल सयोगो पर, परिस्थिति पर होता है। अिसीलिअे जिसे श्रेयकी साधना करनी है, अुसे सदा सद्व्यवसाय, सद्वाचन, सत्सग और अच्छा वातावरण रखना चाहिये। खुद होकर कभी प्रतिकूल सयोगोमे नही पडना चाहिये। किसी कारणसे अैसा अवसर आ ही जाय, तो अुससे भरसक जल्दी बाहर निकल जाना चाहिये। बाहर न निकला जा सके, तो अुतने समय तक अत्यन्त जाग्रत और यथासभव मर्यादामें रहना चाहिये। अिसमे भूल की जाय या अनजाने हो जाय, तो अुसका बुरा परिणाम थोडे बहुत अशमे मनुष्य पर हुअे बिना नही रहता। कैसे सयोगोमे, कब और किस तरीकेसे मनुष्यकी दुर्वृत्तिया जाग्रत होकर अुसे विपरीत परिणाम तक घसीट ले जायगी, अिसका कोअी ठिकाना नही। अिसलिअे अपनी नीतिमत्ताके बारेमें किसीको अहकार नही रखना चाहिये। अिस मामलेमे दूसरोके प्रति सदा अनुकम्पा रखनी चाहिये।

अपनेमें शक्ति हो तो सहृदय बनकर किसीको पतनसे बचानेकी कोशिश की जाय। लेकिन अुसे नीच समझकर अुस पर क्रोध न किया जाय, और दिलमें भी हमें कभी अैसा न लगना चाहिये कि अपने पतनसे वह सुखी हुआ है। सुखी हुआ अैसा लगे तो ही अुसके प्रति ओीर्ष्या और मत्सर पैदा हो सकता है। लेकिन अैसा लगे कि अुसका सचमुच पतन हुआ है, तब तो हमारे चित्तमें अुसके लिअे दया ही अुत्पन्न होगी।

निन्दाके कारण रसवृत्तिकी जाग्रति

जिस विषयकी तरफ हमारी प्रकट या सुप्त वृत्ति होती है, अुस विषयकी प्राप्ति हमें न हो, तो जिसे होती है अुसके प्रति हमारे मनमें क्रोध और किसी भी अुपायसे क्रोध शान्त न हो, तो ओीर्ष्या और मत्सर पैदा होते हैं। अिन सबकी अुत्पत्ति अभिलाषासे होती है। जहा अभिलाषा ही नहीं होती, वहा दुःख नहीं होता, क्रोध नहीं होता और मत्सर भी नहीं होता। मानवप्रकृतिके अिस मनोधर्मसे आप जान सकेंगे कि दूसरोंके पतनकी हम निन्दा क्यों करते है और अपनेको पतनसे बचानेके लिअे हमें क्या करना चाहिये। अपनी और समाजकी नीतिकी रक्षा करनेकी जिम्मेदारी हम सब पर है। मगर अुसे पूरा करनेका मार्ग निन्दा या व्यर्थ चर्चा नही है। अैसा करके हम अपनी रसवृत्तिका पोषण करते है। शब्दमें कुछ कम सामर्थ्य नही है। रसवृत्तिको अुत्तेजित करने और किसी अंशमें अुसका शमन करनेका सामर्थ्य शब्दमें है। दैवयोगसे प्रत्यक्ष पतनकी हमारी परिस्थिति न हो, तो भी हम दूसरी अिन्द्रियोको निन्दा द्वारा अपवित्र करते ही है।

निन्दासे हममें और समाजमें अनेक दोष पैदा होते है। अिससे जिन छोटे बच्चोंकी समझमें यह विषय नहीं आता अुनके मनमें भी अुनके बारेमें जिज्ञासा पैदा होती है। अिसके कारण बचपनसे ही अुनके मन पर बुरे संस्कार पडते रहते है। जिस विषयके बारेमें व्यक्तिगत,

पारिवारिक या सामाजिक नीतिमत्ताकी दृष्टिसे मौन रखना ही श्रेयस्कर है, अैसे विषयकी चर्चासे स्त्री-पुरुष सबके मनमें अेक प्रकारकी असभ्यता पैदा होती है। और वह असभ्यता ही मनुष्यकी अुन्नतिमे बाधक और अवनतिमे सहायक बनती है। अिसलिअे अिन सब बातोसे आप दूर रहे।

श्रवणेन्द्रियकी शुद्धि

अिसीके साथ अेक और महत्त्वकी बात आपको बताता हू। अिस आशासे कि आपकी ओरसे अिस मामलेमे कोअी अुपाय मिल जायगा, कोअी व्यक्ति भोलेपनमे आपसे अपने पतनके प्रसग और अुसके कारण कहने लगे, और आप जानते हो कि आपमें अपनी वृत्ति शुद्ध रखते हुअे दूसरोको सलाह देकर बचानेकी शक्ति नही है, तो वे बाते न सुनिये। यह ध्यानमे रखिये कि वह शक्ति आपमे नही है। आपमें अुतनी दया न हो, आपको यह भरोसा न हो कि आप अपना चित्त शुद्ध रख सकेगे, तो अैसी हालतमें अुस तरहकी बाते सुननेसे न बचनेमे अविवेक और अधैर्य है। और सुननेकी अिच्छा होनेमे मोह और रसवृत्ति है। अिस मोहमें आप कोअी फसेगे, तो अुससे निकलना आपके लिअे मुश्किल हो जायगा। फिर आपकी अुन्नतिकी अिच्छा और तत्सम्बन्धी प्रयत्न दोनो वही खतम हुअे समझिये। अैसी बात आप अेक बार भी सुनेंगे, तो आपका मोह जाग्रत हो जायगा। वह मोह आपको अुस मार्गमें आगे ही आगे धकेलेगा। दूसरोको तारनेकी शक्ति तो आपमे कभी न आयेगी, अुल्टे वह मोह आपको ही दभमें डाल देगा और दूसरोमें अैसा भ्रम पैदा करनेकी प्रेरणा देगा कि आपमे अैसी तारक शक्ति है। अिसमे भी स्त्रियोसे अैसी बाते सुननेका मोह और रस आपको होने लगे, तो आपके ध्यानमें यह बात नही आयेगी कि यह भी अेक प्रकारका विलास है, और ध्यानमें आ भी जाय तो आप अुसे छोड नही सकेगे। आगे चलकर आपकी रसवृत्तिका पोषण और शमन अिसी प्रकार होता रहेगा। अुसे बाहरसे आप कैसा भी अुदात्त

नाम दें, आपका हृदय भारी वस्तुस्थिति अच्छी तरह जानता होगा। परन्तु सदाकी अिस आदतके कारण अुससे छूटनेकी आपकी शक्ति भी धीरे-धीरे नष्ट हो जायगी। अितना ही नहीं, अिस आदतके कारण आपकी अैसी हालत हो जायगी कि रोज कोअी न कोअी अैसी बात सुने बिना, अिस विषयका हर पहलूसे चिन्तन किये बिना, आपको चैन नहीं पड़ेगा। अिस विषयमें आपके सामने कोअी बात न करेगा, तो आप जान-बूझकर यह विषय छेड़ेंगे और अैसी कोशिश करेंगे कि दूसरोंको भी अुसमें भाग लेना पड़े। आपकी स्थिति व्यसनी मनुष्यकी-सी हो जायगी; और आप अपने-आपको और दूसरोंको अिस बातका झूठा आभास कराते रहेंगे कि आप बड़ी-बड़ी मानसिक खोजें करनेके प्रयत्नमें हैं। परन्तु यह सब भ्रान्ति है। यह शुद्ध जीवन नहीं और न शुद्ध जीवन बनानेका मार्ग है। जिसे अपनी अुन्नतिकी परवाह है, वह अैसे मार्ग पर कभी नहीं चलेगा। दुनियाके पापकृत्य और अुनका अितिहास सुननेकी हमें क्या जरूरत है? दुर्गंधके कुअेमें गिरकर हम क्या ढूँढ़ निकालेंगे? हम पर अुनकी कौनसी जिम्मेदारी है? हमें किसीकी निन्दा करनेकी जरूरत नहीं, किसीके दुष्कृत्योंकी चर्चा करनेकी जरूरत नहीं; और न जगतके अुद्धारके लिअे किसीके दुराचरणका हाल सुननेकी जरूरत है। कारण, अिससे किसीका भी सुधार या अुद्धार नहीं होता, हां, हमारी अपनी दुर्गति निश्चित रूपसे होती है। अिसीलिअे श्रेयार्थी साधकको अिस मामलेमें सदा सावधान रहना चाहिये और निन्दा या दुष्कृत्योंकी चर्चामें कभी नहीं पड़ना चाहिये।

(दैनिक प्रवचनसे)

८

समयका सदुपयोग

अुन्नतिकी अिच्छा करनेवालेको अपना जरासा भी वक्त बेकार न जाने देकर अुसका भरसक सदुपयोग करनेके लिअे सतत सावधान रहना चाहिये। रुपये-पैसेके मामलेमे व्यवस्थित और मितव्ययी रहनेवाले कितने ही आदमी समयके बारेमे लापरवाह पाये जाते है। अितना ही नही, आध्यात्मिक कल्याणके पीछे लगे हुअे मनुष्य भी समयका सदुपयोग करनेके बारेमें जाग्रत और विवेकशील नही होते, यह देखकर आश्चर्य होता है। व्यावहारिक या पारमार्थिक कोअी भी मार्ग हो, अुसमे समय सम्बन्धी विवेक और सावधानीसे न चलनेवालेको अपने दोषोके बुरे नतीजे कभी-कभी जन्मभर भुगतने पडते है। समर्थ रामदासका समयके सदुपयोगके बारेमे अेक बहुत ही महत्त्वका वचन है: 'अैक सदैवपणाचे लक्षण। रिकामा जाअू नेदी अेक क्षण॥' (दासबोध, ११–३–२४)। अेक क्षण भी बेकार न जाने देने, अुसका सदुपयोग करनेको अुन्होने सौभाग्यका लक्षण कहा है। अिस पर विचार करनेसे लगता है कि जिन्हे अपने निर्वाहके लिअे कुछ न कुछ काम करना पडता है वे धन्य है, कारण, अुन्हे बेकार गवानेके लिअे वक्त ही आसानीसे नही मिलता। अुन्हे कुसग या कुबुद्धिके कारण अुल्टे रास्ते जानेका कोअी डर नही होता। जिन्हे अपना गुजारा करनेके लिअे मेहनत नही करनी पडती या अुसके लिअे अुद्योग करनेमे समय नही देना पडता, अुन्हे अन्य किसी सत्कार्य या सद्‌विद्याकी रुचि न हो तो समय बितानेके लिअे मनोरजनके अुपाय ढूढने पडते है। और अिसीमे कुसगति, कुमित्र, बुरी आदते, व्यसन आदिके कारण अुनकी अधोगति होनेकी सभावना रहती है।

फुरसत दुर्भाग्यका लक्षण है

मनुष्यका मन अच्छे-बुरे किसी न किसी विषयके बिना लंबे समय तक बिलकुल खाली नहीं रह सकता।
सत्कर्मकी अभिरुचि अुसे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष, सच्चा या काल्पनिक, अच्छा या बुरा कोअी न कोअी विषय सतत चाहिये।
अुचित विषय न दिया जाय, तो वह अनुचित विषय ग्रहण करता है। अुचित या अनुचित कोअी भी विषय न मिले, तो चित्त सहज ही सुषुप्तिकी ओर जाता है। अिस प्रकार चित्तकी सविषय या निर्विषय (अर्थात् सुप्तावस्था), दो ही अवस्थाअे होती हैं। जब तक हमें ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों सहित चित्तको हमेशा सत्कर्ममें लगाये रखना नहीं आता, जब तक हमारे चित्तका अैसा रवैया नहीं बन जाता और हमारा स्वभाव अिस प्रकारका नहीं हो जाता, तब तक यह कहना कठिन है कि फुरसतके वक्त वह कौनसा विषय पकड लेगा और किस दिशामें जायगा। अिसलिअे श्रेयार्थी साधकको सदा सावधान रहकर अपने चित्तको संभालना चाहिये। यह बात ध्यान देने योग्य नहीं है, अैसा कभी न समझना चाहिये। किसी दोषको कभी छोटा समझकर अुसके बारेमें निश्चिन्त न रहना चाहिये। "रोग, सर्प, अग्नि और शत्रुको छोटे या तुच्छ समझकर अुनकी कभी अुपेक्षा नहीं करनी चाहिये", अिस आशयका अेक बहुत पुराना सुभाषित है। अुपेक्षा करनेसे वे बढते हैं और बादमें अुनका निवारण करनेका काम बहुत कठिन और कभी-कभी तो असंभव भी हो जाता है; अिसीलिअे मनुष्यको समय पर चेत कर अुनका नाश करना चाहिये। अिसी तरह दोषको भी छोटा समझकर मनुष्यको कभी अुसकी अुपेक्षा नहीं करनी चाहिये, कारण, शत्रुकी तरह वह भी हमारा नाश करनेवाला है। बडे-बड़े व्यसनी शुरूसे ही कोअी पक्के व्यसनी नहीं होते। अुनके व्यसनकी शुरुआत बिलकुल कम मात्रामें होती है और जब होती है तब फुरसतके वक्तमें होनेवाले कुसंगके कारण स्वाभाविक रूपमें ही होती है। अिसके लिअे अुस समय बडी तैयारी, विशेष प्रयत्न वगैराकी कोअी जरूरत नहीं

पडती। खास तौर पर फुरसतके समयमे या बगैर किसी विविधताके सतत अेक ही तरहसे वहनेवाले जीवनमे मनुष्यको अरुचि, अूब, बैचेनी और अुदासीनता जैसा कुछ महसूस होता है, अैसे मौके पर अुसे अच्छे अध्ययन, अच्छे काम और अच्छी सगतिकी मददसे समय बिताने और बेचैनी दूर करनेकी कोशिश करनी चाहिये। नही तो कुसगके कारण या अपनी मनोवृत्तिके कारण अुसके अुलटे रास्ते लग जाने या अुसे खराब आदते पड जाने या व्यसन लग जानेका बडा डर रहता है। मनुष्यको पहलेसे ही कोअी अच्छी अभिरुचि न हो, तो अैसे समय अुसे जो भी विषय मिल जाता है, अुसीकी तरफ अुसका मन सहज ही मुड जाता है। अैसे समय अुसे अेकदम अच्छा विषय नही मिलता। मिल भी जाय, तो अुसमें अुसे रस नही आता। विषयके बिना चित्त रह नही सकता। अुस समय ज्यादातर 'खाली मन शैतान का घर' वाली स्थिति होनेका ही भय रहता है। अिसलिअे अैसे समय मनुष्यको खूब सावधान रहना चाहिये।

लगातार अेक ही किस्मके जीवन-व्यवहारके कारण पैदा होनेवाली अरुचि, अुकताहट और निरुत्साहको दूर करनेके लिअे त्यौहार, अुत्सव, व्रत, विवाह या अिन्हींके जैसे कौटुम्बिक या सामाजिक आनदके अवसर, दावते, तीर्थयात्रा, सार्वजनिक सभाअें, जुलूस, रथयात्राअें, कथा-कीर्तन, घर पर मेहमानोंका आना और किसीके यहा मेहमान बनकर जाना आदि भी खूब अुपयोगी होते है। आजकल नाटक, सिनेमा, क्लब, पार्टिया, गाने, बजाने व नाचनेके कार्यक्रम, महाबलेश्वर, माथेरान, शिमला, अूटी वगैरा स्थानो पर जलवायु परिवर्तनके लिअे जाना अित्यादि अच्छे-बुरे तरीकोसे अुकताहटको मिटाकर जीवनमें अुत्साह लानेकी नअी रीतिया प्रचलित होती जा रही है। सार यह है कि ज्ञानेन्द्रियो, कर्मेन्द्रियो, मन, बुद्धि, चित्त वगैराको सदाकी अपेक्षा अधिक तीव्र, भव्य, अुत्कट और आकर्षक विषय या रसानुभव, खासकर सामूहिक रूपमे, मिलनेसे जीवनकी अुकताहट और निरुत्साह दूर हो जाता है। अैसे

समय अपने जीवन-व्यवहार, आसपासकी परिस्थिति, अपने संस्कारों, स्वभाव, सभ्यता, शौक, रुचि, आदतों और ज्ञान-अज्ञान अेवं पात्रताके अनुसार हरअेक मनुष्य अपना मार्ग निकालकर जीवनमें फिर अुत्साह लानेकी कोशिश करता है। अपने जीवन-निर्वाहके लिअे किये जानेवाले अुद्योगमें ही मनुष्य अपने चित्तको रमा सके, तो बहुत करके रोजमर्राके कामसे अुसे अूबनेका अवसर न आये। अितने पर भी जीवन-निर्वाहके लिअे किये जानेवाले अुद्योग या धंधेके सिवाय अेक-दो अच्छी विद्याओं या कलाका शौक होना जीवनकी दृष्टिसे बड़ा अुपयोगी है। अैसी विद्याओं और कलाओंके अलावा अुसे कुछ न कुछ सार्वजनिक काम और वह भी निःस्वार्थ बुद्धि और अुदार मनसे करनेका शौक भी होना चाहिये, यानी अुसमें सेवावृत्ति होनी चाहिये। मनुष्यमें ये बातें हों तो अुसके लिअे यह सवाल नहीं अुठेगा कि वह अपनी अुकताहट और निरुत्साह कैसे मिटाये और फुरसतका समय कैसे बिताये।

फुरसतमें पैदा होनेवाले दोष

फुरसत और अुकताहटके वक्त मनुष्यमें कल्याण और अकल्याण दोनों करनेकी शक्ति होती है। अुस समयका मनुष्य जैसा अुपयोग करेगा वैसा ही फल अुसे मिलेगा। अुस समय यदि मनुष्य अपने लिअे अुचित कार्य खोज निकाले, नअी नअी विद्याअें और कलाअें प्राप्त कर सके और दूसरोंके लिअे अुपयोगी बनना अुसे सूझ सके, तो अुसका और दूसरोंका सहज ही कल्याण हो सकता है। अैसे वक्त वह जो अच्छी विद्या या कला प्राप्त करेगा, जो सत्कर्म आचरणमें लायेगा, अुसका परिणाम अुसकी सारी जिन्दगी पर होगा और वह अधिक अुदात्त बनेगा। लेकिन अुस समय अगर अुसे कोअी अुचित कार्य न सूझे और कुसंग या स्वभावके कारण अुसकी वृत्ति किसी व्यसनकी तरफ हो जाय, तो अुसका बुरा असर

अुसकी तमाम जिन्दगी पर पडेगा और अुसकी अधोगति होगी। अच्छे विचारो और अच्छे सस्कारोवाले मनुष्य फुरसतका जरासा भी वक्त बेकार नही जाने देते, अुसे अपनी पसन्दके सत्कर्ममे लगाते है। अिसलिअे अुन्हे कभी अुकताहट अनुभव करनेका प्रसग ही नही आता। परतु असस्कारी मनुष्य अैसे अवकाशके समय ही ज्यादा बिगडते है या अुनके बिगडनेकी शुरुआत होती है। अच्छे कामोकी अभिरुचि बढाअी हुअी न होनेसे अुद्यमी मनुष्य भी फुरसतका वक्त ताश खेलनेमे व्यर्थ ही गवाते है। कोअी सोते रहते है, तो कोअी भूख-प्यास न लगी होने पर भी व्यर्थ खाने-पीनेमे वक्त और रुपया बर्बाद करते है। कोअी दूसरोके यहा जाकर फिजूल गपशप लगाने या निन्दा करनेमे अपना और दूसरोका वक्त बिगाडते है। कोअी समय नही कटता, अिसलिअे बार-बार चाय पीते है, तो कोअी पान-तम्बाकू खाने या बीडी-सिगरेट पीनेमे वक्त गवाते है। व्यसन मनुष्यको समय गुजारनेमे मदद करते है, परतु साथ ही वह अधिकाधिक व्यसनाधीन बनता जाता है। फुरसतके समय ही कुसग और कुसस्कारोका भय अधिक रहता है। व्यसन ज्यादातर सगतिसे ही लगते है। अिसलिअे प्रत्येक मनुष्यको अिस तरहकी सगतिसे सावधान रहना चाहिये। हमारे मित्रको केवल नासका, चायका, होटलमे जाने या सिनेमाका व्यसन हो, तो भी हमे अैसे मित्रसे सावधान रहना चाहिये। मित्रके अच्छे-बुरे संस्कार मनुष्य पर पडे बिना नही रहते। अिसी अनुभवसे मनुष्यके मित्रो परसे अुसकी परीक्षा करनेकी प्रथा पडी है। अिसी तरह मनुष्य अपना फुरसतका समय कैसे बिताता है, अिस परसे भी अुसकी परीक्षा करनी चाहिये, क्योकि मनुष्य फुरसतके वक्त ज्यादातर अपनी रुचिके काम ही करता है।

अपने मनुष्यत्वका अज्ञान

अिस तरह विचार करने पर जान पड़ता है कि बेचैनी, अकुलाहट और फुरसत मनुष्यके अहितका ही कारण बनते हैं। परन्तु व्यसनों या खराब आदतोंके मोहके कारण यह बात हमारे ध्यानमें नहीं आती। अुल्टे हम जिसे भूषण मानते हैं और जिसे फुरसत नहीं मिलती, अुसे अभागा समझते हैं। शास्त्रोंमें अनेक व्यसनोंका अुल्लेख है और अुनका निषेध भी किया गया है। अुनमें मुख्य चार महाव्यसन बताये गये हैं: स्त्री, मृगया, द्यूत और मद्यपान। आजके समयमें पहलेके कुछ व्यसन पिछड़ गये हैं, तो कुछ नये व्यसनोंका आविष्कार भी हो गया है। परंतु व्यसन पुराने जमानेके हों या नये जमानेके, हम पर अुनका हानिकारक असर जरूर होगा, यह बात अभी तक हमारे गले अुतरी नजर नहीं आती। कारण अभी तक हमने जीवनका सच्चा महत्त्व नहीं समझा है। हममें विवेक नहीं, सावधानी नहीं, दीर्घदृष्टि नहीं। हमारी हरअेक क्रियाका, संस्कारका क्या अच्छा-बुरा असर अपने पर, अपनी सन्तानों पर, परिवार पर और सारे समाज पर वर्तमान और भविष्यमें पड़ेगा, अिसका विचार हम नहीं करते। अुल्टे, हम भ्रान्तिसे यह समझते हैं कि अपनेमें अुठी हुअी तात्कालिक वृत्तिका शमन करनेसे हम शान्त या सुखी होंगे। विवेक, सावधानी और दीर्घदृष्टिका अभाव, अपने सिवाय दूसरेके सुख-दुःखों तथा भावनाओंके प्रति लापरवाही, अवकाश, थोड़ी सांपत्तिक अनुकूलता अथवा सत्ता वगैरा बातें किसी न किसी व्यसन या दोषका मूल कारण होती हैं। मनुष्यमें थोड़ीसी मानवता और विवेक जाग्रत हो जाय, तो अिस बारेमें अुनके मनमें कुछ न कुछ विचार आये बिना नहीं रहेगा कि अुसके व्यसनों, शौकों और मनोरंजनकी खातिर कितने निरपराध व्यक्तियोंके अुचित सांसारिक सुखोंका, अुनकी सद्भावनाओंका और अुनके आयुष्यका नाश होता है, बेचारे कितने निरपराध प्राणियोंकी

हमारे शौकके खातिर सिर्फ अिसीलिअे जान चली जाती है कि वे दुर्बल है। मनुष्य अपनी तात्कालिक वृत्तिको महत्त्वपूर्ण समझता है, परतु दूसरोके जीवनकी अुसे कोअी कीमत मालूम नही होती। अितने अविवेकका कारण यह है कि वह स्वय 'मनुष्य'के नाते अपनी सच्ची कीमत नही जानता।

फुरसतके कारण साधु-सम्प्रदायोमें घुसे हुअे दोष

साधु-सम्प्रदायो तकमे फुरसतके कारण अनर्थ होते रहे है और अभी तक हो रहे है। कर्ममार्ग छोड देनेके कारण निवृत्तिपरायण लोगोके लिअे यह बडा सवाल होता है कि समय कैसे बिताये। चौबीसो घण्टे अीश्वरके चिन्तनमे बिताना सभव नही होता। नित्यके क्रिया-काण्डमे कुछ समय बीत जानेके बाद बाकी रहे समयका सवाल अुन्हे परेशान करता है। नामस्मरण, अुन्ही धार्मिक साम्प्रदायिक ग्रथोका वार-बार पठन, तीर्थाटन, गगा या नर्मदाकी प्रदक्षिणा, भजन, कीर्तन वगैरा करनेके बाद भी वक्त बच ही रहता है। अत अुसके लिअे अुन्होने भग, गाजा, सुल्फा, अफीम वगैरा जैसे व्यसनोकी मददसे चित्तके लयका और समय गुजारनेका अुपाय ढूढ निकाला। और अिसीलिअे अनेक साधु-सम्प्रदायोमें अिन व्यसनोकी अतिशयता दिखाअी देती है। नशीली चीजोकी खपत जितनी अिन लोगोमे होती है, अुतनी और किसी समाजमे नही होती होगी। चित्तका लय करनेके लिअे ये जरूरी साधन है, अैसी मान्यता अिस मार्गमे अिन व्यसनोको मिली हुअी है। चित्तको प्रत्यक्ष या काल्पनिक कोअी भी विषय चाहिये। अुसे कोअी विषय न मिले, तो वह सुषुप्तिकी ओर झुकता है, अैसा अूपर कहा गया है। कुदरती नीदकी मर्यादा होती है। अैसी स्थितिमे फुरसतका वक्त बिताना मुश्किल होनेके कारण अुन्हे बाहरी अुपायो द्वारा अपने चित्तको बेहोश करना पडता है। अिस बेहोशीको चित्तकी लयावस्था माना जाता है। हममें यह विश्वास तो है ही कि चित्तके कारण ही

आसक्ति, बन्धन, कर्म और जन्ममरण वगैरा मनुष्यके साथ लगे हुये हैं। किसी भी अुपायसे चित्तका लय प्राप्त करना आध्यात्मिक दृष्टिसे श्रेष्ठ और आवश्यक भूमिका मानी जाती है। अत. अिस भ्रमके कारण बेहोशी लानेवाले व्यसनोंकी परम्परा कुछ साधुओं और वैरागियोंके सम्प्रदायोमें चली आअी है। जिन चीजोंको हम निषिद्ध और त्याज्य मानते है, वे ही अुन्हे अत्यन्त जरूरी और महत्त्वपूर्ण लगती है। आरोग्य, ज्ञान, सद्भावना, सद्गुण, सेवा वगैरा अनेक दृष्टियोंसे समाजके लिअे अुपयोगी होनेकी बात न सूझनेके कारण ये सारे बुरे नतीजे होते रहे हैं। मनुष्य दुनियादारीमें लगा हो या परमार्थमें, ज्यादातर अुसके जीवनमें फुरसतकी वजहसे ही अिस तरहकी बुराअियां पाअी जाती है। अिसलिअे श्रेयार्थी साधकको क्षण क्षणका दक्षतापूर्वक सदुपयोग करनेका प्रयत्न करना चाहिये। अुसे हमेशा जाग्रत रहकर सद्विचारी और सत्कर्मपरायण रहनेमें ही अपना कल्याण मानना चाहिये।

जीवनमें मैत्रीका अुपयोग

मनुष्य सामाजिक प्राणी है, अिसलिअे संगतिके बिना वह अकेला नहीं रह सकता। फुरसतके वक्त अुसे संगतिकी जरूरत ज्यादा महसूस होती है। जिसे शुरूसे ही सत्संग अच्छा लगता है, वह अपने फुरसतका समय सत्संगमें बिताता है। अिसलिअे हरअेक आदमीको किसी सन्त-सज्जनसे या सदाचारी पुरुषसे सम्बन्ध रखना चाहिये। जिसके लिअे यह संभव न हो, अुसे किसी सन्मित्रसे जरूर सम्बन्ध बनाना चाहिये। कुमित्र हमें अधोगतिकी ओर ले जाता है और सन्मित्र अुन्नतिकी ओर। सन्मित्रका बहुत बड़ा मूल्य है। सत्संगके लिअे किसी साधु पुरुषकी ही संगतिकी जरूरत नहीं है। जिसकी संगतिमें हमारे कुसंस्कार नष्ट हों और आचार-विचार शुद्ध रहें, अुसकी संगतिको हमें सत्संग ही समझना चाहिये। अिस दृष्टिसे देखें तो सन्मित्रके जैसा कल्याणकर्ता दुनियामें हमें शायद ही कोअी मिलेगा। अुसकी संगतिमें हमारा जीवन सहज

और अनजाने ही अुन्नत होता रहता है। परन्तु हमे यह समझ लेना चाहिये कि सन्मित्र किसे कहा जाय। जिसकी सगति हमे प्रिय लगे, जिसकी सगतिमें हमे आनन्द आये, अुसे हम सन्मित्र समझने लगे, तो यह हमारी भूल भी हो सकती है। व्यसनी और दुष्ट मनुष्योके भी मित्र होते है, अुनकी सगति अुन्हे प्रिय होती है और अुसमे अुन्हे आनन्द भी आता है। अिसीसे अुन्हे सन्मित्र मानना ठीक नही। अिसलिअे देखना चाहिये कि कोअी सगति कल्याणप्रद है या नही। जिसे कल्याणप्रद मार्गकी अभिरुचि पैदा करनेवाला मित्र मिल गया, अुसके जीवनका कोअी भी समय व्यर्थ या अनर्थकारी प्रवृत्तियोंमें नही जायेगा। अिसमें शक नही कि जीवनमे माता-पिता, भाअी-बहन, पत्नी, गुरुजन, सन्त-सज्जन आदि सबका बहुत बडा महत्त्व है। परन्तु जीवनकी विशालता, अुसकी तरह तरहकी छोटी-बडी प्रवृत्तिया, अुन्हे करनेके लिअे विविध प्रकारके आवश्यक गुण और अुनका विकास — अिन सबका विचार करते हुअे सन्मित्र जैसा सहायक जीवनमे और कोअी नही मिल सकता। माता-पिता, भाअी-बहन और गुरुजनसे भी सन्मित्र हमे ज्यादा सच्चे रूपमे पहचानता है। वह हमारे तमाम गुण-दोषोका साक्षी और ज्ञाता होता है। वह न हमे औपचारिक मान-प्रतिष्ठा देता है और न हमसे चाहता ही है। वह हमें हर प्रकारके पापसे बचानेकी कोशिश करता है। हमारे दोष जानते हुअे भी वह हमे क्षमा करता है। वह हमेशा हमारा भला सोचता है और हमे बुराअियोसे बचाता है। कठिनाअियो और दुःखोमे हमें सम्हालता है। अत्यन्त प्रिय माने जानेवाले व्यक्तियोसे भी मनुष्य जिस चीजको छिपाता है, अुसे वह सन्मित्रके सामने खुले दिलसे कह सकता है। अुसके साथ वह बहुत ही खुले दिलसे व्यवहार करता है। वह हमारे प्रेमका भूखा होता है। फिर भी कभी हमारी खुशामद नही करता। झूठी तारीफ नही करता। अुल्टे हमारे क्रोध या नाराजीकी परवाह न करके वह

हमारे दोषोंके बारेमें हमे सावधान करनेके लिये अुलहना देने और समय पडने पर हमारा तिरस्कार करनेसे भी नही चूकता। वह कभी हमसे स्वार्थ साधनेकी अिच्छा नहीं रखता। हम अुसके सामने अुसकी बडाअी या प्रशसा कभी नही करते और करे भी तो वह अुसे पसन्द नही करता। हृदयकी निकटता, सरलता और शुद्धता सन्मित्रके बराबर किसी औरके साथ रखी या प्राप्त नही की जा सकती। अगर समभाव प्राप्त करना ही जीवनकी सर्वश्रेष्ठ अवस्था हो, तो अुसे सन्मित्रके साथ जितनी जल्दी हम सिद्ध कर सकते है अुतनी और किसीके साथ नहीं कर सकते। प्रत्येक निकटके प्रियजनके लिअे हमारे हृदयमे प्रेम-प्रवाह बहता रहता है, फिर भी अुन सबमें सन्मित्रके लिअे हमारे हृदयमे बहनेवाले प्रवाहमे जो सरलता, शुद्धता और अखडितता होती है, वह और किसी भी प्रवाहमे नही मिलेगी। जिनका जीवन अिस तरहके सन्मित्रोंके सहवासमे व्यतीत होता है और जो अुनके जीवनके साथ समरस हो गये है, अुनके सारे जीवनको सफल हुआ समझना चाहिये। अैसा अेक भी मित्र जीवनमे हमें प्राप्त हो जाय, तो अिसमे शक नही कि हमारा जीवन सार्थक हो जायगा। अिसीलिअे मनुष्य यह जानकर कि जीवनमें अुन्नतिकी दृष्टिसे और समयकी सार्थकताकी दृष्टिसे भी सन्मित्रका कितना बडा मूल्य है, कमसे कम अेक सन्मित्र तो बना ही ले और अुसके साथ जिन्दगी भर समरस होकर रहे। परलोकके कल्याणके लिये गुरु प्राप्त करनेवालोको यह समझनेका कोअी अुपाय नही होता कि परलोकमें अुससे क्या लाभ होता है; परन्तु सन्मित्रसे अिहलोकमें ही क्या लाभ हुअे और हो सकते है, यह सब साफ तौर पर देख सकते है। मित्रोंमे आपसमें दुराव-छिपाव नही होता, गुप्तता नही होती, कपट, दम्भ, या धूर्तता नही होती, वहा छोटे-बडेकी भावना ही नही होती; अिसलिये भय, कपट, प्रशसा, खुशामद या केवल बाह्याचारका वहा नाम भी नही होता। भ्रम, अज्ञान और भोलेपनकी वहा गुजाअिश

नही होती। अैसे सरल और सादे जीवनव्यवहार द्वारा सन्मित्रकी संगतिसे मनुष्य अनजाने अुन्नत होता है। अिसलिअे जीवनमे कभी समय बेकार गवाने या व्यसनाधीन होनेका अुसे डर नही होता।

९

दृढ़ शरीर और पवित्र मन

हमारी शारीरिक और मानसिक स्थितिका निरीक्षण

अुन्नतिकी दृष्टिसे अपने समाजका विचार करने पर हमे जान पडेगा कि आज हमारी स्थिति कितनी अवनत हो गअी है। हमारे लोगोकी केवल शारीरिक और मानसिक स्थितिकी ओर ध्यान दे, तो भी अिस बातका यकीन हुअे बिना नही रहता। शायद लम्बे समयकी परतन्त्रताके कारण हम अैसे हो गये है। अिसके अलावा, कुसग, व्यसन, होटलोकी प्रथा, अयुक्त खानपान, शरीरके बारेमें हमारी लापरवाही, अज्ञान, दारिद्रय वगैराके बुरे परिणाम हम पर शीघ्र गतिसे हो रहे है। शरीर और मन अच्छी हालतमे रखनेकी आकाक्षा और अुत्साह शायद ही कही पाया जाता है। अिन सब बुराअियोसे निकले बिना हमारा अुद्धार नही होगा। कअी कारणोसे कितने ही वर्षोंसे चले आ रहे अपने शारीरिक ह्रास और अपनी मानसिक अवनतिको रोककर हमे अपनेमे सामर्थ्य पैदा करना चाहिये। यदि हमे अपनी अवनतिके बारेमे शका हो या वर्तमान स्थितिकी भयकरता अभी तक हमारे ध्यानमे न आती हो, तो गरीब और अमीर, विद्वान् और अविद्वान्, आबाल-वृद्ध स्त्री-पुरुष — सबकी शारीरिक और मानसिक स्थितिका हम थोडा अवलोकन और निरीक्षण कर ले। और हम सोचे कि आज हम जिस स्थितिमे है क्या वही मनुष्य-जन्म लेकर प्राप्त करनेकी आदर्श स्थिति है? जिन

महान ज्ञानी और बलवान पूर्वजोंका हमें अभिमान है और जिनके गुणोंका हम गौरव करते हैं, अुनकी परम्परामें पैदा हुअी सन्तानकी क्या अैसी ही शारीरिक और मानसिक अवस्था होनी चाहिये? दुनियामें हमारी संस्कृति सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है, हमारे ग्रंथ ज्ञानसे खचाखच भरे हैं, हमारा देश सब तरहसे समृद्ध है। अिन सब अन्तर्बाह्य परिस्थितियोंसे लाभ अुठानेवाले हमारे अिस मानव समूहकी क्या अैसी ही हालत होनी चाहिये? बुद्धि और ज्ञानका गर्व करनेवाले तथा अमीरीका दिखावा करनेवाले अपने कुटुम्बकी, बच्चोंकी और समाजकी शारीरिक स्थितिकी तरफ थोड़ा ध्यान दें और अच्छी तरह देखें कि अुनमें कितनी कूवत है, कितनी ताकत है, अुनका शरीर कितना कार्य-क्षम है। आज जन्म लेनेवाले बालक कैसी शारीरिक अवस्थामें पैदा होते हैं; अुनका पालन-पोषण किस ढंगसे होता है; बड़े होने पर अुनकी क्या दशा होती है; आजके तरुणोंकी भरी जवानीमें कैसी स्थिति है; और दुर्बलताकी ओर हम किस तेजीसे जा रहे हैं — अिन सब बातोंका प्रत्येक मनुष्यको विचार करना जरूरी है। दुनियामें जीवन-संघर्ष दिनोंदिन अधिक तीव्र होता जा रहा है। अिस जीवन-संघर्षमें हम अपनी वर्तमान निकृष्ट शारीरिक दशामें कैसे टिक सकेंगे? मौजूदा क्रमसे देखते हुअे हमसे भी ज्यादा अवनत दशाकी ओर जा रही हमारी भावी पीढ़ी आजसे ज्यादा तीव्र बननेवाले आगामी जीवन-संघर्षमें किस तरह टिक सकेगी? अिन सब बातोंका हमें विचार करना चाहिये।

अुद्देश्यहीन जीवन-प्रवाह और अुसका परिणाम

हमारी वर्तमान दुरवस्था पर स्त्री-पुरुष सबको ध्यान देना चाहिये। हममें से प्रत्येकको अपनी स्थितिकी जांच कर लेनी चाहिये। प्रामाणिकतासे कमाअी करके कुटुम्बखर्च चलानेकी हमारी शक्ति दिनोंदिन घट रही है या बढ़ रही है, अिसका विचार पुरुषोंको करना चाहिये। अिसी प्रकार मातृत्व, गृह-व्यवस्था, बाल-संगोपन और संवर्धन, घरमें सबकी सभाल वगैरा

नैसर्गिक और पारिवारिक कर्तव्य ठीक ढगसे पूरे करनेके लिअे जरूरी शक्ति हममे काफी मात्रामे है या अुत्तरोत्तर कम हो रही है, अुचित जिम्मेदारी पूरी करनेकी हमारी वृत्ति है या अुसे टालनेकी है, अिसकी जाच स्त्रियोको अपने मनमें करनी चाहिये। प्रत्येक कुटुम्ब-वत्सल मनुष्यको यह भी हिसाब लगाना चाहिये कि अपने और अपने बच्चोके शरीर किसी तरह कायम रखनेके लिअे हर महीने दवा-दारूका कितना खर्च आता है। और अिन सब बातो परसे स्त्री-पुरुषोंको अपनी पात्रता निश्चित करनी चाहिये। अपने प्रधान गुणो और शक्तियोका ही दिनोदिन ह्रास होता हो, तो भावी पीढीके कल्याणकी आशा रखना बेकार होगा। हमारे मानव-कुलकी स्थिति अिसी तरहकी रहे, तो कालान्तरमें हमारा कुल और हमारा समूह जगतमे रहेगा या नही, अिसमें भी शका और भय है। जीवन-सम्बन्धी अेक भी अुदात्त ध्येयके बिना हमारा जीवन चल रहा है। अिसी हालतमे कुदरतके नियमानुसार सतान पैदा होती जा रही है। अपना या अपने पेटसे पैदा होनेवाली सतानका कौनसा अुच्च या पवित्र हेतु पूरा करने या करानेके लिअे हम सतान पैदा करते है, अिसका कोअी विचार किये बिना मानव-जातिकी पीढिया अेकके बाद अेक जगतमें आती हैं और अपने ममत्व और अहकारकी, विकारवशता और अज्ञानकी विरासत छोडकर हरअेक पीढी चली जाती है। अिस प्रकार यह प्रवाह अखड रूपमे जारी रहता है। हममे से प्रत्येक अिस प्रवाहमे अेक बिंदु जैसा है। यह प्रवाह हम सबसे मिलकर बना है। हम सब किसी बिना अुद्देश्यके, मानो मूर्च्छावस्थामें, कहां जा रहे है, अिसका हमें पता नही है। हमे यह भी मालूम नही कि हमने क्यो जन्म लिया है और कहा जानेवाले है। अिसी स्थितिमें पीढियो पर पीढिया न मालूम क्यो और कहा मूढवत् जा रही है। अपने वर्तमान जीवन और जगतके प्रवाहके साथ हम अितने अेकरूप हो गये है कि अपनी अवनति और अपने दोष हमारे ध्यानमें नही

आते। अितना ही नहीं, हम यहां तक कहनेमें नहीं चूकते कि दोषयुक्तता ही मनुष्यकी वास्तविक स्थिति है और सदा रहेगी। मानो हमारी कोशिश यह समझने और बनानेकी होती है कि यही स्थिति ठीक है। परन्तु मानवताकी दृष्टिसे यह हमारी आत्मवंचना है, हमारी भ्रान्ति है।

जीवन-सम्बंधी श्रद्धा

जो अिस वंचना और भ्रान्तिसे निकलना चाहते हैं, अुन्हें जीवनका, मनुष्यके सुप्त अतुल सामर्थ्यका विचार करना चाहिये। मनुष्यमें ज्ञान, विवेक, संयम, निग्रह, पुरुषार्थ, कर्तृत्व, प्रेम वगैरा सब शक्तियां भरी हैं। वे आज हममें थोड़ी मात्रामें हों तो भी अुनका विकास करनेकी शक्ति हममें है। अपनी असाधारण बुद्धि लगाकर मनुष्यने कल्पनातीत वैज्ञानिक खोजें करके पंच महाभूतों पर कुछ अंशमें काबू पाया है। हमें यह दृढ़ विश्वास होना चाहिये कि अीश्वरका यह हेतु नहीं हो सकता कि अैसा बुद्धिशाली मनुष्यप्राणी अज्ञान और विकारवशताके कारण पीढ़ी-दर-पीढ़ी दुःख भोगता रहे। हम अपने दोषोंके कारण अनजाने अेक-दूसरेके दुश्मन हो गये हैं। पिछली या आगेकी किसी भी पीढ़ीके बारेमें हममें कर्तव्यकी दृष्टि नहीं रही। अिस सबका मुख्य कारण यह है कि हममें धर्म नहीं रहा। धर्मके लिअे जीने और धर्मके लिअे मरनेकी भावना हममें लगभग मिट गअी है। अपने स्वार्थको मुख्य समझकर अुसीका खयाल करके हम सारे सम्बन्ध जोड़ते या तोड़ते हैं। अिसलिअे हम किसीको सुखी न करके सबके शत्रु हो जाते हैं। ये सब बातें अपनी अुन्नतिके अिच्छुक हरअेक मनुष्यको ध्यानमें रखनी चाहियें। जितना गहरा हमारा पतन हुआ है, अुसीके हिसाबसे हममें अुन्नतिके लिअे अुत्साह पैदा होना चाहिये।

हमारी अुन्नतिमे बाधक होनेवाली अनेक भ्रातियोमे से अेक महान भ्राति यह है कि मनुष्यको लगता है कि केवल बाह्य विषयोके द्वारा हम सुखी हो सकते है। लेकिन अुसकी समझमे यह नही आता कि जिस शरीर और मनके साथ अुसका चौवीसो घण्टे अखड सम्बन्ध रहता है, वे तन्दुरुस्त न हो तो वह बाहरी वस्तुओके सयोगसे सुखी नही हो सकेगा। नीरोगी,

शरीर और मनकी अुपेक्षा तथा धन-सम्बंधी भ्रान्ति

मजबूत, कसा हुआ और सब तरहसे कार्यक्षम शरीर तथा पवित्र, स्थिर, स्वाधीन और अनेक सद्‌गुणो और सद्‌भावनाओसे युक्त मनके जैसे सुख और सौभाग्यके दूसरे साधन नही है। ये दोनो साधन जिनके पास अच्छे हो, वे विद्वान और धनवान हो तो अपनी विद्या और धनका अुचित अुपयोग करके अपने साथ औरोकी भी अुन्नति कर सकेगे। परन्तु अिन दोनोके अभावमे मनुष्य जब अपना ही कल्याण नही कर सकता, तो फिर दूसरोके कल्याणकी तो बात ही क्या? अच्छे शरीर और अच्छे मनकी व्यक्ति और समाजके हितकी दृष्टिसे अत्यन्त आवश्यकता होते हुअे भी हम और हमारा समाज अिस मामलेमे कितने अुदासीन है, यह अपने और आसपासके समाजसे सबके ध्यानमे आ जाना चाहिये। हम अपने समाजके घरोकी जाच करे तो अुनमे रहनेवालोकी हैसियतके अनुसार कीमती कपडे-लत्ते और बर्तन-भाडे, तरह तरहकी ससारोपयोगी वस्तुअे, सुन्दर कोच और आलमारिया, कुर्सिया, पलग और गादी-तकिये, बच्चोके खिलौने — अितना ही नही परन्तु कीमती जेवर, हीरे, मोती, जवाहरात और गाने-बजाने तथा मनोरजनके साधन भी पाये जायेगे। सम्पत्तिकी विपुलताके हिसाबसे मोटर और गाडी-घोडा वगैरा वैभवके साधन भी मिलेगे। परन्तु अिन सबमे शरीरको नीरोगी और बलवान बनानेके व्यायामके साधन कितने प्रतिशत घरोमे मिलेगे? अिसी तरह जिनके पढनेसे मन पवित्र, स्थिर और स्वाधीन रह सके, अैसी पुस्तके कितने घरोमे मिलेगी? अिस प्रकारके

सस्कार बच्चोको देनेकी और अिस तरहके अध्ययनकी सुविधा कितने घरोमें होगी ? हम अिसकी जाच करे तो अिस मामलेमे बहुत शोचनीय दशा नजर आयेगी। अिसके विपरीत, जाचके अन्तमें यह मालूम होगा कि समाजमें हजारमे से नौ सौ निन्यानवे लोगोकी यह श्रद्धा होती है कि हम धनसे सुखी होगे। परन्तु यह अुनका भ्रम है। केवल दरिद्रताके कारण जो विपत्तिया भोगनी पडती है, वे धनप्राप्तिसे कम हो सकती है। परन्तु धन होने पर भी आरोग्य, बल, विवेक, सयम, अुदारता, सावधानी और अुचित स्थान पर काटकसर आदि गुण न हो, तो मनुष्य दुखी होता है, अिसका धनहीनोको पता नही होता। धनकी मददसे धनवान लोग आराम और सुखका झूठा दिखावा कर सकते है। और अुनके बाहरी दिखावे और आडम्बरसे सब लोग धोखा खाते है। परन्तु यदि वे सचमुच सुखी यानी तृप्त होते, तो रोज भिन्न-भिन्न सुखोंके पीछे क्यों दौड़ते ? यह कहा जाय कि अुनमें बल है, तो फिर शक्ति और परिश्रमके छोटे-छोटे काम करनेके लिअे नौकर-चाकर न होने पर अुनका काम क्यो रुक जाता है ? यह कहे कि वे नीरोगी है, तो अुन्हें हर महीने डॉक्टर, वैद्य और दवाके निमित्तसे सैकडो रुपये क्यो खर्च करने पडते है? यह माने कि अुनमें सहन-शक्ति है, तो अुन्हें अलग-अलग ऋतुओंमें शिमला, दार्जिलिंग, अूटी, महाबलेश्वर जैसी दूर-दूरकी जगहोमें जाकर रहनेकी जरूरत क्यों पडती है ? धनके कारण पडी हुअी बुरी आदतों और व्यसनोको रोज-ब-रोज पूरा किये बिना अुन्हे चैन नही पड़ता। अिस परसे हम अुन्हें सुखी समझते है। परन्तु अुनकी वास्तविक स्थिति हम नही जानते। सारी जिन्दगी सुखके पीछे दौड़ते रहने पर भी अुन्हे सुख नही मिल पाता। अिसलिअे अुन्हे रोज अुसकी तलाश करनी पडती है। अिस प्रकारके जीवनमें जहा अिन्द्रियजन्य सुखसे ही सुखी होनेका प्रयत्न जारी रहता है, वहा मानसिक स्थिति कैसी हो सकती है, अिसकी कल्पना थोडा विचार करनेसे हो जायगी। धनके साथ नीति,

सदाचार, न्याय-बुद्धि, संयम, अुदारता, धर्मनिष्ठा वगैरा सद्गुण हो, तो ही धनका सदुपयोग होनेकी सम्भावना रहती है। ये गुण न हो तो केवल धन मनुष्यके चित्तमे आशा और तृष्णा वढाता रहता है और अुसे दुर्गतिकी तरफ घसीट ले जाता है। अिस प्रकार मनुष्यके शरीर और मनको भ्रष्ट करनेका कारण बननेवाले धनकी मनुष्यको बेहद अिच्छा और मोह होना मानव-जातिका दुर्भाग्य है।

अिस दुर्भाग्यसे निकलनेके लिअे हमे विवेक, संयम और पुरुषार्थकी आवश्यकता है। हम शरीर और मनको मजवूत और पवित्र बना सके, तो हमारा भाग्य हमारे हाथमे है। सुन्दर मानव-शरीर जैसी दूसरी सुन्दर जीवित वस्तु जगतमे नही मिल सकती, और

सौन्दर्य और मानवताकी अुपासना

निर्दोष मानव-मन जितनी पवित्र सचेतन चीज भी दुनियामे कोअी और नही मिल सकती। यह बात ध्यानमे रखकर हमे अिस बारेमे प्रयत्नशील रहना चाहिये। आज हम सौंदर्यके सच्चे अुपासक नही है। बाहरसे रग लगाकर हम सौंदर्यका दिखावा करते है। अुससे सौंदर्य प्राप्त नही होता। हमारे शरीरमे भरपूर खून नही, खूनमे तेजस्विता नही, शरीरमें ताकत नही, स्फूर्ति नही। फिर हममे सौंदर्य कहासे दिखाअी दे? हम अपना शरीर और अपनी सतानोके शरीर सुदृढ, नीरोगी, चपल, कसे हुअे, कार्यक्षम बनानेकी कोशिश करे और साथ ही अपना मन शुद्ध, स्थिर, स्वाधीन, शान्त, प्रसन्न और आनन्दी रखना सीख ले, तो सौन्दर्यके साथ मानवताकी अुपासना भी हमारे हाथो होती रहेगी। सद्गुणोके बिना कोअी भी अुपासना सभव नही। अिसके लिअे हमे परिश्रमी और सयमी होना पडेगा। खाने-पीनेमे नियमित और परिमित बनना पड़ेगा। काम, क्रोध, लोभको काबूमे रखना पडेगा। मन पवित्र, प्रसन्न और आनन्दी रखना होगा। हमे यह निश्चित समझ लेना चाहिये कि किसी भी तात्कालिक अिन्द्रियजन्य सुखके पीछे पडनेसे सच्चा

सुख नहीं मिलता। चाहे जैसे खान-पानसे और स्वैर तथा स्वच्छन्द व्यवहारसे शरीर अच्छा नहीं रहता। बहुतसा खा लेनेसे बल नहीं बढ़ता। परन्तु संयमसे ही सुख मिलता है, शरीर अच्छा रहता है। खाया हुआ पचनेसे बल बढ़ता है। अिसलिअे संयम, सादा भोजन, परिश्रम, परिमितता और नियमितता आदि सब बातों पर हमारा जोर होना चाहिये। अिन सब बातोंमें हम ज्ञान और विवेकपूर्वक चलें, तो अिसमें शक नहीं कि हमारी अवनति टलेगी और अुन्नति होगी। परमात्मा हमारे प्रयत्नसे हमें अवश्य सफलता प्रदान करेगा। और हम खुद, हमारी अगली पीढ़ी और साथ ही हमारा समाज मानवताके मार्ग पर आगे बढ़े बिना नहीं रहेगा।

१०

मनुष्योचित सुख और अुसकी प्राप्तिका मार्ग

सच्चे-झूठे सुखकी परीक्षा

सभी मनुष्य सुखकी अिच्छा करते हैं, परन्तु यह ढूंढ निकालना कठिन है कि अुनमें से कितनोंको सच्चा सुख मिलता है। मनुष्य सुखकी आशामें ही जीवन बिताता है और अुसके न मिलनेके कारण अुसे समय-समय पर निराश भी होना पड़ता है। यदि मनुष्य अपनी बुद्धिका ठीक तरहसे अुपयोग करे और अुसकी समझमें आ जाय कि सुखके लिअे सचमुच क्या करना चाहिये, तो अिसमें सन्देह नहीं कि अिसी जीवनमें वह स्वयं सुखी होकर दूसरोंको भी सुखी करेगा। अिसके लिअे अुसे सबसे पहले यह साफ समझ लेना चाहिये कि हम मनुष्य हैं और मनुष्योचित सुखके लिअे जन्मे हैं। अुसे चाहे जिस तरह सुखी होनेकी आशा, अिच्छा या विचार भी छोड़ देना चाहिये। अुसे मनुष्योचित सुखके अलावा और सब सुखोंका त्याग करना सीखना

चाहिये। कनिष्ठ सुखका त्याग किये विना हम अूचे दर्जेके सुखके लायक नही वन सकते। आप अपना जीवन जिस ढगसे वितानेकी अिच्छा और दृढ सकल्प करेगे और अुसे पूरा करनेका अुचित प्रयत्न करेगे, अुसी प्रकारका जीवन आप प्राप्त कर सकेगे। कारण, अिस प्रकारकी शक्ति आपमें है। वह शक्ति आज सुप्त हो, अुसका आपको भान न हो, तो भी अिसमें शका नही कि वह आपमे है। अुसे आपके केवल जाग्रत करने भरकी देर है। सज्जन और दुर्जन, अुद्यमी और आलसी, मेहनत करनेवाले और मुफ्तखोर, परोपकारी और दुष्ट, प्रामाणिक और अप्रामाणिक, सत्यवादी और सत्यकी परवाह न करनेवाले, साफ-दिल और कपटी — सव तरहके आदमी अिस दुनियामे है। वे अिसी दुनियामें अपना जीवन विताते है और निर्वाह करते है। जिसे जिस प्रकारका जीवन व्यतीत करनेकी अिच्छा हो, अुसके लिअे अिस ससारमे अुसी तरहका जीवन बितानेकी गुजाअिश है। सब अपने-अपने ढगसे अपनेको सुखी भी मानते होगे। परन्तु अुनमे से किसे मनुष्योचित सुख मिलता होगा, यह अेक वडा सवाल है। जब मनुष्य अैसे सुखके पीछे पडता है, जो मानवताको शोभा नही देता, तो अुसे सुख न मिलता हो सो बात नही। अुसे वह मिलता तो है। परन्तु वह सुख अितना क्षणिक होता है और आगे-पीछे वह अिस तरह दु:खमे परिणत हो जाता है कि अुसे सचमुच सुख कहा जाय या नही, अिस बारेमे शका ही है।

विवेकरहित जीवन-प्रवाह

हम सव बुद्धिमान होने पर भी अिस प्रकारके सुखके पीछे पडे हुअे है। हममें बुद्धि है, परन्तु अुसका अुपयोग हम विवेक बढानेमे नही करते। अिसी प्रकार हममे अहकार है, परन्तु मानवताका अैसा अभिमान नही जिससे आत्मगौरव वढे। अिसके बजाय हम विवेकका विकास करके जीवन-सम्वन्धी वढते हुअे अनुभव परसे सच्चे सुखकी तलाश और परख करे और अपनी सारी शक्ति

और बुद्धिका अुपयोग अुसीकी प्राप्तिके लिअे करें, तो हम मानवोचित सुखके अधिकारी होंगे। संगति, वातावरण, परिस्थिति, आदतों वगैराके कारण अेक बार हमारी जिस प्रकारकी जीवन-पद्धति बन गअी है, हमारे विचारोंका रवैया जिस प्रकारका बन गया है, हमारी अिन्द्रियों पर चंचलता, लोलुपताके जो संस्कार पड गये हैं, अुन सबके कारण जीवनके दूसरे पहलूका विचार करनेकी हमें कभी कल्पना तक नहीं आती और अुस दिशामें हमारी शक्ति कभी जाग्रत नहीं होती। सुखके लिअे हम सतत प्रयत्न करते हैं, फिर भी हमें सुख, शांति और सन्तोष क्यों नहीं मिलते, अिसी तरह जीवन बितानेकी कोअी और पद्धति है या नहीं, अिसका विचार भी हमें कभी नहीं सूझता। अिसका कारण यह है कि अुस दृष्टिसे हम बुद्धिका कभी अुपयोग ही नहीं करते। जीवनमें हमेशा दुःख, चिन्ता और अुद्वेग सहन करते हुअे भी हमें यह शक कभी नहीं होता कि हमारे विचारोंमें, हमारी जीवन-पद्धतिमें कोअी दोष होगा। हमारे आसपासका वातावरण भी अैसा ही होता है। अिसलिअे आदर्श विचार और आदर्श जीवन सुनने या देखनेको नहीं मिलते और अिन तरहके विचार और जीवनके साथ अपने विचारों और जीवनकी तुलना करनेका मौका भी नहीं मिलता। अिसलिअे अपने दोष हमारे ध्यानमें नहीं आते। हम खुद विचार नहीं करते और हमारी परिस्थिति भी अैसी नहीं होती जिससे अैसे विचार जाग्रत हों। परिणामस्वरूप, पिछले जीवनकी तरह भविष्यका जीवन चलाते रहनेके सिवाय हमें और कुछ नहीं सूझता।

परन्तु हमें विचार करना चाहिये कि क्या अिस प्रकारका जीवन बिताकर सदा दुःख भोगते रहनेके लिअे ही परमात्माने मानव-जातिको पैदा किया होगा? क्या अिसीके लिअे अिस महान प्रकृतिसे अुसका निर्माण हुआ होगा? सृष्टिकी तमाम शक्तियां हमारे अधीन न हों तो भी अितनी शक्ति और बुद्धि परमात्माने या कहिये कुदरतने हमें दी है कि हम अपने पर आनेवाले दुःखोंका निवारण करके सुखी

हो सके। मानव-जातिको अिस प्रकारकी कोअी कम विरासत नही मिली है। परन्तु अुसे अिसका अुचित अुपयोग करना चाहिये। अिस अुपयोग पर ही अुसके जीवनका सुखी या दुखी होना निर्भर करता है। मानव-जातिका अितिहास, मानव-जातिकी आजकी स्थिति, मनुष्यकी मनोरचना, अुसके सस्कार, अुसकी धार्मिक, सामाजिक, कौटुम्बिक और व्यक्तिगत स्थिति वगैरा सव वाते हम जानते है। क्या हम अिससे अितना भी नही जान सकते कि मनुष्य हमारे यानी मानव-जातिके दोषोके कारण दुखी और सद्गुणोसे सुखी होता है? क्या हम नही जानते कि अज्ञान, मोह, विकारवशता, लोलुपता, लपटता, दुर्व्यसन और किसी भी प्रकारका अतिरेक, ये सब हमारे दुखके कारण है? क्या अभी तक हमारे घ्यानमे यह नही आया कि केवल अिन्द्रियजन्य भोगोके पीछे पडनेसे सुखकी प्राप्ति नही होती? क्या हमारी समझमें नही आता कि काम, क्रोध, लोभ, अीर्ष्या, वैर, कपट, दुष्टता, स्वार्थ — ये सब अनर्थके कारण है? मनुष्य यह सव समझता है। परन्तु जैसे कोअी व्यसनी नशीली चीजोकी मात्रा वढाकर अपनी व्याकुलता और तडप शान्त करनेकी कोशिश करता है, वैसी ही हमारी हालत है। दुनियामे जिस चीजके कारण हमें दुख होता है, वही अधिक मात्रामे करके हम दुखका नाश करनेकी चेष्टा करते है। हम काम, क्रोध, लोभ और दुष्टता आदिसे होनेवाले दुखोका अिन्हीके द्वारा नाश करनेकी कोशिश करते है। स्वार्थके कारण होनेवाले दुख, आनेवाली मुसीवते, हम अधिक स्वार्थी वनकर दूर करनेकी कोशिश करते है। भोगके बुरे नतीजे हम भोगके जरिये ही कम करनेका प्रयत्न करते है। परन्तु क्रोधके कारण होनेवाले दुख प्रेमसे, लोभके कारण होनेवाले दुख अुदारतासे, स्वार्थीपनका परिणाम निस्वार्थतासे और भोगके फल सयमसे मिटानेकी वात हमे नही सूझती।

हमारे जिन दोषोंके अनिष्ट परिणाम हमें और दूसरोको भुगतने पडते है, अुनके लिअे हमें पछतावा हुअे बिना अिन दोषोसे हमारा

छुटकारा नहीं हो सकता। अितना ही नहीं, परन्तु वे ही दोष हमारे हाथों बार-बार होते हैं और हमें तथा दूसरोंको सदा दुःखी बनाते हैं। दुःखको टालना हो तो हमें अपने दोष पहले दूर करने चाहिये। यह सीधीसादी बात बुद्धिमान कहलाने पर भी हमारी समझमें नहीं आती। यह समझते हुअे भी कि अपने क्रोधके कारण हम खुद और दूसरे भी दुःखी होते हैं, अपनी लोभवृत्तिके कारण हम कठिनाअीमें पड़ते हैं, हम प्रेमसे, निर्लोभतासे, अुदारतासे काम लेकर ये दुःख और कठिनाअियां दूर करनेका प्रयत्न करनेके बजाय अुलटे पहलेसे ज्यादा क्रोधी और लोभी बनकर सुखी होनेका प्रयत्न करते हैं। क्रोधके दुष्परिणाम दिखाअी देने पर भी हम अपने क्रोधी स्वभाव पर अभिमान करते हैं। अपनी दुष्टताके परिणाम ज्यादा दुष्ट बनकर और कपटके परिणाम अधिक कपटी बनकर दूर करनेकी हमारी कोशिश होती है। यही स्थिति अन्य सब विकारों और अज्ञान, मोह, स्वार्थ, वगैरा बातोंमें पाअी जाती है। अपने दोष मिटाये बिना हम यह चाहते हैं कि औरोंको निर्दोष होना चाहिये। हम शायद ही यह मानते हैं कि दुःखका कारण हमारे अपने ही दोष हैं। हमारे कुटुम्ब या समाजमें जो दुःख दिखाअी देते हैं या हमें खुद जो दुःख भोगने पड़ते हैं, अुनका कारण हैं दूसरोंको ही दोषी माननेकी तरफ हमारे मनका रुख होना। अिस पर भी हमें अपने दोष स्वीकार करने पड़ें, तो हम यह साबित करनेकी चेष्टा करते हैं कि वे दूसरोंके किसी बड़े दोषकी प्रतिक्रिया या परिणाम हैं।

सबके सुखमें हमारा सुख

अेक दुर्गुणका परिणाम दूसरे दुर्गुणके जरिये मिटानेकी कोशिश करके हम दोषोंकी ही संख्या बढ़ाते हैं और अैसी अिच्छामात्र करते हैं कि हम और हमारा कुटुम्ब सुखी रहे। यह बहुत बड़ी भ्रांति है। हम सभी अिस भ्रांतिमें हैं, अिसलिअे हम और हमारा समाज सभी दुःख भोगते हैं। हम केवल अपने सुखका ही विचार करते हैं, दूसरोंके सुख-दुःखका विचार नहीं करते। मानवीय सुख केवल अपने

अकेलेके सुखका विचार करने या अुसके लिअे प्रयत्न करनेसे नही मिल सकता। यह मानवधर्मकी प्रारभिक बात भी हम अभी तक नही जानते। यह निश्चित है कि मनुष्य जब तक मानवोचित सुखके पीछे नही पडता, अुसके लिअे आवश्यक प्रयत्न नही करता, तब तक वह सुख प्राप्त नही कर सकता। केवल व्यक्तिगत सुखका विचार करके प्राप्त किया हुआ सुख थोडे ही समयमे दुःखका रूप ले लेता है। और यदि अैसा न भी हो, तो वह सुख मनुष्यको शोभा देनेवाला नही होता। अिसीलिअे यदि शोभा देनेवाला सुख चाहिये, तो हमें सबके सुखका विचार करना चाहिये। सबको सुखी बनानेका प्रयत्न करना ही मानवोचित सुखका सच्चा अुपाय और मार्ग है। हमारा जीवन हमारा अकेलेका नही है। हमारी सब तरहकी शक्ति और बुद्धि सबके लिअे है और सबके सुखकी अिच्छामे ही हमारा सच्चा सुख है। अिस अिच्छाके अनुसार किये गये प्रयत्नसे हमे जिस सुखका लाभ होगा वही मनुष्यको सुशोभित करनेवाला और अुसका गौरव तथा मानवताका महत्त्व बढानेवाला सच्चा सुख है। मानवधर्मका यह रहस्य समझकर हमें यह बात अपने हृदयमे मजबूतीसे जमा लेनी चाहिये।

मानवीय सुखकी अभिलाषा

हम मनुष्य है तो केवल अपनी क्षुद्र वासना या अिच्छाअे पूरी करके अपने देहको सुखी करनेके लिअे नही, बल्कि मानवधर्म पर चलकर सबको सुखी देखनेके लिअे है। अिसीलिअे हमे निर्दोष और सद्गुणसपन्न होनेकी जरूरत है। निर्दोषताके बिना सद्गुणोंका पूरा विकास नही हो सकता। निर्दोषताके बिना सद्गुणोका प्रभाव नही पडता। सद्गुणी होनेका अर्थ ही यह है कि हम दूसरोके साथ समरस होकर अुनके सुख-दुःखका विचार करें, खुद दुःख और मुसीबत अुठाकर दूसरोको सुखी करनेकी कोशिश करें तथा अुनके साथ सहानुभूतिका बरताव करे। अैसा करनेसे ही हमारे आत्मभावका विकास होता है। कौटुम्बिक, सामाजिक, राष्ट्रीय प्रत्येक

क्षेत्रमें जहां-जहां दूसरोंके साथ हमारा संबंध हो, वहां सर्वत्र हमारे सद्गुणोंके कारण हमारा आत्मभाव विकसित होता रहना चाहिये। जिस आत्मभावमें ही सारे सुखका भंडार है। मानवजीवन जिस सर्वश्रेष्ठ सुखके लिअे है। जिसीमें मनुष्यकी परमोन्नति है।

जिस विचारसे निराश नहीं होना चाहिये कि जिस परमोन्नति तक हम जल्दी नहीं पहुंच सकते। जिस विचारसे भी आपको डरनेकी जरूरत नहीं कि जिस अन्तिम स्थितिमें पहुंचने तक हमें अनेक दुःख और मुश्किलें अुठानी पड़ेंगी। क्योंकि सृष्टिकी योजना अैसी है, परमेश्वरका कानून यह है कि जिस मात्रामें आप मानवधर्मका अवलम्बन करेंगे, जिस हद तक आप संयमी बनेंगे, जिस मात्रामें आप दूसरोंके लिअे तन-मनसे खपेंगे, अुसी मात्रामें आपका हृदय शुद्ध होगा और आपको शान्ति और प्रसन्नता मिलने लगेगी। ज्यों-ज्यों आपका मन व्यापक होता जायगा, ज्यों-ज्यों आपके हृदयमें सद्गुण प्रगट होते जायंगे, त्यों-त्यों आपको धन्यता महसूस होने लगेगी। जिसके लिअे परमोन्नति तक प्रतीक्षा करनेकी जरूरत नहीं; परन्तु अपने मार्गमें सतत आगे बढ़नेकी आपकी अभिलाषा, अुत्कंठा और प्रयत्न होना चाहिये।

हमारा जन्म मानवोचित सुखके लिअे है। जिसलिअे अैसे सुखके सिवाय दूसरे सुखोंको तुच्छ मानने जितना आत्म-सम्मान हममें पैदा होना चाहिये। जिसके लिअे हमें मोह, लालसा, प्रतिष्ठा, लोभ और मत्सरसे मिलनेवाले सुखोंको निषिद्ध मानना चाहिये। प्रेम, वात्सल्य, श्रद्धा, भक्ति, निष्ठा, सज्जनों और माता-पिताके प्रति आदर, विनय, सत्य, प्रामाणिकता, अुदारता, निरलसता, दक्षता, दूसरोंके संतोषमें संतोष माननेकी वृत्ति और जिसी तरह दूसरी सात्त्विक भावनायें — जिन सबके द्वारा मिलनेवाले सुखको ही हमें धर्म्य और ग्राह्य समझना चाहिये। हमारे दोषों और दुर्गुणोंके कारण हमारे कुटुम्ब, परिवार, नौकर-चाकर, पड़ोसी और मित्रोंको जो दुःख भोगने पड़ते हैं और

अिसी तरह हमारे गाव, समाज, देश तथा राष्ट्रके किसी व्यक्तिके साथ हमारा किसी प्रकारका कटुतापूर्ण सबंध हो जानेसे अुसे और हमे जो दु ख होते है, अुन सबका अुपशमन हमे अपने सयम, प्रेम, विनय, अुदारता वगैरा सद्‌गुणोसे करना चाहिये। पश्चात्ताप द्वारा दोषोका परिमार्जन करना चाहिये। क्रोधके कारण पैदा हुआ दु ख प्रेमसे शान्त करनेमें हमें दुर्बलता न मालूम होनी चाहिये। सयममे हीनता न महसूस होनी चाहिये। यदि हम सच्चा सुख प्राप्त करना चाहते है, तो ये तमाम बाते हमें सिद्ध करनी ही चाहियें।

दोषोका परिमार्जन

मै आपसे यह आग्रह नही करता कि आप दूसरोके क्रोधको अक्रोधसे या अपनी प्रेमवृत्तिसे जीते। अितने अूचे दर्जे तक जानेकी आपकी तैयारी हो, तो आप अुसे जरूर हासिल कीजिये। परतु मेरा आपसे अितना आग्रह जरूर है कि आप अपने काम, क्रोध, लोभ, मत्सरका और साथ ही अुनसे पैदा होनेवाले अपने और दूसरोके दु खोका निवारण अपने सयम, प्रेम, अुदारता, विनय और पश्चात्ताप वगैरा सद्‌गुणोसे कीजिये। अिसके बिना आप मानवताके रास्ते पर नही चल सकते और मानवोचित सुखके पात्र भी नही हो सकते। विकारवशता, दोष, दुष्टता, स्वार्थ वगैराके जरिये क्या आप अपनेको या दूसरोको कभी सुखी कर सके है? आप दूसरोसे प्रेम, कृतज्ञता, नम्रता, सौजन्य वगैरा सद्‌गुणोकी अपेक्षा रखते है न? अिस अपेक्षाके अनुसार सब कुछ हो तो आपको आनन्द और सुख होता है न?

आपका यह अनुभव है न कि वह आनन्द और वह सुख दूसरे अिन्द्रियजन्य आनन्द और सुखकी अपेक्षा श्रेष्ठ और दीर्घ काल तक टिकनेवाला होता है? अुस आनन्द और सुखका अनुभव अकेले आपको ही नही, परतु दूसरोको भी होता है न? तो फिर औरोसे आप जैसे आचरणकी आशा रखते है और

जव अैसा होता है तो आपको आनन्द और सुख होता है, अुसी तरह आप दुनियाके साथ वरताव करें, तो क्या दुनियामें आनन्द और सुखकी वृद्धि नही होगी? आपको भी वैसी ही धन्यता अनुभव नही होगी? अिस दृष्टिसे जीवनके तमाम अनुभव आपको क्या कहते है, क्या वताते है और क्या सिखाते है, अिसकी थोड़ी जाच करें और विवेकसे काम लें, तो आपको जान पडेगा और विश्वास हो जायगा कि मनुष्यकी सच्ची श्रेष्ठता मानव-धर्मके अनुसार वरताव करके मानवोचित सुख प्राप्त करनेमें है।

(दैनिक प्रवचनसे)

११

जीवन अेक महाव्रत

विवेकयुक्त और धर्म्य सम्वन्ध

जगतमें अलग-अलग कारणोसे निर्माण हुअे हमारे अलग-अलग सम्वन्धोकी जाच करे, तो पता चलता है कि अुनमें कुछ प्रिय तो कुछ अप्रिय और कुछ प्रिय-अप्रिय यानी मिश्र स्वरूपके होते है। अुनकी प्रियता-अप्रियता हमे अुनके द्वारा होनेवाले सुख-दु:खके कारण लगती है। परन्तु हमारे तमाम सम्वन्ध विवेकशुद्ध और धर्मशुद्ध न हो, तो अुनके द्वारा हमारी अुन्नति नही होती। केवल स्वार्थकी खातिर वाधे गये सम्वन्ध कभी स्थायी रूपसे नही टिक सकते। अिस तरह वाधे गये और जारी रखे गये सम्वन्धोंसे हमारी अवनति होती है। ये स्वार्थी सम्वन्ध अिस किस्मके होते है कि आज है और कल नही। अिन सम्वन्धोमें यह होता है कि आज हम जिसकी तारीफ करते हैं, अुसीकी कल हमारा स्वार्थ सधना वन्द हो जाय तो निन्दा करते है। हमारे सम्वन्ध प्रिय होनेके कारण यदि अैसा लगता हो कि अुनके

कारण हमारा आपसमें प्रेम और विश्वास है, तो भी अुन्हे हमें जाच कर देख लेना चाहिये। प्रेमके पैदा होने या बढनेमें कोअी विशेषता नही। सुखके अनुभवके साथ प्रेम पैदा होता है और जैसे-जैसे वह अनुभव बढता है, वैसे-वैसे प्रेम भी बढता है। सुखका अनुभव होता ` तब हम अेक-दूसरेके लिअे कष्ट सहन करते है। भावनाके जोशमें भावनाका आनन्द भी हमें अुस समय मिलता है। आनन्दके ज्वारमें भाअी भाअीके लिअे और मित्र मित्रके लिअे तकलीफ अुठाये तो अिसमें आश्चर्य नही। परन्तु किसी कारणसे अेक-दूसरेके स्वार्थ या सुखमें विरोध पैदा होने पर, मत या जीवन-पद्धतिमे फर्क पडने पर, और यह जानने पर भी कि हमारा भाअी या मित्र हमारी निन्दा करता है, पहलेका प्रेम कायम रखनेमें ही सच्ची विशेषता है। हमारे मनकी सच्ची परीक्षा अैसे ही वक्त होती है। सुखके समय प्रेम और सुखके नष्ट होते ही द्वेष पैदा होना साधारण मनुष्यके स्वभावका लक्षण है। परन्तु विवेकी मनुष्य जानता है कि कौटुम्बिक या कुटुम्बके बाहरका निकट सम्बन्ध जीवनके अन्त तक टिकाये रखनेकी कोशिश करना जीवनकी दृष्टिसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

प्रेम जोडनेकी अपेक्षा प्रतिकूल परिस्थितिमे अुसे टिकाये रखना ही अधिक कठिन है। अिसलिअे मतभेद या और किसी कारणसे हमारा प्रेम डिग जानेका जब-जब अवसर आये, तब-तब अपनी पहलेकी प्रेम-भावनाको प्रमाण मानकर — अुसे याद करके — अपनी सारी सात्त्विकता अिकट्ठी करके भी अुसी भावनाको दृढ रखनेका हमे प्रयत्न करना चाहिये। अगर यह बात मनुष्यके चित्तमे पूरी तरह जम जाय कि अेक बार जोडा हुआ प्रेमसम्बन्ध स्वार्थके कारण टूटनेमें अपनी सत्त्व-हानि है, तो कोअी भी सम्बन्ध जोडते समय, बढाते समय या तोडते समय वह विवेक और सावधानीसे काम लेगा। जिस सम्बन्धमें प्रेम, विश्वास वगैरा अेकदम बढते है और फिर अेकदम या कालान्तरमें घट जाते है, अुस सम्बन्धमें स्वार्थ,

भोलापन, भावुकता, अुतावली, अविवेक वगैरा दोष अेक या दोनों तरफ अवश्य होने चाहियें। अिसी तरह जिस सम्बन्धमें प्रेम, विश्वास वगैराकी वृद्धि सहवास, प्रसंग, आपत्ति और अनुभवके कारण धीरे-धीरे होती है, अुस सम्बन्धमें विवेक और सात्त्विकता होनी चाहिये, अिसमें शक नहीं।

निरहंकारिता और संतोषसे कष्ट सहन करना ही धर्म है

यह सारा निरूपण ध्यानमें रखकर आप अपने बारेमें विचार कीजिये। अपने जीवन, बरताव और स्वभावकी जांच कीजिये और ये या अिनके जैसे दूसरे कोअी दोष आपमें है या नहीं, यह खोज लीजिये। मैंने शुरूमें ही आपसे कहा है कि जगतके साथ हमारे सम्बन्ध धर्म्य होने चाहियें। वे अैसे हों और अुन्हें अैसे ही रखना और टिकाना हमें आता हो, तो ही हमारी अुन्नति हो सकती है। स्वार्थी सम्बन्ध कभी धर्म्य नहीं हो सकते। हरअेक आदमी सुखकी अिच्छा करता है, परन्तु यह बात आप न भूल जाअिये कि धर्मके बिना मनुष्योचित सुख कभी किसीको नहीं मिल सकता। समाजमें अेक-दूसरेके लिअे कष्ट सहन किये बिना मानव-जीवन चलना ही असम्भव है। सद्भावनासे, अुदात्त बुद्धिसे और सन्तोषसे कष्ट सहन करनेमें सच्चा धर्म है। जीवनमें अहंकारसे हम जितना आचरण करते या कष्ट सहते हैं, वह सब अधर्म्य है। अिसलिअे हम जो कुछ कर्तव्यबुद्धिसे समझकर करते हैं और दूसरोंके लिअे तकलीफ अुठाते हैं, अुसमें हमें अहंकार न होना चाहिये। क्योंकि हमारा अहंकार जिसके लिअे हमने कुछ कष्ट सहा होगा अुसे दुःख देगा, अुससे पश्चात्ताप करायेगा और हमारे और अुसके सम्बन्धमें कटुता पैदा करेगा। अहंकार कभी भी दूसरे दोषोंसे अछूता नहीं रह सकता। हमने दूसरे पर अुपकार किया है, यह भावना अहंकारके साथ रहेगी ही। अुपकारकी भावनाके पीछे लोभ होगा ही, और लोभकी जड़में बदलेकी — कमसे कम स्तुतिकी — अिच्छा तो स्वाभाविक ही होगी।

अहंकारके साथ रहनेवाले अैसे अनेक दोषोके कारण हमारे धर्मका तेज नष्ट होता है। अिसलिअे हमे अुन्नत होना हो, धर्मनिष्ठ रहना हो, तो हमे केवल सद्‌गुणोके और मानवताके अुपासक बनना चाहिये।

अहंकारी व लोभी मनुष्यके बारेमें सावधानी

कोअी भी स्वाभिमानी मनुष्य अहंकारी व लोभी मनुष्यके अुपकारके नीचे नही आना चाहता। कभी अैसा प्रसग आ जाय, तो अुसके लिअे अुसे पछतावा हुअे बगैर नही रहता। अिसलिअे आपको अहकारी और लोभी मनुष्योके बारेमें सावधान रहना चाहिये। क्योकि वे दूसरोके अपने पर किये गये बड़े-बडे अुपकार तो झट भूल जाते है, परन्तु दूसरोके लिअे अुन्हे जरा भी कष्ट सहन करना पडा हो तो अुसमें अुन्हे अपना बडप्पन और अुदात्तता दिखाअी देती है। वे कभी यह महसूस नही करते कि सामनेवाले द्वारा दिखाअी गअी कही बडी कृतज्ञता या दिये गये कही बडे बदलेसे अुस अुपकारकी भरपाअी हो गअी है। अपने किये हुअे छोटेसे अुपकारको बड़ा रूप देकर सबके सामने कहते फिरनेकी अुनकी आदत होती है। अुनकी अिस आदतका जब आपको अपने विषयमें अनुभव होगा, तब आपको लगेगा कि जिस अवसर पर अुन्होने आपको मदद दी, अुसमें चाहे जितना दुःख भोगना पडता तो भी आप भोग लेते, लेकिन अुस समय अिनकी मदद न ली होती तो अच्छा होता। अुस समयके अुस दुःखका — अुसके कारणोका — सृष्टिके नियमानुसार कभी न कभी तो अन्त आता ही; लेकिन अुनके अहकार और लोभका कोअी अन्त नही। मानवजीवन सबके परस्पर सहयोग, सहानुभूति, अुदारता वगैरा अनेक सहज सद्‌गुणो पर चलता है। अुनके विना जीवन और व्यवहार चल ही नही सकता, यह सीधी-सादी बात भी अहकारी और लोभी मनुष्य नही जानते। अुनका स्वभाव मानवधर्मसे अुलटा होने पर भी अुनके आभारके नीचे दब जानेके वाद अपनी कृतज्ञता-बुद्धिके कारण

आप अुनके स्वभावका विरोध भी नहीं कर सकेंगे। अुनके अुपकारके नीचे दब जानेके कारण आप अैसी पश्चात्ताप और कठिनाअीकी हालतमें फस जावेंगे। अिसलिअे शुरूसे ही अिस मामलेमें सावधान रहना अच्छा है। हमारे पिताजी अैसे अवसर पर अेक सूचक आर्या बोला करते थे:

> गुणवन्ताच्या घरीं याचना विफलहि बरवी वाटे।
> नको नको ती नीचापाशीं होताहि फल मोठें॥

(गुणवानसे की हुअी याचना निष्फल जाय तो भी वह अच्छी है; परन्तु नीच मनुष्यसे बड़ा फल मिलता हो तो भी याचना न करनी चाहिये।) सार यह कि विवेकी मनुष्यको अपने सत्कर्म या सद्‌गुणके लिअे अहंकार न करना चाहिये, न लोभ ही करना चाहिये। अिसी तरह अहंकारी और लोभी मनुष्यके अुपकारके नीचे भी कभी नहीं आना चाहिये।

जीवन-संबंधी लापरवाही

हमारा मुख्य सवाल यह है कि हमारे सारे संबंध विवेक-शुद्ध और धर्म-शुद्ध किस तरह बनें और रहें। सम्बन्धोंको अैसा बनाना और रखना मानव-जीवनका महत्त्व-पूर्ण कर्तव्य है। यह सोचे-समझे बिना कि हमारे कौनसे दुर्गुण क्यों और किस तरह अिस कर्तव्यमें बाधक बनते हैं और वे बाधक न बनें अिसलिअे हमें क्या करना चाहिये, हमारा मुख्य सवाल हल नहीं हो सकता। मानव-जीवन सामूहिक होनेके कारण अुसमें हमारे सम्बन्ध सहज ही परस्पर गुंथे रहेंगे। यदि हम सबका अेक-दूसरेके साथ सद्‌भावना-युक्त और विवेकयुक्त सहयोग न हो, तो अिन सम्बन्धोंका सरल, व्यवस्थित और सन्तोषकारक रहना सम्भव नहीं। अुनमें सहयोग, व्यवस्था, अनुशासन, सद्‌भाव और परस्पर मेलका कितना महत्त्व है और अिसके लिअे हममें से हरअेकमें मानवीय सद्‌गुण होनेकी कितनी जरूरत है, यह

अच्छी तरह न समझनेके कारण ही हमारे पारस्परिक सम्बन्ध वहुत पेचीदा वनकर हम सबके लिअे दुःखदायी हो जाते है। हमारी वृत्तिया और अिच्छाये धर्म्य है या अधर्म्य, यह देखे बिना अुन्हीको हम महत्त्व देते है और अुन्हे पूरा करनेकी खातिर खुशामद, कपट, असत्य, निंदा वगैरा दुर्गुणोका आसरा लेते है। हममें विवेक और सयम न होनेके कारण हम क्रोधका शमन प्रेम और क्षमासे करनेके बजाय मत्सर और कपटसे करनेकी कोशिश करते है। हम सभी अिस मामलेमे लगभग अेकसे है, अिसलिअे हम सबने मिलकर अपना खुदका और दूसरोका संसार दुःखमय बना दिया है। अिसका कारण यह है कि हम मानव-जीवनका मूल्य नही समझते। हम मिली हुअी अन्तर्वाह्य साधन-सम्पत्तिका विचार करके मानवताके अनुरूप और मानव-मनको शोभा देनेवाली महत्त्वाकाक्षा रखने लगेंगे, तो आजके जैसे क्षुद्र जीवनसे हमें कभी समाधान नही होगा।

आत्मभावका विकास

मनुष्य विवेक करने लगे, अपने और दूसरोके पूर्व अनुभव ध्यानमे रखकर अुनसे जीवनके लिअे अुचित सार निकालकर सवक सीखता जाय, अुस सवकका वर्तमान और भविष्यमे ठीक अुपयोग करनेके लिअे सयम रखने और पुरुषार्थ करनेकी कला साध ले, तो यह समझना चाहिये कि अुसमे मनुष्यता आने लगी है और वह मानव-जीवनका महत्त्व समझने लगा है। अपनी आवश्यकताओ और अिच्छाओकी तरह वह औरोकी आवश्यकताओ और अिच्छाओका विचार करने लगे और अिसके लिअे अपनी अिच्छाओको रोककर दूसरोके लिअे सन्तोषपूर्वक कष्ट सहने लगे, तो वह मानवताके मार्ग पर लगा हुआ कहा जा सकता है। मानवताका अर्थ ही दूसरोके प्रति समभाव है। समभावके आचरणसे ही अपने शरीर तक मर्यादित लगनेवाला 'आत्मभाव' दुनियामें व्यापक होकर वढने

लगता है। जैसे-जैसे हमारी मानवता बढ़ेगी, जैसे-जैसे वह सद्‌गुणोंके रूपमें प्रगट होती जायगी, वैसे-वैसे हमारे 'आत्मभाव' का विकास होता जायगा और अुसका घेरा विशाल बनता जायगा।

अिस मानवताका प्रारंभिक गुण दया है। किसी भी किस्मका पूर्व सम्बन्ध न होने पर भी दूसरेके दुःखके अवसर पर जो कोमल भाव मनुष्यके मनमें पैदा होता है और अुसे विह्वल कर देता है अुसीका नाम दया है। यह दया ही मानव-धर्मकी जड़ है। अिसीलिअे सन्त तुलसीदास कहते हैं:

दया धर्मका मूल है, पापमूल अभिमान।
तुलसी दया न छांड़िये, जब लग घटमें प्रान॥

दयासे धर्म और अहंकारसे पाप यानी अधर्म फैलता है। अिस अेक सूत्रमें मानवीय धर्म-अधर्मके कितने महान् सिद्धान्त भरे हैं? दयासे शुरू होनेवाली मानवताको अपनी सिद्धिके लिअे अेकके बाद अेक अनेक गुणोंका आसरा लेना पड़ता है। अपने शरीर तक ही मर्यादित और संकुचित 'आत्मभाव' दयाके कारण पीड़ित व्यक्ति तक जा पहुंचा कि अुसे स्थिर और दृढ़ करनेके लिअे मनुष्यको अपने शरीर-सुखके बारेमें थोड़ा-बहुत संयम करना पड़ता है। अिसके लिअे अुसे कष्ट सहन करना पड़ता है, पुरुषार्थ करना पड़ता है। पीड़ित व्यक्ति और मैं खुद — अिन दोमें से सहन कर सके अैसा कौन है, यह विवेकपूर्वक देखकर मनुष्यको कष्ट सहन करनेकी मर्यादा तय करनी पड़ती है। अिस प्रकार संयम, त्याग, सहनशीलता, विवेक, अुदारता वगैरा गुण प्रसंगानुसार अेकके बाद अेक मनुष्यको स्वीकार करने पड़ते हैं। और अिसी तरह अुनकी मानवता बढ़ती और प्रगट होती रहती है। मानवताका यह सहज क्रम है। अिस क्रमको समझ कर आप बरताव करेंगे, तो आपको अपने मार्गमें सिद्धि मिले बिना नहीं रहेगी।

यह मार्ग सिद्ध करनेके लिअे अैसी धारणा और श्रद्धा आपको रखनी चाहिये कि जीवन अेक महाव्रत है। अिसके लिअे आपको अपनी सकुचित कौटुम्बिक भावना छोडनी होगी, और अुस भावनाका क्षेत्र आपको भरसक विशाल और शुद्ध बनाना होगा।

महाव्रतकी धारणा

जिस जिसको आपकी शक्ति और बुद्धिकी आवश्यकता हो, जो कोअी आपकी मददके बिना रुक गया हो, आपको लगना चाहिये कि अुसे अुदारतासे सहायता देना हमारा कर्तव्य है। कर्तव्य करनेमें जहा आपकी शक्ति कम पड जाय, वहा यह समझ लीजिये कि आपकी शक्तिकी मर्यादा आ गअी; लेकिन कर्तव्यकी मर्यादा पूरी हुअी न समझिये। आप यह समझिये कि हमारा कर्तव्य विशाल है, हमारा क्षेत्र अपार है, परन्तु हमारी शक्ति और बुद्धि मर्यादित है।

जीवनरूपी महाव्रत सागोपाग पूरा करनेके लिअे आपको समदृष्टि रखनी होगी। आपके मनमें यह विचार या चिन्ता नही होनी चाहिये कि हमारे कर्तव्यका क्षेत्र छोटा है या वडा, अुसमें बाह्यत कोअी लाभ है या हानि, अथवा प्रतिष्ठा है या अप्रतिष्ठा। आपको अितना ही देखना चाहिये कि वह कार्य व्यक्ति और समाजके कल्याणके लिअे जरूरी है या नही। अिसके लिअे आपको कभी तो राष्ट्रीय अथवा धार्मिक कार्यके व्यापक क्षेत्रमे से वैयक्तिक क्षेत्रमें अुतरना पडेगा, और कभी वैयक्तिक क्षेत्रसे निकलकर महान् राष्ट्रीय कार्यके साथ सम्मिलित होना पडेगा। परन्तु अिन दोनो कार्योमें आपकी दृष्टि और हेतु शुद्ध और कर्तव्यपरायण ही होने चाहियें। किसी भी कार्यमें आपकी अुदात्तता, नि स्वार्थता, कार्य-कुशलता और निरहकारिता तथा हरअेक कार्यसे अुत्पन्न होनेवाले सुपरिणामोके लाभको अुस कार्यकी अपेक्षा अधिक व्यापक व अुच्च क्षेत्रमें समर्पण करनेकी आपकी दीर्घदृष्टि—ये सब गुण आपमें समान रूपसे होने चाहियें। आपकी अपनी शुद्धिका कस किसी भी कार्यमें अेकसा और श्रेष्ठ प्रकारका होना चाहिये। हरअेक छोटे-बड़े

कर्तव्यके मौके पर अपनी मानवता ही बढ़ानेकी आपकी कोशिश होगी, तो किसी भी मौके या सम्बन्धसे अपनी मान-प्रतिष्ठा अथवा दूसरी क्षुद्र अभिलाषा सिद्ध करनेकी कल्पना ही कभी आपके मनमें नहीं आयेगी। अिस व्रतकी साधनामें आपको कभी-कभी बहुत कष्ट सहना पड़ेगा। केवल कर्तव्याचरण पर जोर देकर अपनी मानवता साधनेके लिअे जिनके हितकी खातिर आप अपने देह-सुख, स्वास्थ्य, मान और प्रतिष्ठाका त्याग करते होंगे और प्रसंगवश अुन्हींकी तरफसे असह्य शारीरिक और मानसिक त्रास चुपचाप सहन करते होंगे, अुस वक्त भी शायद अुन्हींकी तरफसे आपको कठोर वाक्यप्रहार और धिक्कार सहन करने पड़ेंगे। अुन्हींके द्वारा आपके प्रति अुठाअी गअी क्षुद्र शंकाअें और आप पर लगाये गये आरोप आपको सहने पड़ेंगे। अैसे समय कभी जवाब देकर तो कभी मौन रहकर और कभी अुपेक्षा-वृत्ति रखकर, केवल कर्तव्य और मानवताके प्रति रही निष्ठाके बल पर आपको अपने मार्ग पर स्थिर रहना पड़ेगा। अिस निष्ठाके कारण औरोंकी दिखाअी हुअी कठोरता या कृतघ्नतासे आपके भीतरकी दया और क्षमा कम नहीं होगी; आप पर अन्याय हो तो भी आपकी अुदारता मन्द नहीं होगी। कठिन प्रसंग पर आप धीर और गंभीर बने रहेंगे, आपके हृदयकी विशालता और शुद्धता, अुदारता और अुदात्तताकी किसीको कल्पना न हो, तो भी आप निराश न होंगे; आपकी कर्तव्यनिष्ठाका किसीको भान न हो, तो भी अपने मार्ग परसे आपका विश्वास कभी नहीं डिगेगा। जिस अुच्च मानसिक स्थितिकी औरोंको कल्पना तक नहीं हो सकती अुसके परीक्षक आप अुन्हें कभी न मानेंगे। आपके जिस हृदयने जीवनको अेक महा-व्रतके रूपमें धारण किया है, वही आपके सारे जीवनका साक्षी होगा। अुस व्रतकी खातिर सब कुछ सहन करनेकी शक्ति आपको हमेशा अपने हृदयसे ही मिलती रहेगी। और अिस शक्तिके आधार पर आपको अपने व्रतकी सिद्धि प्राप्त हुअे बगैर नहीं रहेगी।

महाव्रतकी स्वाभाविकता

यह भी नही कि जीवनमे आपको हमेशा तकलीफे ही अुठानी पडेगी। व्रतका मतलब यह भी नही है कि अुसमे हमेशा कठिनता ही होगी। पवित्र और अुदात्त हेतुकी सिद्धिके लिअे जीवनको अेक व्रत समझते हुअे भी आपको अपने जीवनमे बार-बार अैसा अनुभव होता ही रहेगा कि जीवनकी सात्त्विक भावनाओ और सात्त्विक कर्मोके अधिकाश शुभ और कल्याणकारी होनेवाले व्यक्तिगत और सामाजिक परिणाम देखकर आपका हृदय आनन्द और अुल्लाससे भर गया है। दूसरोका भला होता देखकर, अुन्हे दु खसे मुक्त हुअे देखकर आपको कृतार्थता और धन्यता महसूस होगी। अिस प्रकार मानवताके मार्गमे अधिकाधिक सफलता प्राप्त करनेका आपका अनुभव जैसे-जैसे बढता जायगा, वैसे-वैसे अुसी मार्ग पर आगे चलनेका आपका निश्चय और भी प्रबल होगा। आपका अुत्साह बढ़ता रहेगा। अुसके सामने तमाम सकट, तमाम रुकावटें, आपको तुच्छ मालूम होगी। ज्यो-ज्यो आप अिस मार्गमें आगे बढेगे, त्यो-त्यो आपकी सात्त्विकतामें शुद्धता और तेजस्विता आती जायगी। आपकी बुद्धि प्रखर होगी। सद्‌विचार और सद्‌वर्तन आपका स्वभाव बन जायगा। परमात्माके प्रति आपकी निष्ठा बढती जायगी। आत्मविश्वास बढता जायगा। फिर यह महाव्रत आपको महाव्रत जैसा नही लगेगा। अुसकी कठिनता जाती रहेगी। वह व्रत ही आपका सहज जीवन बन जानेके बाद, अुसीमें धन्यता, कृतार्थता और प्रसन्नता महसूस होनेके बाद अुसमें कठिनता कहांसे दिखाअी देगी? अैसी स्थितिमे आपको यही लगेगा कि दुनियाके हरअेक व्यक्तिके साथ आपका सम्बन्ध विवेकशुद्ध, धर्मशुद्ध और न्यायशुद्ध है। व्यक्तिगत, कौटुम्बिक, सामाजिक और राष्ट्रीय — हरअेक सम्बन्ध और क्षेत्रमे आपको अपने लिअे अेकसी प्रियताका ही अनुभव होगा। माता, पिता, पति, पत्नी, भाअी, बहन, चाचा, मामा, पुत्र, पुत्री,

पड़ोसी, आप्तजन, मित्र या दूसरे कोअी — जैसा भी आपका सम्बन्ध होगा वह पवित्र, अुदात्त और आदर्शरूप ही जान पड़ेगा। यह महाव्रत जिस माताने धारण किया होगा, वह माता आदर्श माता बनेगी और पिता आदर्श पिता होगा। पुत्र हो तो असा ही महाव्रती होना चाहिये, मित्र हो तो असा ही होना चाहिये — अिस प्रकार हरअेक सम्बन्धके बारेमें आपके लिअे अेक ही तरहकी राय बनेगी। अिस प्रकार जीवनमें सभी ओरसे सिद्धि मिलनेके कारण आप घरमें प्रिय, समाजमें मान्य और अपनी दृष्टिसे धन्य और कृतकृत्य होंगे। अिस सिद्धिके लिअे ही मानव-जीवन है। यह सिद्धि प्राप्त कर लेनेके बाद जीवनमें और कुछ सिद्ध करनेको रहता ही नहीं।

(दैनिक प्रवचनसे)

शुद्धिपत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१२	२४	परमधाम	परम धाम
२४	पैरेका शीर्षक	साधनाका	साधनका
४१	१८	असात्त्विक	अष्ट सात्त्विक
६०	१०	नष्ट	सुप्त
६६	११	देवदूत बनकर	देवदूतके रूपमे
८९	१५	मल	मूल
९५	१४	अनिवार्य	आविर्भाव
१२४	१७	कर्तव्य	कर्तृत्त्व
१४२	२४	पदा	पैदा
१८२	३	बनाकर बाहर न आने दिया	बनकर फैलने न दिया
१८४	१७	बीचमे	केन्द्रमे
१८४	१९	अुसके गुणोका	गुणोका
१९२	७-८	'प्रकारके' और 'साध्य' के बीच जोडे 'साधनका आग्रह न रखकर'	
२०४	१	अुनमे	अुसमे
२२५	२७	अुस	अुसका
२३३	१३	अन्यमनस्कता	अमनस्कता
२५३	३	गुरु-शिष्यका	गुरु शिष्यका
२५३	३	बनता	बनाता
२६२	१८	f	कि
२६२	१९	भी	अभी
२६३	६	,	,
२६३	६	अिस मान्यताका	अुसका
२९१	१४	कठिनाअिया	कठिनाअियो
२९४	१८	(विचारशील)	विचारशील
३२१	१९	म	मैं